भारतमें गाय

[दो खंडोंमें]

दूसरा खंड

गायका शरीर—उसके रोग और चिकित्सा

लेखक

श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्त

भाषान्तरकार

श्रीरमावल्लभ चतुर्वेदी

खादी प्रतिष्ठान

१५, कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता

प्रकाशक
श्रीहेमप्रभा देवी,
खादी प्रतिष्ठान,
१५, कॉलेज स्क्वायर,
कलकत्ता ।

भारतमें गाय

पहला खंड — नस्ल-संवर्धन—गव्य-धन्धा ।

दूसरा खंड — गायका शरीर—उसके रोग और चिकित्सा ।

प्रथम संस्करण—अक्टूबर १९४९—३०००

मूल्य :—दोनों खंड १३)

मुद्रक
श्रीचारुभूषण चौधुरी,
खादी प्रतिष्ठान प्रेस,
सोदपुर, २४ परगना ।

भारतमें गाय

दूसरा खंड

गायका शरीर—उसके रोग और चिकित्सा

[तीन भागों और अट्ठाइस अध्यायोंमें]
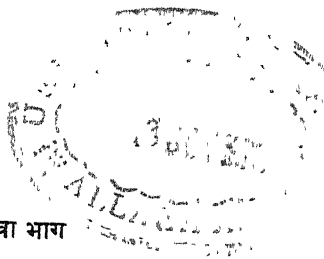
पाँचवा भाग

अध्याय ३१—३४. गायका शरीर

छठा भाग

अध्याय ३५—३६. पशुओंकी औषधियाँ, निघन्टु और औषधिक्रिया-शास्त्र

सातवाँ भाग

अध्याय ३७—५८. रोग और उनकी चिकित्सा

अध्यायोंकी सूची

भाग ५. गायका शरीर

भाग ६. पशुओंकी औषधियाँ, निघन्टु और औषधि-क्रिया-शास्त्र

भाग ७. रोग और उनकी चिकित्सा

अध्यायोंकी सूची

इस किताबके पैरामें नंबर लगा दिये गये हैं। किसी पैराका हवाला देनेके लिये मोटे टाइपमें उसका नंबर छाप दिया गया है। पैराका नंबर, अध्याय और भागका क्रम पहले खंडसे जारी रक्खा गया है।

विस्तृत सूची

[पृष्ठोंके हवाले दिये गये हैं]

भाग ५. गायका शरीर : (पृष्ठ ८८५—९९७)

३१
ठठरी या कंकाल : (पृष्ठ ८८५—९१०)

३२
पेशी और सन्धि : (पृष्ठ ९११—९२१)

३३
गायकी इन्द्रियाँ : (पृष्ठ ९२२—९३२)

३४
गायकी इन्द्रियोंका कार्य : (पृष्ठ ९३२—९९७)

भाग ६. पशुओंकी औषधियाँ, निघन्टु और औषधिक्रिया-शास्त्र

(पृष्ठ १०००—१०५२)

विषय परिचय—१०००

३५

पशुओंकी औषधियाँ : (पृष्ठ १००१—१०३७)

३६
औषधियाँ और रोग : (पृष्ठ १०३८—१०५२)

भाग ७. रोग और उनकी चिकित्सा : (पृष्ठ १०५३—१३८८)

३७
गायकी परीक्षा और रोग-निदान : (पृष्ठ १०५७—१०७६)

३८
छूत, क्षमता, पृथक्करण और छूत मिटाना : (पृष्ठ १०७६—१०९३)

३९
छूत और संक्रामक रोग : (पृष्ठ १०९४—११९१)

४०

परोपजीवी कृमिजन्य रोग : (पृष्ठ ११९१—१२०९)

४१

मुँहके रोग : (पृष्ठ १२१०—१२१५)

४२

पेट और आँतोंके रोग : (पृष्ठ १२१५—१२२०)

४३

यकृतके रोग : (पृष्ठ १२२१—१२२३)

४४

उदर्याकलाके रोग : (पृष्ठ १२२३—१२२७)

४५

नाकके रोग : (पृष्ठ १२२७—१२२८)

४६

कंठ, क्लोम और फैफड़ेके रोग : (पृष्ठ १२२८- १२४०)

४७

हृदयके रोग : (पृष्ठ १२४०—१२४७)

४८

वृक्कके रोग : (पृष्ठ १२४७—१२४६)

४६

रक्तके रोग : (पृष्ठ १२४६—१२५३)

५६

चीरफाड़की जरूरतवाले रोग : (पृष्ठ १३०३—१३१४)

५७

कष्टसाध्य प्रसव : मूढ़गर्भ : (पृष्ठ १३१४—१३५३)

५८

साधारण ज्ञातव्य बातें और शब्द परिचय : (पृष्ठ १३५४—१३८८)

शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्द : (पृष्ठ १३८९—१४०६)

जीवाणुकी गोष्ठी और रोगोंका वर्गीकरण : (पृष्ठ १४०७—१४०८)

अनुक्रमणिका—पुस्तकके अन्तमें

चित्रोंकी सूची

चित्र । पृष्ठ ।

चित्र । पृष्ठ ।

भारतमें गाय

दूसरा खंड

गायका शरीर—उसके रोग और चिकित्सा

भूमिका

रोग-पीड़ित ढोरकी सेवा करने और उसका कष्ट मिटानेके लिये पशुके अंगों और उनके सहज कार्यका ज्ञान जरूरी है। पाँचवें भाग "गायका शरीर" में यह सब लिखा गया है। इसके बाद भिन्न भिन्न रोग शरीरके कार्य और भिन्न भिन्न अंगोंमें जो परिवर्तन करते हैं यह जानना जरूरी है। रोगी शरीर और अंगोंकी विद्याको विकृति-शास्त्र—पैथोलॉजी—कहते हैं। इसके द्वारा आदमी रोग और रोगसे हुआ परिवर्तन जानता है। इसके बाद रोग दूर करनेके लिये दवायें हैं, इसे चिकित्सा (थेराप्युटिक्स) कहते हैं।

दवा काममें लानेके पहले दवा और शरीर पर उसकी क्रियाका ज्ञान आवश्यक है। इस विषयका निघंटु या द्रव्यगुण (मेटिरिया मेडिका) और औषधिक्रिया-शास्त्र (फारमाकालौजी) कहते हैं।

मेटिरिया मेडिकामें (निघंटु) दवाका साधन, उनके भौतिक और रसायनिक पदार्थ, उनका बनाना और मात्रा रहती है। फारमाकोलोजीमें (औषधिक्रिया-शास्त्र) जीवित शरीर पर दवाकी क्रियाका विचार रहता है।

दवा और उनके उपयोगका ज्ञान प्राप्तकर पशुचिकित्सक पैथोलॉजी (विकृत-शास्त्र) अर्थात् रोगसे शरीरमें जो परिवर्तन होते हैं वह ज्ञान, फिर इसके बाद इन रोगोंकी चिकित्साके लिये दवाओंका उपयोग सीखे।

इसलिये यह खंड तीन भागोंमें बाँटा गया है:

भाग ५: गायका शरीर

भाग ६: पशुचिकित्सा औषधि, निघंटु और औषधिक्रिया-शास्त्र।

भाग ७: रोग और उसकी चिकित्सा।

भाग ५

गायका शरीर और शरीरके विभिन्न संस्थान या तंत्रोंका इस भागमें विचार है। अनभ्यस्त पढ़नेवालेको पशुके अंगोंके नाम कठिन मालूम होंगे। ठठरी आदिके

भावचित्र विकर्षक लगेंगे। पर एक बार राह खुल जानेसे और शास्त्र पढ़नेकी रुचि हो जानेसे यही सब आकर्षक हो जायेंगे। पशुशरीरके भीतर होनेवाली विभिन्न कार्यप्रणाली रोचक और रोमहर्षक है। वह अद्भुत हैं। मांसल भाग और विभिन्न अवयवोंकी आधार ठठरी, मढ़ा चमड़ा, हृदय, फेफड़ा, पेड़ू, चार भागवाला पेट यह सब पशुकी आवश्यकताके अनुसार ऐसे विभिन्न तरहसे सजाया हुआ है कि, साफ मालूम होता है कि, भीतरी और बाहरी अंग पशु जिस वातावरणमें रहता और वंशवृद्धि करता है उसे सोच कर बनाये गये हैं।

भाग ६

इस विभागमें औषधि और उसकी निर्माण विधिका वर्णन है। विषयोंको संक्षेपमें लिखा गया है। क्योंकि कुछ चुनी चुनाई औषधियाँ ही ली गयी हैं। साधारण तौरपर निघंटुमें सैकड़ों औषधियाँ रहती हैं। उनकी असली गिनती तो हजारसे ऊपर है। कुछ ही लोग सभी दवाओंकी परीक्षा कर सकते हैं। फिर भी उन्हें शामिल करनेकी रीति हो गयी है। पशुचिकित्साका निघंटु मनुष्यके निघंटु जैसा ही है। पशुचिकित्सकोंके लिये कोई अधिकारी निघंटु अलग नहीं बना है। अपने कामके लिये मैंने कुछ ही दवाओं पर विचार किया है और केवल उन्हींका वर्णन किया है। गाँवका साधारण गो-वैद्य विभिन्न बूटियोंके गुण जानता है और उनका उपयोग कर फायदा उठाता है। इस तरहकी किताबोंमें उनको शामिल करनेके पहले उनकी शास्त्रीय परीक्षा और प्रयोगकी जरूरत है। भेटेरिनरी कॉलेजों और सेंट्रल रिसर्च इंनस्टिट्यूटका यह काम है कि, इन्हें हाथमें लें, इनका प्रयोग करें। इनकी बनावट और लाभका पता लगावें तब पशुचिकित्सकों और जनताको उनके बारेमें कहें। अभी इस दिशामें कुछ किया नहीं गया है। इसलिये जिन प्रसिद्ध औषधियोंको, मनुष्यके रोगोंमें बर्तते हैं वही हमारे इस कामके लिये हैं। इनमेंसे कुछ ही शामिल की गयी हैं। जो आसानीसे मिल सकती हैं और देशी हैं उन्हें तर्जीह दी गयी है।

भाग ७

सातवें भागमें विकार और चिकित्सा हैं। कोई अलग विभाग नहीं किया गया है। विभिन्न श्रेणीमें पहले रोगका विकार तब चिकित्साका विचार किया गया

है। पहली श्रेणीमें छूतवाले रोग हैं। इसके बाद विभिन्न अगोंके रोगोंका वर्णन है।

सौभाग्यसे गायका जीवन सहज और स्वास्थ्यपूर्ण है। यदि उसे छूतसे बचा लिया जाय, पोषक आहार और आश्रय दिया जाय तो रोग कम होते हैं। इनमें से अधिककी व्यवस्था कठिनाईके बिना हो सकती है। छूतके रोगोंकी क्षमता पैदा करनी होगी या उभाड़नी होगी। इसके लिये टीका, संचारण (इनअकुलेशन) और सीरमकी सूई उपाय हैं। ढोरके रोगों पर विचार करते समय इनके बारेमें सबसे जादे कहा गया है। विभिन्न अगोंके रोग संक्रामक बीमारियोंकी तरह नहीं है। इनका इलाज धीरे धीरे हो सकता है। दवाओं और उपचारकी सहायतासे पशुको निरोग करनेके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है।

साधारण कामोंके लिये चीरफाड़ (शल्य-चिकित्सा) का कुछ ज्ञान होना चाहिये। इसके लिये एक पूरा अध्याय है।

मूढ़-गर्भ (डिस्टोकिया) बहुत महत्वका विषय है। इसका प्राथमिक ज्ञान कराना ही चाहिये। इसके लिये कामका अनुभव होना चाहिये। पर प्रसवमें अच्छी तरह सेवा करनेके लिये शास्त्रका ज्ञान भी चाहिये। इसलिये मूढ़-गर्भ पर एक अध्याय है।

कुछ ऐसी चीजें हैं जो इस किताबकी संक्षिप्त चिकित्सा-प्रणालीके क्रममें शामिल नहीं की जा सकीं। इसलिये साधारण ज्ञानके लिये एक अध्याय जोड़ दिया गया है। इसमें शास्त्रके पारिभाषिक शब्दोंकी एक सूची भी सम्मिलित है। इस अंतिम अध्यायमें कुछ ऐसी बातें भी जोड़ी गयी हैं जिन पर पुस्तकमें अन्यत्र विचार करना छूट गया है।

खादी प्रतिष्ठान,
सोदपुर, ता० १८-८-४५

सतीश चन्द्र दास गुप्त

भारतमें गाय

दूसरा खंड

पाँचवा भाग

गायका शरीर

चित्र ६१. गायकी देहके बाहरी भाग।
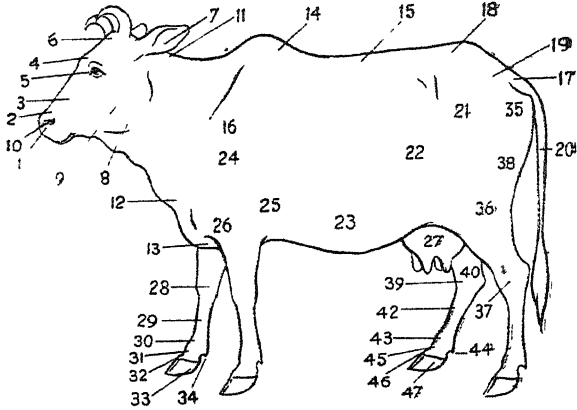
1. थूथन, 2. नाक, 3. मुखमंडल, 4. कपाल, 5. आँख और भौहें, 6. चाँदी, 7. कान, 8. निचला जबड़ा, 9, गाल, 10. नकुना, 11. गर्दन, 12. झालर, 13. छाती, 14. पुट्ठा, 15. पीठ, 16. पसलियाँ, 17. पूँछकी जड़, 18. कमर, 19 नितम्ब, 20. पूँछ, 21. कुल्हा, 22. बगल, 23. पेट, 24. कंधा, 25. कुहनी, 26. बाँह, 27. थन, 28. घुटना, 29. करभ, 30. टखनेका जोड़, 31. कलाई, 32. खुरका ऊपरी भाग, 33. खुर, 34. टखना, 35. कुल्हा, 36. जाँघ, 37. घुट्टी, 38. चूतड़, 39. पिछली घुट्टीका भीतरी हिस्सा, 40. पिछला घुटना, 42. करभ, 43. टखनेका जोड़, 44. टखना, 45 कलाई, 46. खुरका ऊपरी भाग, 47 खुर।

अध्याय ३१

ठठरी या कंकाल

१२४२. कंकाल

बैलकी देह मोटे तौर पर नीचे लिखे भागोंमें बाँटी जा सकती है :—

सिर, गर्दन, पीठ, कटि (कमर), त्रिक (sacral), श्रोणि (pelvic) और पूँछ। छाती और पेड़ू, आगेके अग और पीछेके अग।
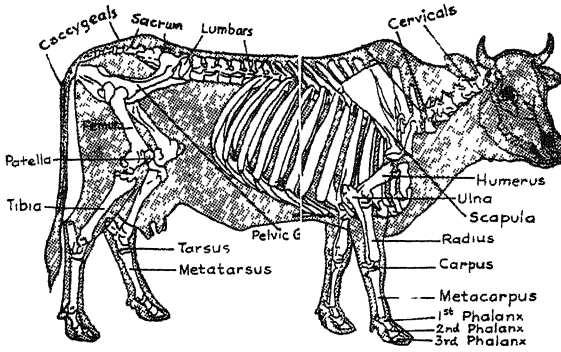
चित्र ३२. गाय और उसके अंग।

Cervical—ग्रीवादेश, Thoracic—पृष्ठदेश, Lumbar—कटिदेश, Sacrum—त्रिकदेश, Coccygeal—पुच्छ, Femur—ऊरुअस्थि, Patella—जान्वस्थि, Tibia—जंघास्थि, Tarsus—पाद कूर्चास्थि, Metatarsus—पादांगुली मूल शलाका, Pelvic Girdle—श्रोणि चक्र, Humerus—प्रगंडास्थि, Ulna—अंतः प्रकोष्ठास्थि, Scapula—अंशफलक, Radius—वहिः प्रकोष्ठास्थि, Carpus—कूर्चास्थि, Metacarpus—करभास्थि, Phalanx 1st, 2nd, 3rd, अगुलीनलक।

सिरके बाद गर्दन और तब पीठ होती है। पीठके बाद कमर या कटिदेश है, इसके बाद त्रिकस्ति भाग है जिसके नीचे श्रोणि लगी रहती है। त्रिक भागके आगे पूँछ होती है।

गर्दनके बाद पीठके नीचे छाती और पेड़ू होते हैं। छातीमें हृदय और फेफड़े होते हैं। पेड़ूके भीतर पाचन और मलेन्द्रिया होती हैं। छाती और पेड़ूका अगरेजीमें सम्मिलित नाम भिसेरा (viscera) है।

छातीके सामने अगले अंग होते हैं। और कमरेके पीछे पिछले अंग।

इन सभी अंगोंका आधार हड्डियोंकी बनी ठठरी है। ठठरी सारे शरीरको ही थामे हुए ही नहीं, जोड़ोंका काम भी उससे चलता है।

ऊपरके चित्रमें (चित्र—६२) देख सकते हैं कि, ठठरीकी हड्डियाँ देहको कैसे संभाले हैं और एक ढाँचा बनाती हैं।
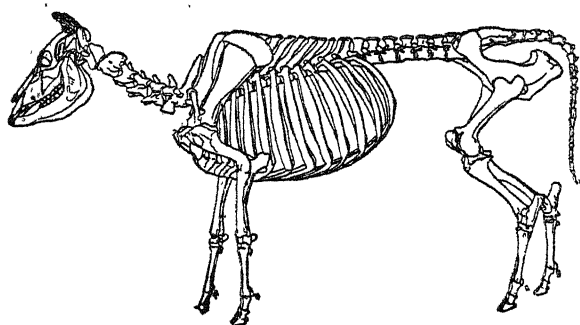
चित्र ६३. गायका ककाल।

सिरके अतिम भागके पाससे मेरुदड शुरू होता है। देहका मुख्य आधार यही है। मेरुदंड बहुतसी हड्डियोंसे बनता है। इन हड्डियोंको मांस पेशियाँ एक दूसरेसे जोड़ती हैं। इन हड्डियोंके बीच बीच गद्दी रहती है जिससे कि, मेरुदंडकी शृंखला सुदृढ़ रहे। पर फिरभी कुछ कुछ वह हिल डुल सकती है। शरीरके बड़े ढाँचेको मेरुदंड सँभालता है और यह ढाँचा अगली और पिछली टाँगों पर है।

सिरसे पूँछ तकका भाग ठठरीका **धुरीभाग** (axial) कहा जाता है और चारो पैर **शाखायें** (appendicular parts)।

१२४३. ठठरीका धुरी और शाखा भाग

बैलकी ठठरीमें कुल १७९ हड्डियाँ (अस्थि) नीचे लिखे अनुसार हैं :—

सिरमें	...	१०
चेहरेमें	...	२०
रीढ़में	...	५१
पसलियाँ	...	२६
चारों पैरमें	...	१८×४ = ७२ जिसमें श्रोणि और अंशफलक भी शामिल हैं।
	कुल—	१७९

१२४४. खोपड़ीकी अस्थियाँ

सिरकी ठठरीको खोपड़ी कहते हैं। खोपड़ीके दो भाग हैं, कूर्पर (cranium) और चेहरा (face)। मस्तिष्क और उसकी झिल्लियाँ जिस अस्थिके बीचमें हैं उसे कूर्पर कहते हैं। चेहरा कूर्परके सामने है। चेहरेका ढाँचा कई हड्डियोंका बना होता है।

मनुष्यके हड्डियोंके जो नाम हैं उसी तरहकी बैलकी हड्डियोंके भी प्रायः वही नाम हैं। बैलके कूर्पर भागमें नीचे लिखी अस्थियाँ होती हैं :—

पश्चिम कपाल (occipital)	...	१
पार्श्व कपाल (parietal)	...	२
शंखास्थि (temporal)	...	२
अंतर पार्श्व (inter-parietal)	...	१
पुरः कपाल (frontal)	...	२
जतूकास्थि (sphenoid)	...	१
झर्झरास्थि (ethmoid)	...	१
	कुल—	१० अस्थियाँ

घोड़ेके कूर्परमें भी यही १० अस्थियाँ होती हैं। चित्र ६४ में मनुष्यका कूर्पर दिखाया गया है और उसके आठ भाग भी बताये गये हैं।

चित्र ६४. मनुष्यकी खोपड़ी।

A. पश्चिम कपाल १
B. पार्श्व कपाल २
C. पुरः कपाल १
D. शंखास्थि २
E. जतूकास्थि १
F. झर्झरास्थि १
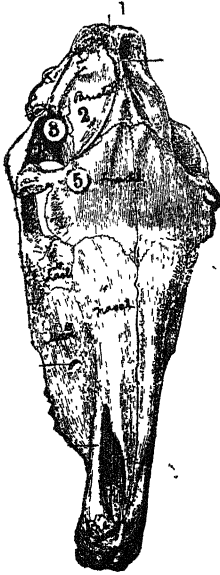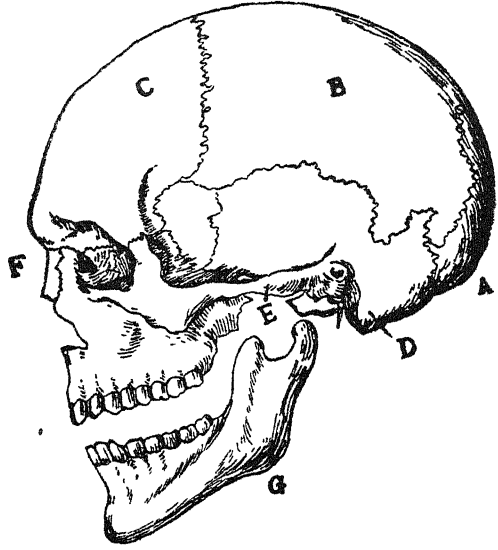
चित्र ६५. घोड़ेकी खोपड़ी।

1. पश्चिम कपाल,
2. पार्श्व कपाल,
3. शंखास्थि,
4. अंतर पार्श्व,
5. पुरः कपाल।
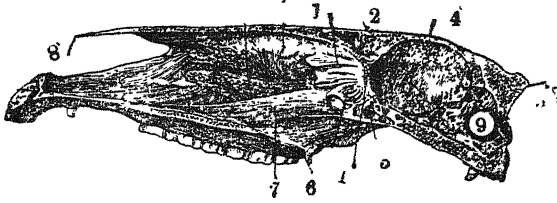
चित्र ६६. घोड़ेकी खोपड़ीका मध्यभाग। 1. झर्झरास्थि, 2. पुरः कपाल, 3. जतूकास्थि, 4. बृहत् मस्तिष्कका कोठा, 5 पश्चिम कपाल, 6. जतूका चरण, 7. सोरिका, 8. नासास्थि, 9. लघु मस्तिष्कका कोठा।
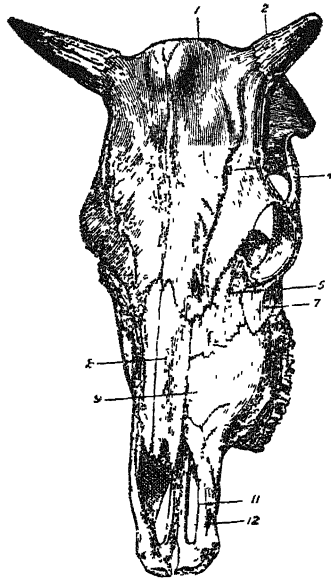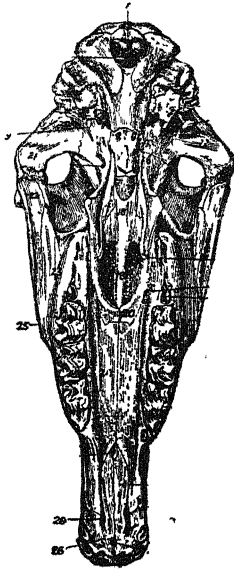
चित्र ६७. घोड़ेकी खोपड़ी (पिछला दृश्य)। 1. पश्चिम कपाल, 9. शखास्थि, 18. सीरिका, 20. तालवीय, 22. गंडास्थि, 23. ऊर्ध्व हन्वस्थि, 25. शंखास्थि और हन्वस्थिकी सन्धि, 26. पुरो हनु, 29. कर्तनक अस्थि।

चित्र ६८. बैलकी खोपड़ी (पीछे और बगलका दृश्य)। 1. पुरः कपाल, 2. सींगका जड़, 4. शंखास्थि, 5. अश्रु पीठास्थि, 7. गंडास्थि, 8. नासास्थि, 9. ऊर्ध्व हन्वस्थि, 11. पुरो हनु, 12. कर्तनक अस्थि।

बैल और घोड़ेकी खोपड़ीकी बनावटसे आदमीकी खोपड़ीकी बनावटमें बहुत भेद है। आदमीके कूर्परकी अस्थियाँ बहुत कुछ बाहरसे मालूम की जा सकती हैं।

आदमीके बाद घोड़ेके कूर्परकी कई अस्थियाँ बाहरसे मालूम की जा सकती हैं। पर बैलकी खोपड़ीकी बनावट बहुत भिन्न है। उसपर सींगें होती हैं। इसलिये पुरः कपाल अर्थात् ललाटकी हड्डी उभडी रहती है। इसलिये कूर्परकी अन्य महत्वकी अस्थियाँ दबी रहती हैं।

बैल और घोड़ेकी खोपड़ीके आगेको ओरकी सूरत दिखायी गयी है। इन चित्रोंकी सहायतासे (चित्र—६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९) बैल, घोड़ा और आदमोकी खोपड़ीका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

चित्र ६९. बैलकी खोपड़ी (पीछेसे)।

2. पश्चिम कपाल,
5. सींगका जड़,
12. शंखास्थि,
18. जतूका चरण,
19. सीरिका,
20. गंडास्थि,
21–22. तालवीय,
25. अश्रुपीठास्थि,
26. ऊर्ध्व हन्वस्थि,
28. कर्तनक अस्थि।
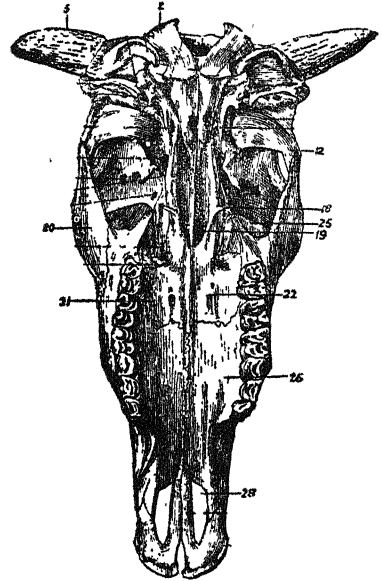
कूर्परकी अस्थियोंका वर्णन

खोपड़ीकी पीठ और निचला हिस्सा **पश्चिम कपाल** (. ccipital) का बना होता है। निचले हिस्सेमें एक छेद रहता है जिससे होकर सुषुम्ना शीर्षक (medulla oblongata) निकलता है। कपालके दोनों बगलमें दो **पार्श्वकपालास्थियाँ** (parietal) होती हैं। बैलकी खोपड़ीको ठीक आगेकी

ओर से देखने पर इन हड्डियोंकी अगली कोरके अलावा और कुछ नहीं दिखायी पड़ता। प्रत्येक पार्श्वकपालास्थि इतनी मुड़ी रहती है कि, वह समकोणके लगभग हो जाती है। इसका ऊपरी भाग दूसरी पार्श्व अस्थिके ऊपरी भागसे जुड़ा रहता है। और निचला भाग शंखास्थिके गढ़ेमें झुका रहता है। ऊपरी भाग चपटा फलक होता है। यह पुरः कपालकी हड्डियोंमें सींगकी जड़ोंके पीछे होता है।

दोनों **शंखास्थियाँ** (temporal) कपाल कोटरकी दोनों बगलकी दीवालका काम करती हैं। यह पार्श्व कपालके पीछे होती हैं। हरेक शंखास्थिके दो भाग
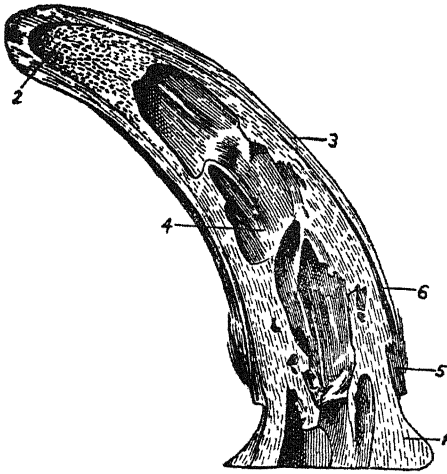
चित्र ७०. गायके सींगका अंश।

1. शृंगमूलका आधार,
2. सींगकी नोक
3. शृंगमूल कोटर,
5. त्वचा,
6. सींग और मूलके बीचकी मुलायम चीज।

होते हैं। एक शंखचक्र (squamous) जिसमें मछलीकी सी चोइयाँ (scales) होती हैं और दूसरा अश्मकूट (petrous)। यह पत्थरसा कड़ा चौखूँट होता है। अश्मकूटमें ही भीतरी कान रहता है।

ललाट **पुरः कपाल** (frontal) अस्थियोंका बना होता है। मनुष्यका पुरः कपाल एक ही अस्थिका होता है। पर घोड़ा और बैलका दो अस्थियोंका जो आपसमें जुड़ी रहती हैं। बैलकी खोपड़ीकी आकृति मुख्यतः इसी हड्डीके आकार प्रकारके कारण है। खोपड़ीके अगले भागके बीचसे जरा नीचे सिर पर यह रहती है। कपालके सारे अगले भागकी सीमा रेखा इन्हीं दोनो संयुक्त अस्थियोंकी होती है। अनेक नस्लके ढोरोंमें इन्हीं अस्थियों पर शृंगमूल होते हैं। सींगोंके आधार यही

हैं। सींगकी लबाई और पुरः कपालकी हड्डियोंके बाँकपनकी कमी बेशीमें ढोरकी नस्लके कारण अंतर होता है।

अंतर पार्श्व कपाल (inter-parietal) घोड़ा और बैलकी विशेषता है। मनुष्यकी खोपड़ीमें यह नहीं होता है। यह हड्डी कपालके अग्रभागके बीचमें होती है ओर दोनो पार्श्व कपालको जोड़नी है।
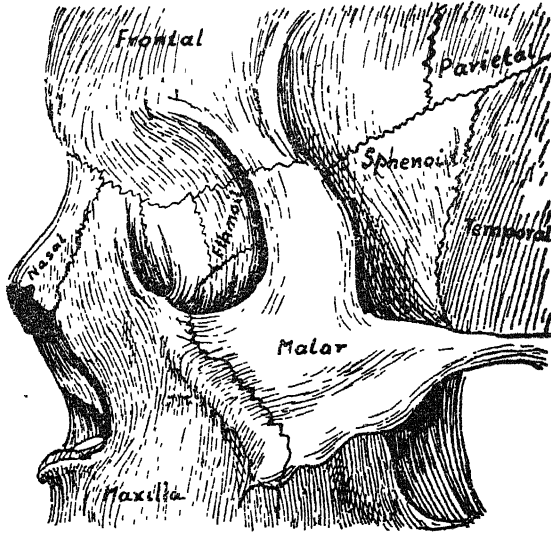
चित्र ७१. मनुष्यके खोपड़ी और चेहरेकी हड्डियाँ।

खोपड़ीकी हड्डियाँ :—Parietal—पार्श्व कपाल, Frontal—पुरः कपाल, Temporal—शंखास्थि, Sphenoid—जतूकास्थि और Ethmoid—झर्झरास्थि।

चेहरेकी हड्डियाँ :— Malar—गंडास्थि, Maxilla—हन्वस्थि, Nasal—नासास्थि,

जतूकास्थि (sphenoid) पर खोपड़ीका आधार है। इसका मध्यभाग पश्चिम कपालके मूलसे नीचे होता है। खोपड़ीकी विभिन्न हड्डियोंको यही जोड़ती है।

झर्झरास्थि (ethmoid) नाकको जड़में होती है। इसमें चलनीको तरह बहुतसे छेद होते हैं। इससे होकर नाड़ियाँ नाकमें घुसती हैं। इसके चार भाग होते हैं। मध्यफलक (horizontal plate), चालनी पटल (vertical plate) और दो पार्श्वपिण्ड (lateral masses)। गायकी खोपड़ीके दोनों पार्श्वपिण्ड बहुत बड़े होते हैं।

चित्र ६६ में घाड़ेको खोपड़ीका मध्यभाग दिखाया गया है। ब्यौरेकी बातोंमें बैल और इसकी खापड़ोमें भेद है। पर साधारण क्रम समान ही है। कपाल कोटरके दो भाग किये जा सकते हैं एक बृहत् मस्तिष्क (cerebrum) और दूसरा लघु मस्तिष्क (cereoellum)। ये दोनों विभाग इस चित्र (चित्र—६६) में ४ और ९ नम्बर से दिखाये गये है। खोपड़ा कोटरका अदाज इसीसे लगाया जा सकता है। मनुष्यकी खोपड़ोमें मस्तिष्कको प्रधानता रहती है। उसकी तुलनामें घोड़ा और बैलकी खापड़ीके कोटरमें मस्तिष्ककी जगह बहुत कम रहती हं। मुख अपेक्षाकृत बड़ा हांता है। इस बड़ेपनका कारण यह है कि. इन्हें मोटा और रूखा आहार अधिक चबाना होता है।

१२४५. मुखमंडल (चेहरा) की अस्थियाँ

बैल और घोड़ेकी अपेक्षा मनुष्यका मुखमंडल छोटा होता है। बैलके चेहरेसे घोड़ेका चेहरा लंबा है। मनुष्यके मुखमंडलमें नीचे लिखी हड्डियाँ होती हैं :—

नासास्थि (Nasal)	..	२
अश्रुपीठ (अश्रु) (Lachrymal or tear)	..	२
गडास्थि (गाल) (Malar or Cheek)	..	२
ताल्वस्थि (Palate)	....	२
हन्वस्थि (ऊपरी जबड़ा) (Maxilla or upper jaw)	...	२
अधो हन्वस्थि (निचला जबड़ा) (Mandible or lower jaw)	....	१
सीरिका (Vomer)	...	१
शुक्तिकास्थि (सीपकी तरह) (Inferior turbinated)	...	२
	कुल—	१४ अस्थियाँ

बैलके मुख मंडलमें नीचे लिखी ९ जोड़ी और २ इकहरी, कुल २० अस्थियाँ हैं :—

जोड़ी अस्थियाँ :— जतूका चरण (Pterygoid), नालवीय (Palatine), ऊर्ध्वहन्वस्थि (Superior maxill.), अश्रुपीठास्थि (Lacrymal), गडास्थि (Malar), नासास्थि (Nasal), पुरोहनु (Premaxilla), ऊर्ध्व शुक्तिकास्थि (Anterior turbinated) और अधः शुक्तिकास्थि (Posterior turbinated)।

इकहरी अस्थियाँ :— सीरका (Vomer), अधोहन्वस्थि (Inferior maxilla)।
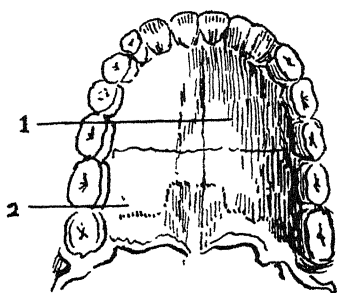
चित्र ७२. मनुष्यकी तालवीय अस्थि। 1. कठिन तालु. 2. मृदु तालु।
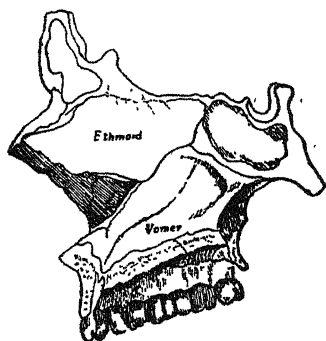
चित्र ७३. मनुष्यकी खोपड़ीकी नाक होकर अंश, जिस होकर सीरिका दीख रहा है।

जोड़ी अस्थियाँ :

१. **जतूका चरण।** (चित्र ६६ में ६ और चित्र ६९ में १८)। यह अस्थि छोटी और कुछ ऐंठीसी है। यह गलेमें नाकके द्वारके बगलमें होती है। इसका बाहरी भाग सीरिका और जतूकासे जुड़ा रहता है। इसका ऊपरी छोर नुकीला होता है और जतूका और उसकी जड़में घुसा रहता है। कंटमें नाकके द्वारके बगलमें प्रायः पूरी तौर पर यह होती है। निचला छोर खाली रहता है और घिरनीकी तरहका होता है।

२. **तालव्योय।** (चित्र ६७ में २० और चित्र ६९ में २१-२२)। यह अस्थि नाकके कंठद्वारके दोना तरफ एक एक होती हैं। कठिन तालु (hard palate) का लगभग एक तिहाई भाग इसी अस्थिका होता है।

३. **ऊर्ध्व हन्वस्थि।** (चित्र ६७ में २३ और चित्र ६८ में ९)। यह जोड़ी मुख मंडलके दोनों बगलमें रहती है। इसमें ऊपरवाले चर्वणक दाँत होते हैं।
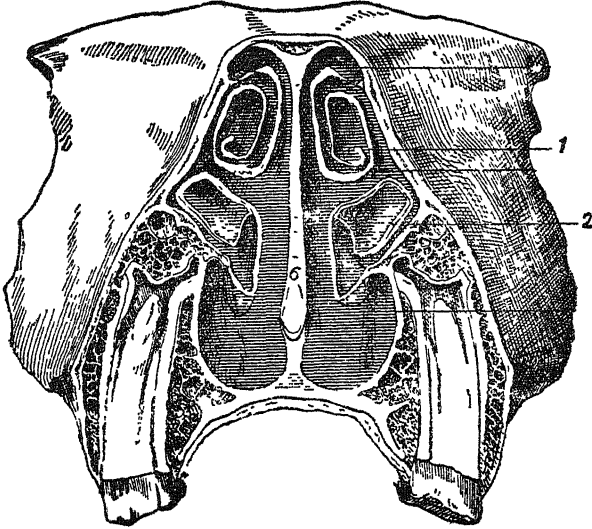
चित्र ७४. नासाखात होकर खड़ा भाग।

1. अगली शुक्तिकास्थि, 2. पिछली शुक्तिकास्थि,
6. नासिका पटल (नाकके बीचकी दीवाल)।

नीचेके जबड़ेकी हड्डी (यह एक ही हड्डीका होता है) को छोड़ ऊर्ध्व हन्वस्थि खोपड़ीकी सबसे बड़ी हड्डी है। इस अस्थिपिंडकी भीतरी सतहसे तालु पटल निकलता है।

४. **अश्रु पीठास्थि।** (चित्र ६८ में ५)। यह हड्डी आँखके कोटरके निचले भागमें होती है। मुँहकी ओरका इसका हिस्सा घोड़ेकी इसी हड्डीसे कहीं बड़ा होता है।

५. **गण्डास्थि** (गालकी हड्डी)। (चित्र ६७ में २२, चित्र ६८ में ७ और चित्र ६९ में २०)। यह हड्डी अश्रु पीठास्थिके ठीक पीछे रहती है। यह हड्डी घोड़ेकी अपेक्षा बैलके मुखमंडल पर अधिक फैली होती है।

६. **नासास्थि**। (चित्र ६६ में ८ और चित्र ६८ में ८)। नासास्थियाँ मुखमंडलके ऊपरी सतहमें होती हैं। मध्य रेखाकी दोनों ओर एक एक होती है। आगेकी ओरसे नासाखातको यही घेरे रहतीं हैं। प्रत्येक अस्थि कुछ वक्र और पतली पट्टीसी होती है। घोड़ेकी अपेक्षा बैलकी यह हड्डी छोटी और संकीर्ण होती है। ये पुरः कपालमें जुड़ी रहती हैं।
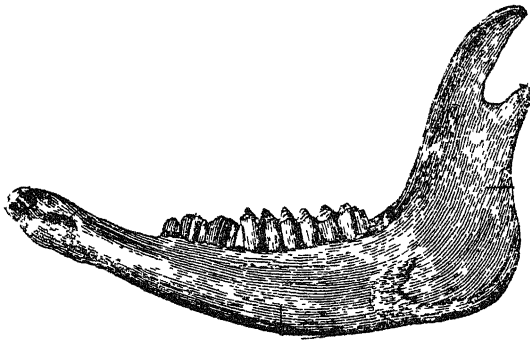
चित्र ७५. गायका अधोहन्वस्थि।

७. **पुरोहनु**। (चित्र ६८ में ११)। मुखमंडलके निचले भागमें यह अस्थियाँ होती हैं। यह अस्थि पतली और आगेकी ओरसे पीछेको दबी होती है। गायके ऊपरी कर्तनक दाँत नहीं होते। यह अस्थि कर्तनी अस्थि भी कहाती है।

८. **ऊर्ध्व शुक्तिकास्थि**। (चित्र ७४ में १)। यह दो होती हैं, एक एक दोनों ओर। यह अस्थि शंकुकी तरह दिखाई पड़ती है। इसकी भीतरी सतह नासिका-पटल (septum) द्वारा बँटी हुई है।

९. **अधः शुक्तिकास्थि**। (चित्र ७४ में २)। यह पहली शुक्तिकास्थिसे बहुत बड़ी है। यह नासास्थि और अश्रु पीठास्थि तथा पुरः कपालसे भी लगी होती है। इस अस्थिका खात नाकके मध्य छिद्रसे मिला होता है।

ऊपरको ये ९ जोड़ी हड्डियाँ मुखमडलकी हैं। बाकी की इकहरी हड्डियाँ सोरका और अधोहन्वस्थि हैं। इन सबको मिला कर २० अस्थियाँ होती हैं। इकहरी अस्थियाँ :

१. **सीरका**। (चित्र ६७ में १८ और चित्र ६९ में १९)। यह अस्थि मुखमंडलके बीचमें होती है। नाककी सुरगको दो हिस्सोंमें बाँटनेमें इस हड्डीका भी कुछ भाग लगता है। यह एक छोटे फलककी तरहका होता है जो नाकके छेदसे गले तक रहता है। यह ऊर्ध्वहन्वस्थिसे जुड़ा रहता है और नीचेकी आर काफी दूर तक बेलाग रहता है।

२. **अधोहन्वस्थि** (चित्र ७५) या नीचेका जबड़ा खोपड़ीकी एसी अस्थि है जो जुड़ी रहने पर भी चलायमान है। इस अस्थिपिण्डमें खूब सटे सटे आठ खान हैं जिनमें चर्वणक दाँत होते हैं।

१२४६. खोपड़ीकी साधारण रचना

गायका खोपड़ी चिपटी अस्थियोंकी बनी होती है। विभिन्न अस्थियाँ जुड़ी होती हैं। कोई जोड़ हिल डुल नहीं सकते हैं। जन्मके बाद सयाना होने तक अस्थियोंकी बाढ़में ये जोड़ बाधक नहीं होते। सयाना होने पर अस्थियाँ सट जाती हैं और जोड़ क्षीण हो जाते हैं। नवजात पशुकी खोपड़ीमें खासकर कपाल पर बहुतसे जोड़ या रोक दिखायी पड़ते हैं।

पश्चिम कपाल खोपड़ीके पृष्ठ भागमें मस्तिष्क खातकी पीछेकी दीवालकी तरह होता है। इससे हो कर सुषुम्नाकांड (brain cord) महाविवर (foramen magnum) से निकलता है। महाविवर के ऊपर एक बड़ी शक्तिशाली पेशी है जो सिरको थामे है। इस विवरके दोना ओर गेंद जैसे उभाड़ हैं। जिनका आधार पहला कशेरु (vertebra) है। पश्चिम कपालका निचला भाग मस्तिष्कके आधारके साथ साथ आगे बढ़ कर **जतूकास्थि** से मिलता है। जतूकाको पंखवाली अस्थि (wing bone) भी कहते हैं। जतूका मस्तिष्क के मूलमें है। इसलिये जीते प्राणियों के सिरमें बाहरसे छूकर नहीं जानी जा सकता। दो पंखवाले पिंडकी तरह इसकी सूरत है। इसकी सूरत पीछेकी ओर दोनों टाँगें किये हुये उड़ते हुये पक्षीकी तरह मानी गयी है। पश्चिम कपालके आधार के बराबर जतूका पिंड है जो मस्तिष्क आधारका काम देता है।

झर्झरास्थि नासा सुरंग और मस्तिष्क खातके बीचमें होती है। नाक और मस्तिष्कके बीच चलनी जैसी दीवाल है। इसके छेदों से गंध नाड़ियाँ आरपार जाती हैं।

अंतरपार्श्व कपालस्थि दोनों पार्श्वकपालास्थियों के बीच होती है। इसमें उभाड़ होते हैं जो बृहत् और लघु मस्तिष्कको कुछ कुछ अलग करते हैं।
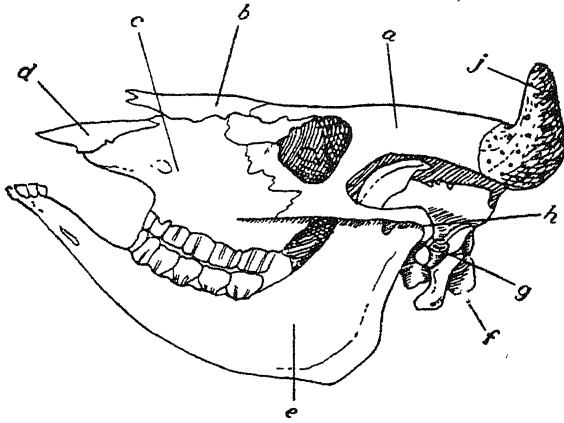
चित्र ७६. बैलकी खोपड़ीकी बनावट दिखानेवाला रेखा चित्र।

a. पुरःअस्थि जो आगे बढ़कर शृंगमूल—j. बन जाता है, b. नासास्थि, c. ऊर्ध्व हन्वस्थि, d. कर्तनक अस्थि या पुरो हनु, इसमें काटनेवाले दाँत नहीं होते, e. अधो हन्वस्थि (जबड़ा), f. पश्चिम कपाल, g. अश्मक अस्थि, h. अधोहन्वस्थि की जोड़।

पार्श्वअस्थियाँ दोनों बगलमें होती हैं। दोनों पार्श्व अस्थियोंके बीच पीछेकी और पुरः कपाल और आगेकी ओर नासास्थि होती है। ललाट का अधिक भाग पुर. कपाल अस्थिका बना होता है। दोनों पार्श्व अस्थियों से आँखके अस्थिमय कोटर बनते हैं। पुरः कपालसे शृंगमूल उभरते हैं।

शंखास्थियाँ दोनों कानोंके मूलमें एक एक दोनो ओर होती हैं। इन अस्थियों का एक एक भाग घना और पत्थरसा कड़ा होता है। इनमें सुरंगें खुदी

रहती हैं जिसमें सुकमार श्रवणयंत्र रहते हैं। दूसरा भाग छिलका या चोइयाँदार होता है। यह बगली दीवालका काम देता है। चोइयाँवाले भागमें ही वह जगह होती है जहाँ जबड़े की जोड़ होती है।

मुखमंडलकी अस्थियोंमें **ऊर्ध्व हन्वस्थि** मुँहकी दोनों ओर होती है। ऊपरी जबड़ेका अधिक भाग इसका होता है। इनका लगाव मुखमंडलकी प्रायः सब अस्थियों से है। ऊपरके चौआ दाँत इसीमें होते हैं। अस्थियों से भीतर की ओर कड़े फलक जैसे उभार होते हैं। उन्हींसे कठिन तालु, मुँहकी छत और नाककी सुरंगकी जमीनका अधिकांश बनता है। ऊर्ध्व हन्वस्थिके बाहरकी ओर एक बड़ी मजबूत हनुकूट कर्षणी (चर्वणी) पेशी (masseter muscle) लगी होती है। चबानेके काममें इस पेशीका महत्व बड़ा है।

ऊर्ध्व हन्वस्थि में आगेकी ओर **कर्तनी अस्थि** (incisor bone) होती है। यह आगे निकली रहती है। कठिन तालुके पिछले भागमें **तात्वस्थियाँ** होती हैं। नथुनोंकी (नाकका छेद) अधिकांश हदबन्दी इन्हींसे होती है और बाकीको **जतूकाचरणकी** एक पतलीसी पट्टी पूरा करती है। **नासास्थियों** से ही नाक उठी रहती है। दोनों **अश्रुपीठ** आँखके कोटरके आगेके किनारे पर होते हैं। **शुक्तिकास्थियाँ** झिल्लियोंसे मढ़ी होती हैं। इसके कारण फेफड़ेमें हवा गरम और नम होकर जाती है। सीरका या हलके आकारवाली अस्थि नकुनोंके नीचे होती है। ये नकुनोंके पिछले भागको एक दूसरे से अलग करती हैं। जबड़ा कुलका कुल **अधो हन्वस्थिका** बना होता है। खोपड़ीकी हड्डियोंमें हिलनेवाली यही एक है।

जीभकी जड़में एक अस्थि और होती है। इसे **कंठिकास्थि** (hyoid) कहते हैं। जीभ और कंठ (स्वरयंत्र) (larynx) का आधार यही है।

१२४७. मेरुदण्ड या पृष्ठवंश अथवा रीढ़
(Vertebral Column)

पीठ पर गर्दनसे लेकर कमरके नीचे तक हड्डियोंकी एक जंजीर होती है जिसे मेरुदंड कहते हैं। यह बहुतसी हड्डियोंकी बनी होती है। इसकी एक एक हड्डिको कशेरुका, कशेरु या मोहरा कहते हैं। इस जंजीरके कई भाग हैं। ये क्रमसे **ग्रीवा कशेरु** (cervical), **पृष्ठ कशेरु** (thoracic), **कटि कशेरु** (lumbar), **त्रिकास्थि** (sacral), **अनु त्रिकास्थि** (गुदास्थि या पुच्छास्थि)
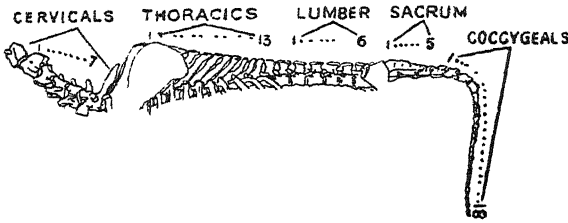
चित्र ७७. बैलका मेरुदंड।

CERVICALS—ग्रीवा कशेरु, THORACICS—पृष्ठ कशेरु, LUMBER—कटि कशेरु, SACRUM—त्रिकास्थि कशेरु, COCCYGEALS—अनुत्रिकास्थि कशेरु।

(coccygeals or caudal) कहे जाते हैं। इस तरह मेरुदण्ड गर्दनसे पूँछ तक है। गर्दनके पहले कशेरुको **चूड़ावलय** (atlas) कहते हैं। पश्चिम कपालके दो उभारोंके जरिये सिर चूड़ावलयसे नथा है। गर्दनसे पूंछतक गायके कशेरुओंकी संख्या निश्चित है। मेरुदंडमें नीचे लिखे कशेरु हैं :—

१.	ग्रीवा कशेरु ये गर्दनमें हैं इनकी संख्या	७ है।
२.	पृष्ठ कशेरु ये पीठमें है ” ”	१३ है।
३.	कटि कशेरु ये कमरमें हैं ” ”	६ है।
४.	त्रिकास्थि ये कमरके नीचे श्रोणि देशमें	५ हैं।
५.	अनुत्रिकास्थि ये पूँछमें	१२ से २० हैं।
		कुल—४९ से ५१।
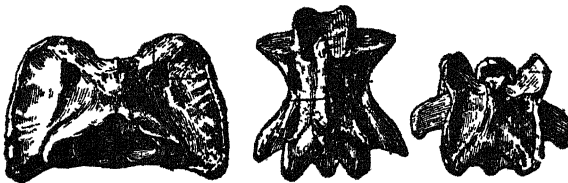
चित्र ७८. बैलका चूड़ावलय (atlas)।

चित्र ७९. बैलका दन्तचूड़ा कशेरु (axis)।

चित्र ८०. बैलका ग्रीवा कशेरु (cervical vertebra)।

प्रत्येक कशेरु का सबसे निचला भाग ठोस होता है इसे पिंड कहते हैं। इसके ऊपर कशेरु चक्र होता है। इसके बीचमें सुषुम्ना छिद्र होता है जिसमें होकर सुषुम्ना नाड़ी (spinal cord) जाती है। प्रत्येक कशेरुके बीचमें एक चकती (disc) होती है जिसके कारण गतिमें वाधा नहीं पड़ती। सुषुम्ना छिद्र **चूड़ावलयमें** सबसे बड़ा है। इसके बादवाले ग्रीवा कशेरुओंमें छिद्र इससे कहीं छोटे हैं। ग्रीवाके अंतिम तीन और पृष्ठके पहले दो कशेरुओंके छिद्र फिर बड़े हो जाते हैं। इसके बाद पीठके बिचले भाग तक वह बहुत छोटे हो जाते हैं। कटि देशमें वह
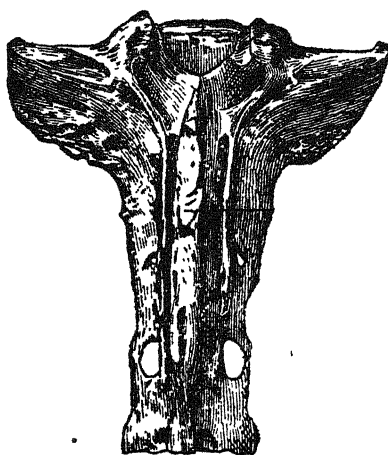
चित्र ८१. बैलकी त्रिकास्थि।

छिद्र फिर बड़ा हो जाता है। पर आखिरवाले कटि कशेरुमें एकाएक छोटा हो जाता है और आखिरी पुच्छ कशेरुमें वह बन्द हो जाता है। जिन जगहोंमें छिद्र बड़ा हो जाता है वहाँ सुषुम्नाको छेड़े बिना मेरुदंड अधिक हिलाया जा सकता है।

कशेरुओंके सिरे पर काँटे जैसे उभाड़ (प्रवर्धन) होते हैं। इनमें कुछ बड़े कुछ छोटे होते हैं। गर्दनके कशेरुओंके काँटे (कण्टक) बहुत छोटे होते हैं। गर्दनके बाद पीठ परके कण्टक बहुत बड़े होते हैं। बैल या घोड़ेकी ठठरीमें देख सकते हैं कि, उनके कंधोंकी आकृति इन्हींके कारण है।

१२४८. उरःपंजरकी अस्थियाँ

छातीका कोठा पसलियोंसे (पर्शुकाओंसे) बनता है। पसलियोंका आधार रीढ़ है। पसलियोंके ऊपरी छोर पर रीढ़ और निचली छोरपर उरःफलक होती है। पर सभी पसलियाँ उरःफलकसे जुड़ी नहीं होतीं। पसलियाँ कशेरुओंकी दोनों ओर जोडी जोड़ी लगी हैं। एक जोड़ी पसलीके सिरे पर कशेरु और नीचे उरःफलक इस तरह मिलकर एक वृत्तसा बन जाता है। बैलको
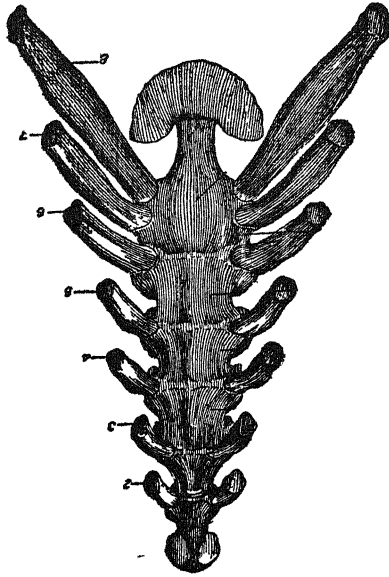
चित्र ८२. बैलका उरःफलक।
2 से 8 पसलियाँ।

१३ जोड़ी पसलियाँ होतो हैं। छातीका कोठा (खाना) इन्हीं पसलियोंके वृत्तसे बनता है। यह शंकुके आकारका होता है और बगलसे दबा रहता है। शंकुकी चोटी गर्दनमें होती है। जो पसलियाँ उरःफलकसे जुड़ी रहती हैं उन्हें सउरः फलकीय (sternal) कहते हैं। कुछ पसली उरःफलकसे नहीं जुड़तीं, पर हरेक पसली अपने पहलेकी पसलीसे उपपार्शुका द्वारा जुड़ी रहती है। इन्हें

अउरः फलकीय (asternal) पसली कहते हैं। सउरः फलकीय पसली ८ जोड़ी और अउरः फलकीय ५ जोड़ी हैं।

हरेक पसली लंबी, बाँकी और बहुत लचीली होती है। पहली पसली सबसे छोटी और कमसे कम बाँकी होती है। पसलियोंका बाँकपन पहलीसे आखिर तक क्रमसे बढ़ता जाता है। नवीं पसली सबसे लंबी है। जो इसके आगे या बादमें हैं सब क्रमसे छोटी हैं। इसी तरह छोटी पसली सबसे जादे चौड़ी है और इससे आगे पीछेकी क्रमसे सँकरी होती गयी हैं। बैलका उरःफलक चपटे
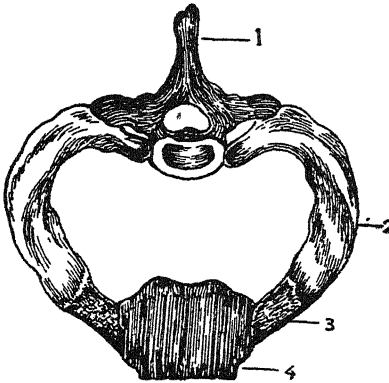
चित्र ८३. दो पसलियोंसे बना घेरा।
1. कशेरु 2. पसली, 3. तरुणास्थि, 4. उरःफलक।

पेंदेवाली नावके आकारका होता है। आदमीकी तरह बैल और घोड़ेको हँसुली (collar bone) नहीं होती पसलीकी पहली जोड़ी हँसुलीका काम देती है।

१२४६. कंकालका लटकता भाग (शाखा)

दोनों अगली शाखा और श्रोणि चक्र (pelvic girdle) सहित दोनों पिछली शाखा कंकालके लटकते भाग हैं। अगली शाखा यानी दोनों अगले पैर आदमीके दोनों हाथके मुकाबले हैं और दोनों पिछले पैर तो आदमीके पैरको जगह पर हैं ही।

सभी शाखाओंकी अस्थियोंकी साधारण बनावट आदमीकी अस्थिकी तरह ही है। बड़ा फर्क यह है कि, आदमीको तो ५ उँगलियाँ होती हैं पर बैल और घोड़ेको नहीं होती। पर उँगलियोंकी अस्थिका मूलरूप इनमें भी होता है। फिर भी जहाँ आदमीके ५ उँगलियाँ हैं वहाँ बैलको सिर्फ २ और बाकी उँगलियोंकी जगह उनका मूलरूप होना है।

१२५०. अगली शाखा

अगली शाखामें **अंशफलक** (scapula) और पाँच उप शाखायें **प्रगंड** (arm), **प्रकोष्ठ** (fore-arm), **जानु** (knee or carpus), **करभास्थि** (metacarpus) और **पैर** (foot) हैं। अंशफलक तिकोना अस्थिफलक है। देहके साथ इसे बाँधनेवाली पेशियोंके लिये इसमें बहुत जगह होती है।

चित्र ८४. गायकी अगली शाखा।

Humerus—प्रगडास्थि, Ulna—अंतः प्रकोष्ठास्थि, Scapula—अंशफलक, Radius—वहिः प्रकोष्ठास्थि, Carpus—कूर्चास्थि, Metacarpus—करभास्थि, 1st, 2nd, 3rd, Phalanx—प्रथम, द्वितीय, तृतीय अंगुली नलक।
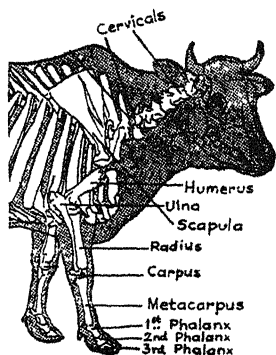
८४ और ८५ नं० के चित्रोंमें अशफलक, प्रगंडास्थि (humerus), बहिः प्रकोष्ठास्थि (radius), अतः प्रकोष्ठास्थि (ulna), कूर्चास्थि (carpus), करभास्थि (metacarpus), अंगुली नलक (phlanges) का सिलसिला देखा जा सकता है।

आदमीमें प्रगंडास्थिसे वहिः प्रकोष्ठास्थि और अंतः प्रकोष्ठास्थि की संधिको कुहनी कहते हैं। गायमें इस जगह को अंतः प्रकोष्ठास्थिका सिर जिसे **कूर्परकूट** (olecranon) **कहते हैं,** होता है।

कूर्चास्थि मनुष्यकी कलाई है। पर बैलकी कूर्चास्थि देखनेमें घुटना जैसी मालूम होती है। यद्यपि यह है कलाई ही फिरभी लोग घुटना ही कहते हैं। उसी तरह करभास्थि से आदमीकी हथेली बनती है जिसमें ५ अस्थियाँ होती हैं। पर बैलकी करभास्थि एक सीधी हड्डी या दो जुड़ी हुई
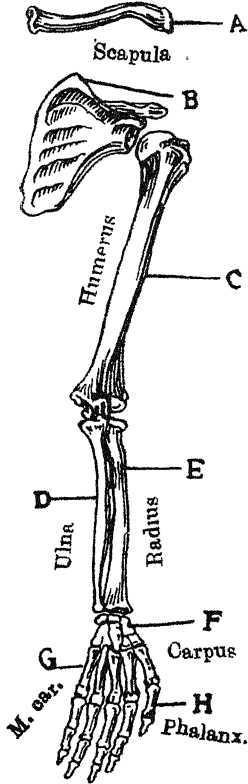
चित्र ८५. मनुष्यकी उत्तर शाखा या हाथ।

B—अंशफलक, C—प्रगंठास्थि, D—अंतः प्रकोष्ठास्थि, E—बहिः प्रकोष्ठास्थि, F—कूर्चास्थि, G—करभास्थि, H—अंगुली नकल।

पैरकी हड्डीकी तरह मालूम होती है। मनुष्यके हाथमें अंगुली नलक होते हैं। बैलको भी इसी तरह उँगली की ३ हड्डियाँ होती हैं। फर्क यही है कि, आदमीमें इनसे उँगली बनती है और गायमें खुर और टखना। आदमीको ५ उँगलियाँ होती है, बैलको ५ के बदले २ खुर होते हैं।

अगली शाखाकी पहली अस्थि **प्रगंडास्थि** है। इसका ऊपरी छोर गोल होता है जो अंशफलकके घाटमें रहता है। इसकी सन्धि मसीनके बौल और सौकेट (ball and socket) की तरह रहती है।
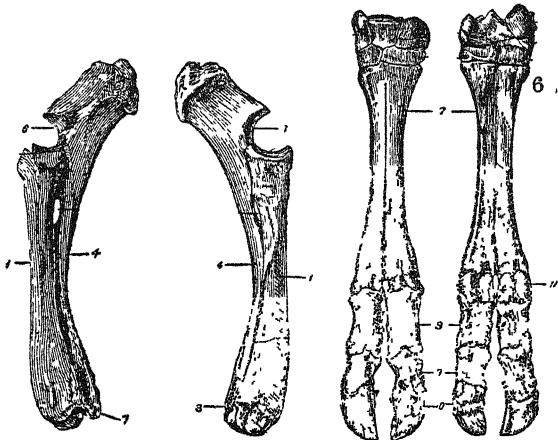
चित्र ८६. चित्र ८७. चित्र ८८. चित्र ८९.

चित्र ८६. बैलकी अंतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि (बाहरी बगल)।
1. वहिः प्रकोष्ठ, 4. अंतः प्रकोष्ठ,
6. प्रगंडास्थिके मिलनेकी खात,
7. अंतः प्रकोष्ठका निचला छोर।

चित्र ८७. बैलकी अंतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि (भीतरी बगल)।
7. प्रगंडास्थिके मिलनेकी खात,
8. अंतः प्रकोष्ठका निचला छोर।

चित्र ८८. बैलकी पुरः शाखाका हाथवाला भाग (सामनेका दृश्य)।
7. करभास्थि, 8. 9. 10. तीन अंगुली नलक।

चित्र ८९. ऊपरके चित्रका पिछला दृश्य।
6. कूर्चास्थि, 11. चणकास्थि।

इसका निचला छोर बहुत कुछ चौड़ी घिरनीसा होता है। कुहनी पर वहिः और अंतः प्रकोष्ठास्थि की इससे सन्धि होती है। आदमीमें अंतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि दो जुदी जुदी हड्डियाँ हैं। वहिः प्रकोष्ठास्थि अंतः प्रकोष्ठास्थि पर सरक सकती है। इससे कलाई इधर उधर घूम सकती है। बैलकी ये दोनों अस्थियाँ

आपसमें जुड़ी हैं। अंतः प्रकोष्टास्थिका बाहरी छोर उभरा हुआ है जो कि **कूर्परकूट** या कुहनीकी नोक है। वहिः प्रकोष्ठास्थि गात्रका भार संभालती है। इसका निचला छोर **कूर्चास्थियों** से मिलना है। ये गिनतीमें ६ हैं।

चित्र ९०.
घोड़ेकी प्रगडास्थि।
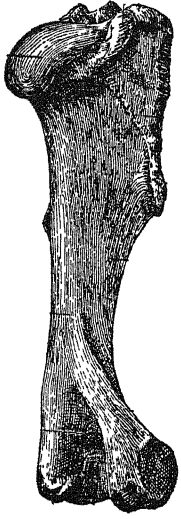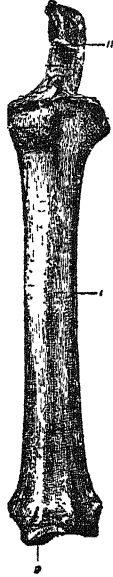
चित्र ९१.
घोड़ेकी अंतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि।

1. वहिः प्रकोष्ठ,
9. निकली सन्धिका स्थान,
11. कूर्पर कूट।
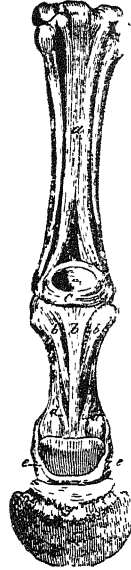
चित्र ९२.
घोड़ेका वायाँ हाथ।
(पीछेका दृश्य)

४ ऊपरी पंक्तिमें और २ निचलीमें। यह बैलका घुटना कहा जाता है। कई छोटी अस्थियोंकी ऐसी रचनाके कारण गड़बड़ी के बिनाभी वह लच सकती हैं। इन अस्थियोंकी जगह **शलाकाधिष्ठान** (cannon region) या मणिवंध कही जाती है। मनुष्योंमें यही कलाई मणिवन्ध है।

कूर्चास्थियाँ दो करभास्थियों पर मिलती हैं। करभास्थि मनुष्यकी हथेलीमें होती है। आदमीकी ऊर्ध्व शाखा अर्थात् हाथमें ५ करभास्थियाँ होतीं हैं। उनकी जगह बैलमें २ कूर्चास्थियाँ हैं। इनके निचले छोरसे टखनेका जोड़ (fetlock) बनता है। बैलकी दोनों करभास्थियाँ आपसमें घुली मिली हैं। पर नीचेकी ओर फटी हुई हैं। कटा भाग अपनी अपनी ओरके अँगुलीनलकों से मिला रहता है। आदमीका अंगूठा छोड़ उसकी चार उँगलियोंकी तरह बैलके चार उँगली होती हैं। इनमें दो ही भार झेलता हैं बाकी दो मूल रूपमें और टखनेकी जोड़के पीछे होती हैं। भार झेलनेवाली २ उँगलियाँ ३ अँगुलीनलकोंकी बनी हैं। इनका अंतिम बैलका पंजा है।

आदमीकी ऊपरी शाखा, बैल और घोड़ेकी अगली शाखा (चित्र ८४ से ८९) के चित्रों से यह भेद साफ हो जायगा।

१२५१. श्रोणि

अगली शाखा जैसे अंशफलकसे लगी हुई है वैसेही पिछली शाखा श्रोणिसे। अंसफलक कशेरुसे जुड़ा हुआ नहीं है लेकिन श्रोणि है। श्रोणि दो अस्थियोंकी बनी है। ये आपसमें कसकर जुड़ी हुई हैं जिससे इसकी गढ़त गमलेसी हो जाती है। यह त्रिक कशेरुसे उभड़ती है। श्रोणिकी दोनों अस्थियों में प्रत्येक तीन तीन अस्थियोंके जुड़नेसे बनी है। गायका बच्चा ब्यानके समय श्रोणिके छेद से बाहर आता है। गायका दुधारपन श्रोणिके आकार पर बहुत कुछ निर्भर है। बड़ी श्रोणि होने से पिछला भाग चौड़ा होता है इस कारण थनको फैलनेकी जगह मिल जाती है।

बैल ओर गायकी श्रोणिमें बड़ा भेद होता है। गायकी श्रोणि कहीं जादे फैलावकी और बड़ी होती है। जुड़े त्रिक कशेरुसे लगा हुआ, श्रोणि चक्रका भाग चौड़ा और बहुत कुछ तिकोना होता है। श्रोणिके दोनों बगल कटोरीके आकारकी एक खात होती है। उरुअस्थि इसीमें घुसी रहती है जिससे कमरकी जोड़ (कटिसंधि) बनती है। बड़े कदकी गायकी श्रोणिके छेदकी लंबाई चौड़ाई ९॥ इंच × ७ इंच है।

१२५२. पिछली शाखा

अगलीकी तरह पिछली शाखामें भी पाँच भाग होते हैं, यथा उरुअस्थि (femur), जंघास्थि (tibia), अनुजंघास्थि (fibula), पाद कूर्चास्थि (tarsus), पादांगुली मूलशलाका (metatarsus) और अंगुली नलक (phlanges) या पदतलकी अस्थियाँ। **उरुअस्थि** अगली शाखाकी प्रगंडास्थिकी तरह है और **जंघास्थि** तथा **अनुजंघास्थि** अंतः और बहिः प्रकोष्ठास्थि की तरह हैं। यहाँ
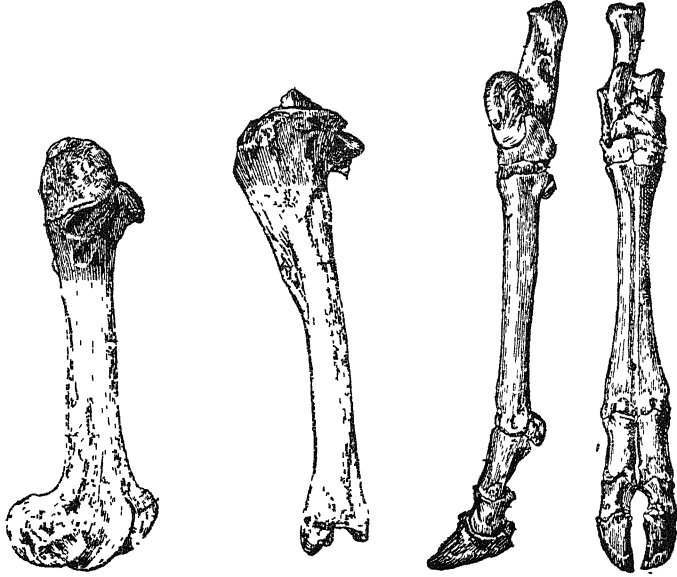
चित्र ९५. बैलकी उरु अस्थि। चित्र ९६. बैलकी जंघास्थि। चित्र ९७. चित्र ९८. बैलका पैर (बगल और सामनेका दृश्य)।

जंघास्थि अधिक बड़ी अस्थि है। जंघास्थिका ऊपरी छोर घुट्टी (stifle) अर्थात् तरुणास्थीय चकतीके नीचे रहता है और धीरे धीरे शंकुसा (गावदुम) होता हुआ कूर्च तक आता है। **अनु जंघास्थि** विकसित नहीं हुई है। **पाद कूर्चकी** अस्थियाँ ५ हैं। पिछली शाखाका पाद कूर्चसे नीचेका भाग (पैर) अगली शाखा (हाथ) की तरह ही है।

अध्याय ३२

पेशी और सन्धि

१२५३. पेशियाँ

पेशी साधारण तौरपर मांस कही जाती है। इन्हींसे स्नायु तन्तु बनते हैं। स्नायु कुंचित हो सकते हैं। इसी गुणके कारण बड़े जंतुओंमें सब तरहकी गतियाँ हो सकती हैं।

पेशी एक स्नायु है और शरीर स्नायुओंका बना कहा जा सकता है। प्राणीका शरीर एक कोषसे आरंभ होता है। इसलिये कोष सबसे छोटी जीवित इकाई है। अनेक कोषोंकी संहति स्नायु कही जाती है। देहमें कई तरहके स्नायु हैं :—

1. पृष्ठाच्छादक तन्तु (epithelial tissue),
2. बंध तन्तु (connective tissue),
3. मांस तन्तु (muscular tissue),
4. नाड़ी तन्तु (nervous tissue),
5. रक्त और रक्तवहा (blood and blood vessels),
6. अस्थि तन्तु (bony tissue), ।

पेशियोंके दो मुख्य वर्ग हैं :—**स्वतंत्र** (involuntary) और **परतंत्र** (voluntary)। हृदयकी पेशी स्वतत्र वर्गकी कही जा सकती है। यह बात और है कि दूसरी स्वतत्र पेशियों और उसमें भेद है। इसलिये उसका एक अपना अलग वर्ग किया जा सकता है।

परतत्र पेशियाँ धारीदार (straited) भी कही जाती हैं। क्योंकि, अनुवीक्षण यंत्रमें देखनेसे हरेक पेशीमें एक दूसरेको काटती हुई धारी साफ दिखाई देती है। पर स्वतंत्र पेशीमें यह धारी नहीं होती।

परतन्त्र पेशियाँ कंकालका मुख्य आवरण हैं। आमिष भोजी जो मांस खाते हैं वह यही है। पेशियाँ बहुत छोटे छोटे प्रायः $\frac{१}{५००}$ इंच लंबे तंतुओंकी बनी होती हैं। हरेक तन्तु अपने ही बेठनसे ढका रहता है। तंन्तुमें मूल कण (nuclei) दिखायी देते हैं। बेठन सूक्ष्म सौत्रिक तन्तु (fibre-tissues) से जुड़ा रहता है। यह एक पेशी तंतुको दूसरेसे बाँधता है।

पेट, अँतड़ी, सिरा, धमनी, गर्भाशय, वस्ति, मूत्रमार्ग आदि देहके खोखले भागका अधिकांश स्वतंत्र पेशियोंका बना होता है। इस पेशीके तन्तु परतंत्रसे छोटे होते हैं। स्वतंत्र पेशीके तंतुका छोर नुकीला होता है जिसके बीचमें अंडाकार मूलकण होता है। इन तंतुओंके गुच्छे होते हैं और एक प्रकारकी बाँधनेवाली चीजसे आपसमें चिपके रहते हैं।
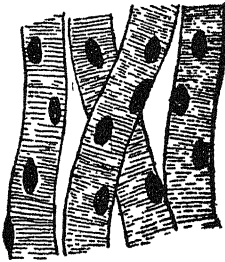
चित्र ९९. परतंत्र पेशी बनानेवाले तन्तु।

हृदयकी पेशियोंमें उभाड़ होते हैं जो मिले रहते हैं जिनसे जालसा बन जाता है।

औसत पशुके शरीरकी कुल तौलका एक तिहाई परतंत्र पेशी या मांस होता है। जो पेशियाँ जोड़ोंको मोड़ती हैं उन्हें **नमनी** (flexors) और जो मुड़े जोड़ोंको सीधा करती हैं उन्हें **प्रसारणी** (extensors) कहते हैं। जो पेशियाँ अंगोंको अपनी जगहसे हटाकर मध्य रेखासे दूर ले जाती हैं उन्हें **नायनी** (abductors) कहते हैं। जो पेशियाँ अंगोंको घुमाती या मरोड़ती हैं उन्हें **विवर्तनी** (pronators या supinators) कहते हैं। छेदोंको छोटा बड़ा करनेवाली पेशीको **संकोचनी** (sphincter) कहते हैं। ये स्वतंत्र हैं पर इनमेंसे कुछ

परतन्त्र भी हैं। कुछ पेशियोंके आखीरी छोर पर कंडरा (tendons) होती है जो बहुत मजबूत ततुओंकी बनी होती है। कंडरा अस्थियोंसे जुड़ी रहती है।

बैलके देहमें कई सौ पेशियाँ हैं। उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध पेशियोंका वर्णन यहाँ किया जायगा।
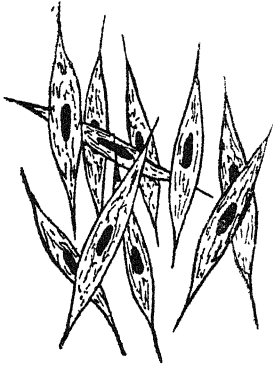
चित्र १००. छोटी आँतकी दीवालसे निकाला हुआ स्वतन्त्र पेशियोंका हिस्सा।
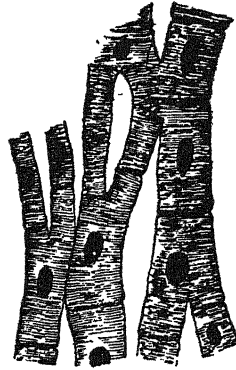
चित्र १०१. हृदयकी पेशियोंके तन्तु।

१२५४. कंधा और अगली शाखाकी पेशियाँ

पृष्ठच्छदा (Trapezius): ये पेशियाँ अंशफलकसे लगी हुई हैं। इन्हीं के कारण उसमें गति हो सकती है।

अंसच्छदा (Deltoid): यह पेशी प्रगण्डको ऊपर उठाती है। यह कंधोंको सिकोड़ती भी है।

द्विशिरस्का (Biceps): यह पेशी कुहनीको मोड़ती है और बाँहकी पेशीको ढकनेवाली झिल्ली (fascia)—प्रावर्णी—को कड़ा करती है।

अंसपृष्ठिका उत्तरा (Supraspinatus): यह कंधेकी जोड़ांको फैलानेवाली है।

अंसपृष्ठिका अधरा (Infraspinatus): यह प्रगंडास्थिको बलानो और नीचेकी ओर मोड़ती है।

कूर्पर द्विशिरस्का (Brachialis) : यह कुहनीको मोड़ती है।

त्रिशिरस्का (Triceps) : यह द्विशिरस्काके सामने रहती है और कुहनी फैलाती है।
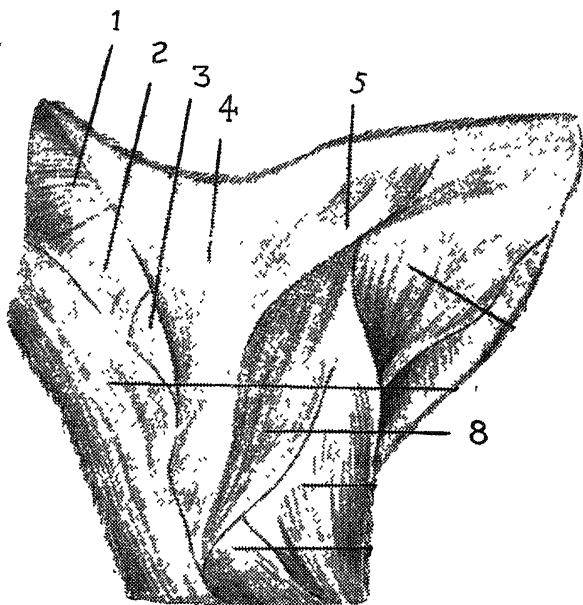
चित्र १०२. कंधेकी पेशियाँ (घोड़ेकी)।
1. शिरोग्रीव विवर्त्तनी, 2. अंसोन्नमनी, 3. उरच्छदा,
4. और 5. पृष्ठच्छदा, 8. अंसच्छदा।

कुहनीकी बाहरी ओर सामने **करभ नमनी** (metacarpi magnus) **और प्रसारणी** (extensor pedis) के कारण पेशीका एक बड़ा पुंज बन जाता है। भीतरकी ओर द्विशिरस्काकी कण्डरा टटोल कर देखी जा सकती है।

करभ नमनी (Flexor metacarpi) : ये पेशियाँ हाथको झुकाती हैं।
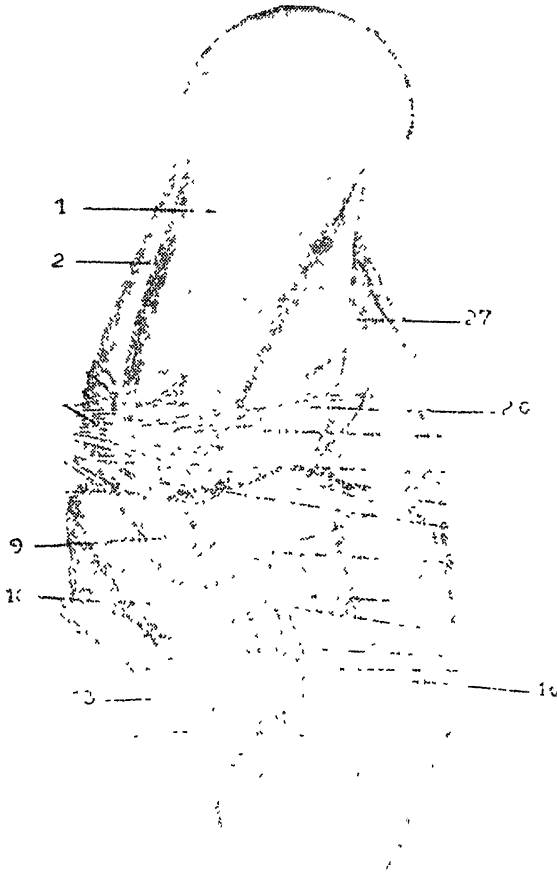
चित्र १०३ कन्धा और बाँहकी पेशियाँ।

1. अशांतरिका, 2. अंसपृष्ठिका उत्तरा, 9. उरच्छदा, 10. मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी, 13. प्रगंडास्थिका प्रवर्धन, 14. वहिः प्रकोष्ठास्थिकी पिछली धमनी, 16. अंश और अंतः प्रकोष्ठाच्छादनी पेशी।
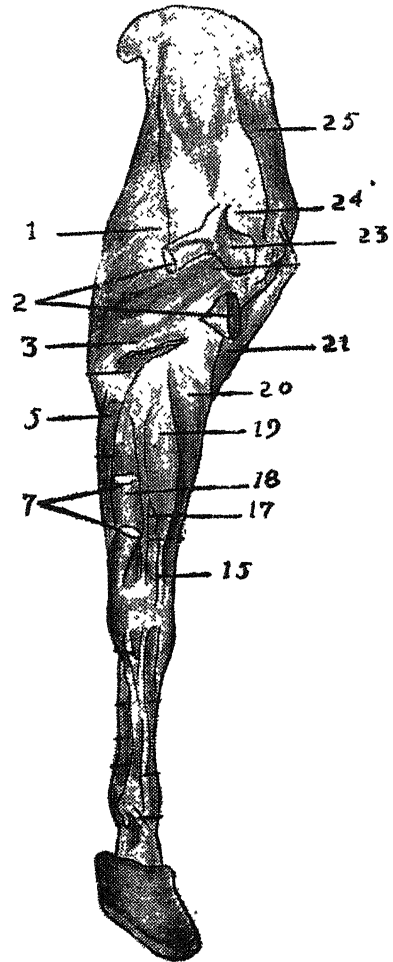
चित्र १०४. अगली शाखाकी पेशियाँ ।
(घोड़ेकी)

2. अंसच्छदा, 7. करभनमनी, 19. प्रसारणी, 20. करभ प्रसारणी, 21. द्विशिरस्का, 24, अंसपृष्ठिका अधरा, 25. अंसपृष्ठिका उत्तरा ।

अंगुली नमनी और प्रसारणी (Digital flexor and extensor) : ये कूर्च और **टखनेको** सफलताके साथ झुकाती **और फैलाती हैं** ।
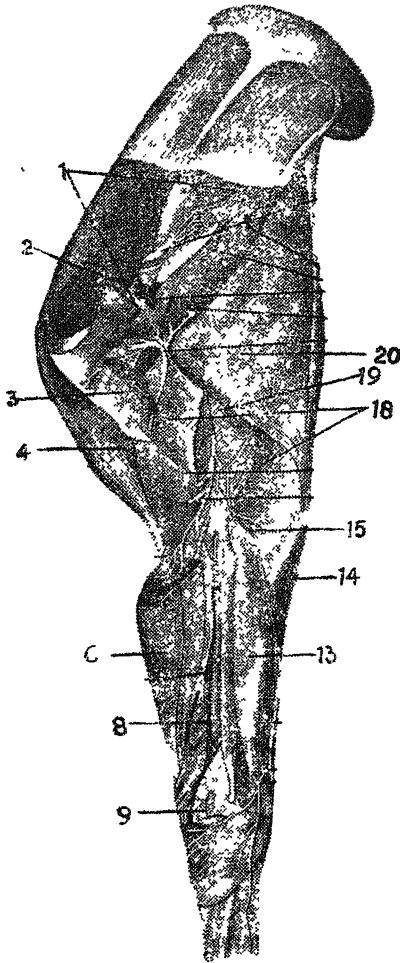
चित्र १०५. कंधा, बाँह और हाथकी पेशियाँ (घोड़ेकी)।

1. अंसपृष्ठिका अधरा, 2 अंसपृष्ठिका उत्तरा, 3. अंसच्छदा, 4. द्विशिरस्का, 6. करभ प्रसारणी, 9. प्रसारणी, 13. करभ नमनी।

१२५५. पिछली शाखाकी पेशियाँ

नितम्ब पिण्डिका मध्यमा (Middle gluteus): **इस पेशीका** आकार और ताकत बहुत बड़ी है। यह कमरको हिलाती है। इसकी क्रियासे **उच्**

अस्थि और उसके साथ पूरा अंग आगे पीछे होता है। पर यदि उरु अस्थि स्थिर हो जाय तो नितम्ब पिण्डिका पशुके धड़को तान देगी, जिससे वह अपनेको सँभाल नहीं सकेगा।

द्विशिरस्का औवीं (Biceps femoris) : सबसे बड़ी पेशियोंमें यह एक है। यह त्रिककशेरुसे उत्पन्न होती है और कुछ उरु अस्थिसे जुड़ी रहती है।
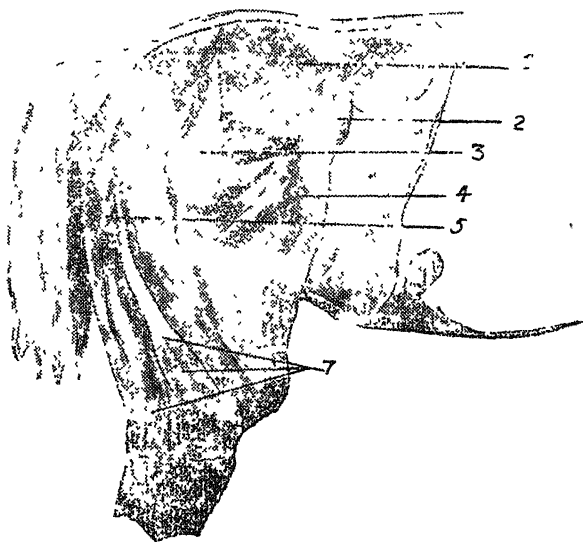
चित्र १०६. पिछली शाखाकी अस्थियाँ (घोड़ेकी)।

1. नितम्ब पिडिका मध्यमा. 2. जघन कपालका बाहरी कोण; 3. नितम्ब पिंडिका बहिस्था, 4. उरुकंचुका कर्षणी, 5. जानु कर्षणी, 7. द्विशिरस्का औवीं।

यह कुछ जान्वस्थिसे जुड़ी रहती है। इस कारण कमरकी नमनी और घुट्टीकी प्रसारणी है।

पिण्डिका (Gastroconemius) : इसे दो मांसल मुण्ड होते हैं जो एकही कंडरामें मिल जाते हैं। आदमीकी एड़ीसे ऊपरकी ओर जानेवाली दृढ़ कण्डराकी तरह यह है।
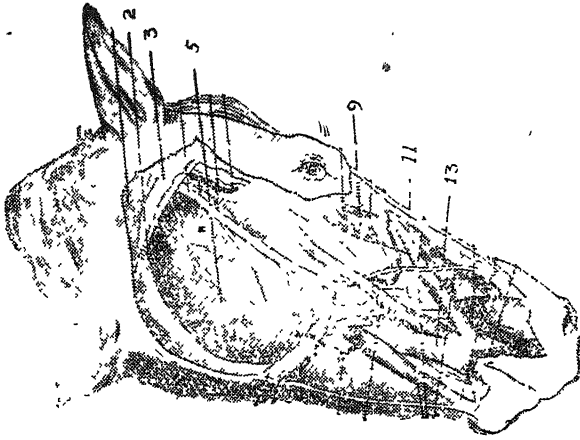
चित्र १०७ मुखमंडलकी पेशियाँ।

(घोड़ेकी)

2. हनुपेशि वाहक, 3. अग्रिम कर्णमूलिक ग्र[illegible], 5. [illegible]।
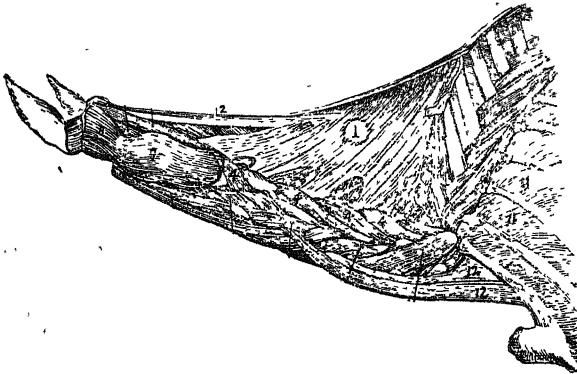
चित्र १०८. शिरोग्रीव वंध।

1 और 2 शिरोग्रीव वध।

१२५६. मुखमंडलकी पेशियाँ

चर्वणी (Masseter) : यह पेशी अधोहन्वस्थिको ढके रहती है। यह पेशी चिपटी, अर्ध चन्द्राकार, मोटी और मजबूत है। यह गण्डास्थि और अधोहन्वस्थि से उत्पन्न होती है और नीचेके जबड़ेसे जुड़ी है। यह निचले जबड़ेको उठाती है जिससे निचले दाँत ऊपरके दाँतसे मिलते हैं। इस तरह यह चबानेमें मदत करती है।

शिरोग्रीवबंध (Ligament nuchæ) : शरीरमें यह सबसे बड़ा बंध है। यह गर्दनके बीचोबीच कशेरुओंसे ऊपर उसकी दोनों ओर है। सिर इसीकी मदतसे बंधा है। जब सिर झुलता है तो उसे फिर उठानेमें पेशियोंकी मदत यही करता है।

१२५७. पीठकी पेशियाँ

मध्यपृष्ठिका (Longissimus Dorsi) : देहमें यह सबसे लबो और मजबूत पेशी है। त्रिकसे गर्दन तक सारे मेरुदंड पर यह फैली है। कमरमें पेशी और कण्डाराओंका एक बड़ा पिण्ड यह बनाती है। रीढ़के पास कमरका यह प्रसरण करती है।

१२५८. सन्धि और बन्ध

दो या अधिक तरुणास्थियोंके जोड़को सन्धि कहते हैं। साधारण तौरपर दो अस्थियाँ जुड़ती हैं। पर कभी कभी, सन्धिमें तरुणास्थियाँ भी भागीदार हो जाती हैं। सन्धि चल या अचल हो सकती है। अचल सन्धियोंके कारण जुड़ी अस्थियाँ एक मालूम होती हैं। जैसे कि, खोपड़ीकी अस्थियाँ।

जहाँ दो अस्थियोंकी चल-सन्धि होती है वहाँ सन्धि-स्थल पर तरुणास्थियोंकी एक तह (स्तर) होती है। दोनों अस्थियोंको वन्ध बाँधे रखते हैं। वन्ध सौत्रिक तंतुओंको (fibre tissue) मजबूत पट्टियाँ हैं। यह रस्सी या कभी कभी फीतेकी तरह ही हैं।

सन्धि पर बन्द मुँहको झिल्लीकी थैली होती है। इस झिल्लीको **श्लेष्मधरा कला** (synovial membrane) कहते हैं। इसमें श्लेष्मद द्रव (synovial) निकलता है जिससे सन्धियाँ चिकनी रहती हैं। इनके अलावे और पेशियाँ भी हैं जो सन्धियोंका प्रसारण या नमन करती हैं।

सन्धियोंका प्रकार : (१) सरकनेवाली या प्रतर सन्धि, (२) खल्लकोर सन्धि, (३) उदूखल (ball and socket) सन्धि ये साधारण प्रकार हैं। सरकनेवाली संधिकी हड्डियों का तल चिपटा होता है। उसमें थोड़ी ही गति हो सकती है। कशेरु, कलाई, पाद कूर्चकी सन्धियाँ सरकती हैं।
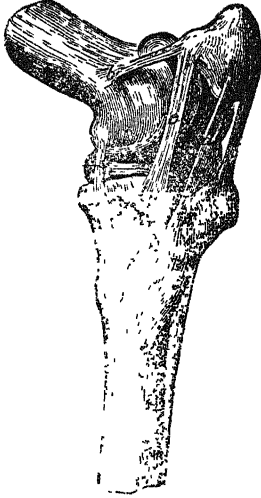
चित्र १०९. बायें घुट्टीकी सन्धि, जिसमें वन्धोंकी पट्टियाँ दिखायी गयी हैं।

खल्लकोर संधिमें हड्डियाँ किवाड़की तरह घुम सकनी हैं। इस संधिसे जुड़ भाग कुहनी, टखना, इधरसे उधर किवाड़की तरह फिर और खुल सकते हैं।

उदूखल सन्धिमें अस्थिका एक छोर गोल रहता है, यह दूसरी अस्थिके उदूखलमें (उखली) घुसा रहता है। अंशफलक और प्रगण्डास्थिकी कंधेपरकी सन्धि, उरु अस्थि और श्रोणिकी कमरपरकी संधि उदूखल संधिके उदाहरण हैं।

अध्याय ३३

गायकी इन्द्रियाँ

१२५९. इन्द्रियाँ

कंकाल अस्थिमय ढाँचा है। इस पर पेशियाँ लगी हुई हैं जिनका काम इसे जोड़ना, ढाँकना और तरह तरहकी गति लाना है। यह गति एक देशीय या सारे शरीरकी हो सकती है।

कंकाल और उसके परिच्छदके ढाँचामें विभिन्न इंद्रियाँ अलग अलग हैं। सिर और गर्दनकी इन्द्रियाँ अलग अलग हैं। इसके बाद छाती और पेटकी बड़ी खात है। कंधा और गलेके पास उरःपंजरकी चोटीसे एक खात शुरू होती है जो श्रोणिमें खतम होता है। इसमें इंद्रियाँ भरी पड़ी हैं। पेशियोंका एक पर्दा **महाप्राचीरा** (diaphragm) है। महाप्राचीरा छाती और पेटकी खातको पूरी तौर अलग करनेवाला पर्दा या दीवार है।

१२६०. उरःपंजरकी इन्द्रियाँ

छातीमें मुख्य रूपसे हृदय और फेफड़ा होता है। पर पेटके कोठेमें पाचन और कुछ मलत्यागकी तथा दूसरी इंन्द्रियाँ भी होती हैं। पहले हमलोग उरःपंजर या छातीकी इंद्रियोंका विचार करें।

छाती और पेटके बड़े खातमें छातीका कोठा गरदन के सबसे पास है। पसलियों का बना यह पिंजरे जैसा है। पसलियोंकी दो पक्तियाँ इसकी दोनों ओर हैं। ऊपरमें गरदनके कशेरुसे यह निकलते हैं और नीचे उरःफलक पर मिलते हैं। महाप्राचीरा इस खातके आधारका काम करती है। खातकी चोटी गरदनमें घुसी रहती है।

पसलियोंके बीच पर्शुकान्तरिका पेशियाँ (inter-costal muscles) होती हैं। इनकी दो तहें होती हैं जो एक दूसरेसे समकोण बनाती हैं। सारा बाहरी भाग छोटी बड़ी पेशियों से मढ़ा है। बड़ी पेशियाँ कंधे पर हैं। अंशफलक बाहरकी ओर पसलियोंसे ऊपर है।
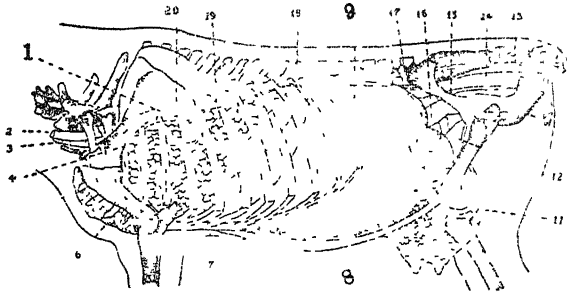
चित्र ११०. गायकी भीतरी इन्द्रियाँ।

1. महाधमनी, 2. अन्नवह, 3. क्लोम नलिका, 4. याकृत धमनी, 6. हृदय, 7. जालाशय, 8 और 9. रोमन्थाशय, 11. स्तन, 12. वस्ति, 13. भग, 14. गुदनलिका, 15. गवीनी, 16. गर्भाशय, 17. बायाँ डिम्बकोष, 18. प्लीहा, 20. महाशिरा।

चित्र १११. छातीका चित्र जिसमें हृदय, पेफड़ा और महाधमनी अन्नवह, क्लौम नलिका, महाप्राचीरा दिखाये गये हैं।

छातीमें दोनों ओर एक एक फेफड़ा होता है। फेफड़ेमें **क्लोमनलिका** या **श्वासनलिका** (trachea) और **क्लोमशाखा** (bronchus) ये दो नलियां घुसती हैं।

फेफड़ोंके बीच बायीं ओर झुकता हुआ **हृदय** है। कितनी ही धमनियाँ, नाड़ियाँ और **अन्नवह** छातीमें हो कर महाप्राचीराके उस पार जाती हैं। हरेक फेफड़ा उरस्या या फुस्फुसधरा कला (pleura) से ढका है। **हृद्कोष** (pericardium) नामक एक विशेष थैलीके बीच हृदय रहता है।

फेफड़े साँस लेनेकी इंन्द्रियाँ हैं। साँस खींचने पर हवा फेफड़ेमें जाती है और रक्तके साथ उसका संसर्ग होता है। शुद्ध करनेके लिये हृदय फेफड़ोंमें रक्त भेजता है। शुद्ध रक्त फिर हृदय में लौट जाता है और मैल उल्टी सांसमें बाहर निकल हवामें मिल जाता है।

शरीरमें रक्त संचार करनेकी जो क्रिया होती है उसे रक्त संचारी संस्थान कहते हैं। उसका केन्द्र हृदय है। श्वास प्रश्वासके द्वारा रक्तकी शुद्धिका जो प्रबन्ध है उसे श्वास संस्थान कहते हैं। उसका केन्द्र फेफड़ोंमें है। छाती में रक्त संचारी केन्द्र हृदय और साँसके केन्द्र फेफड़े हैं। चित्र १११ में हृदय, फेफड़े और दूसरी कई इन्द्रियोंकी यथाक्रम स्थिति दिखायी गयी है।

१२६१. उदरकी इन्द्रियाँ

उदर, उरःपंजर और श्रोणिके बीच है। उरःपंजर आगे और श्रोणि पीछेकी ओर है। यह धड़का बिचला भाग है। उदरकी दीवारका कुछ अंग पसलियोंके पिंजरे और महाप्राचीरासे बनता है। यह उदरके दोनों बगलोंमें होता है। पसलियोंके बीच उदरकी कुछ इन्द्रियाँ होती हैं। उनकी रक्षा पसलियों से होती है।

उदरमें मुख्य रूपसे पाचक इन्द्रियाँ जैसे **आमाशय** (stomach), **अन्त्र** (intestine), **यकृत** (liver), **अग्न्याशय** (pancreas), और **वृक्क** (kidney) तथा **प्लीहा** (spleen) होती हैं। रोमन्थ करनेवाले पशुओंकी ये पाचक इन्द्रियाँ अन्य पशुओंसे भिन्न हैं। गाय रोमन्थ करनेवाले पशुओंमें है। इन्हें ४ आमाशय होते हैं। पर घोड़ेकी तरहके पशुओंको एक ही आमाशय होता है। इसके कारण उदरकी इन्द्रियोंकी स्थितिमें बहुत भिन्नता होती है। गायके चार आमाशय ये हैं :— **रोमन्थाशय** (rumen), **जालाशय** (reticulum), **पूर्वाशय**

(omasum), और **पश्चातआशय** (abomasum)। पहला रोमन्थाशय महाप्राचीरासे लेकर श्रोणि तक उदरके कुल बाँयें भागमें रहता है और कुछ हद तक
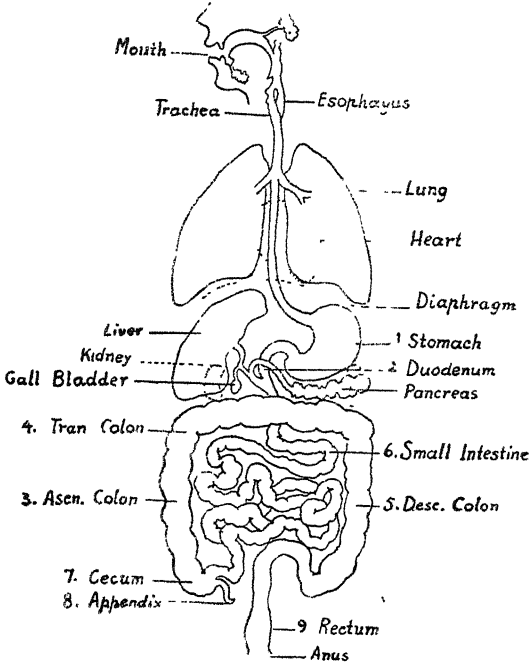
चित्र ११२. मनुष्यके छाती और उदरकी इन्द्रियाँ। श्वास और सचारको इन्द्रियाँ महाप्राचीराके उपर और उदरकी उसके नीचे हैं।

Mouth-मुँह, Esophagus-अन्नवह, Trachea-क्लोम नलिका, Lung-फेफड़ा, Heart-हृदय, Diaphragm-महाप्राचीरा, 1-आमाशय, 2-ग्रहणी, Pancreas-अग्न्याशय, Liver-यकृत, Kidney-वृक्क, Gall Bladder-पित्तकोष, 6-छोटी अँतड़ी, 3, 4, 5-बडी अँतड़ी, 7. उंडुक, 9. गुद नलिका, Anus-मलद्वार।

दाहिनी ओर भी बढ़ा रहता है। प्लीहा इसके बाहरी तल पर ऊपरकी ओर होती है। इसको छोड़ बायीं ओर कोई दूसरी इन्द्रिय नहीं है। यह कहा जा

सकता है कि प्लीहा ही दूसरी इन्द्रिय है जो बायीं ओर है। बायाँ वृक्क और जालाशयका कुछ बायीं ओर है, लेकिन जब रोमन्थाशय भरा रहता है तो इन्हें दाहिनी ओर ठेल देता है। जालाशय गरदन और रोमन्थाशयके बीचमें नीचेकी ओर रहता है। नारंगीके आकारका पूर्वाशय दाहिनी तरफ ७ वीं और ११ वीं पसलीके सामने रहता है। पश्चातआशय लम्बी थैलीके आकारका है और उदरकी दाहिनी निचली दिवाल पर रहता है। यह **ग्रहणीमें** (duodenum) खुलता है जिसमेंसे क्षुद्रान्त्र आरम्भ होती है। यह आँत १३० फूट लम्बी नली है। आदमीका क्षुद्रान्त्र कुल २१ फुट लम्बी है। इस आँतकी अन्तिम छोर बेरके ऐसा आकार
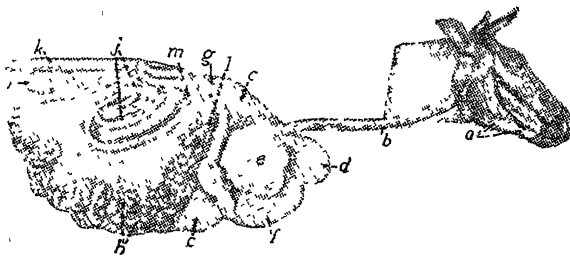
चित्र ११३. गायकी पाचन इन्द्रियाँ।

a-लालाग्रन्थि, b-अन्नवह, c-रोमन्थाशय (इसका थोड़ा अंशही यहाँ दीख पड़ता है, पिछला भाग अँतड़ियोंसे ढका है), d-जालाशय, e-पूर्वाशय, f-पश्चातआशय, g-ग्रहणी, h-क्षुद्रान्त्र बन्धनी, i-उंडुक, j-बृहदन्त्र, k-गुद नलिका, l-ग्रहणीमें पित्त नलिकाके घुसनेकी जगह, m-ग्रहणीमें अग्न्याशय नलिकाके घुसनेकी जगह।

का होता है जिसे **उण्डुक** (cæcum) कहते हैं। वृहदन्त्र यहींसे आरम्भ होती हो। उण्डुकसे वृहदन्त्रकी दुहरी कुन्डली निकलती है। कुछ कुंडली केन्द्रकी ओर जाती है और दूसरी केन्द्रसे बाहर निकलती है। वृहदन्त्रका अधिकांश मेरुदन्ड और उदर तलके बीच पर दाहिनी ओर है। यकृत दाहिनी ओर जालाशय और पूर्वाशयके बीच महाप्राचीराके सहारे है। यकृतको **पित्तकोष** (gall bladder) भी होता है। यहाँ भी बैल और घोड़ेमें भेद है। घोड़ेको पित्तकोष नहीं होता।

अगन्याशय ग्रहणी और यकृतके बीच महाप्राचीराके पास होता है।

दोनों वृक्कोंमें दाहिनी तरफवाला आखरी पसलीके नीचे रहता है। बायें वृक्कमें यह विशेषता है कि उसे परिस्थितिके अनुसार इधरसे उधर होना होता है। जब **रोमन्थाशय** भरा नहीं रहता तब यह वृक्क बायीं ओर रहता है। पर जब चारेमें रोमन्थाशय भर जाता है तब यह ठिलकर मध्यरेखाकी दाहिनी ओर दाहिने वृक्कके नीचे चली आती है। वृक्कोंमें खंड (lobes) होते हैं। **प्लीहा,** बाँयीं उदर प्राचीरा और रोमन्थाशयके ऊपरी दाहिने भागके बीचमें होती है।

आहार सामग्री मुँहसे होकर अन्नवहमें जाती है। **अन्नवहके बगलमें श्वास नलिका** रहती है। खानेकी चीज श्वास नलिकामें न चली जाय, इसकी हिफाजतके लिये श्वास नलिका पर एक ढक्कन होता है, जिसे **ग्रीवाप्रच्छदा** (epiglottis) कहते हैं। खानेकी चीज यदि श्वास नलिकामें घुसने लगती है तो यह ढक्कन लग जाता है।

निगला हुआ चारा रोमन्थाशयमें जाता है। वहाँसे वह और अधिक चबाकर पचने लायक बनानेके लिये फिर मुँहमें आता है।

रोमन्थके बाद चारा जालाशयमें जाता है। वहाँसे पूर्वाशयमें और अन्तमें पश्चातआशयमें। इस आशयसे ग्रहणी आरम्भ होती है जो आशयसे बाहर निकलनेका द्वार है। ग्रहणीके पास आहारमें यकृतसे पित्त और अग्न्याशयसे अग्नेय रस मिलते हैं। इनसे खाना पचनेमें मदत मिलती है। इसके बाद १३० फूट लम्बी आँतमें खाना चलता है। इस सारे समयमें परिवर्त्तन होता ही रहता है। इसके बाद खानेकी चीज उंडुकमें पँहुचती है। यह छोटी और बड़ी आँतके मिलनेकी जगह है। उंडुकमें पँहुचते पँहुचते खानेकी चीजमें सब तरहका रासायनिक और जैविक परिवर्तन हो चुका रहता है और सोखने लायक आहार सोख लिया जाता है। बृहदन्त्रमें बाकी आहार रस और पानी सोखा जाता है। जैसे जैसे आहार पचता है सोखने लायक अंश जमा होकर प्रतिहारिणी शिरा (portal vein) द्वारा यकृतमें जाता है। उदरमें यकृत एक बड़ा कारखाना है। इसका एक काम घुलने लायक चीनीको नही घुलने लायक मधुरक (glycogen) रूप देकर जमा करना है। जब खूनमें आहार या चीनीकी कमी होती है तब मधुरक घुलकर खूनमें मिल जाता है। यकृत नहीं घुलने लायक कुछ मलद्रव्यको खूनसे अलगकर वृक्कोंमें भेज देता है।

प्रतिहारिणी शिरासे मिले रक्तसे यकृत पित्त बनाता है। यह पित्तकोष नामक थैलामें जमा होता है। जब आहार ग्रहणीमें पँहुचता है तब पित्तकोष उसमें पित्त डालता है। वृक्कोंमें रक्तका फालतू पानी और घुलने लायक मल अलग होता है। इस बस्तुको मूत्र कहते हैं। रक्तसे अलग होनेके बाद फालतू पानी, विषैला मल गवनी (ureters) नामकी नालियोंसे मूत्राशयमें आता है। यह मूत्र जमा करनेका बरतन है।

प्लीहा दूसरी एक इन्द्रिय है जो शक्तिखर्च हुए रक्त-कणिकाओंको (corpuscles) रक्तसे लेकर यकृतमें पित्त बननेके लिये भेजती है।

१२६२. सिरकी इन्द्रियाँ

मस्तिष्क, कान, आँख, नाक और मुँह ये सिरकी इन्द्रियाँ हैं।

१२६३. मस्तिष्क

करोटी (खोपड़ी) की पेटीमें **मस्तिष्क** रहता है। इसके दो भाग हैं—**वृहत् मस्तिष्क** (cerebrum) और **लघु मस्तिष्क** (cerebellum)। **सुषुम्ना**
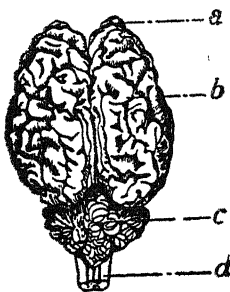
चित्र ११४. मस्तिष्ककी ऊपरी दिशा।
a-घ्राण कन्द, b-वृहत् मस्तिष्क गोलार्ध, c-लघु मस्तिष्क, d-सुषुम्ना शीर्षक।

शीर्षक (medulla oblongata) का सम्बन्ध दोनोंसे है। वृहत् मस्तिष्क नामके अनुरूप ही मस्तिष्कका सबसे बड़ा हिस्सा है। मस्तिष्क-तत्व (brain matter) सुषुम्ना शीर्षकमें अंत होता है। यह **महाविवर** (foramen magnum) होकर मस्तिष्कसे निकलता है और कशेरुओंकी बनी नलीमें होकर आगे तक चला जाता है। यदि मस्तिष्क-तत्वका कोई भाग भंग हो जाता है तो मस्तिष्कके उस भागमें जिस कार्यका पीठ है वह काम होना रुक जाता है।

१२६४. कान

शंखास्थियोंकी बहुत कड़ी और पच्चीकारी की हुई खातमें **कान** होते हैं। अस्थिकी एक सुरंग (कर्णांजली) बाहरी कानसे (कर्णशंकुली) शुरू होकर कुछ गहराई तक जाती है। वहाँ **कर्ण पटह** (drum) नामको झिल्लीका पर्दा इसका रास्ता रोक देता है। कर्ण पटह तक ही **बाहरी कान** माना जाता है। पटहके आगे भी सुरंग जाती है। वहाँ फिर दूसरी झिल्ली मिलती है। इस भागको मध्य कर्ण या **बिचला कान** कहते हैं। अस्थि खातमें इसके बाद स्वर ग्रहण करने
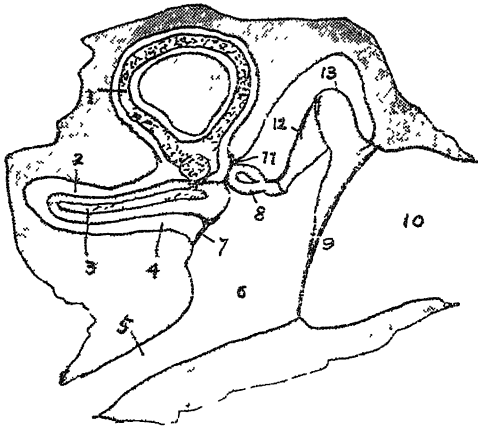
चित्र ११५. कान।
6-मध्यकान, 9-कर्ण पटह, 10-बाहरी कर्णांजली।

और वहाँ पर लगी नाड़ीके छोरोंको उसका सम्बाद देनेके लिये बहुत सुकुमार यंत्र हैं। इस भागको **भीतरी कान** कहते हैं। इसमें गहन (labyrinth) होता है।

१२६५. आँख

आँखकी गोलीको कोआ कहते हैं। यह हड्डीकी बनी खातमें रहती है। इस खातको **अक्षि कोटर** (orbit) कहते हैं। आँखको खिड़की माना जा सकता यह प्रकाश ग्रहण कर उसके बिम्ब दिमागको भेजती है।

इसका सबसे बाहरी भाग **स्वच्छमंडल** (cornea) है। यह पारदर्शी है। इसके पीछेकी जगह पारदर्शी तरल पदार्थसे भरी रहती है। स्वच्छमडलके बाद एक रंगीन पर्दा है। इसे **तारामंडल** (iris) कहते हैं। कम या जादे प्रकाश भीतर जानेके लिये इसमें एक छेद होता है जो घट बढ़ सकता है। उस छेदको तारा या **पुतली** (pupil) कहते हैं। इसके पीछे **ताल** (lens) होता
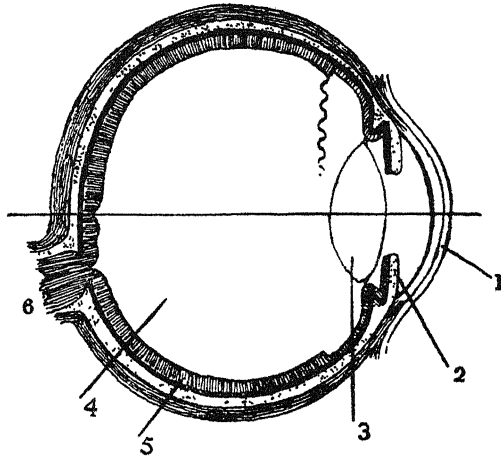
चित्र ११८. आँख।

1-स्वच्छमंडल, 2-तारामंडल, 3-ताल, 4-मेदोजल, 5-दृष्टिमंडल, 6-दृष्टिनाड़ी।

है। तालके पीछे बड़ा कोठा है जिसमें गाढ़ा पारदर्शी तरल पदार्थ भरा रहता है, इसे **मेदोजल** (vitreous humour) कहते हैं। यह **दृष्टिमडल** (retina) के पर्देके आगे रहता है। इस मंडलका काम प्रकाश बिम्बका ग्रहण करना है। दृष्टिमंडलके पीछे नाड़ियोंके छोर हैं। यहाँसे सभी नाड़ियाँ इकट्ठी होकर सुतलीसी बन कर दिमागमें जाती है। इसे **दृष्टि नाड़ी** (optic nerve) कहते हैं।

१२६६. नाक

फेफड़ोंमें . साफ हवा भरने और गन्दीको निकालनेके लिये नाकका रास्ता है। नाक फेफड़ोंमें जानेवाली हवाको गरम करनेका काम भी करती है। इसमें अनेक नसे हैं। भीतर जानेवाली हवा इनके सम्पर्कसे गरम हो जाती है। नाक घ्राणेन्द्रिय भी है। इसमें **घ्राण नाड़ी** (Olfactory nerve) होती है।
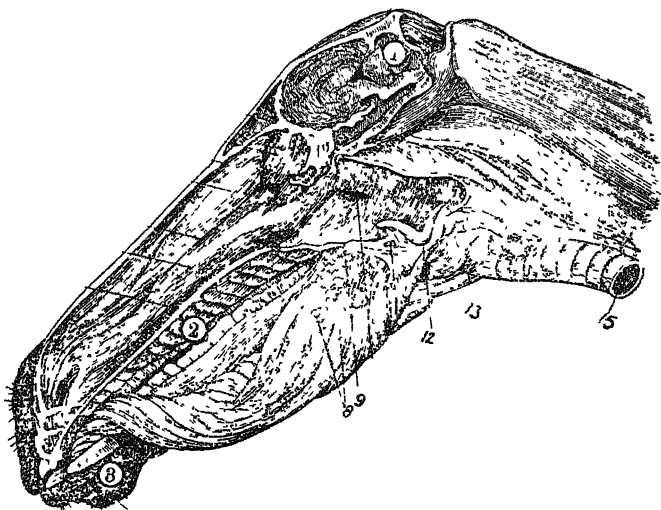
चित्र ११७. घोड़ेके सिरका अश जिसमें मुँह दिखाया गया है।
1-कूर्पर या करोटि, 2-दाँत, 3-ओठ, 8 जीभ, (स्थानान्तरित), 9-कोमल तालु. 12-स्वरयंत्र, 13-अन्न नलिका, 15-श्लेष्म नलिका।

१२६७. मुँह

आहार सबसे पहले मुँहमें जाता है। आहार पचनेके लिये चबा और **लार** मिलाकर निगलने लायक यहीं बनता है। कौन पशु कैसे अपना आहार ग्रहण करता है, इसी सुबीतेके मुताबिक उनके मुँहकी बनावट होती है। मांसभोजी पशुओंका मुँह बहुत चौड़ा होता है। जबड़े बहुत ज़ादे खुल सकते हैं और बहुत बड़े टुकड़े

भी दाँतों तले आ सकते हैं। आहारके अनुरूप ओठ भी होते हैं। घोड़ोंके ओठ बहुत बड़े होते हैं और उनमें गति भी बहुत हो सकती है। गायके ओठ इससे छोटे होते हैं। मुँहमें ऊपरकी ओर तालू होता है और नीचे जीभ और उसके उपांग। अगल बगलकी दीवालसे गाल बनते हैं। दाँत उभाड़के साथ जड़े होते हैं। मुँहमें श्लैष्मिक कलाका अस्तर लगा है और हवा आनेके लिये तालूके पीछेसे एक रास्ता है जो मुँहको नाकसे मिलाता है। हवा **क्लोमनलिका** (œsophagus) होकर जाती है और आहार **अन्ननलिका** (trachea) होकर। ये दोनों गलेमें हैं।

अध्याय ३४

गायकी इन्द्रियोंका कार्य

१२६८. रक्तसंचारी संस्थान

रक्तसंचारी संस्थानकी केन्द्रीय इन्द्रिय **हृदय** है। यह उरःपन्जरकी खातमें आगेकी ओर निचले हिस्सेमें रहता है। यह फेफड़ोंके बीच दाहिनेकी अपेक्षा बायीं
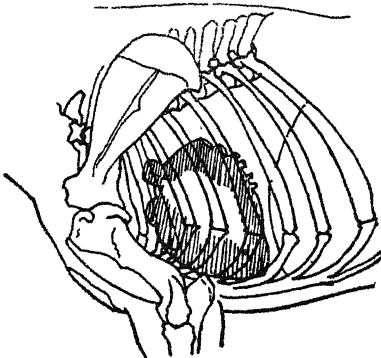
चित्र ११८. छातीकी हड्डियोंमें हृदय।

ओर अधिक निकला रहता है। जब पशु अपने दोनों अगले पैरको सीधा करके खड़ा होता है तब यह दोनों कुहनियोंके बीच रहता है। दोनों कुहनीको मिलानेवाली
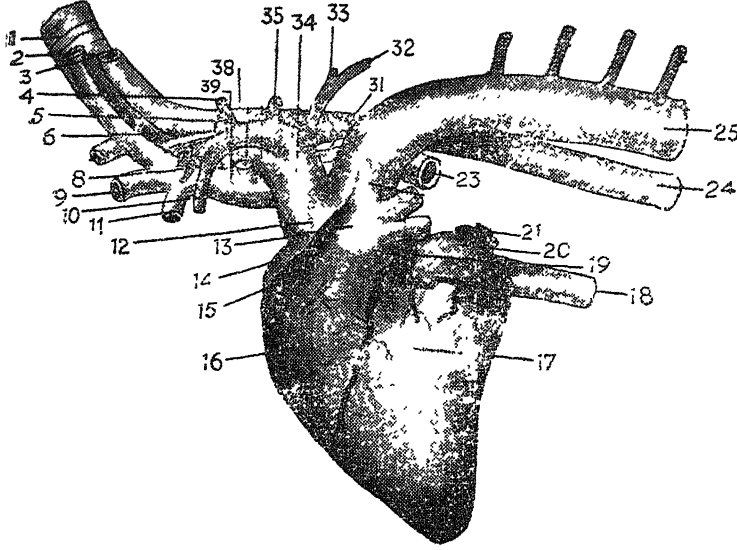
चित्र ११९. हृदय और बड़ी नसें।

1-क्लोम नलिका, 2-मन्याशिरा, 3-महामात्रिका धमनी, 4-मस्तिष्क मातृका धमनी, 5-मस्तिष्क मातृका शिरा, 6-बामा रसकुल्या, 8-बामा महा धमनी, 9-कक्षा धरा शिरा, 10-बामा धमनी, 11-दक्षिण शिरा, 12-महा मातृका धमनी, 13-फुस्फुसाभिगा धमनी, 14-दाहिने अलिन्दकी चोटी, 15-दाहिनी हार्दिकी धमनी, 16-दक्षिण निलय, 17-बाम निलय, 18-अगली महाशिरा, 19-बायीं हार्दिकी धमनी, 20-बायीं अलिन्दकी चोटी, 21-फुस्फुसाभिगा शिरा, 23-बायीं क्लोम शाखा, 24-अन्न नलिका, 25-अगली महा धमनी, 31-बामा रसकुल्या, 32-पार्श्वबर्ती धमनी, 33-पृष्ठीय धमनी, 34-पिछली धमनी, 35-उर्द्ध ग्रिवा धमनी, 38-बामा कक्षाधरा धमनी, 39-पिछली महाशिरा।

रेखा हृदयकी चोटी होकर निकलेगी। इसका पादतल तीसरीसे छठी पसलीके सामने रहता है (चित्र-११८) और चोटी उरःफलकके आखिरी टुकड़ेके ऊपर। जब साँस छोड़ने पर हृदयका कोठा सिकुड़ता है तो हृदय महाप्राचीराके बहुत सम्पर्कमें आ जाता है। साँस लेने पर जब महाप्राचीरा पीछे हटती है तब वह हृदयकी चोटीसे दूर हट जाता है।

बैलके पेट और हृदयके बीच बहुत कम अन्तर है। इसलिये पेटकी बीमारीसे हृदय पर उसका प्रभाव पड़नेकी संभावना रहती है। ऐसे उदाहरण भी हैं कि

चित्र १२०. बायीं ओरसे देखनेपर हृदय।

A-बामा अलिन्द, B-बामा निलय, C-बन्द दक्षिण निलय, D-हृदय कोष, 1-बायीं अलिन्दकी चोटी, 2-फुस्फुसाभिगा शिरा, 4-द्विपत्र कपाटिका, 6-फुस्फुसाभिगा धमनी, 7-इसकी अर्धेन्दु कपाटिका, 8-साधारण महाधमनी, 8′ और 8″-आगे और पीछेकी धमनी, 10-दक्षिण अलिन्दकी परिशिष्ट, 11-बायीं हार्दिकी धमनी।
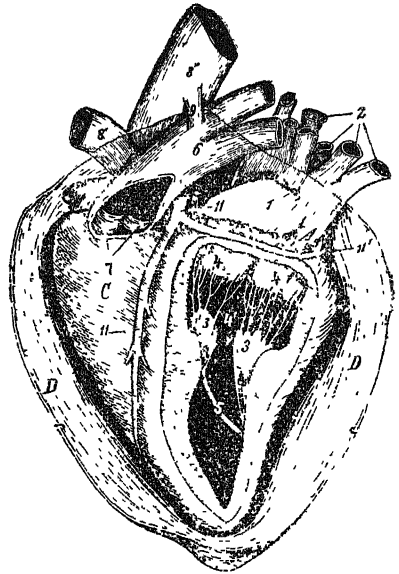
हेयरपिन (केशका काँटा) या कील जैसी बाहरी वस्तु यदि गाय निगल गयी है तो वह जालाशयमें जाकर अटकती है और उसको छेदकर हृदयमें चुभ जाती है जिससे धीरे धीरे मौत हो जाती है।

हृदय एक मुलायम थैलीमें रहता है। **इसे हृद्कोष** (pericardium) कहते हैं। यह हृदयके पेंदेमें लगा रहता है जहाँ नसें घुसतीं हैं। हृदय अद्भुत शक्तिशाली पम्प है। साधारण पम्पोंकी तरह इसमें पिस्टन (piston—डंडा) नहीं

रहना। हृदयकी पेशियोंके ढीली होनेसे एक खात बन जाता है जिसमें खून दौड़ जाता है। यह खात जैसेही भरता है हृदय पेशियाँ सिकुड़ती हैं जिससे खातकी दीवाल दबती है और खून निचुड़कर बाहर हो जाता है। रक्तसंचार बराबर होते रहनेका कारण कपाटिकाकी (valves) सही व्यवस्था है।
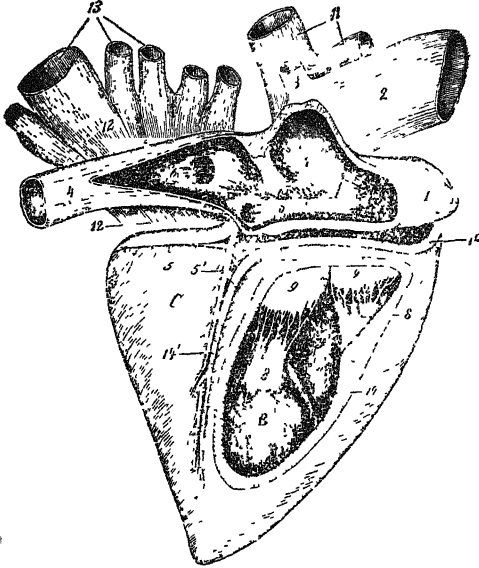
चित्र १२१. दाहिनीओरसे देखनेपर हृदय।

A-दक्षिण अलिन्द, B-दक्षिण निलय, C-मन्द बाम निलय, 1-दक्षिण अलिन्दकी चोटी, 2-उत्तरा महाशिरा, 4-अधरा महाशिरा, 5′-बायाँ हार्दिकी शिरा, 5-त्रिपत्र कपाटिका, 11-उत्तरा और अधरा महा धमनी, 12-बाम अलिन्द, 13-फुस्फुसाभिगा शिरा, 14-दाहिनी हार्दिकी धमनी, 14′-दाहिनी हार्दिकी शिरा और धमनी।

वास्तवमें हृदयमें दो पम्प होते हैं जो अगल बगल हैं। एक पम्प शिराओंसे लौटे हुए रक्तको लेकर फेफड़ेमें फेंकता है। जहाँ साँसमें आयी हुई ऑक्सीजनमें मिलकर वह शुद्ध होता है। दूसरा पम्प फेफड़ेसे आया ऑक्सीजन-मिश्रित रक्त ग्रहण कर धमनीको राह सारे शरीरमें दौड़ानेके लिये है। इसलिये हृदयका हरेक

कोठा दो भागोंमें बँटा है। एक रक्त ग्रहण करनेके लिये और दूसरा उसे बाहर निकालनेके लिये। ग्रहण करनेवाला कोठा **अलिन्द** (auricle) और बाहर भेजनेवाला **निलय** (ventricle) कहाता है। दाहिनी तरफके कोठे दक्षिण और बायीं तरफके बाम कहाते हैं। इसलिये **दक्षिण अलिन्द** और **दक्षिण निलय** तथा **बाम अलिन्द** और **बाम निलय** होते हैं। पूरे जवान बैलके हृदयकी तौल ५ से ७ रत्तल है।

जिन मुख्य नलियोंसे दक्षिण अलिन्दमें रक्त लौटता है उन्हें **महाशिरायें** (vena cava) कहते हैं। दक्षिण अलिन्दसे सीधी जुड़ी दो महासिरायें हैं। **उत्तरा महाशिरा** (superior vena cava) ऊपरी और **अधरा महाशिरा** (inferior vena cava) निचली इन्द्रियोंसे आती हैं।

चित्र १२२. हृदयके अंशका चित्र। इसमें खूनकी राह और कपाटिकाओंकी व्यवस्था दिखायी गयी है।

RA-दक्षिण अलिन्द, RV-दक्षिण निलय, P-फुस्फुसाभिगा धमनी, LA-बायाँ अलिन्द, LV-बायाँ निलय, A-महाधमनी।
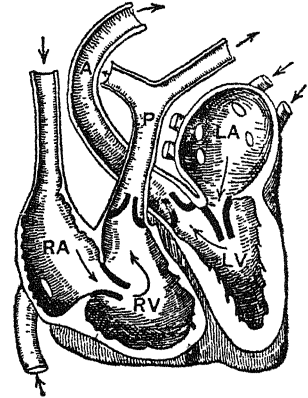
जिस राहसे दक्षिण हृदयका रक्त दोनों फेफड़ोंमें जाता है उसे **फुस्फुसाभिगा धमनी** (pulmonary artery) कहते हैं और बायें हृदयमें शुद्ध रक्तके लौटनेकी राहको **फुस्फुसीया शिरा** (pulmonary vein) कहते हैं। बायें हृदयसे रक्त भेजनेवाली मुख्य नसको **महाधमनी** (aorta) कहते हैं।

यह ऊपरको उठती है जहाँ देहके अगले भागके लिये इसकी दो शाखायें निकलती हैं और फिर एक धनुषके आकारमें नीचेको मुड़ जाती है और आगे बढ़ती है। इसमेंसे शाखायें निकलती रहती हैं जिन्हें धमनी कहते हैं जो हृदयके नीचेकी इन्द्रियोंको आहार (रक्त) पहुँचाती हैं।

पम्पकी किसी मशीनमें कपाटिका होना जरूरी है। हृदयमें भी वह है। ये कपाटिकायें मजबूत झिल्लियोंकी बनी खीसे (पॉकेट) के आकारकी होती हैं। इनमें होकर खून एक ही ओर जा सकता है। हृदयके दाहिनेसे बायें कोठेमें कोई राह नहीं है। यद्यपि दोनोंका संकोच और प्रसार साथ ही होता है फिर भी दोनों बिलकुल अलग अलग हैं।
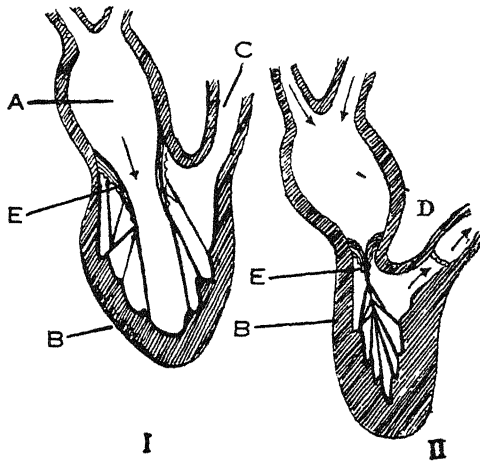
चित्र १२३. हृदयकी कार्य प्रणाली।

I-द्विपत्र कपाटिका खुलती है और रक्त निलयमें जा रहा है। II-निलयसे रक्त निचुड़ कर बाहर निकल रहा है, द्विपत्र बन्द होता है और अर्धेन्दु कपाटिका खुलती है। A-अलिन्द, B-निलय, C-महाधमनी, D-अर्धेन्दु कपाटिका, E-द्विपत्र कपाटिका।

चित्र १२३ (I) में दिखाया गया है कि; अलिन्दकी कपाटिका निलयमें खुल रही है। हृदयके बायीं ओरकी **अलिन्द** और **निलयके** बीचकी कपाटिका खुलती है और बायें **निलयमें** खून जाता है। **महाधमनीमें** जानेका द्वार **अर्धेन्दु कपाटिकासे** बन्द होता है।

चित्र १२३ (II) में बाँयाँ निलय भरा दिखाया गया है। जैसे ही यह भरता है वैसे ही सिकुड़ना शुरू कर देता है। इससे **द्विपत्र** कपाटिका बन्द हो जाती है जिससे बायें अलिन्दसे निलयकी राह बन्द हो जाती है। साथ ही महाधमनी और निलयके बीचकी तीनों अर्धेन्दु कपाटिकायें खुल जाती हैं जिससे खून महाधमनोमें दौड़ जाता है। निलयका बूँद बूँद खून जब तक बाहर नहीं हो जाता तब तक वह सिकुड़ता है। निलयमें जब यह काम होता रहता है उसी समय अलिन्दमें फुस्फुसीया शिरासे फेफड़ेका रक्त भरता रहता है।

चित्र १२४. निलयका तल, इसमें महाधमनी, द्विपत्र और त्रिपत्र कपाटिका दिखायी गयी है।
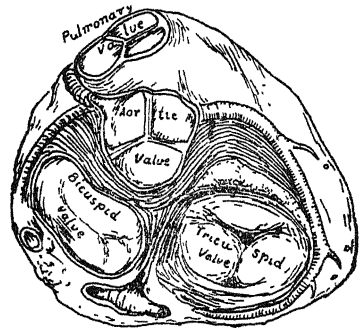
चित्र १२५. अलिन्द होकर हृदयका अंश।

1-फुस्फुसाभिगा कपाटिका, 2-द्विपत्र कपाटिका, 3-त्रिपत्र कपाटिका, 4-महाधमनी कपाटिका।
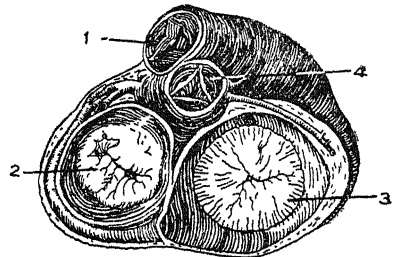
हृदयकी कपाटिका सफेद तन्तुओंसे बँधी रहती हैं जो उन पर होकर निलयकी प्राचीरके ऊपरके छोटे छोटे उभारों तक आती हैं। महाधमनी और धमनियोंकी प्राचीरें मजबूत और कड़ी हैं। वह बैठ नहीं सकतीं।

हृदयसे जितनी बार रक्त बाहर निकलता है उतनी बार हृदयमें धुकधुकी होती है। प्रत्येक धुकधुकी पर हृदयतल छातीकी दीवालसे टकराता है। **छातीकी**

दीवालसे हृदयतलकी टक्कर सुनायी पड़ सकती है। धुकधुकीमें दो आवाजें सुनायी पड़ती हैं। पहली मन्द और लम्बी और दूसरी तीव्र और छोटी। एकके बाद दूसरी आवाज बहुत जल्दी होती है इसके बाद थोड़ी देरका विराम होता है। ये दोनों आवाज "लब" और "डब" की तरह हैं। पहली लम्बी आवाज 'लब' तब होती है जब निलय सिकुड़ने लगता है। इस आवाजका कारण द्विपत्र और त्रिपत्र कपाटिका पर दबाव पड़नेसे कम्पन और पेशियोंकी चरमराहट है।

महाधमनीकी अर्धेन्दु कपाटिका और फुस्फुसाभिगा धमनीके बन्द होनेसे जो कम्पन होता है उससे दूसरा स्वर 'डब' निकलता है।

धमनियोंका रक्त अनेक शाखाओंसे होकर बहता है। अन्तमें वह केशिकाओंमें (capillaries) चला जाता है। इसके बाद आगेके बहावकी प्रणाली रुक जाती है और लौटनेकी प्रारम्भ होती है।

केशिकायें संचारण और प्रत्यावर्तन दोनों प्रणालियोंके मिलनके स्थान हैं। केशिकाओंमें रक्तका निरन्तर प्रवाह, फालतू उपजात वस्तुओंका रक्तमें घुलना और पेशियोंका रक्तके कुछ शुद्ध द्रव्य ले लेना यह एक जटिल क्रिया है। धमनीका रक्त अपने मार्ग केशिकाओंमें ही रहता हुआ अपनी राह छोड़े बिना यह सारा विनिमय करता है। रक्तके किसी द्रव्य या उसके किसी नमकीन घोलके कारण यह होता है। किसी दूसरे नमकीन घोलके सपर्कमें झिल्लियोंके छिद्रसे यह आचूषण होता है। इस क्रियाका नाम अंगरेजीमें **ओसमोसिस** है। केशिकायें इतनी पतली होती हैं कि उन्हें एक तरहसे द्रवपदार्थकी प्राचीरें कह सकते हैं। साबुनके पानीमें यदि फूक मारें तो बुलबुले उठते हैं। ये बबूले कोष हैं जिनकी प्राचीरें द्रव पानी की हैं। यहाँ द्रव बबूलेकी दीवाल (प्राचीर) का काम करती है। केशिकाओंकी दीवालें भी प्रायः इसी बनावटकी हैं। जो हो, केशिकाओंकी रक्तकी प्रतिक्रिया उसके चारों तरफके मांसपिंड पर होती है जिसमें **प्लाजमा** (रक्तरस) होता है। केशिका प्लाजमासे कारबन-डाइऑक्साइड सोख लेते हैं। रक्तके कारण पेशियों पर ऑक्सीजनकी जो प्रतिक्रिया होती है उससे करबन-डाइऑक्साइड पैदा होता है। कारबन-डाइऑक्साइडसे रक्तका रंग नीला हो जाता है और फिर प्रत्यावर्तन शुरू हो जाता है। केशिकाओंका मुँह बड़े बड़े छेदवाली नसोंमें खुलता है जिन्हें शिरा कहते हैं। इनसे रक्त हृदयमें लौटता है।

कुछ प्रधान सिरायें : अगली शाखाकी दाहिने और बाँयें अगसे

आनेवाले शिराओंको **अक्षाधरा** (subclavion) कहते हैं। सिर और गर्दनकी शिराओंको **अधिमन्या** (ext. jugular) कहते हैं। सिर गर्दन और अगली शाखाकी शिरायें मिलकर **उत्तरा महाशिरा** (superior vena cava) बनती है। देहके पिछले भागकी शिरायें मिलकर **अधरा महाशिरा** (inferior vena cava) बनती है। पिछली शाखाकी शिरायें हृदयमें सीधी नहीं जातीं। यह उदरमें पाचन और मलत्याग सम्बन्धी कुछ काम कर लेतीं हैं।

वृक्कोंसे निकली अनुवृक्का शिरायें और महाप्राचीराके पासकी यकृतसे निकली **याकृत** (hepatic) शिरायें अधरा महाशिरामें अपना अपना रक्त गिराती हैं। आमाशय, आँतें, प्लीहा, अग्न्याशय आदि दूसरी सब इन्द्रियोंकी शिरायें एकमें मिल जाती हैं। इसे **प्रतिहारिणी महाशिरा** (portal vein) कहा जाता है। प्रतिहारिणी शिरा यकृतका रक्त बहा ले जानेके लिये उसमें नहीं घुसती है। **महाधमनीसे** आये लाल रक्तवाले केशिकाओंसे वहाँ मिल जाती है। वहाँ यह अचरजकी अनेक प्रक्रियायें करती है इसके बाद याकृती शिराके द्वारा अपना रक्त अधरा महाशिरामें डालती है।

शिराओंमें खीसे (पॉकेट) जैसी कपाटिकायें होती हैं जो एकही ओर खुल सकनी हैं। इसलिये शिराका रक्त फिर लौट नहीं सकता।

१२६६. रक्त चाप

लचकीली धमनियों पर रक्त संवाहनके लिये पड़े चापको **रक्त चाप** (blood pressure) कहते हैं। जीवित हालतमें इन नलिकाओंमें सदा रक्त भरा रहता है। इन पर सदा चाप रहता है इसलिये ये फूली रहती हैं। इस चापका नाम रक्त चाप है। हृदयकी हर धड़कनके बाद कुछ नया रक्त महाधमनीमें जाता है। धमनियाँ सदा फूली रहती हैं और धड़कनें उन्हें और भी फुलाये रहती हैं। धमनी और केशिकाओंमें अतिरिक्त रक्त लहरियोंके रूपमें बहता है। इन लहरोंके कारण धमनियोंमें फड़कन होती है जिन्हें **नाड़ी चलना** कहते हैं। नाड़ीकी इस चालको सुबीतेकी किसी धमनीको दबाकर देख सकते हैं। गायके **निचले जबड़े** या पूँछकी जड़के नीचेकी धमनीमें सुबीतेके साथ यह फड़कन जानी जा सकती है।

नाड़ीसंस्थानके द्वारा धमनियोंका छेद स्वयं संचालित है। आमाशयमें जब आहार पहुँचता है तब उसे अधिक रक्तकी आवश्यकता होती है। जब उसे अधिक

काम करना नहीं होता तब इतने रक्तकी जरूरत उसे नहीं होती है। अधिक रक्तकी आवश्यकता होने पर रक्त ले जानेवाली नसें अपने आप फैल जाती हैं और आमाशय होकर अधिक रक्त बहने लगता है। इस तरह दूसरी इन्द्रियोंको अनुपातमें कम रक्त उस समय मिल पाता है। नाड़ियोंके कलपुर्जे धमनीके छेदका नियंत्रण कर यह सब करते हैं।

१२७०. रक्तकी बनावट

स्तनपायी प्राणियोंका रक्त लाल रंगका गरम तरल पदार्थ है। यह देहके हर हिस्सेमें पोषक द्रव्य ले जाता है। यह एक जातीय क्षारयुक्त और नमकीन होता है। यह धमनी, केशिका और शिराओंमें होकर बहता है। ऑक्सीजन, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्नेह और नमक जैसी पोषक वस्तुओंको यह कोषों और तंतुओंको देता है। ततुओंसे कारबन-डाइऑक्साइड और यूरिया जैसे त्यक्त पदार्थोंको रक्त हटा ले जाता है।

गायके रक्तका आपेक्षिक गुरुत्व १०६० ओर मलद्वार पर गर्मी १०२ डिग्री फा० है। गायकी देहकी कुल तौलका १३ बाँ भाग या ७·७१ सैकड़ा रक्त है। देह और विभिन्न इन्द्रियोंका हर हिस्सा खूनमें सराबोर रहता है।

रक्तमें **श्वेत** और **लाल रक्त कणिकायें** और **प्लाजमा** होता है। प्लाजमा तरल पदार्थ है। प्लाजमा, **एलबुमिन**, नमक और **फाइब्रीनका** मिश्रण है।

यदि चमड़ीमें कहीं सूई चुभायी जाय तो वहाँ तुरत खून निकलने लगेगा। पर तुरतही निकलना बन्द हो जायगा। अपनी नलियोंसे बाहर आने पर खून तुरत जम जाता है, यह चाहे देहके भीतर हो या बाहर। घावसे अधिक खूनका बहना इस **जमाव** के कारणही रुक जाता है। कैलशियम साल्ट खूनके जमनेकी शक्ति कुछ हद तक बढ़ा देता है।

यदि खूनको जमने दिया जाय तो थोड़ी देरके बाद उसमेंसे एक तरल पदार्थ अलग होने लगता है। यही **रक्त वस्तु** या सिरम है। जमे रक्तमें लाल रक्त कणिका और **फाइब्रीन** होती है। इसलिये रक्तवस्तु फाइब्रीन हीन प्लाजमा या रक्तरस है। फाइब्रीनके कारण खून जमता है। किसी सलाईसे चलाने पर जिस खूनसे फाइब्रीन अलग हो जाय वह नहीं जमेगा। जलोदर और कुछ दूसरे रोगोंमें जो पानी जमा हो जाता है वह रक्तवस्तु है जिसमें पानी नमक और एलबुमिन हैं।

रक्तकी श्वेत कणिकायें अद्भुत पदार्थ हैं। इन्हें अनुवीक्षण यन्त्रसे देख सकते हैं। जीवित पशुके रक्तमें यह एमीवा (amoeba) जैसे आचरणके होते हैं। अनुवीक्षण यन्त्रसे देखा जा सकता है कि, इसकी आकृति बदलती रहती है। बहुत सूक्ष्म तन्तुओंसे होकर जानेमें जब इन्हें कठिनाई होती है तब यह सिमट सिंकुड़ कर उस छेदके लायक बन जाती हैं। श्वेत कणिकायें विष, जीवाणु आदि से लड़ती और अपनी देहसे उन्हें घेर कर नष्ट कर देती हैं। अन्दाज है कि, ५०० लाल कणिकाओंके पीछे एक श्वेत कणिका होती है। इनका अनुपात १ : ३०० से १ : ७०० तक है। जिन रोगोंमें भीतरी छूत लगती है, श्वेत कणिकाओंकी सख्या बढ़ जाती है।

गायको लाल कणिका चिपटी युगल-नतोदर (bi-concave) चकती है। इनमें मूलकण नहीं होते हैं। एक वर्ग मिलीमीटर खूनमें ५० लाख कणिकायें होती हैं। संक्षेपमें कहें तो रक्त नीचे लिखे काम करते हैं :—

(१) तन्तुओंसे फेफड़े तक ऑक्सीजन ले आना और ले जाना। (२) हानिकर बीजाणुओंको नष्ट करना। (३) सारी देहमें पोषण तत्वका वितरण। (४) तन्तुओंसे अनिष्ट उपजातोंका हटाना।

१२७१. लसीका संस्थान

रक्तबहाओंसे निकले द्रवको **लसीका** या **रस** कहते हैं। तन्तुओंमें यही वस्तु प्रवाहित होती है। यह माना जा सकता है कि इसी वस्तुके द्वारा तन्तुओंका पोषण प्रत्यक्षरूपसे होता है और अनिष्ट वस्तु तन्तुओंसे इकट्ठी होकर रक्त बहाओंमें जाती है। ऐसे कुछ तन्तु हैं जिनको रक्त नहीं मिलता केवल रक्त लसीका मिलती है। रक्त श्रोतसे ही लसीका प्राप्त होती है।

लसीका, तन्तुओंके कोषोंके बीचकी जगहमें रहती है। इनका प्रवाह सूक्ष्म नलिकाओंके एक जालसे होता है जिन्हें **रसायनी** (lymphatic vessels) कहते हैं। इन रसायनियों द्वारा तन्तुओं या इन्द्रियोंसे लसीका ले जायी जाती है। ये रसायनियाँ आपसमें मिलकर थोड़ीसी मुख्य रसायनी रह जाती हैं। देहकी रसायनियाँ एक दूसरे से जुड़ी हैं। मुख्य रसायनी रीढ़के सामने पेटमें है। इसे **वायाँ रसकुल्या** (thoracic duct) कहते हैं। विभिन्न रसकुल्यायें महाशिरामें गिरती हैं। इस तरह खूनसे रिसकर आयी हुई लसीका कोषोंका पोषण

कर फिर खूनमें वापस मिल जाती हैं। केशिकाओंसे निकला हुआ रक्तरस (प्लाजमा) कोषोंका पोषण करता है और अतिक्ति लसीकाग्रन्थियों और रसकुल्याओंसे होकर निकल जाता है।

१२७२. लसीका या रस ग्रन्थि

रसकुल्याओंकी राहमें सेमके बीजकी तरहके पिन्ड मिलते हैं। रसकुल्यायें इसमें एक ओर से घुस दूसरी ओर से निकल जाती हैं। ये **रसग्रन्थियाँ** हैं। इनमें से शुरूमें रक्तके विवर्ण कोष बनते हैं। कई तन्त्रोंकी क्रियामें इन ग्रन्थियोंका महत्व है।

१२७३. श्वास संस्थान

केशिकायें सूक्ष्मतम रक्तवाहक हैं। बाहरी वायु या तरलोंको अपने भीतर कर लेने या बाहर कर देनेकी शक्ति इनमें है। इसी शक्ति पर रक्त संवहन और श्वासतन्त्र अवलम्बित हैं। यदि खून निकाल कर उसे किसी रासायनिक वस्तुके योगसे जमने नहीं दिया जाय और किसी थैलीमें भर कारबन-डाइऑक्साइडके बीच टाँग दिया जाय तो पता चलेगा कि इस गैसके असरसे थैलीका खून नीला हो चला है। थैलीसे खून तो बाहर नहीं रिसता पर चौतरफा गैस उसमें घुस अपना काम करती है। नमकदार तरलकी यही गति है। यानी थैलीमें भरे दूसरे नमकीन घोल पर इनकी क्रिया और प्रतिक्रिया होती है, यदि वह इनके सपर्कमें हों। केशिकाओंमें बराबर यही होता है। रक्त केशिकाओंकी प्राचीरके भीतर रहता हुआ तन्तुओंको ऑक्सीजन देता है और अपनेमें अनिष्ट पदार्थ और आसपासकी तन्तुओंके पुष्टि ग्रहण करनेके बाद छोड़ी कारबन-डइऑक्साइड लौटा लेता है। कारबन-डाइऑक्साइड लाल रक्तको नीला कर देती है। धमनीके रक्तमें ऑक्सिजन रहता है। उसकी तन्तुपदार्थों पर प्रतिक्रिया होती है। इससे उसमेंका ऑक्सीजन खतम हो जाता है। यह ऑक्सीजन तन्तुओंको जलाता है जिससे कारबन-डाइऑक्साइड गैस पैदा होती है जो केशिकाओंमें लौट शिरा होकर फेफड़ेमें जाती है। यह नीला खून तन्तुओंको और पुष्ट करने या जलाने लायक नहीं रहता, इसलिये इसको फिरसे ठीक करनेके लिये किसी उपायकी जरूरत है कि इसका कारबन डाइऑक्साइड बाहर निकाल उसमें नया ऑक्सीजन भरा जाय। यह उपाय साँस है।

दाहिना हृदय फेफड़ेमें शुद्धिके लिये रक्त भेजता है और बायाँ हृदय शुद्ध रक्त ग्रहण कर सवाहनके लिये महाधमनी और धमनियोंके द्वारा भेजता है ।

१२७४. फेफड़ा

फेफड़े स्पंजकी तरह हैं जिनमें हवा घुस सकती है। बैलके फेफड़े एक समतोलमें नहीं हैं। उनके आकारमें बहुत फर्क है। दाहिना फेफड़ा तौलमें बाँयेंसे १½ गुनाके लगभग है। गहरी दरारोंसे वह पिंडोंमें बँटे हैं। बाँयेंमें तीन पिन्ड हैं और दाहिनेमें चार या पाँच। उरःखातकी बाँयी ओर हृदय है। यह जितनी जगह छेंकता है उसके कारण बाँयें फेफड़ेको कम जगह बचती है ।

चित्र १२६. घोड़ेका फेफड़ा। a-चोटी, b-हृदयके लिये खाँचा, h-बाहरी भागपर पसलियोके दबावसे बनी नालीदार धारी।
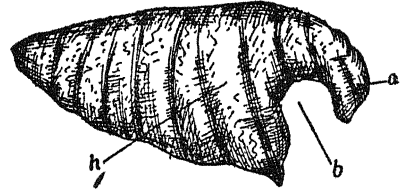
चित्र १२७. घोड़ेका फेफड़ा। a-चोटी, b-हृदयके लिये खाँचा, c-बायीं फुस्फुसाभिगा धमनी, d-बाँया क्लोम शाखा, e-अन्ननलिका की नालीदार धारी, f-महाप्राचीरा स्तर, g-फुस्फुसाभिगा शिरा।
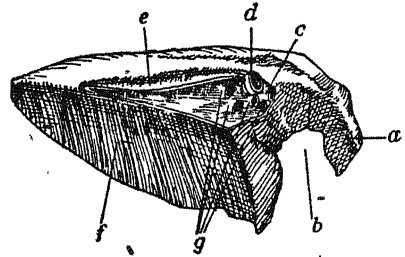
फेफड़े अपनी जगह पर दृढ़ हैं। उनकी जड़ें हृदय, क्लोमनलिका और उरस्या (pleura) में जमी हैं। उरस्या फेफड़ेको घेरकर उसकी लम्बाईमें रहती है। वायुकोषों (alveoli) में हवासे रक्तका सम्पर्क होता है जो उनकी अगल बगलमें फैली केशिकाओंमें रहता है। रक्त वायुकोषोंसे ऑक्सीजन लेता और कारबन-डाइऑक्साइड छोड़ता है। और फिर शुद्ध होकर लाल रक्त बन बाँयें अलिन्दमें लौटता है। यहाँसे तुरत ही महाधमनी और धमनियोंकी राह

केशिकाओंमें भेज दिया जाता है कि वह तन्तुओंका पोषण करें और अनिष्ट पदार्थोंको बहा ले आवे ।

श्वास क्रियामें **साँस लेना** और **साँस छोड़ना** ये दो बातें हैं । साँस लेने पर शुद्ध हवा फेफड़ेमें भरती है जिससे वह फूल उठता है । छोड़ी साँसमें हवा रक्तके कारबन-डाइऑक्साइडको लेकर बाहर आती है । साँस छोड़ने पर फेफड़ा पिचकता है । यह क्रिया साधारण तौर पर अपने आप होती है । इस क्रियाके नियन्त्रणके लिये शरीरके भीतर एक व्यवस्था है जो तन्दुरुस्त फेफड़ोंको जरूरतके मुताबिक तालसे चलाती है । आदमी अपनी इच्छाके अनुसार कुछ मिनट ही अपनी साँस तेज कर सकता या बन्द कर सकता है ।

साँस लेनेमें जो इन्द्रियाँ सहायक होती हैं अब हम उनकी जाँच करें । हवा नाकसे खींची जाती है । **नाकके** भीतर दो सुरंगें हैं । इन्हीमें होकर हवा जाती है और नाकको दीवालोंके सम्पर्कसे गरम हो जाती है, क्योंकि नाककी दीवालोंकी कलाओंमें इसी कामके लिये रक्त बहता रहता है । नाकमें कुछ केश भी होते हैं जो हवाके साथ जानेवाले कचरे और धूलको छान लेते हैं ।

१२७५. क्लोमनलिका

नाकमें होकर हवा जाती है और **गल (ग्रसनिका)** (pharynx) से टकरा कर कन्ठके **स्वर यन्त्र** (larynx) में आती है । इसके बाद वह **क्लोमनलिका** (trachea) या मुख्य श्वास नलिकामें घुसती है । नाकके बालसे बच कर आये छोटे धूलकण आदि ग्रसनिकाके चिपचिपे स्तर पर चिपक रहते हैं । क्लोमनलिका बखनरदार पाइपकी तरह है । इसमें तरुणास्थियोंके खुले छल्ले रहते हैं । क्लोमनलिका शाखाओंमें विभक्त है जिनमें होकर फेफड़ोंमें हवा जाती है । दो **क्लोमशाखायें** (bronchi) दोनों फेफड़ोंके लिये हैं । बैलको एक तीसरी क्लोमशाखा होती है जो छोटी होती है और दाहिने फेफड़ेके बहुत भीतरी पिंडमें सीधी जाती है ।

हवा मुँहसे भी ली जा सकती है । मुँहकी छत तालु है । नाक और मुँहको अलग करनेवाली दीवाल यही है । तालुके बाद कोमल तालू है । यह बहुत पतली पेशी है । कोमल तालू पर्देकी तरह टँगी है । यह मुँह और गलको अलग अलग कर सकती है । गलमें टकराने पर हवाको दो राहें दीख पड़ती हैं ।

एक अन्ननलिका और दूसरी स्वर यन्त्र। भीतर जानेवाली हवा फेफड़ेके खिंचावसे स्वर यन्त्रमें होकर क्लोमनलिकामें जाती है। क्लोमनलिकामें केश जैसे उभार हैं जिन्हें **पक्ष्म** (cilia) कहते हैं। ये सीधे तन कर नीचे झुक जाते हैं। अपनी इस क्रियासे यह भीतरके तरल पदार्थको मुंहकी ओर ठेलते हैं। जीवित पशुके पक्ष्म सदा क्रियाशील रहते हैं। छोटीसे छोटी क्लोमशाखाओंकी पतलीसे पतली प्रशाखायें हो गयी हैं। जैसे जैसे नलिकायें पतली होती गयीं तरुणास्थियोंका उनका आवरण अधूरा होता हुआ अन्तमें सबसे पतली नलीमें निःशेष हो गया है। सबसे महीन क्लोमनलिकाके अन्तमें उसकी प्रशाखाओंका पुंज फैला रहता है। इन्हें
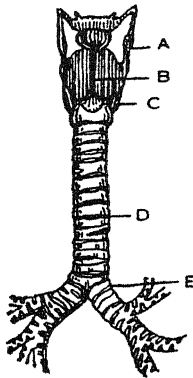
चित्र १२८. क्लोमनलिका **और** क्लोमशाखा।
A-कंठ, D-क्लोम, E-क्लोमशाखा।
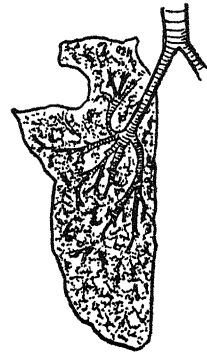
चित्र १२९.
समूचे फेफड़ेमें क्लोमशाखाओंके विस्तारका नक्सा।

क्लोमकान्डिका (infundibula) कहते हैं। क्लोमकान्डिकामें बहुतसे प्रकोष्ठ **होते** हैं जिनसे **वायुकोष** (alveoli) बनते हैं। क्लोमशाखा इन्हींमें हवा भरती है।

फेफड़ा असंख्य वायुकोषोंका बना है। ये वायुकोष जोड़नेवाले तन्तुओंसे बँधे हैं। पूरा फेफड़ा **उरस्याकला** (pleura) से ढका है। वायुकोषोंकी प्राचीरें **महीन** लचीले तन्तुओंकी बनी हैं, उन पर रक्तवाहिनियोंका जालसा बिछा है। हवा **और** खूनकी क्रिया प्रतिक्रिया यहीं होती है।

उरःदरीमें हवा नहीं है और न उसमें वायुमण्डलका चाप ही। पर फेफड़ा हवासे भरा रहता है और उसका वायुमण्डलसे निर्बाध आवागमन है। **उरःपंजरमें**

फेफड़ों पर बाहरी हवाका दबाव नहीं है पर भीतरसे दबाव है इसलिये वह फूटबौलके ब्लैडरकी तरह हवा भरने पर फूल जाता है। जिस तरह फूले ब्लैडरसे फूटबौलका कोठा भर जाता है बहुत कुछ उसी तरह फूले फेफड़ोंसे उरःपंजरका कोठा भर जाता है।
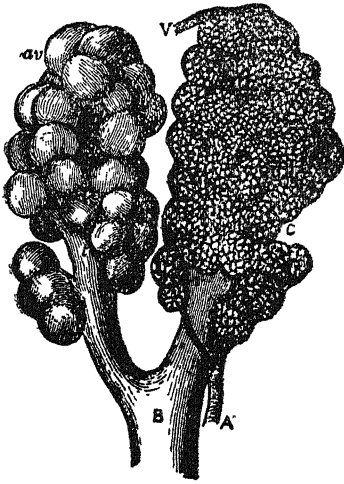
चित्र १३०. फेफड़ेके एक पिंडमें दो क्लोमकांडिकाओंका बाहरी हिस्सा। A-वायुकोषोंपर फैली फुस्फुसाभिगा धमनीकी शाखा प्रशाखायें, B-पिंडकी छोटी क्लोम शाखा, C-केशिकायें, av-वायुकोष, V-क्लोमशाखा शेष।
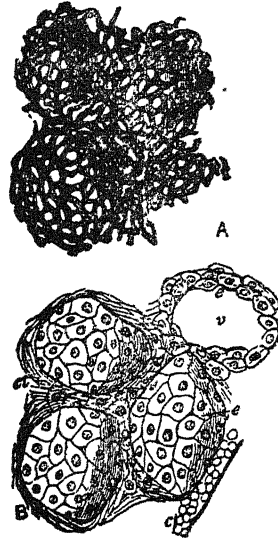
चित्र १३१. फेफड़ेकी केशिकायें और वायुकोष। A-वायुकोषके चारों ओर केशिकाओंका घना समूह, B-चिपटे कोष जिनसे वायुकोष बनता है।

यदि फूटबौल बड़ा हो सके तो ब्लैडर और फूल कर बढ़ी जगह भी घेर सकता है। चमड़ेका फूटबौल बढ़ नहीं सकता। पर फेफड़ोंकी पेटी उरःदरी घट बढ़ सकती है। यह घटना-बढ़ना पसलीकी पेशियों और महाप्राचीराके शिखर करते हैं। इसलिये जब उरःदरी फैलती है तब फेफड़े भी फैलते हैं और उनमें बाहरसे क्लोमकी

राह हवा भरती है। उरःदरीके सिकुड़ने पर दबावसे फेफड़ेकी हवा क्लोमकी राह बाहर निकल वायुमण्डलमें मिल जाती है।

उरःदरीका संकोच और विकाश श्वास क्रियाकी मशीन है। उरःदरी पसलियाँ और महाप्रचीरासे घिरी है। पसलियाँ तिरछे तिरछे जुड़ी हैं जिससे उनका पिंजरा तिरछा है। जब पसलियाँ धक्के से ऊपर उठकर कम तिरछीं होती हैं तब छाती चोड़ी हो जाती है। महाप्राचीरा सीधा पर्दा नहीं है। उसमें गुम्बज (शिखर) है। गुम्बज उरःदरीमें है इससे उसकी जगह घिरती है। यह पर्दा जब सिकुड़ता है तब गुम्बज दब जाता है और सारीकी सारी महाप्राचीरा नीचे दब जाती है। इससे उरःदरीमें दबाव अधिक हो जाता है। इस मिले जुले कामसे **साँस लेनेकी**

चित्र १३२. अदमीकी उरःदरी। पसलियोंका पिंजरा दबावसे फैलता है इससे दरी फैलती है और सिकुड़नेपर दरी सिकुड़ती है।
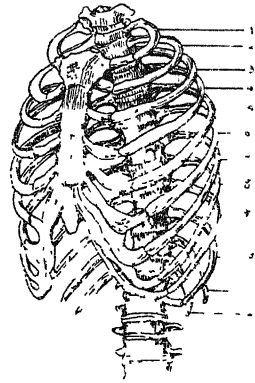
क्रिया पूरी होती है। इसके बदले जब पसलिया अपनी पहली हालतमें हो जाती हैं और महाप्राचीरा ढीली पड़ती है तब फेफड़ोंको जगह कम मिलती है। इससे फेफड़ोंको सिकुड़ कर कम जगहमें होना पड़ता है। जब यह होता है तब **साँस छोड़नेकी क्रिया** (प्रश्वास) होती है।

जीवनमें यह क्रिया अपने आप और निरन्तर होती रहती है। इस क्रियाका नियन्त्रण नाड़ियाँ करती हैं जिनका केन्द्र शुषुम्ना शीर्षमें है। इस केन्द्रको श्वासकेन्द्र कहते हैं। चुपचाप खड़े रहनेकी हालतमें गाय प्रति मिनट १२ से १६ साँस लेती है। मेहनतके समय साँस जल्दी चलती है क्योंकि, तन्तुओंको अधिक ऑक्सीजनकी जरूरत होती है, और इसके लिये हृदय तथा फेफड़ोंको जादे काम करना पड़ता है।

उल्टी साँसमें अशुद्ध वायु बाहर निकलती है। हवा फेफड़ोंमें घुस उसे ऑक्सीजन देती और कारबन-डाइऑक्साइड ले लेती है। इससे उल्टी साँसमें शुद्ध हवासे अधिक कारबन-डाइऑक्साइड होता है। यदि वही हवा बार बार साँसमें जाय तो उसकी ऑक्सीजन चुक जायगी और वह प्राण-पोषणके लायक नहीं रहेगी। आग जलने पर भी यही घटना घटती है। यानी हवाकी ऑक्सीजन खपती है।

उल्टी साँसके समय* फेफड़े अपने भीतरकी हवाका बहुत बड़ा हिस्सा रख लेते हैं। साधारण तौर पर हर उल्टी साँसमें १० सैकड़ा हवाका उलट फेर होता है। हर साँसमें इस आने जानेवाली वायुको वेलावायु (tidal air) कहते हैं। मझोले कदके घोड़े या बैलको विश्रामकालमें ७ पाइन्ट हवा उल्टी साँसमें निकलती है। घंटे भरमें घोड़ा या बैल ८० से ९० घनफूट हवा साँसमें ले लेगा। इस एक घंटेमें
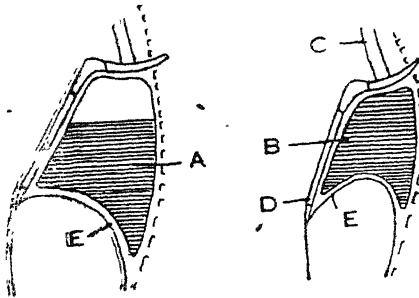
१३३. छाती और पेटकी दीवारका नक्सा। इसमें साँस लेने और छोड़नेसे हुआ परिवर्तन दिखाया गया है।

A-साँस लेना, B-साँस छोड़ना, C-क्लोम, D-उरःफलक, E-महाप्राचीरा।

औसत पशु वेलावायुकी ३॥ घनफूट ऑक्सीजन पी जायगा और लगभग ३ घनफूट कारबन-डाइऑक्साइड पैदा करेगा।

यह कहा जा चुका है कि यदि वही हवा बारबार साँसमें ली जाय तो उसकी ऑक्सीजन चुक जायगी और वह प्राणपोषणके योग्य नहीं रहेगी। साधारण तौर पर कारबन-डाइऑक्साइडका कुछ प्रतिशत परिमाण स्थिर किया जा सकता है। इससे फाजिल कारबन-डाइऑक्साइड साँस लेनेके लायक नहीं मानी जा सकती। साधारण तौर पर हवामें '०२ सैकड़ा कारबन-डाइऑक्साइड होता है। सीधी साँसमें प्रतिशत इतना ही है। पर उल्टी साँसमें यह ४'३८ प्रतिशत होता है।

स्वास्थ्य ठीक बना रहे इसके लिये हवाके आने जानेका प्रबन्ध ऐसा रहे कि वायुमंडलमें कारबन-डाइऑक्साइड ·०५ सैकड़ासे जादे न हो। इस बातकी दिलजमईके लिये प्रत्येक बैलको १५,००० घनफूट हवा मिलनी चाहिये। यदि यह माना जाय कि हवाके आने जानेके ठीक इन्तजामसे कमरेकी हवामें प्रति घंटा १० परिवर्तन होंगे तो थान पर प्रत्येक घोड़े या बैलको १,५०० घनफूट जगह देनी चाहिये। यदि जगह कम दी गयी है तो हवाका और अधिक परिवर्तन होना चाहिये। पर प्रति घंटा १० वायु परिवर्तन स्वास्थ्यके लिये लाभकारी नहीं है। इससे हवामें जादेसे जादे जितनी कारबन-डाइऑक्साइड रहनी चाहिये उसके लिये बहुत अधिक शुष्कता हो जायगी।

साँसकी राह श्लैष्मिककलासे मढ़ी है। कलामें प्रदाह होने पर बहुत कफ निकलता है और सूजन भी हो जाती है। **जुकाम, सर्दी** भी एक तरहका प्रदाह है। यह छूतका रोग है और जीवाणुमूलक है। हानिकर जीवाणु शायद नाकके एक न एक भागमें सदा रहते हैं। अनुकूल कारण होने पर जीवाणु अपनी शैतानी शुरू कर देते हैं। यदि जीवाणु छिटफुट और कम संख्यामें हों तो साधारण तौर पर इनके आक्रमणसे बचाव रहता है। सर्दीके प्रदाहसे नाकका नासूर हो सकता है। नाकके पानीकी छूत ठट्ठके दूसरे पशुओंको लग सकती है। सर्दीसे इन्फिल्लूएंजा बुखार हो जाता है। शुरूकी हालतमें जरासी सावधानीसे रोग भयकर नही हो पाता। छूतका स्थान नाक है। इसे जीवाणु नाशक दवा लगाकर छूतसे बचाना चाहिये। जैसे तेलमें घुले अजवाइनके सत्त (thymol)से। कठिन रोगोंमें छूत गहरे श्वास तन्त्र तक जाती है जिससे ब्रांकइटिस (bronchitis) हो जाती है या इससे भी जादे फेफड़ोंमें निमोनियाँके जीवाणुओंके द्वारा **निमोनियाँ** भी हो सकता है। यह भयंकर कठिन रोग है। यह रोग अपना भुगतान भुगता कर मिट सकता है या पशुका प्राण भी ले सकता है। निमोनियाँका एक आक्रमण फेफड़ोंको निमोनियाँके नये आक्रमण या फेफड़ोंको अन्य रोगोंके लिये ग्रहणशील बना देता है। श्वासकी इन्द्रियोंकी निरोधक शक्ति ही वास्तवमें अनेक श्वासतंत्रके रोगोंको दूर रखती है।

हवाकी धूल जलन पैदा करती है। इससे सर्दी हो सकती है और इसके बाद अनेक कठिन रोगोंका सिलसिला लग सकता है।

१२७६. पाक संस्थान

पाकतन्त्र मुँहसे शुरू होकर गुदामें समाप्त होता है। आहार मुँह ग्रहण करता है। जिस पशुको जैसे आहारकी जरूरत है उसका मुँह उसी अनुसार बनाया गया है। गाय शाकाहारी प्राणियोंमें है। शाकभुकोंके मुँहकी कई विशेषतायें हैं। ये विशेषतायें कौर लेने और निगलनेके पहलेकी क्रियाओंकी हैं। इन्हीं विशेषताओंसे शाकभुकों और मांसभुकोंका भेद मालूम होता है। ये विशेषतायें पचनेकी सभी अवस्थाओंमें भी देखी जा सकती हैं।
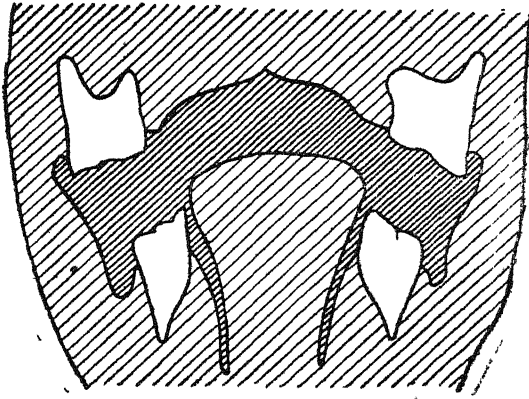
चित्र १३४.
बैलके ऊपरी और निचले जबड़ेकी चौड़ाई दिखानेवाला नक्सा।

पाचन तंत्रके इतने भाग किये जा सकते है :- मुँह, अन्नवह या अन्ननलिका, आमाशय, अँतड़ियाँ, और पूरक पिंड जैसे लाला ग्रन्थि, यकृत और अग्न्याशय।

ओठ, जीभ और दाँत आहार ग्रहण करने और चबानेकी इन्द्रियाँ हैं। घोड़ेके ओठ मोटे चलनसार हैं और उनमें चेतनता बहुत घनी है। पर गायके ओठ मोटे और अचल हैं। घोड़ेकी जीभ चिकनी है और चोटी पर चौड़ी। वह शायद ही कभी बाहर निकलती है, पर गायकी जीभ गावदुम होती है और चलनसार है। यह आसानीसे बाहर निकलती है। गायकी जीभ खुरखुरी और मजबूत है। गावदुम आकार, बाहर निकलनेकी शक्ति, चलनसार होना और खुरखुरेपनके कारण

गाय घासको अधिक अच्छी तरह पकड़ सकती है। खुरखुरेपनके कारण जीभ चरनेके समय किसी तरहकी चोटसे बच सकती है। गायके मुँहमें **अनुजिह्वा** (papillae) होती है। इसकी ढाल भीतरकी ओर है। मुँहसे आहार सरक कर न गिरे इसे यह रोकती है। गायके नीचेके जबड़ेके कर्तनक दाँत विरल जड़े होते हैं और मसूड़ेमें तिरछे लगते हैं। इससे मसूड़ोंमें चोट नहीं लगती। मुँहके अस्थि-प्रकरणमें बताया जा चुका है कि, गायके ऊपरी जबड़ेमें अगले दाँत नहीं होते। जहाँ दाँत होते वहाँ सिर्फ कड़ा फलक होता है। घोड़ेके ऊपरी और निचले दोनों जबड़ोंमें कर्तनक होते हैं। चरनेमें इन्हींसे घास कुतरी जाती है। घोड़ा गायसे जादा जमीनमें सटाकर घास कुतरता है। इसीलिये जिस गोचरमें घोड़ा चर लेता है
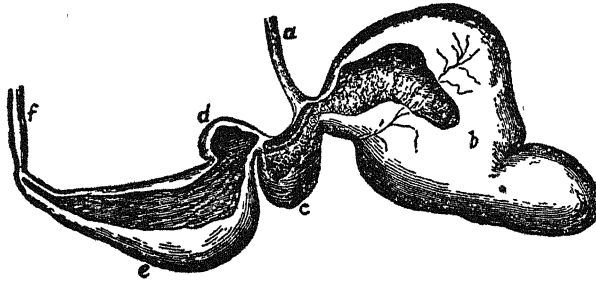
चित्र १३५. पागुर करनेवाले पशुके आमाशयका नक्सा।
a-अन्नवह, b-रोमन्थाशय, c-जालाशय, अन्नवहके खाँचेके साथ, d-पूर्वाशय, e-पश्चात्‌आशय।

उसमें गायके लिये कम ही बचता है। उसी तरह भेड़ और बकरियाँ अपने पतले ओठके कारण जमीनसे और जादा सटाकर घास चर सकती हैं। इसलिये भेड़ बकरीकी चरी घास घोड़ेके लिये कम ही बचती है और गायके लिये तो और भी कम।

शाकभुकोंमें ऊपरी और निचला जबड़ा केवल ऊपर नीचे ही नहीं चलता। ऊपरी अचल जबड़ेमें निचले जबड़ेकी जटिल सन्धिके कारण चबानेके समय जबड़े ऊपर नीचे ही नहीं हो सकते, अगल बगल और कुछ हद तक आगे पीछे भी हो सकते हैं। यह मुक्त क्रिया या गति घोड़ेसे जादे गायमें प्रगट है।

शाकभुकोंका निचला जबड़ा ऊपरीकी अपेक्षा संकुचित होता है जिससे ऊपर नीचेके एक तरफके चर्वणक जब मिलें तो दूसरी तरफके न मिल सकें। इसलिये चबानेका काम एक ही गालमें चाहे दाहिने या बायेंमें हो सकता है। चबानेके समय दाँतोंकी अगल बगलकी गतिके कारण निचले चर्वणक दाँतका भीतरी भाग और ऊपरीका बाहरी भाग अधिक घिसता है और उनका तल ढलुआँ हो जाता है।

लाला ग्रन्थि : मुँहमें तीन जोड़ी लाला ग्रन्थिसे श्राव होता है। इन्हें कर्णमूलिक (parotid), हन्वधरीय (submaxillary) और जिह्वाधरीय (sublingual) कहते हैं।

अन्नवह प्राचीर पेशीमय है, इसमें चोइयोंकी तरह का अस्तर है। घोड़ेके अन्नवहका छेद पाकाशयमें घुसनेके पहले अपेक्षाकृत छोटा हो जाता है। लेकिन गायकी अन्नवहका छेद घोड़ेकी अपेक्षा अधिक चौडा और फैलनेवाला है।

पाकाशय वास्तवमें अन्नवहका विस्तार है। गायके अन्नवहमें चार विस्तार हैं। इन्हें चार आमाशय कहा जाता है। पर असली मानेमें चौथा ही आमाशय है। यह चार आमाशय **रोमन्थाशय, जालाशय, पूर्वाशय** और पश्चात्आशय है। यह चौथा ही असली आमाशय है।

रोमन्थाशय बड़ा थैलासा है। इसमें गायके आकारके अनुसार ३० से ५० गैलन तक अँट सकता है। इसकी दीवालमें बड़ी पेशीकी पट्टियाँ हैं जिससे वह सिकुड़ कर भीतरकी चीजोंको ठेलती है। रोमन्थाशय देहकी बायीं तरफ है और पेटका सारा बायाँ भाग छेके रहता है और कुछ हद तक दाहिनी तरफ भी फैला रहता है। यह बड़ा थैलासा है। इसके दो भाग हैं, एक ऊपरी थैला और दूसरा निचला। हरेकके छोर पर एक अंधा थैला होता है। थैलेमें श्लैष्मिककलाका अस्तर रहता है और ऊपर धारीदार चोइयाँ। रोमन्थाशयका आरम्भ अन्नवहसे और अन्त जालाशयमें होता है।

१२७७. रोमन्थाशय

रोमन्थाशयमें आया आहार उसमें तब तक रहता और मथा जाता है जब तक गाय सुबीतेके अनुसार पागुर नहीं करे। पागुर करनेमें आहार थोड़ा थोड़ा करके रोमन्थाशयसे मुँहमें आता है तब वह अच्छी तरह चबता है। गाय सरीखे रोमन्थकारी पशु आहारको पहले निगल जाते हैं। निगलनेके पहले उसमें इतना

थूक मिला देते हैं कि निगलनेमें सुबीता हो। जल्दी जल्दी निगलकर गाय अपना भोजन तुरत कर लेती है। इसके बाद आरामसे थोड़ा थोड़ा करके पागुर करती और उसे फिर रोमन्थाशय या जालाशयमें भेजती है। रोमन्थाशयसे अन्ननलिकामें जाते जाते आहार पूरी तरह चबा लिया जाता है। एक कौर चबानेमें ½ से १¾ मिनट तक लगता है। इतने समयमें गाय ३० से ४० बार चबा लेती है। इसके बाद जीभ आहारको समेट उसका गोला बनाती है और उसे निगल जाती है। गायको रोमन्थाशय होता है और वह पहले निगले आहारका पीछे पागुर कर सकती है
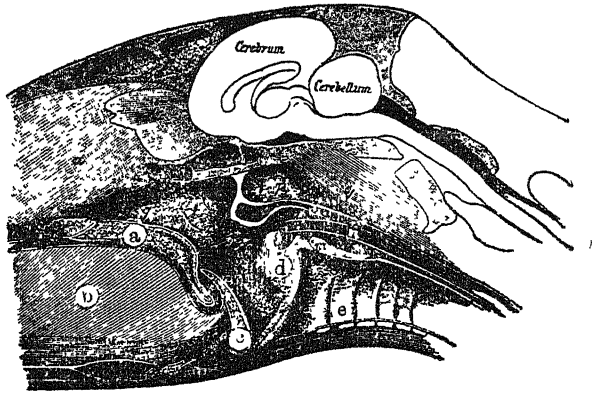
चित्र १२६. घोड़ेके सिरका एक अंश।
a-लम्बा कोमल तालु, b-जीभ, c-अधिजिह्विका, e-क्लोम।

इसलिये गाय घोड़ेसे ३ गुना जल्दी खा सकती है। घोड़ेको निगलनेके पहले पूरी तरह चबाना होता है। पागुरवाले पशुओंकी अन्ननलिकामें एक तरहका खाँचा होता है जो विभिन्न आशयोंमें खुलता है।

यह देखनेकी बात है कि, खानेके बाद जब पशुको आराम और शान्ति मिलती तभी वह पागुर करता है। रोग या तकलीफमें लार या लाला स्राव और पागुरकी क्रिया रुक जाती है। ऐसी हालतमें आहार सूखा रहता है। इससे प्रदाह हो सकता है।

इसलिये यदि बीमारीकी हालतमें पशुका मुँह थूक चलनेसे भीगा मालूम पड़े और वह पागुर करना शुरू कर दे तो इससे यह समझना चाहिये कि, इस समय उसे आराम है और रोगकी बेचैनी खतम हो गयी है।

दिनके २४ घंटोंमें गाय ७ घंटे पागुर करनेमें लगाती है। पागुर करनेके लिये गाय एक बारमें ३½ आउन्सका (१०० ग्रामका) कौरका गोला पेटसे मुँहमें लाती है। इसे चबाकर फिर निगलनेमें ½ से १¼ मिनट लगता है। फिर भी साधारण तौर पर १ मिनटसे कम समयमें ही यह काम गाय कर लेती है। खायी चीज रोमन्थाशयसे फिर मुँहमें लानेमें गायकी एक विशेषता है। वह रोमन्थके लिये मुँहमें कौरका गोला ले आ सकती है पर रोमन्थाशय जादे भर जाय और तकलीफ दे तो कै करके उसे खाली नही कर सकती। कहा जाता है कि, गायके दिमागमें कै का केन्द्र विकसित नहीं है।

रोमन्थाशयमें आहारका मथन होते समय उसमें कोई पाचक स्राव नही होता; आहारमें केवल मुँहका क्षारीय थूक ही मिला रहता है।

सूखा आहार खाने पर गाय दिन भरके २४ घंटोंमें १० गैलन थूकका स्राव कर सकती है। रोमन्थकारियोंमें थूकका स्राव सचमुच बहुत जादे है।

स्टार्च (श्वेतसार) युक्त भोजन करनेवाली मानव जातिके थूकमें "टाइलिन" (ptylin) होती है। मुँहमें आहारका संपर्क होते ही इसकी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। पर गायके थूकमें शायद ही टाइलिन पाचक हो।

रोमन्थकारियोंमें प्रकृतिने रोमन्थका विधान किया है, इस बारेमें एक सिद्धान्त है। वह यह कि रोमन्थकारियोंको प्राकृतिक अवस्थामें चरनेके समय अपनेसे बड़े मांसभुकोंका डर सदा रहता है। इसलिये उनमें रोमन्थाशयका विकाश हुआ। इसमें वह जल्दी जल्दी आहार भर कर अपेक्षाकृत शान्त और निरापद स्थानमें जा आरामसे पागुर करते और पाचन क्रिया शुरू करते हैं। पर यह केवल सिद्धान्त ही है। अबतकके ज्ञात शास्त्रीय ज्ञानसे इसकी पुष्टि नहीं होती। रोमन्थाशय जरूरी चीज है। पागुरवाले पशु पालतू हालतमें खानेके समय आरामसे पागुर कर सकते हैं। पर वह ऐसा नहीं करते। वह तो पहले निगल कर रोमन्थाशय भरते और बादमें पागुर करते हैं। यद्यपि रोमन्थाशयमें कोई पाचक रस नहीं है फिर भी लाखों जीवाणु तो हैं ही जिनकी प्रतिक्रिया आहार पर होती है। जीवाणुदल आहारके सेल्यूलोज पर प्रहार कर उसे विभिन्न जैविक या सेन्द्रिय अम्लोंमें तोड़

देते हैं। खासकर एसिटिक और बियूटायरिक स्नेहाम्लोंमें। इनका मेल थूकके क्षारसे होता है। इस संयोगसे उपजात नमकको अँतड़ियाँ शक्तिके लिये सोख लेती हैं। यह अंदाज किया जाता है कि, आहारका ६० सैकड़ा सेल्यूलोज रोमन्थाशयमें विश्लिष्ट (टटता) होता है। सेल्यूलोजके टूटने पर कोषकी वस्तु मुक्त हो जाती है और उनका संयोग पाचक प्रणालीके विभिन्न भागोंमें पाचक रसोंसे होता है।

रोमन्थाशयमें सेल्यूलोजके अलावे स्टार्च और चीनी भी टूटनेके लिये फफदती है। नाइट्रोजनवाले पदार्थोंको भी जीवाणु तोड डालते हैं और उनसे अपने लिये जीववस्तुके (protoplasm) लिये प्रोटीन तैयार करते हैं। जब घुलनशील नाइट्रोजन पूरी मात्रामें मिलती है तब जीवाणु वृद्धि और उनका कार्यकलाप बढ़ जाता है। तब निर्धारित कालमें और जादे सेल्यूलोज टूटता है।

खानेके आध घंटे बाद पागुर शुरू होता है और शायद तब तक जारी रहता है जब तक मोटा आहार फिरसे चब न जाय और पशुकी शान्तिमें बाधा न पड़े। बैलों और खासकर भारवाही और हल के बैलोंके पालनमें यह बात ध्यान देनेको है। खिलानेके बाद कमसे कम दो घटेका आराम उन्हें देना चाहिये। छेड़छाड़ करनेसे पागुरमें बाधा पड़ती है। इससे पेटकी गड़बड़ी, दुष्पोषण और रोग होते हैं।

जन्मके समय बछरूके आशयोंके कोठे विकशित नहीं होते। बछरूका स्वाभाविक आहार दूध है। दूध, बछरूके अविकशित पहले दोनों आशयोंके सामनेसे निकल सीधा तीसरे या चौथेमें चला जाता है। रोमन्थाशयका काम रूखा चारा पचाना ही है। इसलिये बछरूके पिये दूधका रोमन्थाशयसे आगे बढ़ जाना जरूरी है। बछरूके अन्नवहमें रोमन्थाशयका ढकना कस कर बन्द रहता है। वह इसलिये कि, दूध रोमन्थाशय या जालाशयमें न जा सीधा तीसरे या चौथे आशयमें चला जाय। बछरूकी उमर बढ़ने पर दूसरे या तीसरे महीनेमें अन्नवहका ढक्कन ढीला पड़ता है, कसकर बन्द नहीं हो सकता कि, दूधको रोमन्थाशयके सामनेसे निकल जाने दे।

पहले ऐसा माना जाता था कि, पिसा आहार (पुष्टिकर) और पानी सीधा तीसरे चौथे पेटमें जाता है। पर अब इसका खंडन हो गया है। यह देखा गया है कि, पानी और पिसा हुआ पुष्टिकर आहार रोमन्थाशय और जालाशयमें जाता है।

इसलिये यदि खानेके समय अन्नके दाने बिना चबे रह जाते हैं तो वह पागुर लिये तभी आते हैं जब रूखे चारेके बीच पड़ गये हों। ऐसे दाने पूरी पाचन-प्रणालीसे बिन टूटे निकल जा सकते हैं। इसलिये यदि अन्नको पीस दिया जाय और रूखे चारेके साथ खिलाया जाय तो पुष्टिकर चारेकी काफी बचत होती है।

जब कोई मोटी घास रोमन्थाशयमें पहुँचती है तो वह अपने हलकेपनके कारण आशयके तरल पदार्थमें पहले नहीं डूबती। पेशियोंके संकोचसे वह सब रोमन्थाशयके पिछले भागमें ठेल दी जाती है। इस बीच वह धीरे धीरे तरल पदार्थको सोखती है और अन्तमें डूबकर दूसरी चीजोंसे मिल जाती है।

रोमन्थाशयके निचले भागमें अधिक भारी आहार पिंडोंमें गति आगेकी ओर जहाँ रोमन्थाशयका मुह जालाशयमें खुलता है होती है। इन दोनों आशयोंकी क्रमिक गतिसे आहार पूरी तरह मिल जाते और मुलायम हो जाते हैं।

१२७८. जालाशय

बैल जैसे रोमन्थकोंके दूसरे आशयका नाम **जालाशय** है यह पहले आशयके सामने और उसके पिंडके कुछ नीचेकी तरफ होता है। पहले आशयकी ओर इसका प्रवेश द्वार चौड़ा होता है और तीसरे आशयकी ओर कुछ छोटा। इसके श्लैष्मिककलाके अस्तरमें छोटे खीसे या कोष होते हैं। इनमेंसे कुछ चौकोर और कुछ तिकोने होते हैं। इनमें कुछके भीतर छोटे छोटे कोष हैं। जालाशयमें तरल पदार्थ होना जरूरी है। इसे तरल पदार्थोंका खजाना मान सकते हैं। इसमेंसे जरूरत पड़ने पर अन्य आशयोंमें तरल पदार्थ जाते हैं। ऊँटके जालाशयमें ही पानीके थैले या कोष होते हैं जिनमें वह भविष्यके लिये पानी भर लेता है।

१२७९. पूर्वाशय

रोमन्थकोंका तीसरा आशय **पूर्वाशय** है। यह पेटकी दाहिनी तरफ चौथे आशयसे कुछ ऊँचे पर होता है। इसका सरोकार दोनोंसे है। इसे बहुपत्रक भी कहते हैं। पूर्वाशयमें पत्तोंकी तरह उभार होते हैं, जो रेतीकी तरह खुरखुरे होते हैं। हर पत्तेके मध्य पेशियोंकी एक पट्टी होती है। इसके कारण जब पत्ती सिकुड़ती है तब रेती चलनेसी क्रिया होती है। हर पत्ती अपने दोनों तरफकी पत्तीसे रगड़-

खाती है। इस क्रियासे सारा आहार पिस जाता है और चौथे आशयमें जो बादकी क्रिया होगी उसके लिये तैयार होता है।

१२८०. पश्चात्आशय

पूर्वाशयमें पिस आनेके बाद आहार चौथे या **पश्चात्आशय** आता है। पूर्वाशयसे आनेके बाद यह कुछ देर तक क्षारीय रहता है। यहाँ जीवाणु चीनीको तोड़ कर दुग्धाम्ल बना देते हैं। दूसरे क्रियाशील रस स्टार्चका चीनी बना लेते हैं। पर और किसी क्रियाके होनेके पहले इस आशयमें जोर से मंथन होने लगता है। इसका फल यह होता है कि, पाचक रस आहारमें पूरी तरह मिल जाते हैं और उसे तोड़ देते हैं। बैलका आशय मुख्य रूपसे आहारको तैयार करनेका काम करता है। जैसे उसे गरम करना, उसमें पाचक रस मिलाना, नरम करना और इसके बाद सबको एक रूप कर देना। फिर भी इस एक रूप पिंडमें खाये हुए विभिन्न आहारोंके कण देखे जा सकते हैं।

आशयमें पाचक रसके इस काम को दो कालमें बाँट सकते है। (क) एमीलो-लीटिक काल और (ख) प्रोटियोलीटिक काल। एमीलोलीटिक काल अर्थात् स्टार्च टूटनेका काल पूरा होनेके पहले की प्रोटियोलीटिक अर्थात् प्रोटीन टूटनेका काम पेउपसीन नामक क्रियाशील रसके द्वारा शुरू हो जाता हैं।

पेटमें दूधकी केसीन पहले थक्काके रूपमें जमती है इसके बाद बदल कर पेप्टोन (peptone) हो जाती है। थक्का होना (coagulation) पाचक रसके रेनिन (renin) नामक किण्वके कारण होता है।

रेनेट एक पदार्थ है जिसमें रेनिन होती है। यह केसीनोजेनको (caseinogen) बदल कर एक नयी कड़ी और थक्कादार चीज केसीन बनाता है। पनीर बनानेमें इस चीजसे कड़ा दही जमाया जाता है। बछड़ेके पेटसे निकाले रेनेटसे पनीरके लिये दूध जमाया जाता है। सयाने पशु जिन्हें दूध या उसके उपजात नहीं खिलाये जाते उनके पाचक रसमें रेनेट हो भी सकता है और नहीं भी। पेटमें आहारके पहुँचते ही केवल पाचक रस और क्रियाशील रसका ही श्राव नही होता इसके साथ ही मर्दन क्रिया भी होती है। आशयकी प्राचीरके बिचले भागसे संकोच शुरू होता है। इस संकोचकी लहर एक के बाद दूसरी पिछले ओर तक जाती है। पहले तो आशयका बहिर्द्वार जिसे मुद्राद्वार (pylorus) कहते हैं, संकोचकी इस

लहरके पहुँचने पर नहीं खुलता। इसलिये लहर टकरा कर पेटके पहले भागकी ओर लौट जाती है। इससे पेटकी सब चीजें पूरी तरह मिल जाती हैं। पर जब पाचक और क्रियाशीलकी प्रतिक्रिया काफी बढ़ जाती है तब यह सकोच लहरी जितनी बार **मुद्राद्वार** पर आती है इसमेंसे थोड़ासा अर्ध तरल पदार्थ बाहर निकल आता है। यह पेशियोंके ढीली होनेसे होता है। अँतड़ीमें कुछ अश आ जाने पर मुद्राद्वार बन्द हो जाता है। यह किया फिर फिर होती है और अधिक देर तक आमाशयमें रहने पर जैसे जैसे उसमें हाइड्राक्लोरिक अम्ल और पाचक अम्लके श्रावसे अधिक अम्लता बढ़ती है यह क्रिया जोरदार होती जाती है। दो आहारके बीच आमाशय कभी पूरी तरह खाली नहीं होता। हाइड्रोक्लोरिक अम्लको जीवाणुनाशक और कोथघ्न (ऐन्टिसेप्टिक) प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष है। कुछ जीवाणु इस अम्लमे मरते नही फिर भी उनकी वृद्धि रुक जाती है। पर ये आँतोंमें चले जाते हैं और फिरसे क्रियाशील हो जाते हैं।

१२८१. अँतड़ियाँ

आमाशयके बादका महाश्रोतका (alimentary canal) भाग अन्त्र या आँत कहा जाता है। आँतोंमें ही अधिकांश आहारका पाचनक्रिया और आचूषण होता है। अन्त्रोके दो भाग हैं :- एक वृहत अंत्र और दूसरा **क्षुद्र अन्त्र**। वृहत और क्षुद्र अन्त्रके बीच एक भाग है जिसे **उण्डुक** (Cæcum) कहते हैं। छोटी और बड़ी आँतके जोड़ पर यह लगा हुआ है। घोड़ेका यह बहुत बड़ा होता है और वही काम करता है जो बैलमें रोमन्थाशय करता है। बैलका उण्डुक इससे कहीं छोटा होता है।

बैलकी छोटी आँत १३० फूट लम्बी है और उण्डुक २½ फूट। इसके बाद बड़ी आँत है जो लगभग ३५ फूट है। घड़ीकी कमानी की तरह बड़ी आँत सजायी रहती है। यह पेटके दाहिनी ओर रीढ़ और उदर तलके बीच होती है। आखिरी कुंडली कटिदेश तक पहुँच सीधी नली हो जाती है। यही **गुद नलिका** (rectum) है।

आँतोंकी दीवारमें तीन स्तर होते हैं। बाहिरी स्तर **उदर्यावृति** (peritoneum) कहा जाता है। बिचला स्तर पेशियोंका है, यह **पेशीवृत**

(muscular coat) है। भीतरी स्तर श्लैष्मिककलाका है। तीनों स्तरोंकी सबसे अधिक मुटाई आध इंचके लगभग है।

बाहरी उदर्यावृत्ति **मुद्राद्वार से गुदा** तक लगातार है। इससे श्राव होते हैं जिससे यह तर रहती है और दूसरी इन्द्रियोंसे कम रगड़ खाती है।

पेशीवृतिसे आँतोंमें संकोच और प्रसार होता है। इस क्रियाके द्वारा आहार टूटता, मिलता और आगे ठिलता है। आहार सामिग्रीको निचोड़ निचोड कर आगे
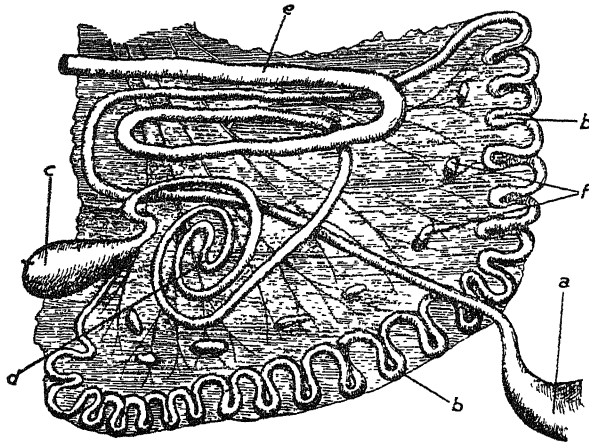
चित्र १३७. गायकी आँतका नक्सा।
a-चौथे आशयका छोर ग्रहणीमें मिलता है, b-छोटी आँतकी कुन्डली, c-उन्डुक, d-बड़ी आँतका चक्कर, e-गुद नलिका, f-लसीका ग्रन्थि।

ठेलनेकी क्रियाका **क्रिमिगमन** (peristalsis) कहते हैं। आँतोंकी दीवालकी पेशियाँ यह क्रिया करतीं हैं।

तीसरे स्तर श्लैष्मिककलाका हो संपर्क आहार सामग्रियोंसे होता है। इस स्तर पर विभिन्न रक्त प्रणालियाँ फैली रहतीं हैं जिनसे पाचन क्रियाके लिये आवश्यक रक्त मिलता रहना है। छोटी आँतमें इस कला पर **अंकुरिका** (Villi) नामके केश जैसे महीन उभार होते हैं। इनमें केशिकाओंका जालसा बिछा रहता है जो

आचूषणका काम करते हैं। इन अंकुरकाओंके बीच आँतोंकी अनेक ग्रन्थियाँ होती हैं जिनसे आँतोंका स्राव होता है।

उदर्याकलाको तहोंके कारण आँतें अपनी जगह पर रहतीं हैं। उदर्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे इन्हें उदरकी प्राचीरके किसी भागमें बाँधती है। जिस तहमें छोटी आँतका मुक्त भाग टँगा रहता है उसे **अन्त्र बंधनी** (Mesentery) कहते हैं। इन्हींमें होकर रक्त और लसीका प्रणालीयाँ आँतोंमें घुसती हैं। छोटी आँतमें कलान्त्रत्तिकी ग्रन्थियोंसे स्राव होता है। इस स्रावमें कई क्रियाशील रस होते हैं। जो चीनी या पेप्टोन अभी तक पचनेसे छूट गये हैं वह यहाँ टूट जाते हैं। यहाँ भी क्रियाशील रस चीनीका ग्लूकोज जैसे पदार्थ बनाते हैं कि, उनका रक्तमें आचूषण हो सके।
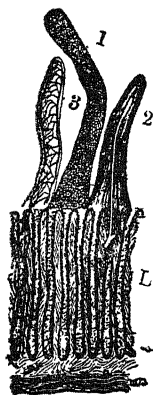
चित्र १३८ छोटी आँतकी श्लैष्मिककला होकर एक अंश। इसमें तीन अकुरिकायें दिखायी गयी हैं।
1-अकुरिका ढाकनेवाला कोष, 2-इसमें लसीका प्रणाली दिखायी गयी है, 3-रक्तकेशिकाओंका जाल, L-नलीके आकारको ग्रन्थियाँ जिससे अ त्ररस निकलता है।

आँतोंमें पाचनक्रिया प्रायः पूरी हो जाती है। बड़ी आँतमें पहुँचे इसके पहले ही अधिकांश पोषकका आचूषण इसी छोटी आँतमें हो जाता है।

अकुरियोंकी क्रिया आचूषणमें बहुत सहायक होती है।

बड़ी आँत : बिन पचा और आचूषित नहीं हुआ पदार्थ बड़ी आँतमें चला जाता है। यहाँ पाचन क्रिया कुछ ही होती है। पचे पोषकोंका पूरा आचूषण बड़ी आँतमें हो जाता है।

आमाशय और छोटी आँतके पाचक रसके अम्लसे अधिकांश जीवाणु मर जाते हैं।

बड़ी आंतमें जो सामिग्री आती है उसे वहाँ देर तक रुकना होता है। जो जीवाणु अभी तक बचे रहते हैं उनकी वृद्धि जोरोंसे यहाँ होने लगती है। खासकर निर्वायु जीवोंकी। यदि आहारमें जीवाणु नही हुए तो बड़ी आँतके जीवाणु इस नये आहार पर अधिकार कर लेते और अपनी संख्या बढ़ाते हैं। साधारण तौरपर यह जीवाणुक्रिया हानिकारी नही है। पर यदि मल अधिक देर तक आँतमें रहे जैसे कि, कब्जियतकी हालतमें तो उससे हानिकर पदार्थ बन कर रक्तस्रोतमें मिल जा सकते हैं।

बड़ी आँतमें शेष आहारका पानी निचुड़ जाता है और मलमें साधारण गाढ़ापन आ जाता है। बैलका उण्डुक छोटा होता है और कोई महत्वका काम नही करता। पर घोड़ेका यह बड़ा होता है और बहुत कुछ वही काम करता है जो रोमन्थकोंमें रोमन्थाशय करता है। घोड़ेके उण्डुकमें जो आहार पहुँचता है उस पर क्रियाशील रस और जीवाणु दोनोंकी क्रिया होती है। जिससे आचूषणके योग्य पोषक तैयार होते हैं।

मलद्वारका **गुद** या पायु (anus) कहते हैं। इसका नियंत्रण **गुदाष्ठ** (sphincter an.) करता है। साधारणतः यह सिकुड़ा रहता है। मलत्यागके समय स्थानीय नाड़ी अपना नियत्रण ढीला कर देती है जिससे पायु ढीला पड़ता है और मल निकल जाता है।

आंतमें आमाशयसे आंशिक रूपमें पचा आहार आता है। हम देख चुके हैं कि, रोमन्थाशयमें सेल्युलोज ओर चीनीको जीवाणुक्रिया तोड़कर सरल अम्ल और समास (यौगिक) बना देता है। आमाशयमें अम्ल रस अन्य आहार द्रव्योंको आचोषणीय बना देते हैं। पर स्नेहों पर अब तक कोई प्रतिक्रिया नहीं हो सकी और प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेटका पाचन भी पूरा नहीं हुआ। आँतोंमें पाचनका काम आमाशयसे भी अधिक जोरसे होता है। यहाँ सब तरहके पोषक पदार्थों पर क्रिया होती है। आंतके ऊपरी भागमें जहाँ वह मुद्राद्वारसे शुरू होती है यकृत और अग्न्याशयसे पाचक द्रव आते हैं। पाचक रसका आमाशयको प्राचीरसे ही स्राव होता ह।

जिस समय आहार आँतमें आता है उस समय वह अम्लयुक्त रहता है। पर अग्नेयरस और यकृतका पित्त और आँतोंके श्राव सब ही क्षारीय हैं। इसलिये आँतमें आनेके बाद धीरे धीरे आहारकी अम्लता नष्ट होने लगती है। जो प्रतिक्रिया अम्लसे ही हो सकती है वह कम कम होती है और अंतमें अधिकाधिक क्षार मिलते

रहनेसे बंद हो जाती है। पर पेपसिनको क्रिया किसी तरह जारी ही रहती है और तब रुकती है जब आहारमें काफी क्षार हो जाता है। आँतोंकी दीवालें सिकुड़ती और ढीली पड़ती हैं इससे उनमें खास तरहकी गति मिलानेका काम होता है।

१२८२. अग्न्याशय

अग्न्याशय से अग्नेयरस निकलता है। अग्न्याशय ग्रन्थि है जिसका काम पाचन क्रिया करना है। यह उदरमें वृक्कोंके बराबर जरा आगे और कुछ नीचे है। इसका रंग गुलाबी है। ग्रन्थि लालाग्रन्थिकी तरह है। अग्न्याशयमें नलिका रहती हैं जो आँतोंमें उस जगह घुसी रहती हैं जहाँ यकृतकी पित्त नलिका घुसती है। अग्न्याशय रक्तस्रोतमें सीधे ही सर्व-शरीर-पाचक-रस (इंसुलीन-insuline) डालता है जिसका काम मूत्रमें चीनी निकलनेका नियंत्रण
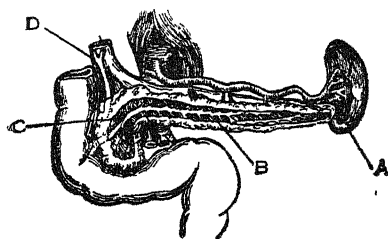
चित्र १३९ आदमीका अग्न्याशय और प्लीहा दिखानेवाला नक्सा।

A-प्लीहा,
B-अग्न्याशय,
C-अग्नेय रस प्रणाली,
D-पित्त प्रणाली।

करना है। अग्न्याशयमें रोग होने पर जब वह काम नहीं कर सकता तो मधुमेह हो जाता है।

अग्न्याशयका सबसे प्रत्यक्ष काम अग्नेयरसका छोटी आँतमें स्राव करना है। पाचकरसमें कई क्रियाशील अंश होते हैं। उनमेंसे एक यद्यपि है क्षारीय पर काम पेपसिनकी तरह करता है। दूसरा स्टार्चको बदलकर चीनी बना देता है। और एक स्नेहको घुलने लायक साबुन बनाता है। इस प्रतिक्रियामें यकृतका पित्त भी हाथ बँटाता है।

१२८३. यकृत

गायके यकृतके नीचेके तलमें पित्तकी एक थैली होती है जिसमें पित्त भरा रहता है। जब ग्रहणी होकर आहार आँतोंमें जाता है तब पित्त ग्रहणीमें आता है।

यकृत ठोस दानेदार इन्द्रिय है, यह महाप्राचीरासे बिलकुल सटा हुआ होता है। गायके यकृतका रंग नील-बैंगनी होता है। यह छूनेमें मुलायम है। देहकी सबसे बड़ी ग्रन्थि यही है। यह कई महत्वके काम करती है। यह पित्त बना कर उसका स्राव करता है। यह रक्तकी घुलने लायक चीनीसे मधुरक बनाता है। यकृतमें मधुरक (ग्लाइकोजेन) ठोस होकर रहता है। जब रक्तको चीनी शक्ति पैदा करनेमें चुक जाती है तब उसकी पूर्ति मधुरकसे होती है। उस समय यह फिर तरल बन जाता है।

रक्त कणिकायें मर्यादित काल तक ही काम कर सकती हैं। इसलिये प्रतिदिन कणिकाओंका कुछ भाग बेकाम हो जाता है। यकृत पुरानी और छीजी कणिकायें जमा करता है। ऐसी बेकाम कणिकाओंसे भरा रक्तस्रोत जब यकृतमें आता है
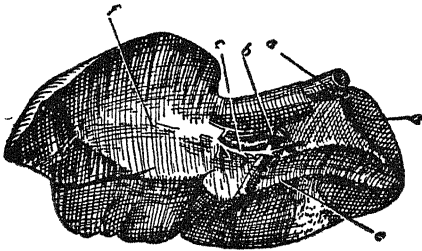
चित्र १४०. घोड़ेका यकृत।
a-महाशिरा,
b-प्रतिहारिणी शिरा,
c-याकृतिधमनी,
d-वृक्ककी छाप,
e-ग्रहणीकी परिखा,
f-आमाशयकी छाप।

तो यह उन कणिकाओंको रक्तके साथ आगे नहीं जाने देता। जमा करके उन्हें तोड़ डालता है।

यकृत बेकाम सामिग्रियोंको भी जमा करता है खासकर यूरिया और यूरिक अम्लको। और उन्हें बाहर निकाल देनेके लिये रक्त स्रोतके द्वारा वृक्कोंमें भेजता है।

पित्त जिस थैलीमें जमा होता है उसे पित्तकोष कहते हैं। पित्त ग्रहणीके पास आहारमें मिलता है। यह पाचन क्रियामें अग्निरसकी सहायता करता है। बैलका यकृत देहकी मध्य रेखासे प्रायः दाहिनी ओर होता है। यह महाप्राचीरासे सटा हुआ है। इसका आकार महाप्राचीराकी नतोदरताके अनुकूल होता है। यह दूसरे और तीसरे आशयोंसे भी लगाव रखता है, इससे इस पर उनकी छाप होती है।

यकृतमें दो स्पष्ट मार्गोंसे रक्त आता है। आमाशयका रक्त प्रतिहारिणी शिरामें आता है। प्रतिहारिणी शिरा हृदयमें सीधी नहीं जाती। यह यकृतमें घुसती है और अनेक केशिकाओंमें बट जाती है। आमाशय और आँतोंमें अनेक हानिकारक पदार्थोंका आचूषण कर प्रतिहारिणी शिरा उन्हें यकृतमें लाती है। यहाँ उन्हें बदल कर हानिरहित कर दिया जाता है और आचूषण न हो सके ऐसा रूप कर दिया जाता है। इस रूपमें वह फिर पित्तमें चला जाता है। आहारके विभिन्न घटक भी यकृतमें जमा रहते हैं और जब जरूरत है तब रक्तश्रोतमें उड़ेल दिये जाते हैं।

यकृतमें रक्त आनेका दूसरा साधन याकृती धमनी है। इस धमनीका रक्त यकृतको पुष्ट करता है।

प्रत्येक मार्गसे यकृतमें रक्त आने पर याकृती शिरामें जमा होता है। यह उसे महाशिरामें खलास करती है। यह कहा जा चुका है कि यकृत रक्तश्रोतकी जरूरतके लिये चीनी जमा रखता है और उसका नियंन्त्रणभी करता है। यकृतको छोड़ रक्तमें चीनी बराबर ०.१ सैकड़ा रहती है।

१२८४. पित्त

यह कहा जा चुका है कि, यकृतका बनाया **पित्त** आहारमें मिलता है कि, वह पाचन क्रियामें सहायक हो। यह हरा-पीला तरल पदार्थ है। इसका स्वाद बहुत कड़ुआ और साधारणतः क्षारीय है। स्नेहके पाचनमें पित्त अत्यन्त महत्वका है। जब पित्तका श्राव साधारण नापसे कम हो जाता है तब स्नेह पचे बिना शरीरसे निकल जाता है।

पित्त आग्नेय और अंत्र रसोंकी क्रियाको उत्तेजित करता है। अंत्रकी दीवालोंके संकोचमें यह सहायता देता है जिससे आहार उसमें हो कर आगे बढ़े। यह आँतोंमें सड़ाँध भी रोकता है। शरीरके हानिकर अनिष्ट पदार्थोंको यकृत पित्तमें डाल देता है। पित्त मलके साथ सबही नहीं निकल जाता। कुछ रक्त अनुधावनमें मिलकर फिर काममें आ जाता है।

१२८५. प्लीहा

प्लीहा रोमन्थाशयके बाहर उसके पास ही होती है। यह प्रणाली विहीन ग्रन्थि है। इसे रक्त खूब प्राप्त होता है। यह इंन्द्रिय नरम, बहुप्रणाली-पूरित और

बेंगके रंगकी है। उदर्याकलाकी सबसे बाहरी तहके बाद एक तन्तुओंकी तह होती है। इसके भीतरसे प्लीहामें डोरीसी लगी रहती है। इस डोरीकी जालीमें प्लीहाका मांस रहता है। यह इन्द्रिय रक्तकी श्वेतकणिका बनानेका काम करती है। यह पुरानी घिसी लाल रक्त कणिकाओंको नष्ट करती है।

कुछ कुछ मिनटों पर प्लीहा बराबर सिकुड़ती और ढीली पड़ती है।

१२८६. विसर्ग संस्थान

वृक्क और मूत्र

मूत्रेन्द्रियोंमें (१) दो **वृक्क** (kidneys), (२) दो **गवीनियाँ** (ureters) और (३) एक **मूत्र प्रसेक** (urethra) होते हैं। दोनों वृक्क उदरदरीमें कटिदेशमें
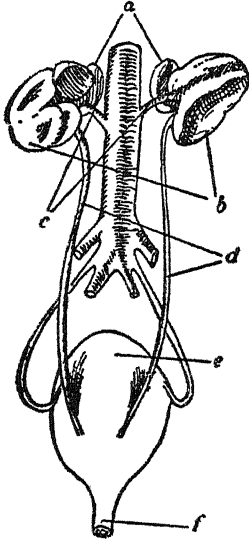
चित्र १४१. घोड़ेकी मूत्रेन्द्रियोंका सम्बन्ध दिखानेवाला नक्सा।

a-आधिवृक्क, b-वृक्क, c-आधिवृक्का धमनी, d-गवीनियाँ, e-वस्ति, f-मूत्रप्रसेकका आदिभाग।

होते हैं। इनमें से दो गवीनियाँ निकल कर वस्ति या मूत्राशयमें (bladder) जाती हैं। वस्ति श्रोणिके द्वार देश पर होती है। मूत्र प्रसेक वस्तिकी गरदनसे निकलता है और मर्दोंके शिश्न तथा औरतोंके प्रजनन द्वार तक जाता है।

वृक्क दोनों उदरदरीकी छतसे लटके मेरुदन्डके दोनों तरफ एक एक होता है। रक्तश्रोतसे अनिष्ट पदार्थ और जल बाहर निकालना इनका काम है। इस बाहर

निकलनेवाले जलका नाम मूत्र है। गवीनियोंकी राह यह वस्तिमें आकर जमा होता है। यहाँसे मूत्रप्रसेक हो कर यह समय समय पर देहके बाहर होता है।

बैलके वृक्कोंमें खंड होते हैं। प्रत्येक वृक्कमें २० से २५ खंड होते हैं। खंड गोल और छोर पर होते हैं। दाहिना वृक्क अन्तिम पसलीके नीचे होता है। बाँया स्थिति बदलता रहता है। साधारण तौर पर यह बायीं ओर होता है। पर जब रोमन्थाशय भरा रहता है तब वह बायें वृक्कको जरा नीचे दाहिनी ओर दाहिने वृक्कके पीछे ठेल देता है।

वृक्कको भीतरी कोर नतोदर है। भीतरी कोरके बीचकी नतोदरताको **वृक्कद्वार** (hilus) कहते हैं। महाधमनीसे निकली धमनियाँ वृक्कमें जाती हैं। लौटनेवाला रक्त अधरा महाशिरामें जाता है। गवीनियाँ सकीर्ण और सफेद रंगकी नलिकायें हैं। इकट्ठा मूत्र रखनेके थैलेको वस्ति कहते हैं। मूत्र भरने पर यह फैल सकता है।
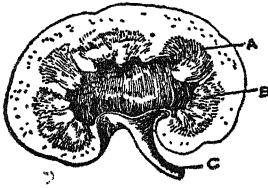
चित्र १४२. आदमीके वृक्कका अंश।
A-कोष,
B-वृक्कालिन्द,
C-गवीनी।

वस्तिसे मूत्र बाहर निकालनेवाली नलीको मूत्रप्रसेक कहते हैं। मूत्रप्रसेकका मुँह प्रसेकोष्ठ पेशीसे बन्द रहता है। मूत्रप्रसेककी राह वस्ति मूत्र खलास करती है।

वृक्कोंमें टीपके आकारका एक खात होता है इसे **वृक्कालिन्द** (pelvis of kidney) कहते हैं। इस खातमें उभार होते हैं जिन्हें **शिखरिका** (pyramids) कहते हैं। शिखरिका-तल महीन छेदोंसे भरा है। यह महीन नलियोंके मुँह हैं। वृक्क वस्तु इन्हींकी बनी है। वृक्कका बाहरी भाग **बहिर्वस्तु** (cortex) और इसके बादका भाग **अंतर्वस्तु** (medulla) कहा जाता है।

वृक्कोंमें सीधे महाधमनीका रक्त बड़े चापसे जाता है। यह रक्त **उत्सिका** (glomeruli) नामक केशिका पुंजोंमें जाता है जो कोषमें घिरा रहता है। यहाँ पानी इन केशिकाओंसे चू चू कर नलियोंमें जाता है। जब पानी नलियोंमें आता है तब रक्तके विषैले अनिष्ट पदार्थ इसमें मिल जाते हैं। यह काम वृक्क कोष (renal-cells) करते हैं।

इस जलश्रोतमें घुलनेलायक ठोस पदार्थ भर जाता है तब वह वृक्कालिन्दमें आता है। इस कोष्ठके निचले छोरसें गवीनी होकर मूत्र वस्तिमें जाता है।

अनेक पशुओंमें मूत्र और पसीना कुछ हद तक अन्योन्याश्रित हैं। शरीरके भीतर गया हुआ अधिकांश विष मूत्रके साथ बाहर निकल जाता है। मूत्रमें कुनाइन, मौर्फीन आदि देखे जा सकते हैं। जीवाणुज रोगोंमें जीवाणुके पैदा किये हुए विष भी वृक्क बाहर कर देते हैं।

गायकी पेशावका आपेक्षिक गुरुत्व १००६ और १०३० के बीच है। इनका औसत १०२० है। शाकभुकोंका मूत साधारण तौर पर क्षारीय रहता है और मांसभुकोंका कुछ अम्लीय।

२४ घंटेमें मूत्रकी मात्रा पशुके आकार नस्ल और उसके आहार तथा पिये पानीकी मात्रापर निर्भर है। साधारण तौर पर बैलको १० से ४० पाइन्ट मूत निकलता है, औसत २२ पाइन्ट होता है।

गायकी पेशाब पीली और उत्कट गंधवाली होती है। पशुकी बीमारीमें अनेक असाधारण पदार्थ कभी कभी मूत्रके साथ निकल आते हैं जैसे चीनी, रक्त, पीब आदि।

वृक्क रक्तकी रासायनिक छननेका काम करता है। वह रक्तसे अतिरिक्त जल और यूरिया भी अलग कर देता है। देहका सभी रक्त वृक्कमें शुद्ध नहीं होता। फेफड़ेमें शुद्ध होनेके बाद रक्त देहकी सेवाके लिये धमनियोंमें भेजा जाता है। इसका कुछ भाग ही वृक्कमें जाकर शुद्ध होता है। यह रक्तके अंशमात्रकी ही शुद्धि है। पर यह आंशिक कार्य भी निरंतर जारी रहता है इसलिये एक हद तक अनिष्ट पदार्थ रक्तमें अधिक नहीं हो सकते। हृदयके भारी चापसे रक्त वृक्कोंमें जाता है। वृक्कके स्वाभाविक कार्यके लिये यह चाप भी एक उपकरण है। यदि रक्तका चाप अचानक बहुत बढ़ जाय तो अधिक मात्रामें रक्त वृक्कोंमें जायगा। इससे अधिक मूत पैदा होगा और बाहर निकलेगा। यदि हृदय मन्दगतिसे चले तो वृक्ककी चलनी ठीक काम नहीं कर सकेगी। फल यह होगा कि, देहसे अनिष्ट पदार्थ कम निकलेंगे। इससे रक्तमें विष बढ़ जायगा। जब वृक्क काम नहीं करते तो जल या रक्तरस देहमें अधिक जमा होने लगता है जिससे जलोदर (dropsy) के लक्षण प्रगट होते हैं।

अधिक मात्रामें प्रोटीन खाने पर वृक्कोंको उसी अनुपात में उसके टूटे पदार्थ या यूरियासे अधिक निबटना होता है। यूरियाकी मात्रा बढ़ जाती है। यह प्रोटीन

पचनेके समय बनता है। जितना ही ज्यादे व्यर्थकी प्रोटीन खायी जायगी वृक्कको उतना ही व्यर्थ परिश्रम करना होगा। इससे वृक्क पर बहुत भार पड़ सकता है जिससे कितने ही रोग हो सकते हैं।

१२८७. त्वक या चमड़ा

त्वचा स्रावक या विसर्ग इन्द्रिय है। इसके छेदोंसे रक्तका अनिष्ट पदार्थ बाहर निकलता है। त्वचासे कारबन-डाइऑक्साइड गैस बाहर निकलती और ऑक्सीजन भीतर जाती है। इस तरह यह कुछ कुछ फेफड़ेका काम भी करती है।

त्वचाके दो स्तर होते हैं। एक **वहिस्त्वक** (epidermis) और दूसरा **अन्तस्त्वक** (dermis)।

वहिस्त्वकमें कोषोंकी कई तहें होती हैं। अंतस्त्वक पर ही वहिस्त्वक होता है। यह महीन और मजबूत बंधक तंतुओंके जाल सा होता है।

वहिस्तवककी दो तहें की जा सकनी हैं। एक वहिस्तर या कठिन स्तर और दूसरी गहरी या मृदुस्तर। इन्हें हम आसानीके लिये कड़ी तह और मुलायम तह कह लें। फफोला पड़ने पर दोनो तहें अलग हो जाती हैं। अंतस्त्वककी निचली तहमें रजक द्रव्य होते हैं। इन्हींसे चमड़ेमें रंग मालूम होता है।

त्वचाके ठीक नीचे स्नेहयुक्त स्नायु है। अंतस्त्वकका निचला भाग स्नायुओंकी इस बीचवाली तहके द्वारा मांस या अस्थिसे जुड़ा है। स्नेहयुक्त स्नायुओंकी बदौलत अंगमें गोलाई आती है। यह तह खासकर उदरमें मोटी है। अंतस्त्वकमें रक्तवहायें हैं पर वहिस्त्वकमें नहीं। वहिस्त्वकके ठीक नीचे रक्त-वहाओंकी केशिकाओंकी कुंडलियाँ होती हैं। अंतस्त्वकमें नाड़ियाँ काफी हैं।

त्वचा छेदोंसे भरी है। ये सब **स्वेद ग्रन्थियों** के मुँह हैं। छेद बोतलका काग खोलनेके पेचको तरह घुमावदार नलियोंका छोर है। ये नलियाँ वहिस्त्वक होकर अंतस्त्वक गयो हैं। यहाँ नलीकी दीवाल पतली हो जाती है और त्वक्कोष (cuticle cells) की इकहरी तहोंवाली रह जाती है। और नीचे इस नलीकी कुंडलीदार गाँठ बन जाती है। कुडली स्वेद-ग्रन्थि है। इस ग्रन्थिके कोष रक्तसे **पसीना** चुलाते हैं। यह पसीना नली होकर चमड़े पर निकल आता है।

अंतस्त्वकमें **मज्जा ग्रन्थि** (fatty glands) होते हैं। इनका केशोंसे सम्बन्ध रहता है। इन ग्रन्थियोंकी नलियाँ छोटी होती हैं जो कोषोंसे भरी छोटी

छोटी थैलियोंमें जाती हैं। नलियोंका मुँह उन छेदोंमें रहता है जिसमें केश होते हैं। इनका स्राव स्नेहीय है।

जब पसीना थोड़ी मात्रामें आता है तो वह तुरत ही भाफ बन उड़ जाता है। इसे **अज्ञात पसीना** कहते हैं। क्योंकि, इसका निकलना मालूम नहीं पड़ता।

गर्मीमें या मेहनत करने पर पसीना इतनी तेजीसे निकलता है कि साथ ही साथ सूख नहीं पाता तब इसे **ज्ञात पसीना** कहते हैं। जब पसीना उडता है तब चमड़ेकी गर्मी कमती है। इस तरह देहकी बहुतसी गर्मी कम जाती है।

केश : गाय और अन्य पालतू जानवरोंकी देह केशोंसे ढकी है। केश स्थायी नहीं होते। वह झड़ते और फिर उगते हैं। साधारण तौर पर सालमें दो बार झड़ते हैं। जाड़ेमें केश सबसे जादा घने होते हैं और गर्मी आने पर झड़ने लगते हैं।

चित्र १४३. त्वचाका अंश, इसमें स्वेद-ग्रन्थि और केश दिखाये गये हैं।
A-वहिस्त्वक, B-अतस्त्वक, C-स्वेद-ग्रन्थि, D-चर्बी, E-केश, F-केशमूल।
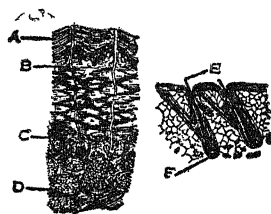
केशके सिवा चमड़े पर सींग, खुर, चगुल, नख आदि भी होते हैं। यह सब ठोस वहिस्त्वक कोष हैं। गुँथे केशोंके पिंडसे इनकी समता की जा सकती है। एक विशेष प्रकारके अंतस्त्वक—**मैट्रिक्स** के बने ये सब हैं। खोखले सींग इसी वस्तुके होते हैं।

त्वचाके कार्य : त्वचाका मुख्य काम रक्षणात्मक है। अपने नीचेकी मांस-पेशियोंका ढकना और चोटसे बचाना इसका काम है। इसमें स्नेहकी गद्दियाँ होती हैं। इससे उन्हें यह गर्मीकी अधिकतासे बचाता है। केश, रोंयें या ऊन तापमानका नियमन करते हैं। यदि जाड़ोंमें ढोर घरके बाहर रखे जायँ तो उन पर रोंयें घने हो जाते हैं। पर यदि गरम बथानमें रखे जायँ तो ऐसा न हो। केशमूलमें स्नेह-भंडार होता है। इससे उसके चारो तरफ पानी असर नहीं करता।

ताप नियमन त्वचाके अनेक मुख्य कामोंमें एक है। गाय गरम रक्तवाला पशु है। चारोंओरका तापमान चाहे जो हो गरम खूनवालोंकी देहका तापमान सम ही

रहता है। समताप बनाये रखनेके लिये देहमें ऐसे साधनकी जरूरत है जो चारों तरफकी ठंडमें देहको गरम रखे और जब इर्द गिर्द रक्तमें अधिक गर्मी है तो देहको ठंढी।

देहकी स्वतंत्र और परतंत्र पेशियोंके प्रत्येक संकोचसे देहमें गरमी पैदा होती है। ठंढी हवा या पानीका चमड़ेके अधिक भागसे संयोग होने पर उसमेंकी अनेक रक्तवहायें तुरत सिकुड़ जाती हैं। इससे वहाँ पर रक्त कम आता है। नहीं तो वह बाहरी सपर्कसे ठंढा हो जाता। पर जब आसपास रक्ततापके तापमानमें अधिक गर्मी होती है तब त्वचाकी वहायें फैल जाती हैं। इसके ऊपरी सतह पर अधिक रक्त आता है जिसमे पसीना अधिक होता है। और उसके उड़नेसे टंढक होती है। इससे चमड़े परका तापमान गिर जाता है। जब पसीना नहीं भी आता तब भी बाहरी सतहके पास अतिरिक्त रक्त आने जानेसे उसकी गर्मी कम हो जाती है और इस तरह तापमान सम रहता है। रक्तवहाओंका यह संकोच और प्रसार अपने आप होता है। इसे प्रतिसक्रमित क्रिया (reflex action) कहते हैं।

चमड़ेके छेदोंसे कारबन-डाइऑक्साइड जैसे अनिष्ट पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। इस तरह वह फेफड़ेका भी कुछ काम करता है। निम्न कोटिके मेढक जैसे कुछ प्राणी जितना अनिष्ट पदार्थ फेफड़ेसे बाहर करते हैं चमड़ेसे भी उतना ही और वह केवल चमड़े द्वारा साँस लेकर भी जी सकते हैं। वायु (गैस) विनिमय ठीक फेफड़ेकी तरह होता है। प्राणवायुका ऑक्सीजन आचूषण होता है और अपानवायु (कारबन-डाइऑक्साइड) बाहर निकाल दी जाती है। गाय और अन्य पशुओंमें कुछ ऐसा भी होता है। लेकिन त्वचा जो करती है वह अपेक्षाकृत थोड़ा है। ऐसा माना जाता है कि, पशुओंकी खास खास गंध त्वचासे बाहर निकले सेन्द्रिय पदार्थोंके कारण होती है।

इसलिये गायकी त्वचा साफ रखनेकी जरूरत है। उनकी त्वचा साफ रहे इसलिये रोज नहीं तो एक दिनके बाद उन्हें नहलाना चाहिये। गोशालामें गोबर और मूत प्राय: उनके चमड़े पर लग जाता है। इससे ढोरको उतनी ही तकलीफ होती है जितनी किसी अन्य पशुकी देहमें गंदगी लगनेसे हो सकती है। रगड़ कर धोनेसे चमड़ा साफ और सुस्थ रहता है। नहलानेके समय जरा रगड़ देना स्फूर्तिदायक है।

१२८८. नाड़ी संस्थान

नाड़ियाँ चमकदार सूतकी तरह हैं। देहमें जैसे रक्त-संवहनकी धमनी शिरा और केशिकायें फैली हुई हैं उसी तरह यह भी है। रक्त-संवहनका केन्द्र हृदय है पर नाड़ीका मस्तिष्क। नाड़ी छूनेमें नरम है। नाड़ीका सूत काँचकी महीन नलियोंकी तरह है जिसमें तेल भरा हो। कई नाड़ियाँ अगल बगल बनी हैं और कुछ बिजलीके तारकी तरह गुथी हुई।

नाड़ीका काम अपने प्रधान केन्द्र मस्तिष्कमें खबर ले जाना और वहाँका हुकुम दूसरी जगह पहुँचाना है। सुषुम्नामें कुछ ऐसे स्थान हैं जो मस्तिष्कको भेजी खबरके अनुसार उसके हुकुमका आसरा नहीं देखते। वह मुख्य केन्द्रकी तरह क्या किया जाय इसका हुकुम दे देते हैं।

जिस वेगसे नाड़ी खबर ले जाती है वह मन्द है। १०० से २०० फूट प्रति सेकेंड वेग है। सभी साधारण कामके लिये यह वेग काफी है। पर आदत हो जाने पर खबर भेजने और पानेका तरीका बहुत सरल हो जाता है और यह सब मशीनकी तरह प्रायः अपने आप हो जाता है।

जब गाय घरसे किसी नयी दिशामें चलती है तो उसे राह और आसपासकी खबर रखनी होती है। उसे सावधानीसे आगे बढ़ना होता है। उसे देखना होता है कि, कहाँ ऊँचा है और कहाँ नीचा, कहाँ खड़ी चढ़ाई है, कहाँ उतराई या कहाँ भयावह मोड़ है। पर जब वह उसी ओर प्रायः आती जाती है तब उसे आदत पड़ जाती है और वह प्रायः अपने आप सोचे समझे बिना चलती है।

नाड़ी शरीरकी कई क्रियायें इच्छाके आदेशके बिना करती है। चलने, देखने, काम करनेमें दिमागकी इच्छाके आदेशकी आवश्यकता होती है। पर साँस लेना, पचना, पसीना आना आदि काम किसीकी इच्छाके बिना भी चलता रहता है। यह बात आदमी और पशु सबमें एकसी है।

नाड़ियोंके यह स्वयं कृत कार्य **प्रतिसंक्रमित** क्रिया कहे जाते हैं। इन प्रति-संक्रमित क्रियाओंके लिये मस्तिष्कके केन्द्रोंसे संदेश आते जाते हैं। मुँहमें कौर लेने पर चबानेके बाद उसे निगलेनेकी इच्छा होती है। जीभ उसे अन्नवहमें ठेल देती है। इसके बाद आहार अन्नवहकी पेशियोंकी अपनी क्रियासे आमाशयमें जा पहुँचता है। रोमन्थाशयमें वह अपने आप चलाया जाता है। इसके बाद इच्छासे पागुर कर लेने पर आहार आमाशयमें जाता है और प्रतिसंक्रमित क्रिया

चलती रहती है। मुद्राद्वार उचित समय पर आप ही आप खुलता और बन्द होता है। स्रावकी इन्द्रियाँ स्राव करती हैं। इस तरह पाचन और आचूषणका सारा काम आप ही आप होता रहता है। पर यह यों ही अपने आप नहीं होता। प्रत्येक कार्यके होनेमें अक्ल लगती है। जब रक्तमें अधिक चीनी होती है तब यकृत उसे ठोस रूपमें जमा कर रखता है। और जब रक्तको चीनीकी जरूरत होती है यकृत उचित मात्रामें उसे भेजता है। इस तरह हमारी इच्छाके पीछे कोई और इच्छा भी है, जो हमारी नहीं है, जैसा कि हम समझ लेते हैं। इसमें संदेह नहीं कि यह सारा काम आदमी या पशु ही करता है।

जब कोई बाहरी वस्तु चर्ममें घुस जाती है या और गहरे जाकर मांसमें पहुँचती है तो देहको उसे बाहर करनेका काम करना होता है। सूजन होती है और
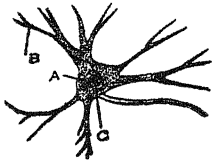
चित्र १४४. नाड़ी कोष।
A-मूलकण,
B-शाख पद्धति,
C-शाखाहीन पद्धति।

चित्र १४५. नाड़ीका ढाँचा।
D-मज्जा, E-गाँठ।

उसे निकालने या आत्मसात् करनेके लिये रक्त वहाँ श्वेत कणिकायें भेजता है। श्वेत कणिकायें लड़ाईमें मारी जाती हैं जिससे पीब बनती है। यह सब सतह पर आते हैं। बाहरी वस्तु और पीब बाहर निकल जाती है फिर घाव भरने लगता है। किसी सरजनके निर्देशसे कहीं अच्छी तरह स्वभाव से ही यह सब भूलचूकके बिना होता है।

अपने आप होनेवाले कामका महत्व हमारी इच्छासे होनेवाले कामसे अधिक है। क्योंकि यदि देह पर स्वतंत्र नियंत्रण (अपने आप होनेवाला) न हो तो जीवन एक मिनटके लिये भी असंभव है।

इस स्वतंत्र नियंत्रणसे धमनीकी पेशियोंका नियंत्रित संकोच होता है। इससे निश्चित चापसे यथोचित रक्त उनमें बहता है।

यदि यह नियंत्रण न रहे तो धमनिया फैल जायँगी जिससे रक्तको कुछ भी रुकावट नहीं रहेगी। इससे वह उन भागोंमें बहेगा जहाँ चापके बिना बह सकता है और मस्तिष्क, यकृत, वृक्क आदि जैसी महत्वकी इन्द्रियोंको अपना काम करनेके लिये पूरा रक्त नहीं मिलेगा। नतीजा मृत्यु होगा।

नाड़ी-तंत्रमें मस्तिष्क, सुषुम्नाकांड और उनसे निकली नाड़ियाँ हैं। मस्तिष्क और सुषुम्नाकांड मिलकर **केन्द्रीय नाड़ी-मंडल** है।

एक **नाड़ीसूत्र** में अनेक तंतु होते हैं और प्रत्येक तंतुमें एक मध्यतल होता है जिसे **सूत्राक्ष** या **अक्षतन्तु** (axis cylinder) कहते हैं। उसके चारो तरफके आवरणको **मज्जापिधान** या **वसामयी वृति** (medullary sheath) कहते हैं। इसके बाद **प्राथमिक नाड़ीपिधान** या **नाड़ीकंचुक** (neurolemma) होती है। प्राथमिक नाड़ीपिधान आदिसे अंत तक होती है पर मज्जापिधानका सिलसिला कहीं कहीं टूटा होता है। टूटनेकी जगहको **गाँठ या नाड़ी-पर्व** (nodes) कहते हैं। किसी किसी नाड़ीमें मज्जापिधान नहीं होता पर सूत्राक्ष पर केवल नाड़ीपिधान रहता है। इन्हें मज्जाहीन नाड़ी तंतु कहते हैं। इनका रंग भूरा होता है पर मज्जासहितका सफेद।

नाड़ियाँ दो जातिकी होती हैं। केन्द्रमें संवेदना ले जानेवाली नाड़ी **संज्ञावह** (afferent) और केन्द्रसे संवाद ले जानेवाली **मनोवह** (efferent) कही जाती है। ये नाड़ियाँ अपने अपने भागका हुकुम ले जाती हैं। इन्हें **प्रचेष्टनी नाड़ी** (motor nerves) और संज्ञावहको **ज्ञान नाड़ी** (sensory nerves) भी कहते हैं। केन्द्रीय नाड़ीमंडलसे जहाँ नाड़ी निकली है या विभिन्न ज्ञानेन्द्रियोंमें जहाँ उसका छोर है वहाँ **नाड़ी गंड** (ganglion cells) होते हैं।

नाड़ी कोषोंमें बड़ासा गोल मूलकंद होता है। कोषोंमें प्रवर्धन होते हैं। इनमेंसे एक सूत नाड़ीतंतुके सूत्राक्ष तक लगातार रहता है। सूत्राक्ष लंबायमान नाड़ीकोष माना जा सकता है। मस्तिष्क और सुषुम्नाकांड सवृतिक अर्थात् आवरणयुक्त नाड़ीतंतु, नाड़ी-गंड और साथमें कुछ आधार-तंतुओंके बने होते हैं।

१२८९. सुषुम्नाकांड

सुषुम्नाकांड कशेरुकाओंकी नलीमें होकर निकलता है। कशेरुकाओं और खोपड़ीकी अस्थिमयी दरी (गुहा)में **बाहरी आवरण** (dura mater) का अस्तर

चढ़ा रहता है। अस्थिकी ओरकी इसकी पीठ रुखड़ी और भीतरकी ओर चिकनी होती है। इसके बाद मस्तिष्क और सुषुम्ना एक कोमल झिल्लीमें बन्द रहते हैं। इस झिल्लीको **भीतरी आवरण** (pia mater) कहते हैं। इसमें रक्तवाहनियाँ बहुत होती हैं। मस्तिष्कावरण (भीतरी आवरण) और कलावरण (बाहरी आवरण) के बीच एक तरल पदार्थ होता है जिसे **तर्पक कफ** (ब्रह्मवारि) (Cerebrospinal fluid) कहते हैं।

सुषुम्नाकांड मस्तिष्कपुटसे लेकर कटिका ५ वीं और ६ ठी कशेरुकाकी सन्धि तक फैला है। कांड गोल है, दो परिखाओंसे यह दो भागोंमें बटा हुआ है जिसे **अगली और पिछली परिखा** (fissures) कहते हैं। ये दरारें इतनी गहरी हैं
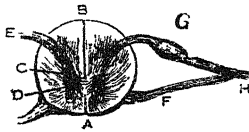
चित्र १४६. सुषुम्नाकांडका आड़ा अंश।
A-आगेकी परिखा, B-पीछेकी परिखा, C-श्वेत पदार्थ, D-भूरा पदार्थ, E-पिछला मूल, F-अगला मूल, G-पिछले मूलपर नाड़ी-गंड, H-सुषुम्ना नाड़ीका एक तार।
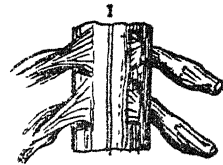
चित्र १४७. सुषुम्नाकांडका आगेका दृश्य, इसमें अगला और पिछला मूल दिखाया गया है।

कि, मानो अब एक ही हो जायेंगी। इनके बीच जोड़नेवाली कड़ी जरा सी रह जाती है जिसे नाली (central canal) कहते हैं।

कांडके दोनों भागोंमें बाहरका हिस्सा श्वेत पदार्थका और भीतरी भूरे पदार्थका होता है। भूरा पदार्थ अर्धचन्द्राकार होता है, जिसमें दो सींग निकले रहते हैं। जिन्हें आगे और पीछेके सींग कहते हैं। श्वेत पदार्थ भूरे पदार्थके अर्धचन्द्रके चारों तरफ होता है। कांडके दोनों भाग भूरे पदार्थसे जुड़े रहते हैं।

सुषुम्नाकांडसे जगह जगह सौषुम्न नाड़ियाँ निकलती हैं। प्रत्येक सूतमें आगे और पीछेके मूलसे निकली नाड़ियाँ होती हैं जो मिलकर नाड़ीका एक तार बन जाती हैं। तारमें जुड़नेकी जगहसे आगे पिछले मूलमें एक गांठसी होती है। यह नाड़ी-गंड है।

सुषुम्नाकांडसे निकलनेके बाद दोनों मूलोंकी सन्धि पर नाड़ोके तारमें प्रचेष्टनी और ज्ञानकी नाड़ियाँ अलग अलग की जा सकती हैं। सभो प्रचेष्टनी नाड़ियाँ अगले मूलसे और सभी ज्ञान-नाड़ियाँ पिछले मूलसे निकलती हैं। इसलिये इन्हें **प्रचेष्टनी और ज्ञान मूल** भी कहते हैं।

किसी सौषुम्न नाड़ीका पिछला मूल जब घायल हो जाता है तब जिस भागकी वह नाड़ी है वह सुन्न हो जाता है। पर अगर अगला मूल घायल नहीं हुआ है तो उस भागमें चेष्टा या गति हो सकती है। यदि इसका उल्टा हो जाय तो चेष्टा तो नहीं होगी पर चेतना मालूम होगी।

१२६०. ज्ञान

ज्ञान नाड़ोके बारेमें कुछ महत्वकी बातें हैं। मनुष्यमें चेतनाका उद्गम सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं। पर इनके अलावा वेगों या प्रेरणाओंको विशेष नाड़ी तन्तु ले जाते हैं और उन्हें बदल कर चतना कर देते हैं। जिससे गति, स्थान, भयकी शका, दुःख, शीत और तापका ज्ञान होता है। यह संभव है कि जगली पशुओंमें खासकर, और कुछ हद तक पालतूमें भो, यह गौण चेतना और इनके तन्त्र आदमीसे कहीं जादा तीव्र और संघटित हैं। पशु क्या करे क्या न करे यह बतानेवाले सहज ज्ञानसे भी बड़ी बाहरो स्थिति समझ लेनेवाली शक्ति है, यह कभी सिद्ध हो जा सकता है। बकरोका नवजात मेमना अधा पैदा होता है। पर पैदा होते ही अंधेकी तरह माँके पेटका तरफ बढ़नेकी चेष्टा करता है और वहाँ पहुँच कर तुरत ही थन खोज उसे पीने लगता है। इस काममें माँ कुछ सहायता नहीं करती। यदि एक साथ कई पैदा हो जाते हैं तो एक ही चीजके लिये सभी छटपटाते हैं और जब तक एक एक चूचा सबको मिल नहीं जातो एक दूसरेसे धक्का धक्की करते हैं। इस तरहका काम पशु अतिरिक्त चेतनाके वेगसे प्राप्त करता है।

१२६१. प्रतिसंक्रमित क्रिया

यदि श्रोणिके आसपास आदमीका सुषुम्नाकांड चुटीला या घायल हो जाय तो मस्तिष्क और पिछली शाखामें खबरका आना जाना नहीं हो सकता। अब यदि उसके पैरमें कुछ चुभे तो वह एकाएक अपना पैर समेट लेगा यद्यपि वह चुभनेकी अनुभूति नहीं कर सकेगा और न अपनी इच्छा से पैर समेटेगा। उसकी ज्ञान और

प्रचेष्टनी नाड़ीका सरोकार मस्तिष्कसे कट गया है इसलिये न तो वह अपने निचले अंग चला सकता है और न उसकी अनुभूति उसे हो सकती है। फिर भी कुछ चुभने पर वह अपना पैर समेट लेता है। इसे **प्रतिसंक्रमित** (प्रतिक्षिप्त) **क्रिया** बताया जाता है। इसमें कुछ करनेके लिये दिमागके हुकूमकी जरूरत नहीं होती। चुभनेकी अनुभूति सुषुम्नाकांडमें पहुँचती है। इस वेगका कांडके भूरे पदार्थ पर ऐसा असर होता है कि, उससे नया चेष्टा-वेग पैदा हो जाता है। यह नया वेग अगले मूलके भूरे पदार्थसे पैरकी पेशीकी नाड़ीमें आता है और तब पेशीका संकोच होता है।
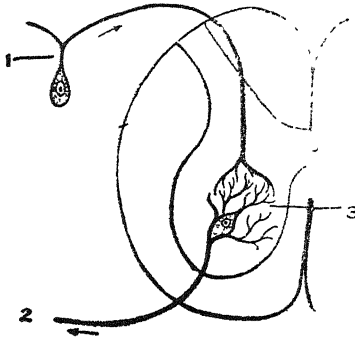
चित्र १४८. सुषुम्नाकांडका प्रतिसंक्रम वृत्तार्ध।
1-ज्ञान नाड़ी, 2-प्रचेष्टनी नारी, 3-नाड़ी कोष।
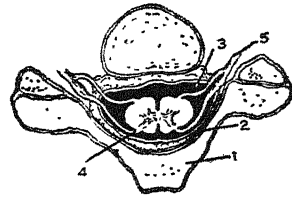
चित्र १४९. मेरुदण्डका एक अंश।
1-कशेरु कंटक, 2-मस्तिष्कावरण, 3-सौषुम्न रस, 4-सुषुम्नाकांड, 5-गति और ज्ञान तार।

सुषुम्नाकांड या दिमाग इच्छाके बिना जब कोई क्रिया करता है तब उसे प्रतिसंक्रमित क्रिया कहते हैं। देह पर हुकूमत करनेके लिये मस्तिष्कके सिवा सुषुम्नाकांड उपकेन्द्रोंकी तरह आचरण करता है। कुछ स्वतंत्र या प्रतिसंक्रमित कार्य ये हैं :

प्रकाशके अनुसार आँखका फैलना या सिकुड़ना, साँस लेना, थूक और भीतरी रसोंका स्राव, पसीना चलना, रक्त-संवहन, पाचन आदि। प्रतिसंक्रमित क्रिया करनेवाली नाड़ियोंको **सहानुभूति-नाड़ियाँ** कहा जाता है। साधारण तौर पर इन्हें मज्जाका आवरण नहीं होता।

कुछ प्रतिसंक्रमित काम देहमें घड़ीकी सूईकी तरह आप होते रहते हैं। इनके अलावा भी जो प्रतिसंक्रमित क्रियायें होती हैं उनका विश्लेषण हम करेंगे। उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया पर हम विचार करें।

उदाहरणके लिये घोड़ेके अगले पैर लीजिये। कल्पना कीजिये कि पैर पर छड़ी चलायी गयी। उसके पैरसे छड़ी हटनेके पहले ही वह अपना पैर झटकता है। कभी कभी यह काम इतनी जल्दी और अचानक हो जाता है कि, वह चोटसे नहीं, अपने पैरके हटनेसे चौंकता है।

यहाँ पर दिमागकी सहायता या आदेशके बिना सुषुम्नाकांडने स्वय एक कार्य कर दिया है। आदमीसे पशुमें प्रतिसंक्रमित क्रिया कहीं जादा विकसित है। जंगली पशुओंकी, बिजलीसे भी तेज क्रिया, प्रतिसंक्रमित क्रियासे ही सभव है। अपने शिकार पर बाज जिस तेजीसे झपटता है या सिंह अपने शिकार पर घटेमें ६० मीलके वेगसे टूटता है इसकी तुलनामें आदमीका काम बहुत धीमा और-समझ बूझ कर किया हुआ होता है।

१२६२. मस्तिष्क

बैलके मस्तिष्कके तीन भाग हैं। **वृहत् मस्तिष्क** (cerebrum), **मस्तुलुंगमध्य** (mid brain) और **धम्मिलक या लघु मस्तिष्क** (cerebellum)। बृहत् मस्तिष्क दो गोलार्धोंमें बँटा है। दिमागका अधिकांश यही है और साथ ही शेषकी गतिविधिका नियमन भी यही करता है। मस्तुलुगमध्य पुष्पवृन्तसा है मस्तिष्क और धम्मिलकको जोड़नेवाली डडी यह है। धम्मिलक गोलार्ध है। यह खोपड़ीमें एक दम पीछे होता है। उष्णीषक (pons) और सुषुम्नाशीर्षकके भी पीछे यह होता है। मस्तिष्कके भिन्न भिन्न अवयवोंको जोड़नेवाले पुलकी तरह उष्णीषक है। सुषुम्नाशीर्षक सुषुम्नाकांडका ही बढ़ा हुआ भाग है। हृदय, साँस, रक्त-सवहन और मुँहसे लेकर बड़ी आँत तककी पाचन क्रियाके नियमन करनेवाले केन्द्र इसीमें हैं। दिमागकी नाड़ियोंके आने जानेकी राह इसी होकर है। गध, दृष्टि और चक्षुगोलककी नाड़ियोंको छोड़ सभी कपालीय नाड़ियाँ यहीं पैदा होती हैं।

मस्तिष्क भूरे और सफेद पदार्थका बना है। भूरा पदार्थ ऊपर है। यद्यपि कुछ कुछ यह सफेद पदार्थमें भी घुसा हुआ है। सफेद पदार्थ अनेक नाड़ी सूत्रोंका

बना हुआ है। इसमेंसे हरेक भूरे पदार्थके एक कोषसे जुड़े हैं और विभिन्न मार्गोंके लिये तैनात हैं। यह मार्ग चाहे ज्ञानवह हैं या संज्ञावह।

विभिन्न पशुओंके मस्तिष्कमें बहुत भेद होता है। देहकी तोलके अनुपातसे विभिन्न पशुओंके मस्तिष्ककी तौल नीचे दी जाती है :—

बिल्ली	...	९९ में १
कुत्ता	...	२३५ में १
घोड़ा	...	५९३ में १
बैल	...	६८२ में १

बुद्धिका आधार केवल मस्तिष्ककी तोल ही नहीं है, सफेद और भूरे पदार्थका अनुपात भी है।

बृहत् मस्तिष्क स्वयं चेतनाहीन है। उसको काटा और घायल किया जा सकता है। ऐसा करनेमें पीड़ाकी अनुभूति नहीं होगी। स्मृति, इच्छा, मेधा आदि सूक्ष्म ज्ञानसे इसका सम्बन्ध है। दृष्टि, गंध, स्वाद, श्रवण, स्पर्श आदि ज्ञानेन्द्रियोंका वेग ग्रहण करनेका पीठ यह है।

धम्मिलकका मुख्य कार्य देहकी समतौल बनाये रखनेके लिये पेशियोंके कार्यका सामंजस्य है और दृष्टि केन्द्रोंकी सहायतासे शरीरकी स्थितिका ज्ञान करना है।

१२९३. शीर्षण्य नाड़ियाँ (Cranial Nerves)

मस्तिष्कसे १२ नाड़ियाँ निकलती हैं। आदमीकी भी इतनी ही हैं।

१. घ्राण नाड़ियाँ।

२. दृष्टि नाड़ियाँ।

३,४,५. नेत्रप्रचेष्टनी नाड़ियाँ।

६. त्रिधारा नाड़ियाँ, मुखमंडलके ज्ञान और जबड़े तथा जीभके संचालनके लिये।

७. वक्त्र नाड़ियाँ, मुखमंडल और मुखके लिये।

८. श्रुति नाड़ियाँ, सुननेके लिये।

९. कंडरासनी नाड़ियाँ, स्वादकी नाड़ियाँ हैं।

१०. प्राणदा नाड़ियां, यह कुछ प्रचेष्टनी और कुछ ज्ञानवहा हैं। गरदन होकर उर और उदरमें जाती हैं और हृदय, कंठ, फेफड़े और यकृत तथा अंत्र सहित उदरका नियमन करती हैं।
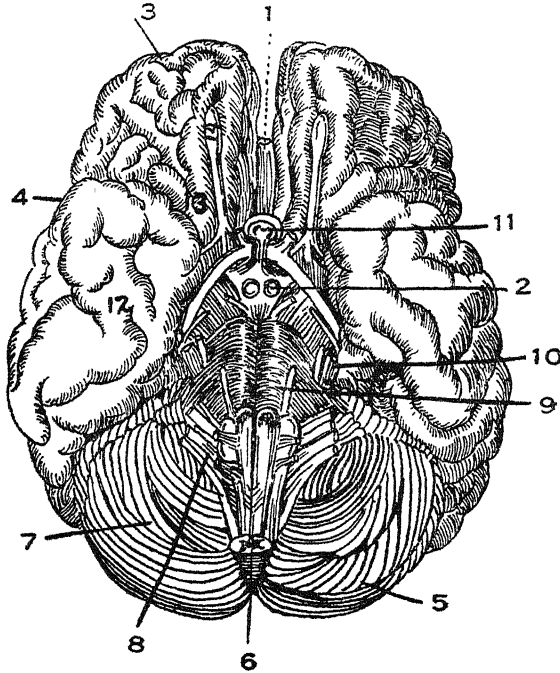
चित्र १५०. मस्तुलुंग पिंडका आधार।

1-महा संयोजक, 2-वृंताकार पिंड, 3,13-ललाट खंड, 4,12-शंख खंड 5,7-धम्मिलक, 6-सुषुम्ना शीर्षक, 8, 9, 10, 11, 14-शीर्षण्य नाड़ियां।

११. ग्रीवापृष्ठगा नाड़ियां, ये गरदनकी कुछ पेशियोंमें जाती हैं।

१२. जिह्वातलिका नाड़ियां, जीभके लिये गति नाड़ियां।

१२६४. पिंगला नाड़ियाँ

पिंगला नाड़ितंत्र हमारी इच्छाके परे है। इसका मुख्य केन्द्र सुषुम्ना-शीर्षकको चोटी पर है। सुषुम्नाकांडके साथ साथ नाड़ी सूत्रोंका जाल है जो अनेक स्वतंत्र कार्य करता है। पिंगलातंत्रके कामोंका कुछ जिक्र हो चुका है। इनके अलावे इनका मुख्य कार्य हृदय और रक्तवाहिनियोंका नियमन है। रीढ़के सामने दो संवेदना तारोंके बीच जाल तने रहते हैं। इन्हें चक्र कहते हैं। कुछ चक्र ये हैं :

१. हृदय चक्र (cardiac plexus),
२. सौर्य चक्र (solar plexus),
३. श्रोणी चक्र (pelvic plexus)।

हृदय चक्र नाड़ी सूत्रोंका जाल है। यह संवेदना और प्राणदा नाड़ियोंका बना होता है। पेशियोंमें हृदयसे नाड़ियाँ आती हैं। **प्राणदा नाड़ियाँ** हृदयमें निषेधात्मक वेग ले जाती हैं। इसका उल्टा शीघ्रकारी वेग **संवेदना नाड़ी** ले जाती है। प्राणदा नाड़ी काट देनेसे उसका निषेधात्मक प्रभाव मिट जाता है इससे हृदयकी धड़कन जल्दी जल्दी होने लगती है। पर यदि प्राणदा केन्द्र उत्तेजित कर दिया जाय तो वेगमें रुकावट बढ़ जायगी। इससे धड़कन धीमी हो जायगी। संवेदना नाड़ी काटनेसे हृदयकी धड़कन मंदी हो जायगी और इसे उत्तेजित करने पर तेज।

रक्तचालक नाड़ी : इस नाड़ीका केन्द्र सुषुम्नामें है। रक्तचालक नाड़ीके वेग धमनी की पेशी-वृत्तियोंको सिकुड़े रखते हैं। इस नियमनके अभावमें धमनियाँ फैल जायँ और रक्त चाप कम हो जाय। इससे उन अंगोंको जिन्हें अधिक चापकी जरूरत है कम रक्त मिलेगा। मस्तिष्कके लिये सबसे अधिक चाप चाहिये। इसलिये क्षीण रक्तसंवहनका असर सबसे पहले उसी पर होगा और इससे मूर्छा होगी।

रक्तचालक नाड़ीके नियमनकी जरूरत प्रति क्षण है। भोजनके बादही पाचन क्रियाके लिये पाचक इन्द्रियोंमें अधिक रक्त चाहिये। इस कामके लिये यह नाड़ी उदरकी धमनियाँ फैलाती हैं। जिससे दूसरी जगहोंमें जैसे चर्म आदिमें रक्तका जाना बन्द होकर यहाँ अधिक आता है। चमड़ेका ताप मिट जाता है। भोजनके बाद जाड़ा लगनेका कारण यही है। यदि शरीर-ताप कम करना होता है तो चमड़ेकी ओर जादे रक्त बहता है। इससे कुछ अधिक ताप फैलकर नष्ट हो

जाता है। पर यदि देह-ताप बनाये रखनेकी जरूरत होती है तो रक्तचालक नाड़ी त्वचामें रक्त ले जानेवाली धमनी सिकोड़ देती है। इससे त्वचाकी सतह पर कम रक्त आता है और वह ठंढा भी कम होता है।

दिमाग, हृदय और फेफड़ोंमें रक्तवहन करनेवाली धमनियों पर इस नाड़ीका नियंत्रण नहीं है। इस नाड़ीसे इन अंगोंको कोई सरोकार नहीं इसलिये यदि देहमें रक्तचाप बढ़ जाता हैं तो वह दिमागमें चढता है। जिससे सरमें दर्द होता है पर यदि अन्य अंगोंकी धमनियोंके ढीली पड़नेसे उन अंगोंमें जादा रक्त आता है तो दिमागको कम रक्त मिलता है।

१२६५. चक्षु और दृष्टि

आदमी और घोड़ेकी आँखकी साधारण रचना जैसी है वैसी ही गायकी भी है। चक्षुकोटर की अस्थिमयी दरी (खात) में आँखें जड़ी हैं। चक्षु गोलक (आँखका
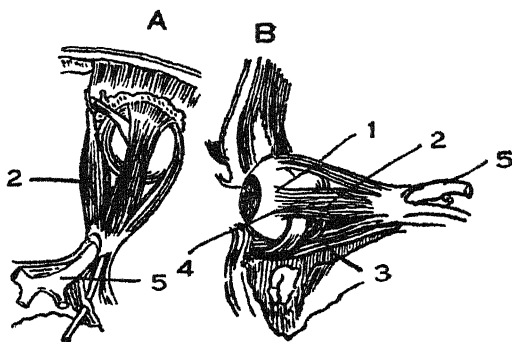
चित्र १५१. A-B—अक्षिगोलककी पेशियाँ।
1-अक्षिगोलक, 2-ऊर्ध्व वक्र दर्शनी, 3-अधोदर्शनी, 4-पार्श्व दर्शनी, 5-चाक्षुषी नाड़ी।

कोआ) प्रकाशचेता है और इस खातमें झूलता है। यह खात कोएकी रक्षा आगेकी ओर छोड़ सब तरफसे करता है। आगेकी ओर पलकें इसकी हिफाजत करती हैं। पलकें पीछेकी ओर चाक्षुषी नाड़ी (optic nerves) से जुड़ी हैं। कोए और खातकी दिवालको धारीदार पेशियाँ जोड़ती हैं। इनमेंसे चार पेशियाँ सीधी हैं जिन्हें

दर्शनी पेशी (recti muscles) कहते हैं। वक्र ऊर्ध्व दर्शनी और वक्र अधो दर्शनी (superior and inferior oblique muscles) नामकी दो तिरछी पेशियाँ हैं। इन ६ पेशियोंको सहायतासे आँखें जिधर चाहो उधर घुमायी जा सकती हैं।

कोए या गोलक पर तीन वृतियाँ हैं। बाहरी वृति **स्वच्छमंडल** (cornea) है। यह आँखमें आगेको ओर है। यही वृति आगे बढ़कर **शुक्लमंडल** (sclerotic coat) कहाती है। यह चारों तरफ आँखके कोटरमें लगी रहती
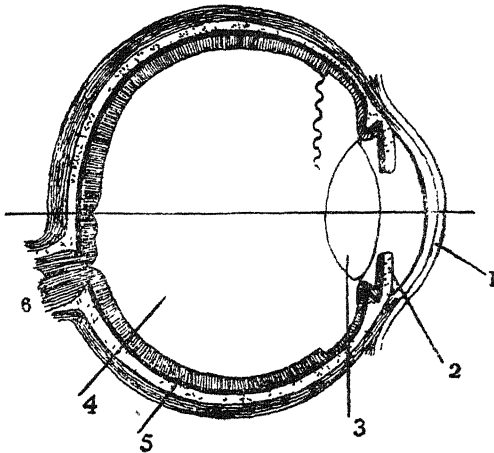
चित्र १५२. अक्षिगोलक।

1-स्वच्छमंडल, 2-तारामंडल, 3-ताल या मणि, 4-मेदोजल, 5-दृष्टिमंडल, 6-चाक्षुषी नाड़ी।

है। बिचली वृतिके तीन नाम हैं: (क) **कृष्णमंडल** (choroid coat) शुक्लमंडलसे भीतरकी ओर चिपका हुआ है। स्वच्छमंडलके पास यह उससे अलग होकर (ख) **संधानमंडल** (ciliary body) बन जाता है। संधान मंडलकी रचना केश जैसे सूत्रोंसे होती है और यह स्वच्छमंडलके ठीक पीछे गोल पर्देकी तरह हो जाता है, तथा (ग) **तारामंडल** (iris) कहा जाता है। यह ताल (मणि-lens) के आगे होता है।

यह बिचली वृति वाहिनियोंकी (vascular) बनी रंगकी वृति है। इसका अस्तर काला है। तारामंडलमें एक छेद है जिसे **पुतली** या **कनीनका** (pupil) कहते हैं। आखरी सबसे भीतरी वृतिको **दृष्टिमंडल** (retina-दृष्टि बिनान) कहते हैं।

ऊपरकी स्वच्छमंडल ओर शुक्लमंडलकी वृति दृढ़, घने सौत्रिक तन्तुओं और लचकदार तन्तुओंकी होती है। यही आँखोंके लिये सफेद और कठिन आवरण होता है। इस वृतिसे अनेक पेशियाँ लगी रहती हैं जो गोलक को चलाती हैं। आगेकी ओर यह वृति सफेद नहीं रहती, पारदर्शी हो जाती है। इससे काले रंगवाली बिचली वृति इसमें होकर दिखायी देती है। इस पारदर्शी अंशको स्वच्छमंडल कहते हैं। कृष्णमंडल और तारामंडलके बीच इस सिलसिलेमें केशों जैसी कई तहें होती हैं। इन्हें **संधान प्रवर्धन** (ciliary process) कहते हैं। तहें भी एक तरहके रंगसे मढ़ी होती हैं।

तारामंडल कैमरेके डायफ्रामकी जगह है और डायफ्रामके छेद की जगह पुतली है। पुतलीका छेद घट बढ सकता है। इसका नियमन तारामंडलकी पेशियाँ करती हैं। छाँहमें पुतली बढ जाती है। इससे बढ़े छेदकी राह आँखोमें अधिक प्रकाश जाता है। खुली धूपमें पुतलीका छेद सिकुड़कर सूईकी नोकसा हो जाता है। इससे फालतू रोशनी उसमें नहीं जा सकती। गायका स्वच्छमंडल अन्डाकार होता है और पुतली कुछ कुछ अन्डाकार होती है। उसका बढ़ा छोर भीतरकी ओर रहता है। कृष्णमंडलका रंग बादामी-मायल-कत्थई या भूरा-नीला होता है। बहुत काला या चितकबरा भी होता है जिसमें सफेद चित्तियाँ होती हैं।

बाहर से देखने पर हमें दिखाई देगा कि, पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं। जोड़नवाले दृढ़ सौत्रिक तन्तुओंसे इनकी रचना हुई है। इसमें पतली और सुकमार झिल्लियोंका अस्तर लगा है जिसे अगरेजीमें **कंजंक्टिभा** कहते हैं। इनके छोर पर रोएँ होते हैं जिन्हें **बरौनी** (पक्ष्म) कहते हैं। इन रोंओंकी जड़में ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियोंके प्रदाहका नाम **गुहेरी** (अंजन नामका stye) है।

कोआ कोटरमें रहता है। इसके नीचे चर्बीकी गद्दी होती है। बीमारीमें यह चर्बी गल जा सकती है इसीसे आँखें धसी सी मालूम होती हैं।

आँखोंको सदा आर्द्र (गीली) रहना चाहिये। इसके लिये प्रकृतिने **अश्रु-ग्रन्थियोंका** (lacrimal glands) विधान किया है। यह ग्रन्थियाँ आँखोंके ऊपरी

कोनेमें बाहरकी ओर रहती हैं। इस ग्रन्थिके जलसे आँखें तर रहती हैं। अतिरिक्त जल अश्रुप्रणाली होकर बह जाता है। यह प्रणाली आँखके कोनेमें नाकके पास होती है। यह प्रणाली अतिरिक्त जल नाकमें ले जाती है। अश्रुप्रणाली ही इस ग्रन्थिको मुख्य नली है जिससे उसका जल नाकमें खलास होता है। चित्तमें आकुलता या क्षोभ होनेसे यदि अधिक आँसू आते हैं, आँखे भर आती हैं और फिर बूँदें ढुलक कर गाल पर बहने लगती हैं।

स्वच्छमंडल आँखका उभारदार पारदर्शी और प्रायः पूरी तरह गोल अंश है। स्वच्छमंडल और कृष्णमंडलके बीचकी जगह पानीकी तरह पनले तरल **तेजोजल** (aqueous humour) से भरी रहती है। कृष्णमंडलके
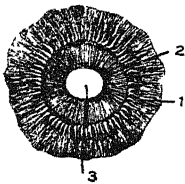
चित्र १५३.
तारामंडल।
1-संधान प्रवर्धन,
2-तारामडल,
3-पुतली।
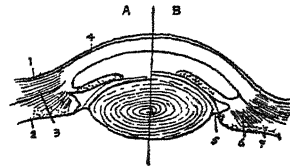
चित्र १५४. केन्द्रीकरणमें तालमें परिवर्त्तन।
A-दूरकी वस्तुके लिये व्यवस्थित,
B-पासकी वस्तुके लिये व्यवस्थित।
1-कंजंक्टिभा (श्लैष्मिक कला). 2-कृष्ण-मंडल, 3-शुक्लमंडल, 4-स्वच्छमंडल, 5-अलगनीको बन्धनियाँ, 6-संधान पेशियाँ, 7-संधान प्रवर्धन।

पीछे मणि या **ताल** होती है। यह काँचके तालकी तरह पारदर्शी है जो जेली (jelly) की तरहके पदार्थकी बनी होती है। प्याजकी तहोंकी तरह इसकी तहें होती हैं। मणि संधानमंडलमें बंधनियोंसे लटकी रहती है। मणिके पीछे कोएका बड़ा खात **मेदोजल** से (vitreous humour) भरा रहता है। मणिके बाद पीछेकी तरफ दृष्टिमंडल होता है। यह आँखका बहुत चैतन्य स्थल है। बहुत कुछ चाक्षुषीनाड़ी-छोरोंका ही बना यह मंडल होता है।

देखनेके समय प्रकाश रश्मि आँख पर पड़ती है। वह स्वच्छमंडल और तेजोजल होकर मणिमें पुतलीके छेद होकर घुसती है। आकृति साफ मालूम हो इसलिये पुतली अगल बगलकी किरणोंको छाँट देती है। जितना प्रकाश चाहिये उसीके अनुसार छेदनियंत्रण होता है। तब वस्तुसे आया प्रकाश ताल होकर दृष्टिमंडल पर पड़ता है। मणि उभय उन्नतोदर (bi-convex) है। इससे दृष्टिमंडल पर पड़ी छाया उल्टी होती है पर इससे उस वस्तुको यथारूप देखनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि असली देखना तो दिमागका काम है। वह उल्टी दृष्टि-छापको सही कर लेता है।

सभी साधारण तालोंकी तरह मणिभी वस्तुकी किरणोंको केन्द्रित कर इसकी छाया डालती है। मणिके पीछे छाप कहाँ पड़ेगी यह वस्तुकी दूरी और मणिकी वक्रता पर निर्भर है। पर आँखमें छाप पड़नेकी जगह स्थिर है। छाप दृष्टिमंडल पर पड़ेगी ही। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये मणिके साथ जुड़ी बंधनियाँ उसकी वक्रतामें फेर बदल करती हैं। दूरकी वस्तु देखनेके लिये मणि चिपटी हो जाती है और पासकी वस्तुके लिये और भी उन्नतोदर।

दूरीके हिसाबसे वक्रता ठीक करनेकी मणिकी शक्तिको **केन्द्रिकरण शक्ति** (accommodation) कहते हैं। मणि रबरकी तरह लचकीला है। यदि दबाकर इसे चपटा कर दिया जाय तो दबाव हटते ही वह फिर जैसेका तैसा हो जायगा। मणि एक पारदर्शी खोलीमें रहता है। यह खोली झिल्लीकी होती है और संधान प्रवर्धनकी अलगनी बंधनियोंमें लगी रहती है। इससे मणि पर दबाव रहता है। इसलिये दबाव हटने पर जितना उन्नतोदर वह हो इससे कमही वह रहती है। संधान पेशियोंके संकोचसे बंधनियाँ ढीली पड़ती हैं। इससे अपने लचकीलेपनके कारण मणि और उन्नतोदर हो जाती है। जब हम पासकी वस्तु देखते हैं तब ऐसा होता है।

आँखसे ५ या ६ इंचसे कम दूरी पर की वस्तुको देखना कठिन है। क्योंकि, दृष्टिमंडल पर छाप पड़नेके लिये मणिको जितना उन्नतोदर होना चाहिये नहीं हो सकती। अदूर-दृष्टि पुरुष दूरकी वस्तु साफ नहीं देख सकते क्योंकि, जितना चाहिये उतना मणिमें चपटापन नहीं होता। या यों कहें कि, छाया दृष्टिमंडल से आगे निकल जाना चाहती है। दृष्टिमंडल पर छाप पड़े इसलिये मणिको और चपटा होना चाहिये। आँख पर नतोदर चश्मा लगानेसे यह काम हो जाता

है। उसी तरह बूढ़े लोग जो दूर-दृष्टि हो जाते हैं वह पासकी वस्तु साफ नहीं देख सकते। उनका यह दोष मणिमें वक्रता बढ़ानेसे दूर हो जाता है। इसके लिये उन्नतोदर चस्मा पहनना होता है।

बाहरी वस्तु देखनेका गुण पशुओंमें कैसा है यह अच्छी तरह हम नहीं जानते। क्योंकि इस बारेमें उनके साथ बातचीत करना, उसके भेदोंको समझाना या तुलना बनाना असंभव है। ऐसा मालूम होता है कि, बाज और गीध जैसी चिड़ियोंकी दृष्टि बहुत तीव्र होती है। इसके बाद मांसभुक-शिकारी पशुओंकी दृष्टि तीव्र होती है। शाकभुकोंमें दृष्टिकी तीव्रता सबसे कम होती है। ये सब अपनी सुनने और सूँघनेकी शक्ति ही से अधिक काम लेते हैं।

कुछ पशुओंकी आँखें सिरके अगल बगल होती हैं। ये अपने सामनेकी वस्तु सीधे तौर पर एक साथ दोनों आँखोंसे नहीं देख सकते। एक आँख वस्तु पर केन्द्रित की जाती है और दूसरी आँख दूसराही दृश्य देखती है। इसे एक चक्षु दृष्टि कहते हैं। पर जब आदमीकी तरह आँखें सरमें आगेकी ओर होती हैं तब दोनों आँखें कुछ कुछ भिन्न दृश्य देखती हैं। पर दोनों दृष्टियाँ एक दूसरेको काटती हैं। इसे द्वि-चक्षु दृष्टि कहते हैं। आगेकी ओर आँखें होने से वस्तुकी दूरीका भान हो जाता है। गाय और घोड़ेको शायद अवस्थानुसार दोनों तरहकी दृष्टियां काममें लानेकी शक्ति है। जब ऐसे पशुका ध्यान आगेकी वस्तु पर जाता है तब दोनों आँखें जरा भीतरकी ओर तिरछी हो जाती हैं, दोनों कान खड़े हो जाते हैं और वह दोनों आँखोंसे देखता है। घोड़े और कुत्ते खासकर कान खड़े करते हैं। पर जब वह बगलकी या पीछेकी वस्तु देखना है तो वह एक आँखसे ही काम लेता है। सर जरा सा वस्तुकी ओर घूम जाता है, उधरका कान खड़ा होता है और वह पशु केवल एक चक्षु दृष्टिसे ही काम लेता है।

पशुओंकी यह विचित्रता है कि, उनकी दृष्टि भले ही विकसित हो फिरभी आकस्मिक मामलोंमें वह केवल उनपर भरोसा नहीं करता। पशुपर केवल देखनेका ही असर नहीं होता। वह उसकी जाँच छू और सूँघ कर भी करता है। नाकसे छूने और सूँघनेसे किसी नयी हानिहीन वस्तुसे पशुका डर मिट सकता है।

१२९६. जीभ

जीभ पेशीमय या तन्तुमय इन्द्रिय है। यह रक्तवाहिनियों और नाड़ियोंसे भरी है। इस पर विशेष काम करनेवाली श्लैष्मिककला मढ़ी रहती है। इसमें छोर,

बिचला भाग और मूल होते हैं। घोड़ेकी जीभका छोर नुकीला नहीं होता (चित्र-१७५) पर गायकी जीभका छोर छोटा और गावदुम होता है। घोड़ेकी अपेक्षा गायकी जीभ कम चलती है। गायकी जीभ पर कुब्बकी तरह उभार होता है। यह ओठके पाससे बीचोबीच एक परिखाद्वारा दो भागोंमें बटी है। कुब्ब निगलनेमें बहुत मदत करता है। चबानेवाले दाँतसे रोमन्थन करनेके लिये यह कंठसे पागुरका गोला मूँहमें ले आता है। भेड़-बकरीकी जीभका कुब्ब छोटा होता है। कन्ठिकास्थियाँ कन्ठमें जीभकी जड़ धारण करती हैं।
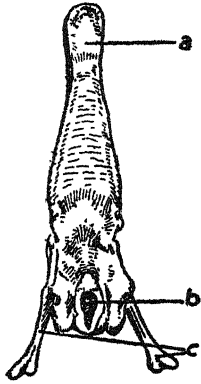
चित्र १५५. घोड़ेकी जीभ। a-छोर, b-कंठका छेद, c-कंठिकास्थिकी दोनों शाखायें।

जीभकी ऊपरी सतह पर छोटे उभार या दाने स्वादांकुर (papillae) होते हैं। ये तीन तरहके होते हैं। एक सौत्रिक (सूत्राकार), दूसरे छत्रिकाकार और तीसरे खातवेष्ठित या द्वीपाकार। **सौत्रिक**, महीन सूतकी तरह होते हैं और पूरी जीभ पर फैले हैं। ये स्पर्शज्ञान वाहिनी हैं। गायमें ये नुकीली और खुरखुरी होती हैं। मांसभुकोंमें ये कँटीली हो जाती हैं। **छत्रिकांकुर** सौत्रिकसे बड़े होते हैं। यह मुख्यरूपसे जीभके छोर और बगलमें होते हैं। ये स्वादज्ञान-वाहक हैं। इनका आकार छत्रककी तरह होता है। गायमें **खातवेष्ठित** २० से ३० के भीतर हैं। मध्य रेखाकी दोनों ओर बहुत पीछेकी ओर तक ये मिलती हैं। खातवेष्ठित प्रत्येक स्वादांकुर खातमें होते हैं।

चबानेके समय जीभ आहारका नियन्त्रण करती है। यह सुकमार ज्ञान इन्द्रिय है। इसमें स्पर्श और स्वाद दोनों ज्ञान होते हैं। यह स्वर पैदा करनेमें भी कुछ हाथ बटाती है। चारा पकड़नेमें गायके लिये यह बहुत जरूरी है। इसके बाद वह निचले कर्तनक दाँतसे कौर काटती है।

गाय अपनी नाक साफ करनेका काम जीभसे लेती है। प्रसाधनके काममें भी यह आती है। जैसे देहके बहुतसे भागको चाटना। नवजात वत्सके शरीरसे कफ जैसा पदार्थ भी जीभसे गाय साफ करती है। गाय अपनी जीभसे देह साफ करती और सुखाती है। पशुओंकी आदत अपने घावोंको चाटनेकी होती है।

चाटनेसे आराम नहीं होता। खाली मैल और पीब साफ होती हैं। कभी कभी पालतू जानवरोंमें चाटनेसे घाव भरनेमें रुकावट होती है। इससे जलन बनी रहती है।

१२६७. दाँत

दाँत कड़े, सफेद या ईषत् पिंगल हैं। यह ऊपर और नीचेके जबड़ोंके उदूखलोंमें जमे रहते हैं। यह आहारको पकड़ उसे काटते और चबाते हैं। मांसभुकोंमें ये आक्रमणात्मक और रक्षात्मक हथियारका भी काम करते हैं। पर गाय शायद ही इनसे यह काम लेती है। यद्यपि ऐसी भी गायें हैं जो अपने सेवकोंको काटनेकी कोशिश करतीं और कभी कभी काट भी लेती हैं। गायोंके दाँतके दो मुख्य भेद हैं। एक **कर्तनक** और दूसरा **चर्वणक** एक तीसरा वर्ग **रदनक**, गायमें मूल अवस्थामें होता है। यद्यपि यह कर्तनककी ही तरह होता है फिर भी उससे जरा भिन्न।

गायके ऊपरी जबड़ेमें कर्तनक नहीं होते। इसके बदले एक गद्दी होती है।

चर्वणक मुँहमें बहुत पीछेकी ओर होते हैं। चर्वणक और कर्तनकके बीच जबड़ेमें कोई दाँत नहीं होता, जगह खाली रहती है।

प्रत्येक दाँतको एक शीर्ष होता है और वह दन्तवल्क (enamel) से ढका रहता है। मूल उस भागको कहते हैं जो उदूखलमें रहता है। उदूखलमें दाँतको कसनेवाला एक सीमेंट होता है। गायके, कर्तनकोंके संकुचित भागको **ग्रीवा** कहते हैं। शीर्ष और मूलकी संधि यही होती है। चर्वणकको ग्रीवा नहीं होती। दाँतके शीर्षका आवरण वल्कका होता है। दन्तपदार्थ या दन्तोपादानको अंग्रेजीमें **डेन्टिन** कहते हैं। यह भीतर से खोखला होता है जिसमें एक प्रकारकी मुलायम चीज भरी होती है। यह नाड़ी और रक्तवाहिनियोंका पिंड है। कोई कोई इसे दन्त मज्जा (tooth-pulp) भी कहते हैं।

दाँतोंसे पशुओंकी उमरका अंदाज लग सकता है। इसलिये इनका निरीक्षण परीक्षण जरूरी है। यह अन्दाज बहुत कुछ सही होते हुए भी शास्त्रशुद्ध नहीं है। क्योंकि, विभिन्न नस्लोंमें यह भिन्न भिन्न होता है और एक ही नस्लके पशुमें भी भिन्नता रहती है। पशुपालनके अनैसर्गिक उपाय, पौष्टिक चारा जबरदस्ती खिलाना, और प्रकारोंके चुनावका असर दाँत निकलने पर पड़ता है। इसलिये पहाड़ी प्रकारकी

गाय और सुपरिचित तथा अच्छी तरह पाली नस्लोंमें काफी भेद मिल सकता है।

बछड़ेको पहले दूधके दांत निकलते हैं। थोड़े दिनके बाद यह गिरने लगते हैं। साथ ही नये स्थायी "द्विज" दाँत निकलते हैं। गायके दूधके दाँत नीचेके हिसाबसे हैं :—

		कर्तनक	चर्वणक
ऊपरी जबड़ा	...	०	६
निचला जबड़ा	...	८	६

द्विज दाँत नीचेके हिसाबसे हैं :—

		कर्तनक	चर्वणक
ऊपरी जबड़ा	...	०	१२
निचला जबड़ा	...	८	१२

ऊपरी जबड़ेमें दाँत नहीं होते। उसमें कड़ी सौत्रिक तन्तुकी घनी गद्दी है। निचले कर्तनक इसीसे भिड़ कर काटते हैं।

कर्तनक दाँत जबड़ेमें विरल (ढीलेतौर पर) जड़े होते हैं। इनका शीर्ष कुदालके आकारका होता है और गर्दन संकुचित। दूधके अस्थायी कर्तनक छोटे और चुरमुरे होते हैं। इन्हें और स्थायी द्विजोंको पहचाननेमें कठिनाई नहीं होती।
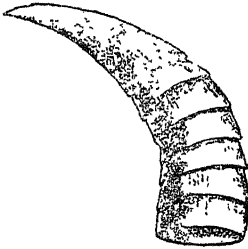
चित्र १५६.
सींगकी चूड़ीसे उमर मालूम होती है।

गायका चर्वणक क्रमसे आकारमें बड़ा रहता है। पहला बिलकुल छोटा होता है।

पहले तीनकी जितनी लम्बाई होती है वह पिछले तीनकी लम्बाईसे प्रायः आधी है।

दाँत प्रायः निश्चित समय पर निकलते हैं। उमर कर्तनकसे मालूम की जाती है। इनके निकलनेका समय चर्वणकके निकलनेके समयसे अधिक महत्वका है।

सींगकी चूड़ियोंसे भी उमर मालूम की जा सकती है। तीसरे सालसे शुरू होकर हर साल एक नयी चूड़ी बढ़ती है। इस तरह चूड़ीकी सख्यामें दो जोड़नेसे

पशुकी उमर निकल आती है। पर कभी कभी चूड़ी स्पष्ट नहीं होती इससे उमर जाननेमें मदद नहीं मिलती।

१२६८. कर्तनक दाँत

जन्मके समय : मसूड़ेके नीचे ८ दूधके दाँत टटोले जा सकते हैं। ये सब पहले महीनेमें स्पष्ट निकल आते हैं। जबड़ेमें जगह कम होती है इससे यह सब एक जगह इकट्ठे रहते हैं।
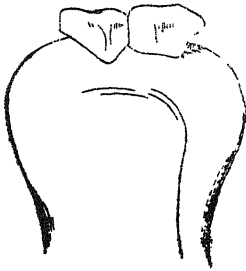
चित्र १५७. जन्मके समय दूधके कर्त्तनक।

एक वर्षकी उमरमें : दूधके दाँतके पहले यानी बीचके जोड़े बहुत छीजे मालूम होते हैं। बिचलेकी दोनों तरफके एक एक यानी दूसरे जोड़े भी छीजे रहते हैं। तीसरे और चौथे जोड़े बहुत कम छीजे रहते हैं।

१५ महीनेकी उमरमें : पहले और दूसरे जोड़े बिलकुल घिसे रहते हैं, तीसरा भी काफी घिसा रहता है। चौथा जोड़ा कुछ ही घिसा रहता है। अब इनके बीच कुछ जगह खाली हो जाती है और एक दूसरेसे हटा रहता है।

१८ महीनेकी उमरमें : आठवाँ दाँत बहुत दूर हट जाता है। क्योंकि जबड़ा अधिक चौड़ा हो गया है। चारों जोड़े छीज जाते हैं।
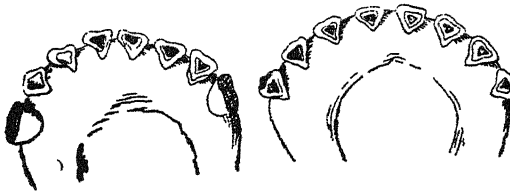
पन्द्रह महीना। अठारह महीना।

चित्र १५८. दूधके दाँत।

दो वर्षकी उमरमें : ब्रिज दाँतोंकी पहली जोड़ी निकलती है जो दूधके दाँतको ठेल कर बाहर कर देती है।

तीन वर्षकी उमरमें : द्विज दाँतोंकी पहली और दूसरी जोड़ी निकल आती है और उनका घिसना भी शुरू हो जाता है। पर दूधके दाँतोंको तीसरी और चौथी जाड़ाकी जड़ें अभी तक रहती हैं।
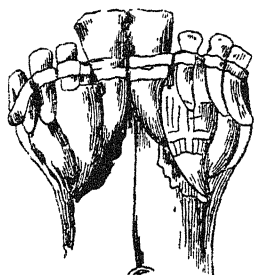
दो वर्ष। तीन वर्ष।

चित्र १५९. दूध और द्विज दाँत।

चार वर्षकी उमरमें : इनकी जगह द्विज दाँतोंकी तीसरी जोड़ी निकल आती है। पर दूधके दाँतोंकी चौथी जोड़ीकी खूँटी अभी तक रहती है।

पाँच वर्षकी उमरमें : सभी द्विज दाँत निकल आते हैं। पहली और दूसरी जोड़ी बहुत घिस जाती है। और तीसरी जोडी कुछ घिसती है। चौथी जोड़ीमें नया उठान (उत्थान) आता है।

चार वर्ष। पाँच वर्ष।

चित्र १६०. दूध और द्विज दाँत।

इसके बाद घिसाईके परिमाण पर ही उमर आँकी जा सकती है।

सातवें वर्षमें दाँतोंकी ऊपरी सतहके आधे तक घिस जाती है।

दसवें वर्षमें दाँतमें शीर्षका अधिक भाग घिस जाता है। केवल कुछ वल्क रह जाता है।

१४ से १६ वर्षमें सभी वल्क मिट जाता है, केवल कटोरीदार खूँटी रह जाती है।

१२९९. चर्वणक दाँत

गायको प्रत्येक जबड़ेमें ६, ६ के हिसाबसे कुल १२ दूधके चर्वणक दांत निकलते हैं। चर्वणकोंका आकार क्रमशः पहलेसे अंतिम तक बढ़ता है। मसूड़ेकी जितनी जगह अंतिम तीन दाँत घेरते हैं उनका आधा ही पहले तीन घेरते हैं। जिस तरह दूधके कर्तनककी जगह द्विज निकलते हैं उसी तरह दूधके चर्वणककी जगह द्विज चर्वणक। द्विज चर्वणक कुल चौबीस होते हैं। हर जबड़ेमें १२ और हर जबड़ेमें दोनों ओर छ छ।

१३००. नाक और गन्ध

गन्धका ज्ञान नाककी झिल्ली और नाड़ी केन्द्रोंमें होता है। गन्धयुक्त पदार्थोंके परमाणु हवामें उड़ते हैं, वह जब नाकमें पहुँचते हैं तो गन्धज्ञान होता है। कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनका प्रभाव किसी किसी पशु पर बहुत जल्दी होता है। मांसभुक मांस और खूनकी गन्धसे आकृष्ट होते हैं। और घास, हरियाली, अन्न और वनस्पतियाँ शाकभुकोंकी ज्ञान-इन्द्रियोंको जगाते हैं। शाकभुकोंको मांस और खूनकी गन्ध अरुचिकर है और इससे उन्हें बहुत डर और घबराहट हो सकती है। बैल शायद गन्धसे ही कसाईखानेको दूरसे जान लेते हैं और उधर जानेमें बहुत हिचकते हैं। कभी कभी तो वे पूरी तरह बेकाबू हो जाते हैं और तुड़ा कर भागते हैं। बहुतसे शाकभुक अपने शत्रु मांसभुकको दूरसे ही ताड़ जाते हैं। यदि हवा अनुकूल हो तो हिरण, मरी या शिकार पर बैठे मांसभुकको दो मीलसे ताड़ लेते हैं।

अपने इस गन्धज्ञानसे ढोर जहरीली घास पहचान लेते हैं और अपना चारा पसन्द करते हैं। वे अपने रखवालेको देखे बिना उसकी गन्धसे ही उसे जान लेते हैं। अपने बछड़ेको भी देखे बिना गन्धसे पहचानते हैं। गरम होने पर मादाकी तरफ नर गन्धसे ही खिंचता है। ऋतुकालमें, मादासे तीव्र गन्ध-पदार्थ निकलते हैं जिससे उस जातिका नर उनकी ओर आकृष्ट होता है।

गायें अपने मरे बच्चोंकी खाल पहचानती हैं। उनकी खालके कुछ भागसे मढ़े ढाँचेसे उन्हें धोखा दिया जा सकता है। गन्धका मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंके जीवनमें कहीं अधिक महत्वका काम है।

१३०१. प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ

यकृत, वृक्क, आदि ग्रन्थियोंमें प्रणालियाँ होती हैं। ये अपना स्राव प्रणालियोंमें डालती हैं। पर एक प्रकारकी ग्रन्थियाँ और हैं जिन्हें न तो प्रणाली होती है और न वे अपना रस उसमें डालती हैं। इन्हें **प्रणाली-विहीन ग्रन्थि** कहते हैं। इनमें भी स्राव होता है। इनका स्राव रक्तश्रोतमें जाता है जिसका प्रभाव स्थानीय न होकर दूर अंगोंमें होता है। कुछ प्रणालीयुक्त ग्रन्थियाँ ऐसी भी हैं जो प्रणालियों द्वारा स्राव करनेके अतिरिक्त अतःस्राव भी करती हैं। अंतःस्रावी ग्रन्थियोंको **अन्तर्ग्रन्थि** (endocrine organs) कहते हैं। किसीके व्यक्तित्वका नियमन ये ग्रन्थियाँ बहुत हद तक करती हैं। चुल्लिका (thyroid), बालचुल्लिका (thymus), अधिवृक्क (suprarenal), पोषणिका (pituitary), दृक्कन्दिका (pineal) और प्रजनन ग्रन्थि (gonads) मुख्य अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ हैं।

ग्रन्थियोंसे स्राव होता है। हरमोन या प्रभावी नामके स्राव विशेष तरहके हैं। **ऑरगेनो थेरापी** नामकी एक चिकित्सा चली है। इसमें इन ग्रन्थियोंका निचोड़ दिया जाता है। अधिवृक्क-रस (एड्रिनेलिन) अधिवृक्कसे प्राप्त किया जाता है। चुल्लिकासे सूखा थायरॉयड, थायरॉयड एक्सट्रैक्ट और थायरोक्सिन प्राप्त किया जाता है। पैरा-थायरॉयड प्रोडक्ट परिचुल्लिकासे प्राप्त किया जाता है। पोषणिकासे पिट्यूटरी एक्सट्रैक्ट प्राप्त किया जाता है। डिम्बकोष और जननेन्द्रियोंका भी उपयोग होता है।

चुल्लिका ग्रन्थि : कंठके पास क्लोम या स्वासनलिकाकी दोनों तरफ इसके खन्ड गरदनकी लम्बाईमें होते हैं। इनमें एक लसदार पदार्थ होता है जिसमें आयडिन बहुत होता है।

यह स्फूर्तिदायक ग्रन्थि है। यह देहकी वृद्धि करती और आँख, त्वचा, केश, नख, दाँत आदिके कुछ कोषोंकी क्रियामें सहायता देती है। पशुकी साधारण वृद्धि और विकाश इसीकी बदौलत है। यदि यह ग्रन्थि स्राव न करे तो देहकी साधारण वृद्धि दब जाती है। चुल्लिकाके स्रावमें विषघ्न (anti-toxic) पदार्थ भी हैं।

जीवाणुसे होनेवाली बीमारी यह स्राव रोकता है। यह सिद्ध हो चुका है कि, चुल्लिका ग्रन्थियाँ मस्तिष्ककी क्रिया, शरीरताप और श्वास क्रियाका नियमन करती हैं।

चुल्लिकाके स्रावकी कमीसे हुआ मनुष्योंका रोग आराम करने या यह कमी पूरी करनेके लिये तुरतके मारे पशुओंकी चुल्लिकासे बनाया पदार्थ या रस काममें लाया जाता है।

पोषणिका: पोषणिका तन्तुओंका एक पिन्ड है जिसका व्यास एक इंचके लगभग है। यह मस्तिष्कके आधारसे अधोभागमें जतुकास्थिके खातमें स्थित है। इसके दोनों खडसे हरमोन या उत्तेजक अंतः स्राव पैदा होते हैं। अगले खडसे पैदा हुआ स्रावका स्त्रियोंके डिम्बाशयकी क्रियाओं पर गहरा प्रभाव होता है। गाभिन पशुके पेशाबमें यह देखा जाता है। मनुष्यके गर्भ निर्णय परीक्षाका आधार यही है। पशुओंमें रज उत्तेजित करनेके लिये इसका प्रयोग होता है। पिछला खंड सरल पेशियों पर एक उत्तेजक प्रभाव पैदा करता है। गर्भाशयकी अचेतनताके कारण कष्टकारी प्रसवमें गर्भाशय पर इसका प्रभाव डालनेके लिये इसका प्रयोग होता है।

अधिवृक्क: ये दो ग्रन्थियाँ हैं जो वृक्कके पास उसकी दोनों बगल होती हैं। इन प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंका स्राव रक्तस्रोतमें सीधा ही गिरता है। इसकी तौल एक से दो आउन्स तक होती है। यह लगभग ३$\frac{3}{2}$ इंच चौड़ी × $\frac{1}{2}$ इंच मोटी है। एड्रिनलिन इससे निकाला जाता है। इसमें हृदयकी पेशी पुष्ट करने और धड़कन बढ़ानेका गुण है। यह रक्त-वाहिनियोंका संकोच करता है जिससे रक्त चाप बढ़ जाता है। एड्रिनलिन साधारण तौर पर भेड़की ग्रन्थिसे निकाला जाता है। यह ग्रन्थि सवेदना-तन्त्रके लिये स्फूर्तिके भडारका काम करती है।

दृक्कांद्रिका: पोषणिकाके पास एक छोटी खातमें यह रहती है। इसके स्रावसे यौवन प्राप्त होता है—जननेन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं। स्वर बदलना, वाणीका विकाश होना, लज्जालुता, उत्तेजना आदि यौवनागमके चिह्न मनुष्यमें उदय होते हैं। यह ग्रन्थि अधेड़ और बुढ़ापेकी उमरमें निश्चेष्ट रहती है।

प्रजनन ग्रन्थियाँ: पुरुषोंका वृषण (अडकोष) और स्त्रियोंका डिम्बकोष (अंतःफल) इन ग्रन्थियोंके अंतर्गत हैं। इन ग्रन्थियोंसे क्रमशः पुं-बीज (sperm) और स्त्री-बीज (डिम्ब-ovum) ये वहिःस्राव होते हैं। इनका प्रयोजन प्रजोत्पत्ति है। इन वहिःस्रावके अतिरिक्त इनसे अन्तःस्राव भी होते हैं

जिनसे स्त्री-पुरुषोंकी दैहिक और मानसिक विशेषता आती है। यौवनागमके पहले डिम्बकोष या वृषण निकाल देनेसे स्त्री पुरुषोंमें नीचे लिखे परिवर्तन होते हैं :—

पुरुषोंमें : जननेन्द्रियाँ बढ़नी नहीं हैं। स्वर बच्चोंसा बना रहता है। पेशियाँ कमजोर हो जानी हैं। दिमाग मंदा और उदासीन हो जाता है और चित्तमें ग्लानि हो जाती है। उनकी मर्दानगी मिट जानी है और जनानापन आ जाना है। बछड़ेमें पौरुष लक्षण जैसे धनुषाकार गर्दन, विशाल देह, चौड़ा ललाट, स्थूल सींग और गंभीर स्वर नहीं प्रगट होते। बैल साँढ़की अपेक्षा गायसा मालूम होता है। सींग भी गायके सींगसे हो जाते हैं।

स्त्रियोंमें : मनुष्योंमें स्त्रीका डिम्बकोष निकाल देने पर श्रोणि नहीं बढ़ती, छाती नहीं उठती और पुरुषोंकी तरह मुँह पर दाढ़ी निकल आती है। स्वर कर्कश हो जाता है और दिमाग सुस्त। स्त्रीका स्त्रीत्व नष्ट हो जाता है और पुरुषता आ जाती है। गायका डिम्बकोष हटानेसे भी यही होगा। गाय उद्दंड हो जाती है। वह जन्मसे स्त्री और स्वभावसे पुरुष बन जाती है।

स्त्री पुरुषके लक्षणोंके विकाशमें अंतःस्रावका मुख्य हाथ रहता है।

१३०२. देहकी उष्णता और तापमान

देहके तापमानके अनुसार ठंढे खून और गरम खूनवाले पशुओंके ये दो भेद हैं। ठंढे खूनवाले प्राणियोंमें बिना रीढ़वाले सरीसृप (reptiles), जलथलचारी (amphibians) और मछलियाँ हैं। उनका तापमान आसपासके तापमानके अनुसार कुछ सीमामें बदलता है।

गरम खूनवालोंमें स्तनपायी और पक्षी हैं। आसपासका तापमान घटे या बढ़े पर इनका तापमान एक रहता है। गरम खूनवालोंको देहमें उष्णता पैदा होती है और फैलती रहती है। इस तरह तापमानका संतुलन होता है। पेशियोंकी क्रिया और जीवनी क्रियामें ऑक्सीजनका जलना उष्णताका मुख्य उद्गम है। फेफड़े और त्वचा शीतल करनेके साधन हैं। त्वचामें स्वेदतंत्र शीतलता लाना है। पशु जब काम करता है तब ऑक्सीजन अधिक अधिक जलता है और उसे गर्मी मालूम होती है। त्वचा जब गरम हो जाती है तब अतिरिक्त ताप, परिचालन (conduction), विकीर्णन (radiation) और प्रस्वेदन (perspiration) के द्वारा बाहर कर दिया जाता है। यदि ठंढे दिनोंमें भी गरम दिनोंके जितना रक्त

त्वचामें आवे तो बहुत अधिक ताप नष्ट होगा। पर ऐसा नहीं होने दिया जाता। ठंडकसे रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं। इसलिये त्वचामें कम रक्त आता है। इससे पसीना नहीं होता और उष्णता बनी रहती है। गरम दिनमें आसपासका तापमान अधिक रहता है इससे विकीर्णनसे शीतलता कम होती है। तब त्वचाकी रक्त वाहिनियाँ फैल जाती हैं, इससे त्वचामें अधिक रक्त आता है, जिससे पसीना अधिक निकलता है। यह भाफ बन उड़ता है जिससे तरावट होती है और देहका तापमान साधारण बना रहता है। फेफड़ेसे उल्टी साँसमें नमी आती है। इस तरह भी बहुतसी गरमी बाहर निकलती है। गरमी अधिक नमी बाहर निकालती है जिससे शरीरतंन्त्र शीतल रहता है।

पशुओंका साधारण तापमान एक सीमामें जुदा जुदा है। गायका साधारण तापमान १०१·८ से १०२·४ डिग्री तक है। गायके तापमानकी औसत १०२ डिग्री फा० है और घोड़ेकी १००·५ डिग्री फा० है। दुधार गायका तापमान कुछ जादे है। जवानीमें तापमान अधिक और बुढ़ापेमें कम होता है।

तापमान थरमामीटरकी सहायतासे देखा जाता है पशुओंका तापमान लेनेके लिये सबसे अच्छी जगह गुदा है। गायकी जननेन्द्रियमें भी थरमामीटर लगाया जा सकता है। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि, गुदासे जननेन्द्रियका तापमान आधा डिग्री जादे होता है।

ठंढे खूनवाले पशु जैसे मेढ़क या साँपमें ताप नियंत्रण करनेका साधन नहीं है। इसलिये जाड़ोंमें इनका ताप गिर जाता है और गरमियोंमें बढ़। जाड़ोंकी ठंढ इन पशुओंको निश्चेष्ट कर देती है। वसन्तके आगमन पर इनमें जान आ जाती है और ये चेष्टावन्त हो जाते हैं।

भारतमें गाय

दूसरा खंड

छठा भाग

पशुओंकी औषधियाँ, निघन्टु और औषधिक्रिया-शास्त्र

छठे भागका विषय परिचय

वैद्य जिन औषधियोंसे काम लेते हैं **निघन्टु** (मेटेरिया मेडिका) में उनके नाम, प्राप्तिके साधन, कहाँ कहाँ मिलती हैं, उनके स्वरूप और रचनाका वर्णन होता है। उन्हीं दवाओंकी शरीर पर क्या क्रिया होती है यह **औषधि क्रिया-शास्त्र** (फारमाकोलौजी) में वर्णन किया जाता है। आगेके पन्नोंमें कुछ मुख्य औषधियोंका जिक्र है। उनके लक्षण आदि बताये गये हैं। उनका उपयोग भी बताया गया है।

औषधि-निर्माण (फार्मेसी) भी एक सहयोगी विद्या है। इस पोथीमें दवा बनानेकी विभिन्न प्रक्रियाओंके लिये अलग अध्याय नहीं जोड़ा गया है।

बीमारीके वर्णनमें जहाँ उसकी दवा बतायी गयी है वहीं यदि उसके बनानेकी कोई विशेष प्रक्रिया है तो वह बता दी गयी है।

३६वें अध्यायमें दवाओंकी एक सूची दी गयी है और उनके उपयोग बताये गये हैं। रोगोंकी भी एक सूची दी गयी है जिनमें ये दवायें काममें आती हैं।

अध्याय ३५

पशुओंकी औषधियाँ

१३०३. Acid Arsenious (एसिड आर्सेनियस) संखिया

सफेद संखिया। आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड। अर्सेनियस ऑकसाइड।

यह पदार्थ स्वादहीन, गन्धहीन और पानीमें एक सैकड़ा तक घुल सकनेवाला है।

संखिया बड़ा कड़ा बिष है। यह परोपजीवीनाशक या एन्टीपैरेसाईट और कोथघ्न या एन्टीसेप्टीक है। गोदाममें रखनेके लिये कच्ची खाल (अधौड़ी) को शुद्ध करते हैं। उसके लिये संखिया उतनी ही तौलके सोडामें मिलायी जाती है। फिर उसे दूने खौलते पानीमें घोला जाता है। तौलके २५ गुना तक पानी या कच्ची खालके चलानका कानून जितना बतावे उतनेमें मिलाकर काममें लायी जाती है।

हल्की मात्रामें देनेपर संखिया **दीपक** (भूख बढ़ानेवाली) और **पाचक** है। संखियाकी सबसे मुख्य औषधिक्रिया रक्त बनाने वाली इन्द्रियों पर होती है। अस्थिमज्जाके **श्वेतकणिका** बनानेवाले पदार्थकी वृद्धि यह करती है। पर यदि रोगसे रक्त बदल जाता है तो संखिया श्वेतकणिकाओंकी असाधारण उत्पत्ति रोक कर लाल कणिकाओंको साधारण अनुपातमें ले आती है। इस तरह घातक पांडु (पर्नीसस एनिमियाँ) में यह **लाल कणिकाओंकी** संख्या बढ़ाती और ल्यूकेमिआमें श्वेतकणिकाएँ कम करती है।

ओषधिमात्रामें इसका सेवन **नाड़ीतन्त्रको** सचेष्ट करता है। वृद्धिंगत तरुण पशुओंकी दुर्बलतामें संखियासे हड्डी पुष्ट होती है। ऐसा माना जाता है कि पशुओंकी पोषणक्रियाके लिये संखिया अनुकूल होती है।

त्वचा पर इसका गुणकारी प्रभाव होता है। बाल घना करती और त्वचाके नीचेका स्नेह या चर्बी बढ़ाती है।

रक्ताल्पता या ऐनीमियाके लिये सखिया बढ़िया दवाओंमें एक है। इसे कुचला (नक्स भोमिका या स्ट्रिकनीन) और लौहके साथ देना होता है। पहले थोड़ी मात्रामें देना चाहिये। फिर संखिया सहनेकी आदत हो जाने पर मात्रा बढ़ानी चाहिये। बार बार सखिया देनेसे सपृक्तताकी सीमा हो जाती है। ऐसी हालतमें पलकें सूज जाती हैं और उनमें खुजली होने लगती है। सड़ा या जहरवाद रोगमें सखिया थोड़ी मात्रामें खिलानेसे फायदा होता है। मात्रा ७ ग्रेन तक बढ़ायी जा सकता है और प्रति दिन ऐसी दो मात्राएँ दे सकते हैं।

मात्र. (सयानोंमें पुष्टिके लिये):—३ से ५ ग्रेन।

विषप्रयोग : ढोरको विष देनेमें सखिया से बहुत काम लिया जाता है। यह स्वाद और गन्धहीन सफेद बुकनी होती है। इसलिये आसानीसे घास पर छिड़की जा सकती है या केलेमें डालकर या गुड़में मिला कर खिलायी जा सकती है। ३½ से ७ ड्राममें बड़े आकारकी गाय मर जायगी।

विषप्रयोगके लक्षण : पेटमें जोरका दर्द, तेज साँस, कै और जोरकी प्यास होती हैं। थोड़ी देरके बाद दस्त शुरू होते हैं। दस्त इतने जादे होते हैं कि **शव-परीक्षामें** पेट या अँतड़ी बिलकुल खाली मिलती है। दस्तके बाद शिथिलता या बेहोशी (कोलैप्स) और मृत्यु होती है।

काफी देर हो जाने पर आराम होना कठिन है। तुरतकी घटनामें लसीली चीजें पिलाना गुणकारी होता है क्योंकि यह आचूषण रोकता है। तीसी या इसफगोलकी लसी अधिक मात्रामें पिलायी जा सकती है। हाइड्रेटेड आयरन ऑक्साइड विष दूर करनेके लिये बड़ी मात्रामें दिया जा सकता है। यह कसीस या फेरस सल्फेट और कपड़े धोनेका सोडा या सोडा कारबोनेट से प्रक्षेप (प्रेसीपिटेट) करके बनाया जाता है।

स्ट्रिकनीन और कपूर युक्त तेल (कैम्फर इन ऑयल) की सूई लगानेसे हृदय को बल मिल सकता है। इससे उसकी कमजोरी और निष्क्रियता मिटेगी।

१३०४. Acid Boric and Borax : बोरिक एसिड और सुहागा

बोरिक एसिडकी सफेद बुकनी होती है। यह छूनेमें चिकनी मालूम होती है। यह १६ गुने पानीमें घुल सकती है। इसका जरा जरा कटु स्वाद है। यह

४ गुने ग्लिसरीनमें घुल सकती है। ग्लिसरीनमें घुली बोरिक एसिडसे बोरोग्लिसरीन तैयार की जाती है। इसका लेप रोगीके श्लैष्मिक कला पर किया जाता है। जैसे खुरपका रोग अर्थात् मुँह-पाँवकी बीमारीमें।

बोरिक एसिड अनुत्तापक (नन-इरीटेन्ट) है। हल्का **कोथघ्न** (एन्टीसेप्टिक) है। पर इसे छूत नाशक (डिसइनफेक्टेन्ट) वर्गमें नहीं रक्खा जा सकता। कुछ जगह यह फफूँड़ा (मोल्ड) नहीं पड़ने देती। घाव आदि धोनेके लिये इसका २ से ४ प्रतिशतका घोल बहुत अच्छी चीज है। बोरिक एसिडमें स्टार्च या सेलखड़ी (टेक पाउडर) की बुकनी मिला कर फोड़े फुंसी पर छिड़कनेवाली बुकनी बनायी जाती है।

सुहागा (बोरेक्स, सोडियम बाइबोरेट) : साधारण तौर पर रंगहीन पारदर्शी रवे या कण (क्रिस्टल्स) के रूपमें यह पाया जाता है। यह १६ भाग पानीमें घुल जाता है। सुहागा बोरिक एसिडका सोडियम लवण (सोडियम साल्ट) है। इसकी क्रिया बोरिक एसिडसे कम है। यह बोरिक एसिडकी जगह काममें आ सकता है। दहकती आँच पर चढ़ानेसे इसका पानी उड़ जाता है और हलका भुरभुरा पिंड बन जाता है। इसकी बुकनी बनाकर मधु या ग्लिसरीनमें मिला कर श्लैष्मिककलाकी फुड़ियों पर लेप किया जा सकता है। इससे उस स्थानकी हिफाजत होती है।

२ से ५ प्रतिशत सुहागाका पानीमें तैयार घोल **मुँहधोनेके** काम आ सकता है।

१३०५. Acid Carbolic : कारबोलिक एसिड

फेनौल। फेनिक एसिड।

कारबोलिक एसिड सफेद स्फटिक (रवे) के रूपमें मिलती है। पर गरमियोंकी गरमीसे यह कुछ पिघल जाती है। इसकी गन्ध अपनी खास है और स्वाद मीठा तथा दाहक है। इसकी विशेषता यह है कि इसका घोल ५ सैकड़ाका हो सकता है। अधिक प्रतिशतमें यह घुल नहीं सकती। इसलिये कारबोलिक एसिडका पानीका घोल ५% का ही हो सकता है। यदि अधिक प्रतिशतकी जरूरत हो तो इसे तेलमें घोलना होता है जिससे कारबोलिक तेल तैयार होता है। यह तेल और ग्लिसरीनमें बखूबी घुल सकती है।

कार्बोलिक एसिड बीजाणु नाशक है। इसकी बीजाणुनाशकता विभिन्न बोजाणुओं पर (अरगेनिज्म) विभिन्न होती है। एक सैकड़ाका घोल **पूयकारी** जीवाणु (पायोजेनिक बैक्टीरिया) मार सकता है। जीवाणु बीज (स्पोर्स) बहुत प्रतिरोधी होते हैं। इसलिये ५% घोलसे २४ घंटेमें भी धनुषटंकार (टिटेनस) और गिल्टी (एन्थ्रैक्स) के बीज नहीं मरते। इसका १% घोल अनेक जीवाणुओंकी वृद्धि रोकनेमें काफी समर्थ है। कारबोलिक एसिडका अपनापन पानी या तंतुओंके प्रोटीडकी अपेक्षा तेलसे अधिक है। इसलिये तेलमें घुली हुई कारबोलिक एसिड कोथघ्न कामोंके लिये बेकार है।

चमड़े पर लगनेसे चमड़ा सफेद और कमजोर हो जाता है। वहिःत्वक् तुरत नष्ट हो जाता है। यदि कारबोलिक एसिड चमड़ेमें कहीं लग जाय तो अधिक हानि रोकनेके लिये उस जगहको बार बार तेलसे धोना चाहिये। तेलमें कारबोलिक एसिड घुल जाता है और जितना अंश चमड़ेमें घुसा नहीं है वह हट जाता है। यदि ५% कारबोलिक-जलसे देर तक त्वचाका संपर्क रहे तो उससे उसे हानि पहुँचती है और इससे स्थानोय गैंगरीन भी हो सकती है। बहुतसे परोपजीवियोंके लिये कारबोलिक एसिड विष है जैसे कि पिस्सू, किलनी, कुकुरमच्छी आदि।

कारबोलिक एसिड जहाँ लगती है वहाँ सुन्न करती है इसलिये खुजली मिटाती है। इस कामके लिये एकसे दो सैकड़ा घोल या मालिश (तेल) का व्यवहार हो सकता है। धनुष्टंकार पर इसको भली क्रियाकी प्रशंसा हो चुकी है। जिन पशुओंको धनुष्टकार हो जाता है वह कारबोलिक एसिड खास तौरपर सह सकते हैं।

कुत्ते और बिल्ली खास तौरपर इसे सह नहीं सकते। इसलिये ये पशु जहाँ रखे जाते हों वहाँ इससे छूत मिटाने या संक्रमण निवारणका काम नहीं लेना चाहिये। यदि इन पशुओंमें यह जरासा भी लग जाय तो अनिष्ट हो जा सकता है।

१३०६. Acid Salicylic and Sodium Salicylate : सैलीसिलिक एसिड और सोडियम सैलिसिलेट

विन्टरग्रीनके तेलमें सैलिसिलिक एसिड स्वभावसे ही होती है और बनावटी भी तैयार होती है। सफेद छोटे और सूई जैसे स्फटिक या रवे के रूपमें यह मिलती है। इसके स्वादमें मिठास होती है जो अंतमें दाहक हो जाता है। यह पानीमें बहुत कम घुल सकती है। इसके घुलनेका परिमाण (घुलनशीलता) लगभग ५०० में १ है। इस तेजाबका नमक सोडियम सैलीसिलेट काममें अधिक आता है। यह

नमक पानीमें घुल सकता है। सैलीसिलिक तेजाबसे नमक (सोडियम सैलीसिलेट) की मात्रा दूनी देनी चाहिये।

सलीसिलिक एसिड : ५०० भागमें १ भाग सैलीसिलिक एसिडका घोल **कोथघ्न** है। **फफूँड़ा** और **किण्व** (ईस्ट) की वृद्धि यह रोक देता है। खाने पीनेकी चीजोंको सड़नेसे बचानेके लिये इसका उपयोग बहुत होता है। इस कामके लिये यह हानिरहित सुरक्षक पदार्थ है।

सैलीसिलिक एसिड **परोपजीवियोंका नाशक** है। यह वहिस्त्वक् कोमल करता है और जलन बिना ठेला या घट्ठा साफ करता है। चर्म रोगोंमें चमड़ीको नीरोग करता है।

परोपजीवी-नाशक होनेके कारण इसे दाद जैसी बीमारी दूर करनेके काममें लाते हैं। ठेला, मस्सा (वार्टस्) आदि नरम करनेके लिये इसका व्यवहार होता है। छाजन (उकवत, एकजेमा) आदिमें इसे लगाते हैं। पसीना और लसीका जैसी चीजोंका बहना रोकती है। इसलिये प्रचुर मेदस्राव (सेबोरिया) में यह गुणकारी है।

मात्रा :— १ ड्रामसे १ आउन्स।

सोडियम सैलीसिलेट : सोडियम सैलीसिलेट पानीमें घुल सकता है। इसलिये खानेकी दवामें यही दिया जाता है। पेशियोंके वात और **संधिप्रदाह** (र्यूमेटिक अर्थ्राइटिस) के लिये यह खास दवा है। यह सूजन और दर्द मिटाता है। दिलकी गड़बड़ी (कारडिअक कम्प्लीकेशन) का डर इससे कम होता है। **वातग्रस्त संधि** पर इसके घोलकी सूई लगानेसे सुन्दर फल होता है। खानेकी दवामें अधिक मात्रामें सोडा बाइकार्बके साथ यह दिया जाता है।

पाचन-प्रणालीमें संधान या विघटन (फरमेन्टेशन) रोकनेके लिये यह दिया जा सकता है। पचनेमें स्वय यह गड़बड़ी डालता है। परन्तु संधान रोकता है। सोडा बाइकार्बके साथ देनेसे पेटमें यह उतनी जलन पैदा नहीं कर सकता।

मात्रा :—२ ड्राम से २ आउन्स।

दाद या ठेलेमें सैलीसिलिक एसिड ५ से १० सैकड़ा तक मलहमके रूपमें या तेलमें दी जा सकती है।

१३०७. Acid Picric or Trinitrophenol
पिकरिक एसिड या ट्राइनाइट्रोफिनोल

पिकरिक पीले रंगका स्फटिकाकार पदार्थ है। यह गंधकी (सलफिउरिक) तेजाब या कारबोलिक तेजाब पर नाइट्रिक तेजाबकी क्रिया से प्राप्त किया जाता है। पानीमें यह एक सैकड़ा तक घुल सकता है। यह घोलके रूपमें लगानेके काममें आता है। जलने पर इसे लगाने से पीड़ा निवारण होती है और यह **कोथघ्न** होता है। एक प्रतिशत (संपृक्त) घोलमें पट्टी भिगाकर जली जगह पर रख हल्की पट्टी बाँधना चाहिये। घाव यदि गहरा हो या जादे जगह जल गयी हो तो इसे बहुत जादा लगानेसे आचूषण होता है। इससे विष फैल जानेका डर रहता है। छाजन और खोंचमें इसकी पट्टी बाँधना अच्छा रहता है। यह चमड़ेको पीला कर देता है। कानूनके मोताबिक इसे पानीमें रखना होता है।

१३०८. Aloes : ऐलोज : मुसब्बर

मुसब्बर या घृतकुमारीके पत्तोंका रस सुखा कर यह तैयार किया जाता है। भूरा, अपारदर्शी और उत्कट गंधवाला यह पदार्थ है। पानीमें यह कुछ कुछ घुलता है।

पशुओंकी चिकित्सामें इससे **रेचनका** काम मुख्यरूपसे लिया जाता है। जरूरतसे जादे पेट भरा रहने पर यह अच्छा रेचक है। यह तीव्र **अपकर्षणी गति** (पेरिस्टेलसिस) पैदा करता है। मुसब्बर आँतोंके जमे मलको ही बाहर नहीं निकालता, कृमिघ्न औषधिके (एन्थलमिनटिक) व्यवहारके कारण मरी कृमियोंको भी बाहर करता है।

मुसब्बर १२ से ३६ घंटेमें दस्त लाता है। साधारण तौर पर १८ घंटेसे पहले दस्त नहीं आते। इसलिये मैगनीशियम सल्फेट जैसी शीघ्र रेचनकारी औषधियोंके योगमें इसे देना ठीक होता है। दस्त ३ से २४ घटे तक आते रह सकते हैं। ढोर पर इसकी क्रिया होना उतना निश्चित नहीं है जितना घोड़ों पर। रोमन्थाशयमें अधिक सामग्री रहनेसे इसके काममें बाधा पड़ती है। इसलिये ढोरको इसके साथ कोई और सहायक रेचक देना और भी जरूरी है।

अपकर्षणी क्रिया मुसब्बरकी विशेषता है। किन्तु यह क्रिया कुछ तीव्र होती है। इस कारण मुसब्बर देने पर शूलके से लक्षण दिखायी पड़ सकते

हैं। जमे मल और क्रिमियोंको निकालनेके लिये अपकर्षणी क्रिया बहुत बांछनीय है।

मात्रा (ढोरके रेचनमें) :— १ २ आउन्स से २३ आउन्स।

१३०९. Alum : एलम : फिटकरी

बाजारू फिटकरी पोटाशियम एलम है। यह रंगहीन अठपहले स्फटिक या टुकड़ोंके रूपमें मिलती है। इसका स्वाद मीठा कसैला है। यह सात भाग पानीमें घुल सकती है।

त्वचा या श्लैष्मिककला पर इसका घोल लगानेसे गहरा **संकोच** होता है। यह ततुओंके प्रोटीडका प्रक्षेप करती है। द्रवोंको थक्का (कोआगुलेट) बनाती है और ततुओंका संकोच करती है। फिटकरी खूनका दृढ़ थक्का बनाती है। इसलिये खूनका बहना रोकनेमें यह अमूल्य है।

श्लष्मिक कला पर इसका सकोचकारी प्रभाव है इसलिये आंख धाने, गर्भाशयकी दीवारका प्रदाह, कठ प्रदाह, सर्दी और मुखप्रदाह (निनावाँ) में इसका २ से ५ प्रतिशत घोल ब्यवहार किया जा सकता है। मुखप्रदाह के व्रण यदि गहरे और फैले हों तो इसका संपृक्त घाल फाहे से लगाना फायदेका है। भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये यह खिलायी कम जाती है।

१३१०. Ammon Chloride : एमन क्लोराइड : नसादर

नसादर सफेद रवादार बुकनी है। इसका स्वाद नमकीन और ठंढा है। यह पानीमें तुरत घुलता है। राँजने (झालने) और राँजनेका द्रव बनानेके काममें इसका उपयोग बहुत है।

सासकी नलीका स्राव यह बढ़ाता और पतला करता है। इसलिये काश (ब्रोंकाइटिस) में कफ निकालनेके लिये इसे देते हैं। अधिक मात्रामें नसादर देनेसे जलोदरमें फायदा होता है।

मात्रा :—१ से ४ ड्राम।

१३११. Arjun : अर्जुन

संस्कृत—अर्जुन, तामिल—भेल्लैमारुदामारम, बिहार—कहुआ।

अर्जुनका वृक्ष बड़ा होता हैं। यह हिमालय तलके प्रदेश, युक्तप्रान्त, छोटा नागपुर और दक्खिनमें होता है। यह ६० से ८० फूट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल चमड़ा कमाने (टैनिंग) और दवाके काम आती है। हृदयके रोगों और उससे उत्पन्न प्रदाह, जलोदरमें पुराने समयसे ही इसका उपयोग हो रहा है।

यह बहुत जल्दी अपना प्रभाव दिखाता है। हृदय रोग और हौल दिलमें नाड़ी (धमनी) पर इसका प्रभाव सद्यः और स्थायी होता है।

हालकी खोजोंसे सिद्ध हुआ है कि, अर्जुन हृदयको चैतन्य और पुष्ट करता है। क्योंकि यह उसके सकोचका बल बढ़ाता है और इससे विकासकाल (हृदय प्रसारण काल—डायस्टोलिक) दीर्घ होता है। यह हृदयको अनियमित किये बिना उसको धीमा करता है और हृदयके लिये विषका काम कभी नहीं करता। हृदयके रोगोंमें अगर पुष्टि और चेतना पैदा करनी हो तो यह अमूल्य पदार्थ है।

स्थानविशेषके प्रदाह पर इसके सुन्दर फल या असरका कारण रक्त चाप है। प्रयोगों से मालूम हुआ है कि, यह धमनियोंका संकोच करता और रक्तवाहिनियोंकी दीवाल होकर रक्त-कणिकाओंकी राह बढ़ाता है। इसलिये हृदयके एक स्थानीय प्रदाहमें इसका अद्भुत फल होता है। यह दवा पेशाब उतारनेमें भी बहुत असरदार है।

मात्रा :—छाल ½ से १ आउन्स।

मडके साथ इसकी बुकनी देनी चाहिये।

१३१२. Bismuth Carbonate : बिसमथ कारबोनेट

बिसमथ कारबोनेट गन्ध और स्वादहीन सफेद बुकनी है। यह घुल नहीं सकती। स्थानविशेषकी क्रियाके लिये यह या दूसरे बिसमथ लवण दिये जाते हैं। खिलानेसे यह पेट और आँतकी श्लैष्मिक कला पर चिपक जाता है जिससे उस पर हिफाजत करनेवाला आवरण चढ़ जाता है। यह वहाँ जलन नहीं होने देता। इसलिये वहाँके व्रण या क्षत (घाव) को आराम होनेका मौका मिलता है। पेट या आँतकी श्लैष्मिक कला पर इसके चिपकनेसे वहाँके स्रावमें रुकावट होती है। अपकर्षिणी (पेरिस्टैलसिस—कृमिगति) कम हो जाती है। इस तरह यह अतिसार

(पतला दस्त) रोकता है। चिपकने पर बिसमथका रंग काला हो जाता है इसलिये बिसमथ खिलाने पर मलका रंग काला होता है।

बाहरी उपचारमें यह घाव, जली जगह और चर्मरोगोंके चमड़े पर छिड़का जाता है। यह स्राव सुखाता और घावको (क्षत) ढक उसकी हिफाजत करता तथा उसे काफी भरता भी है। अंतःव्रण या पेटके भीतरके घावके भरनेमें यह और असरदार है। खिलानेसे यह मिचली, वमन और पाकाशय-प्रदाह (गेस्ट्राइटिस) की जलन मिटाता है। अतिसारमें अँतड़ीका प्रदाह यह शान्त करता है और उसकी बहुमूल्य दवा है। यह पाचन तंत्रके अनेक रोगों (जैसे सफेद दस्त, खूनी दस्त, पाकाशय व्रण, पाकाशय-प्रदाह आदि) के लिये विशेषकर लाभकारी है।

१३१३. Bone-Meal : Bone-Ash : **हड्डीका चूर्ण : हड्डीकी राख**

हड्डीको भफाकर चूर्ण करने पर हड्डीका चूरा बनता है। इसमें कैलशियम फॉस्फटके सिवा कुछ प्रोटीन होता है। हड्डीको भाफमें कीटाणु-रहित या शुद्ध करनेके बाद $\frac{1}{10}$ इंचकी चलनीमें छाना जाता है।

पशुओंको दिये जानेवाले चारेमें अगर **चूना** (कैलशियम) और **फॉस्फोरस** कम हो तो इससे पूर पड़ती है। बछरुओंको यह थोड़ासा रोज देना चाहिये। सयानोंके चारेको सुधारनेके लिये यह दिया जा सकता है। धानके इलाकेमें इसका देना जरूरी है। सुखंडी या रिकेट रोगमें यह लाभकारी है। चूरेकी जगह हड्डीकी राख काममें लायी जा सकती है।

मात्रा :— नित्य २ से ४-आउन्स।

१३१४. Calcium Carbonate : **कैलशियम कारबोनेट : खड़िया**

पोषणमें कैलशियम महत्वकी वस्तु है। हड्डी चूनेकी बनी होती है। इसमें यह कैलशियम फॉस्फेटके रूपमें होता है। इसलिये चारेमें चूनेकी कमीका बुरा असर हड्डीकी रचना पर पड़ता है। **पेशी, नाड़ी और ग्रान्थयोंकी** सुव्यवस्थाके लिये भी चूना जरूरी है। चूना **खूनको गाढ़ा** करता है। खूनमें उचित मात्रा और अनुपातमें चूना रहना जरूरी है। इसीलिये आहारमें भी। हड्डीमें अस्थिपदार्थ (उपादान) जमते हैं। हड्डीकी बाढ़ अच्छी होनेके लिये अनेक उपकरण चाहिये। **सुखंडी और मृद्वस्थिमें** कैलशियमकी कमी भी एक मुख्य कारण हो सकता है।

यद्यपि फॉस्फोरसकी कमी भी उतनाही महत्वपूर्ण है। इसलिये इनकी कमी कैलशियमसे पूरी की जाती है। सुखंडी रोगमें कैलशियम कैलशियम कारबोनेटके रूपमें भी दिया जा सकता है। कैलशियम कारबोनेट अम्लघ्न (एन्टॅसिड) है। इसलिये पाकाशय-प्रदाहमें अधिक अम्लता रोकनेके लिये काममें लाया जा सकता है। खड़िया (खड़ी) और कैलशियम कारबोनेट रसायन शास्त्रके अनुसार एकही वस्तु है। खड़िया ढोरको खिलायी जा सकती है। चूनेके पत्थर (लाइम स्टोन) का चूर्ण भी वही काम करेगा।

मात्रा :— १ से २ आउन्स।

१३१५. Calcium Chloride : कैलशियम क्लोराइड

यह सफेद टुकड़ोंके रूपमें मिलता है। इसका स्वाद तीखा नमकीन होता है। यह बहुत गलनेवाली चीज है। यदि कुछ देर खुला रहे तो टुकड़ा हवाकी नमीसे गल जाता है। यह बहुत घुलनशील होता है।

कलशियम क्लोराइडमें देहके भीतर और बाहर दोनों जगहोंके खूनका थक्का करनेका गुण है। यह काम दवा खिलानेसे होता है। कैलशियम ग्लूकोनेटसे जलन तो नहीं होती पर फायदा वही होता है। इसलिये यही उसकी जगह काममें ज्यादा आता है।

मात्रा :— $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ ड्राम।

१३१६. Calcium Gluconate : कैलशियम ग्लूकोनेट

कैलशियममें खून जमानेका गुण है। इसलिये खून बहना रोकनेके लिये इसका व्यवहार होता है। भीतरी रक्तस्राव और चोट या क्षतसे रक्तस्राव दोनों रोकनेमें कलशियम काममें आता है। दोनों तरहके रक्त स्राव रोकनेके लिये कैलशियम ग्लूकोनेट खिलाया जा सकता है या शिरामें इसकी सूई लगायी जा सकती है।

भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये ढोरको कैलशियम ग्लूकोनेट खिलानेकी मात्रा $\frac{1}{2}$ से १ आउन्स है। भीतरी रक्तस्राव और हेमाफिलियामें यह देना चाहिये। घावसे अधिक रक्त निकालना रोकनेके लिये उस जगह त्वचाके नीचे या पेशियोंमें इसकी सूई लगानी चाहिये। शिरा या पेशियोंकी सूईमें ५ से १९ प्रतिशत घोल काममें लाना

चाहिये। शिरामें ५ से १० सी० सी० तक डालना चाहिये सो भी धीरे धीरे। शिरामें न डालना जादे अच्छा है।

कैलशियमकी कमीसे दुधार गायोंको **दुग्धज्वर** या **प्रसूत-पक्षाघात** (Parturient paresis) हो जाता है। त्वचामें कैलशियमकी सूई से बहुत अच्छा फल मिलता है। श्री ग्रेगका बताया गुणकारी मिश्रण नीचे लिखा है:—

कैलशियम ग्लूकोनेट	...	२ आउन्स
बोरिक एसिड	...	२ ड्राम
जल	...	१४ आउन्स

पूरी तरह घोल बनानेके लिये सबको साथ उबालना चाहिये। फिर ठंढा होने पर धीरे धीरे चमड़ेमें सूई लगानी चाहिये।

१३१७. Calomel : कैलोमेल : मरक्यूरस क्लोराइड

रसकपूर। सबक्लोराइड ऑफ मरकरी।

कैलोमेल गंधहीन सफद बुकनी है। इसका स्वाद गहरा धातवीय है। यह पानीमें नहीं घुलता। यह पारे से बना और हल्का है। देहके हर भागमें इसका आचूषण हो सकता है। इसलिये इसकी बुकनी खायी जा सकती है या सौफ्ट पैराफिनमें मिलाकर इसके मलहमसे मालिश किया जा सकता है।

पारा शक्तिशाली **कोथघ्न** है। तन्तुओंके प्रोटीडसे यह अलबुमिनोयड बनाता है। कुछ हद तक कैलोमेलमें यह सब गुण हैं। दवाकी मात्रामें कैलोमेल देनेसे यह **जुलाबका** काम करता है। इसके सेवनसे दस्त बहुत आना जरूरी है। अनेक जुलाबोंकी तरह इसको वजह दर्द नहीं होता। यह वृक्कोंको **चेतना** देता है इसलिये पेशाब उतारनेवाला है। खासकर जलोदर जैसी बीमारियोंमें देहमें पानी जमा होने पर इसका पेशाब उतारना स्पष्ट हो जाता है। ग्रन्थि के या अन्य शाथमें चाहे वह लसीकामय हो या सूत्रमय, कैलोमेल लाभदायक है। यह कड़ा **जीवाणुनाशक** है। इसलिये हैजा होने पर आदमीको आंशिक मात्रामें यह बार बार दिया जाता है।

ढोरको आँतोंके कोथघ्नके रूपमें यह दिया जाता है। बच्चोंके **अतिसार** में कैलोमेल कोथघ्नका काम करता है और कष्टकारी वस्तुको बाहर निकालता है।

यह पेशाब उतारता है और पित्तका स्राव बढ़ाता है। इसलिये शरीरसे लसीका या अतिरिक्त जल निकालनेके लिये **पांडु और जलोदरमें** इसका सफल प्रयोग किया जाता है।

कैलोमेल **केंचुआ कृमिका नाशक** है। इसके असरको बढ़ानेके लिये किसी दूसरी परोपजीवी-नाशक दवाके योगमें यह केंचुआ कृमिके लिये दिया जाता है।

छाजनमें (एक्जामा) इसके लगाने से फायदा होता है।– १ आउन्स सफेदा (जिंक ऑक्साइड) में ५ से २० ग्रेन यह मिलाकर इस कामके लिये मलहम बनाना चाहिये।

बहनेवाली **छाजनमें** सफेदाके साथ इसकी बुकनी शोषक और विषनाशक है।

पारेका बना अन्य वस्तुओंकी तरह कैलोमेल भी देहके भीतर कुछ देर रहता है। इसका बुरा असर भी हो सकता है। इससे पारेका विष व्याप सकता है। पारेके विषका पहला लक्षण मुँहमें दिखायी पड़ता है। मसूढ़े और दाँतोंमें दर्द होता है फिर वह सूजते हैं और लार चलने लगती है। जीभ और ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं, सारा चेहरा सूज जाता है, दाँत ढीले पड़ते हैं और गिर जाते हैं। साँसमें दुर्गन्ध आती है। इनमेंसे कोई लक्षण जैसे दिखायी दे कि सावधान हो जाना चाहिये और जबतक ये लक्षण खतम न हो जायँ कैलोमल देना बन्द कर देना चाहिये। सतर्कताके लिये कैलोमेल देनेके दूसरे दिन **मैगनिशियम सल्फेटकी** एक मात्रा दे देनी चाहिये। इससे देहमें कैलोमेल जमा नहीं होगा।

दर्द, लार या मुँहकी सूजन दिखायी दे तो पोटेशियम क्लोरेटसे धोना चाहिये। ½ से १ ड्रामकी मात्रामें खिलाना भी चाहिये। मैगसल्फ जैसी दस्तावर चीजोंसे पेटसे पारा साफ कर देना चाहिये। मुँह धोनेके लिये एक आउन्स पानी में १० से २० ग्रेन पोटाशियम क्लोरेट मिलाना चाहिये।

१३१८. Camphor : कर्पूर (कपूर)

कपूर दानेदार सफेद टुकड़ा होता है। इसमें खास तरहकी मीठी गन्ध होती है। यह अलकोहल या मद्यसारमें घुल जाता है पर पानीमें बहुत कम।

कपूर हल्का **कोथघ्न और कोटघ्न** है। यह श्लैष्मिक कला और वहित्वक्के तन्तुओंमें उत्तेजना पैदा करता है। इसलिये यह लिनिमेन्ट या मालिशमें मिलाया जाता है। कपूर रक्तसंवहन या रक्त-अनुधावन (सरकुलेशन) को **उत्तेजित**

करता है। इसलिये जब हृदयके स्वचालित केन्द्र काम नहीं करते तो रक्त-अनुधावन फिरसे जारी करनेके लिये यह दिया जाता है। यह नाडी-तन्त्रको भी उत्तेजना देता है। भीतरी **रक्तावरोध** होने पर कपूरसे फायदा होता है। इसलिये **सर्दी, खाँसी, पार्श्वशूल** (प्लुरिसी) और यकृतके रक्तसंकुलतामें भी यह दिया जाता है।

मोच, चोट, स्तनप्रदाह (मैस्टाइटीस) और वात रोगकी मालिशका यह एक विशेष उपकरण है। रक्तावरोध दूर करनेके साथ साथ कपूरमें पेशियोंका आक्षेप (स्पाज्म) रोकनेका भी गुण है। इसलिये श्वासनलिका-प्रदाह (ब्रोंकाइटिस) या कास जैसे रोगोंमें यह अनमोल है।

मालिशके लिये तारपीनके साथ कपूरको तेलमें मिलाना चाहिये।

पेशियोंकी सूई (इन्ट्रामस्क्यूलर) के लिये :—

कपूर	...	१ भाग
ऑयल एरेचिस (मूंगफलीका तेल)	..	५ भाग

घुलनेके लिये गरम करो। ठंडा होने पर ½ से १ आउन्सकी मात्रामें सूई दो। तेलके साथ कपूरकी सूई चमडेके नीचे नहीं लगानी चाहिये। पेशीमें लगानी चाहिये। क्योंकि, चमडेमें देनेसे फोड़ा हो जा सकता है।

खिलानेके लिये १ से ८ ड्राम तककी मात्रामें कपूर गुड़के साथ मिलाकर देना चाहिये।

१३१६. Catechu : कत्था : खैर

कत्थके पल्लव और लकड़ीका सत्व यह है। कत्थ चौखूटे टुकड़े या मोटी पत्तियोंकी शकलमें बिकता है। यह गरम पानीमें घुलता है।

कत्थमें टैनिक एसिड ४५ प्रतिशत है। यह अतिसारनाशक है। अपकर्षिणी (कृमिगति) कम कर देता है इसलिये अतिसार नाशक है। अतिसारकी चिकित्सामें जुलाब देकर कष्टकारी पदार्थ निकाला जाता है और क्षत स्थानोंमें रक्षक आवरण दिया जाता है। जैसे रेड़ीके तेल से। कत्थ जैसे टैनिन या बिसमथ जैसे खनिजोंसे अपकर्षिणी या आँतकी गति (कृमिगति) रोकी जाती है और संकोचन किया जाता है।

कत्थ श्लैष्मिक कलाका संकोचक है। यह टैनिक अम्लसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें गोंद और रजनके रूपमें अन्य सेन्द्रिय पदार्थ भी होते हैं जिनकी क्रिया आमाशयमें नहीं होती पर वे आगे बढ़कर आँतमें चले जाते हैं।

अतिसार या अँनड़ीकी पीड़ा (कोक्सीडिओसिस) में कत्थ जैसा संकोचक देनेके पहले रेड़ीके तेल आदिका जुलाब देकर कष्टकारी पदार्थ बाहर कर देना चाहिये। कत्थके साथ खड़िया या अफीम मिलाना उपयोगी है।

मात्रा :— २ से ४ ड्राम सयानोंके लिये।

१३२०. Charcoal : कोयला (लकड़ीका)

लकड़ीका कोयला स्पंज जैसा होता है। कोयला अपने आकार से कई गुना जादे ऑक्सीजन सोख सकता है। इसके छेदमें ऑक्सीजन भरी रहती है। इसलिये यह जलानेवाला भी है। देहमें कोयलेका आचषण नहीं हो सकता। इसलिये इसकी क्रिया स्थानविशेष पर ही होती है। घाव पर कोयलेकी सूखी बुकनी छिड़की जा सकती है। इस जगह यह **शोषक** (सुखानेवाला) और **चोषक** का काम करता है। पाकाशयके व्रण आदि अँतड़ियोंके रोगोंमें इससे बड़ा लाभ होता हैं। ऐसी हालतमें यह उस जगह ऑक्सीजन देता है, सड़न या सड़ाइँद यदि होनी हो तो रोकता है और बाहरी घावकी तरह ही आवरण भी करता है। पूरा फायदा हो इसके लिये तुरतका बनाया कोयला काममें लाना चाहिये या उसे फिरसे दहकाकर ठंढा कर देना चाहिये।

मात्रा :— सयाने पशुओंके लिये १ से २ आउन्स।

१३२१. Chloral Hydrate : क्लोरल हाइड्रेट

यह स्फटिकाकार होता है। इसकी गंध कड़ुवी और उत्कट होती है तथा स्वाद दाहक और कटु। यह पानीमें खूब घुलता है। यह **तन्द्राकारी** है। अधिक मात्रामें देनेसे **बेहोशी** और **ज्ञानशून्यता** पैदा होती है। साधारण मात्रामें देने पर दिमागको मंदा करता है पर रक्तसंचारी संस्थान और श्वास-संस्थान पर कोई खास असर नहीं होता। यह कई घंटोंकी गहरी नींद पैदा करता है।

पेशियोंको ढीला करना है। अधिक मात्रा देनेसे सभी नाड़ी-केन्द्र बन्द पड़ जाते हैं इसलिये चीरफाड़में इससे शून्यता पैदा की जाती है। ५ से ९ आउन्सकी मात्रासे अधिक मात्रामें यह देनेसे मौत हो सकती है। यदि पशु गरम रखा जाय तो अधिक मात्रा भी सह लेता है। इसका जहर लग जानेसे इसके प्रतिकारके लिये स्ट्रिकनीन दी जा सकती है।

चीरफाड़के समय ज्ञानशून्य करनेके लिये क्लोरोफॉर्म या अफीमके रास्ते यह अच्छा माना जाता है। कामके लिये जितनी चाहिये उतनी शून्यता यह लाता है। शून्यता दो एक घंटे रहती है।

पशु यदि बहुत उत्तेजित हो या नाड़ियाँ बहुत अशान्त हों तो सभी हालतोंमें नींद लानेके लिये इसका व्यवहार बहुत होता है। **धनुष्टंकार** और **गरदन तोड़में** (मेनिन्जाइटिस) आक्षेप रोकनेके लिये इसका सफल व्यवहार होता है। गुदा, भग या गर्भाशयके स्थानभ्रष्ट होने पर यह पेशिओंको ढीला करता है। इससे स्थानभ्रष्ट अंगोंको अपनी जगह लौटने और ठहरनेमें सुबीता होता है।

मात्रा :— मादक (नारकोटिक)— $\frac{1}{2}$ से ४ आउन्स।
शामक (सेडेटिव)— १ से २ आउन्स।

क्लोरल हाइड्रेटसे श्लैष्मिककलामें जलन होती है। खानेकी दवामें १ आउन्स क्लोरल हाइड्रेटमें ३ पाइन्ट लसीली वस्तु मिलानी चाहिये। श्री मिल्कस् नीचे लिखा नुस्खा बताते हैं :—

क्लोरल हाइड्रेट	...	२ आउन्स।
बबूल गोंद	...	१ आउन्स।
पानी	...	६ पाइन्ट।

भ्रंश रोगोंमें १ आउन्सकी मात्रा देनी चाहिये। गुदामार्गसे उतनीही मात्रा देनी चाहिये जितनी मुँहसे। थोड़ी मात्रामें देनेसे कै बन्द होती है।

गरदनतोड़में पेशीकी सूई देनेके लिये १०० सी० सी० पानीमें १० ग्रेनकी मात्रा दी जा सकती है। क्लोरल हाइड्रेटका विष व्यापने पर साँस चलानेका उपाय करना चाहिये और कैफीन तथा स्ट्रिकनीनकी सूई लगानी चाहिये। साँस बन्द होनेसे मृत्यु हो सकती है।

१३२२. Copper Sulphate : **कोपर सल्फेट : तूतिया**

तूतिया गहरे नीले रंगके स्फटिक या दानेदार बुकनीकी शकलमें होता है। इसका स्वाद धातवीय और मिचलानेवाला है। एक भाग तूतिया ३ भाग पानीमें घुल सकता है।

तूतियाका व्यवहार **संकोचक, दाहक, कृमिनाशक** और **वमनकारी** है। इसका हलका घोल संकोचक है। गाढ़ा घोल दाहक है। खानेसे कै होती है। कृमिनाशके लिये भी यह खाया जाता है।

ताँबेके नमक (कोपर साल्टस्) छोटे पौधे और घोंघे आदिके लिये विष हैं। १ प्रतिशत का तूतियेका घोल विषनाशक (एन्टीसेप्टिक) होता है। इसके मिलानेसे जिस पानीमें जरा भी नीलापन हो वह घाव धोनेके काममें आ सकता है। इससे घाव धोनेसे पीब साफ होकर घावकी जगह लाल निकल आती है इससे घाव जल्दी भरता है।

जिल्दसाज इसे लेईमें मिलाता है क्योंकि, यह कीटनाशक है। ऐसी लेईमें कीड़े नहीं लगते और फफूँड़ा भी नहीं लगता।

इसका एक सैकड़ा घोल **कृमिघ्न** है। ढोरके पेट और आँतमें रहनेवाले बहुत तरहके कृमियोंको मारनेके लिये कमला (कबीला) के साथ तूतिया बहुत कारगर साबित हो चुका है।

थोड़ी मात्रामें तूतियेका घोल मिचली लाता है। इस गुणके कारण सर्दी खांसीमें कफ निकालनेके लिये यह दिया जाता है।

ताँबा हेमोग्लोबीनका घटक (उपादान) नहीं है। फिरभी इसकी जरूरत इसलिये है कि, लोहा इसके रहनेसे हेमोग्लोबीन बनाता है। पशुओंके आहारमें इस प्रयोजनको पूरा करनेके लिये काफी ताँबा होता है। आहारमें ताँबेकी कमीसे रक्ताल्पता होती है। इसको पूरा करनेके लिये ताँबेकी हल्की मात्रा दी जाती है। यह सल्फेटके रूपमें दिया जा सकता है। पर लैक्टेटके रूपमें देना जादे अच्छा है। दहीमें दुग्धाम्ल (लैक्टिक एसिड) होता है। यदि उसमें ताँबेका स्वच्छ पैसा डाल दिया जाय तो दही नीला हो जायगा। क्योकि ताँबा उसमें घुल जाता है।

भारतके पशुपालक पशुओंकी **रक्ताल्पता** ताड़ लेते हैं और इसे दूर करनेके लिये ऊपरके तरीके से दहीमें ताँबा खिलाते हैं। इस कामके लिये बहुत थोड़ी मात्रा $\frac{१}{५०}$ से $\frac{१}{१०}$ ग्रेन काफी है।

तूतिया तुरत वमन कराता है। पर यदि पहली मात्रा सफल न हो तो इसे फिर नहीं देना चाहिये। ढोरको कै करानेके लिये इसकी १॥ से ६ ड्रामकी मात्रा एक या दो सैकड़ा घोलमें दी जाती है। कृमिनाशके लिये १ सैकड़ा घोल या एक आउन्स पानीमें ५ ग्रेनके हिसाबसे देनेमें कोई खतरा नहीं है। ४ से १० आउन्स घोल सयानोंके लिये जरूरी है और बछरुओंको उसी हिसाबसे कम।

मुखविवर-प्रदाह (निनावाँ) और पलकके व्रण या प्रदाह तथा भगन्दरमें या नासूरमें इसके दाहक गुणसे फायदा उठाया जाता है। तूतियेका टुकड़ा इनसे छुला दिया जाता है। भगन्दर या नासूरमें कड़ा घोल काममें लाया जा सकता है। इसके लिये एक आउन्स पानीमें ३ से १५ ग्रेन तूतिया मिलाना चाहिये।

१३२३. Creosote : क्रियोजोट

क्रियोजोटकी क्रिया कारबोलिक एसिडकी तरह है। लगानेके काममें उससे बढ़कर नहीं है। पर यह उससे कहीं कम दाहक और विषैला है। यह और बात है कि अधिक मात्रा देनेसे कारबोलिक एसिडके विषके सभी लक्षण होने लगते हैं। **ब्रोंकाइटिसमें** यह विशेष लाभकारी है। कुत्तेके पागलपनमें यह अमूल्य सिद्ध हुआ है। इसमें यह आँतोंका विष नाश करता और कफ निकालता है।

आँतोंके प्रदाह या सूजनमें यह विषनाशक है। मनुष्यकी दन्त चिकित्सामें क्रियोजोटका व्यवहार दाँतका दर्द दूर करनेके लिये बहुत होता है। यहाँ पर इसका काम संज्ञाहीन या शून्य करना है।

केओलिन या खड़ियामें अच्छी तरह मिला कर क्रियोजोट दिया जा सकता है। एक आउन्स खड़ियामें एक ड्राम यह मिलाना चाहिये।

मात्रा (खानेकी) :— २० से ४० मिनिम मंड या केओलिनके साथ।

१३२४. Ferrous Sulphate : फैरस सल्फेट : हीराकसीस

हीरा कसीस हरे रंगका स्वच्छ रवा है जो पानीमें घुल सकता है। लोहे पर गन्धकके तेजाबकी क्रियासे यह तैयार किया जाता है। ऑक्सीजनकी क्रिया (ऑक्सीडेशन) से यह लोहेसा (फेरिक) हो जाता है। काग लगी बोतलमें भी हवा लगनेसे इसका हरा रंग ऊपर ऊपर बादामी हो जाता है। यह प्रतिक्रिया धीरे धीरे भीतरकी ओर बढ़ती जाती है। रंग बदले टुकड़ोंको यदि गन्धकके

हलके तेजाबमें डुबाया जाय तो फिर असली रंग निकल आता है। हरा टुकड़ा ही काममें लाना चाहिये।

लोहा देनेके लिये कसीस दिया जाता है। खूनके हेमोग्लोबीनका अेक घटक या उपादान लोहा है। देहमें लोहेकी कमीसे रक्ताल्पता (अेनीमिया) होती है। इसका सुधार जटिल काम है। कई कारणोंसे यह होती है। इनमें से एक लोहेकी कमी भी है। थोडी थोड़ी मात्रामें कसीस देनेसे यह कमी पूरी हो सकती है। देहके भीतर कसीस संकोचक का काम करता है। इसलिये कठिन अतिसारमें इसका व्यवहार बताया गया है। पहले यह माना जाता था कि देहमें आचूषण के लिये सेंद्रिय (आरगेनिक) रूपमें लोहा दिया जाना चाहिये। अब यह भ्रम सिद्ध हो चुका है। निरेन्द्रिय (इनआरगेनिक) लोहा ही ज्यादे अच्छी तरह आचूषित होता है। कसीस कुछ हद तक रक्तस्राव-रोधक भी है।

मात्रा :—पूरे पानीसें २ से ३ ग्राम।

१३२५. Iodine Tincture & Lugol's Solution
टिंक्चर आयडिन और ल्यूगोल सोल्यूसन

समुद्री घासोंकी राखसे आयडिन निकाली जाती है। यह बैंगनी रंगकी होती है। कण भुरभुरे होते हैं जो धातु जैसे दिखते हैं। गंध खास तरह की होती है। स्पिरिट (मद्यसार)में मिलाकर या पोटाशियम आयोडाइडके घोल अथवा दोनोंमें इसका व्यवहार होता है। पोटश आयोडाइड या आयडोफौर्मके रूपमें आयडिन साधारण व्यवहारकी वस्तु बन गयी है।

क्रियाशील आयडिन (फ्री आयडिन) बहुत उपयोगी **प्रतिउत्तापक** है। त्वचा पर जहाँ यह लगायी जाती है कुछ क्षण रह कर भीतर प्रविष्ट हो जाती है। साधारण तौर पर टिंकचरके रूपमें आयडिन लगायी जाती है।

टिंक्चर आयडिन :—

आयडिन	..	७ भाग
पोटाश आयोडाइड	...	५ भाग
पानी	...	५ भाग
अलकोहल (मदिरा-सार)		१०० भाग।

ल्यूगोलका सोल्यूसन (घोल) :—

आयडिन	...	५ भाग
पोटाश आयोडाइड	...	१० भाग
पानी	...	१०० भाग ।

आयडिन कडा कोथघ्न (सड़न निवारक) और जीवाणु-नाशक है। जिस जिस चीजकी छूत मिटानी या जीवाणु रहित रखनी है उसे टिंकचर आयडिन या ल्यूगोलके घोल मिले पानीमें डुबाना चाहिये। पानीमें सिर्फ इतना मिलाया जाय कि, उसमें उस टिंकचर या घोलका हल्का रंग आ जाय। ऐसे घोलमें पट्टी भिगा कर घावकी कोथघ्न पट्टी की जाती है।

कटने पर आयडिन लगाने से उसकी छूत तुरत मिट जाती है और प्रदाह नहीं होने पाता तथा कटी जगहसे रोगकारी जीवाणु देहके भीतर नहीं जा सकते। बच्चेके जन्मके बाद उसकी नाभीमें अच्छी तरह आयडिन लगाना चाहिये और जबतक सूखा भाग झड़ न जाय रोज इसे लगाते जाना चाहिये। लगानेके बाद आयडिन तंतुओंमें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये कटी जगह या क्षत पर लगाने से इसका असर बना रहता है और चोट और आसपासकी जगहकी रक्षा करता है।

यह फंगस-नाशक है। इसलिये मुहासे (acne), सुखव्रण (एक्टीनोमाइकोशिस) और दाद के लिये लाभकारी है। यह जीवाणुनाशक है इसलिये ब्रोंकाइटिस या कास और निमोनियाँ आदि की छूतमें शिराकी सूई लगाने से इन रोगोंको बढ़ने नहीं देती।

मुखविवर, कंठ, ग्रसनिका (गला) में पूयोत्पादक या पायोजनिक जीवाणुकी छूत लगने से आयडिनका हलका टिंकचर या ल्यूगोलका घोल लगानेसे छूत मिट जाती है। उस स्थानको आराम भी मिलता है क्योंकि इसकी क्रिया श्लैष्मिक-कला पर होती है। इस कामके लिये इसमें थोड़ीसी ग्लिसरीन मिला देने से बढ़िया गलेमें लगानेकी दवा (थ्रोट-पेन्ट) बन जाती है।

गलसूआ या गलफूली (मम्प्स) में गिल्टीमें या उसके आसपास इसकी सूई लगाने से तुरत आराम होता है।

घेघ (गलगंड)में इसे ऊपर से लगाने पर यह सटकने या दबने लगता है।

टिंकचर या ल्यूगोलके घोलके रूपमें आयडिन साथ रखनेकी चीज है। खाने और लगाने दोनों काममें यह आती है। दैनिक व्यवहारमें यह कितनेही काममें आती है।

१३२६. Iodoform : आयडोफौर्म

इसकी बुकनी होती है। रंग नीबूसा, गंध खास तरह की और तीक्ष्ण। इसका एक भाग ८० भाग ग्लिसरीनमें घुलता है। आयडोफौर्म श्लैष्मिककला और कटी जगहोंके लिये हलका कोथघ्न है। इसमें जीवाणु-नाशक गुण भी कुछ है। कटी फटी जगहों पर इसका आचूषण तुरत हो जाता है और तुरत ही पेशाबमें आयोडाइड होकर निकलता है। जिन घावोंमें छूत लग गयी है उनमें इसका व्यवहार होता है। व्यवहार केवल बाहरी है। फोड़ों पर छिड़कनेके लिये यह अमूल्य चूर्ण है। इसके १० प्रतिशत भागका मलहम भी हो सकता है। गहरे घाव, नासूर तथा भगंदर और गुदा, नाक तथा भगमें इसकी बत्ती भरकर पट्टी बाँधी जाती है। पट्टी पर इसको छिड़ककर बत्ती बनायी जा सकती है। तेल या ग्लिसरीनके घोलमें इसकी पिचकारी नाक गुदा तथा भगमें लग सकती है। गर्भाशयके प्रदाह (metritis) या पुरैन (फूल) नहीं निकलने पर बत्तीके साथ एक आउन्स तक या यों भी सपोजिटरीके रूपमें गर्भाशयमें डालना चाहिये।

१३२७. Kamala : कमला चूर्ण : कबीला

कबीलाकी बुकनी भारी और गुलाबी रंगकी होती है। यह लोहितांग (Mallotus philippinensis) की ग्रन्थियों और बालोंसे बनती है। यह पेड़ भारत, चीन और फिलीपाइनमें होता है। यह तेज परोपजीवी-नाशक है। आयुर्वेदिक दवाओंमें बहुत पुराने समयसे काममें आ रहा है। अभी हालमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषदने सिद्ध किया है कि, पशु-चिकत्सामें इसको महत्वका स्थान मिलना चाहिये। भीतरी परोपजीवी-नाशके लिये इसे तूतियाके साथ देना चाहिये। यह दूध, मधु या शर्बतमें भी दिया जा सकता है।

मात्रा :— १ आउन्ससे १½ आउन्स।

१३२८. Kaolin : केओलिन : चीनी मिट्टी

केओलिन सफेद रंगकी चिकनी मिट्टी है। चीनी मिट्टीके बरतन इससे बनते हैं। छूनेमें यह मुलायम और पिच्छिल (फिसलनी) है। पानी पड़नेसे फूलती है। ग्लिसरीनके साथ इसे मिलाकर सगंध तेल और थाईमल इत्यादि इसमें मिलाते हैं। लगानेके काममें यह आता है। ऐंटीफ्लोजिस्टीन आदि पदार्थ ऐसी दवाके उदाहरण हैं।

पेटके दूषित पदार्थोंको केओलिन सोख लेता है और बाहर निकालता है। कोयलेकी बुकनीमें मिला कर केओलिन अतिसार और पेचिशमें दिया जा सकता है।

केओलिन न मिले तो साधारण **चिकनी मिट्टी** अच्छी तरह बना सँभाल कर उसकी जगह दी जा सकती है। चिकनी मिट्टी नीचेसे खोद कर निकालनी चाहिये; जिससे कि, वह साफ हो और ऊपरी सतह की गन्दगी उसमें न हो। इसे पानीमें घोल कर दो चार मिनट छोड़ देना चाहिये। इससे वह थिरावेगा और बालू कंकड़ी आदि तलेमें बैठ जायेंगा। ऊपरी सतह को दूसरे बर्तनमें उड़ेल लेते हैं और पानी मिलाकर फिर थिरानेको छोड़ देते हैं, जिससे कि बची हुई बालू निकल जाय। फिर ऊपरकी ओरका गदला पानी अन्य बर्तनमें उझल कर थिरा लिया जाय।

यह प्रक्रिया तबतक की जाय जब तक उसमें बालू बिलकुल न रहे। जमी महीन चिकनी मिट्टी पानी मिला कर उबाल लेना चाहिये कि वह कीटाणुरहित हो जाय, फिर उसे थिरा लेना चाहिये। थिराई मिट्टी धूपमें या वाटर बाथ पर सुखा ली जाय। यह चीज केओलिनकी जगह काम आ सकती है।

जीवाणु-जनित कठिन अतिसारमें केओलिन और कोयलेकी मिली बुकनी १ रत्तलकी मात्रामें बहुत लाभदायक है। केओलिन और कोयलेकी मात्रा ३ : १ रहे। मामूली अतिसार या खूनी दस्तमें इससे कम मात्रामें देनी चाहिये।

१३२९. Magnessium Sulphate : मैगनीशियम सल्फेट
एप्शम सॉल्ट

मैगनीशियम सल्फेट छोटी सूईसा होता है। रंगहीन। स्वाद खारा। यह पानीमें तुरत घुलता है।

मैंगनीशियम सल्फेट सा नमकीन पदार्थ आंतोंमें पँहुच कर नमकके साधारण घोल (नॉरमल सेलाइन, अर्थात् ९० ग्रेन साधारण नमक १ पाइन्ट जलमें मिला हुआ) के जैसा पतला होना चाहता है। इसलिये देहके द्रवोंको सोख लेता है और पाखानेकी राह निकाल देता है। इसलिये यदि देहका पानी नहीं निकालना हो तो इसे अच्छी तरह घोल कर देना और पशुको पानी जादे पिलाना चाहिये। पर जलोदर आदिमें देहसे पानी निकालनेकी जरूरत है। इसलिये जादे पानी मिलानेकी जरूरत नहीं।

गाढ़े घोलसे मिचली और कै आती है। यह होने नहीं पावे इसलिये काफी पानी मिलाना चाहिये।

रोमन्थकारियोंके लिये मैगसल्फ खास जुलाब है। कड़ा जुलाब बनानेके लिये सम भाग सोडियम क्लोराइड (नमक) मिलाना चाहिये। बुखारकी हालतमें इसे पीनेके पानीके साथ थोड़ी मात्रामें दे सकते हैं। क्योंकि, यह तापमान गिराता और पेट चलाता है। त्वचामें इसका सूई लगाने से धनुष्टकारमें लाभ होता है। डौंसन तथा अन्य इसके १० प्रतिशत घोलकी २० सी० सी० की सूई हर १५ मिनट पर त्वचामें लगानेकी सलाह देते हैं। मोच और सन्धिप्रदाह में मैगसल्फके सपृक्त घोलमें रूई भिगो कर पट्टी बाधनेसे लाभ होता है।

मैगसल्फ शीशे (लेड साल्टस्)के विषका मारक है। शीशेके नमकको यह नहीं घुलनेवाला शीशेका सल्फेट (लेड सल्फेट) बना देता है और उसे बाहर करता है। यह कारबोलिक एसिडका भी मारक है। उसके साथ मिलकर निर्विष कारबोलेट बनता है।

मात्रा :— १ से २ रत्तल।

१३३०. Myrobalan : हर्रे : हरीतकी (फल)

बंगला—हरीतकी, तामिल—काडुक्के, तेलगू—करक्कया, गुजराती—हरडे

हर्रे फलप्रद और निरापद जुलाब है। पेटके दर्द, पेट फूलना और दिल धड़कनेकी यह मानी हुई प्रसिद्ध दवा थी और है। हर्रेका प्रलेप लगानेसे मुँह और जीभके महीनों पुराने छाले आराम होते हैं। ५० से ६० हर्रे अच्छी तरह पेट साफ कर सकती है। यह केंचुआ-कृमि भी निकालती है। कमजोर पशुकी भी कब्जियत (अनाह) इससे दूर होती है।

यह अद्भुत संकोचक है। तेल या पानीमें मिलाकर इसके प्रलेपसे आगे लिखे रोगों पर बहुत लाभ होता है। जीर्ण पीबदार व्रण (अलसरेसनस्), चोट या क्षतका पकना, बहुत बहनेवाले चर्म रोग, अर्श (बवासीर), भ्रंश (प्रोलेप्स) आदि।

मात्रा :— जुलाब ६ से ८ आउन्स गूदेका पीसकर या बुकनी बनाकर पानीमें मिलाकर देना चाहिये।

१३३१. Neem (Leaves) : नीम (पत्ती)

संस्कृत—निम्ब, तामिल—वम्बु।

इसका पेड़ बड़ा ४० से ५० फूट ऊंचा और सदा हरा रहता है। यह तमाम भारतमें होता है। चर्म रोगों पर इसकी पत्तियां बहुत लाभप्रद प्रसिद्ध हैं। घावों तथा फोड़ों पर नीमकी पत्तियोंकी पाल्टिस, मलहम और मालिशका व्यवहार हो सकता है। इसकी पत्तियोंके उबाले पानीमें कोथघ्न गुण होता है। इससे घाव धोआ जा सकता है। एक आउन्स पानीमें २० पत्तियोंके हिसाबसे कुछ देर उबालनेसे कोथघ्न श्रेष्ठ घोल बनता है।

पत्तियां कड़वी होती हैं। ढोर इन्हें स्वादसे खाते हैं। पशुके लिये इसका चारा भी हो सकता है।

१३३२. Novocain : नोभोकेन

कोकेनमें कुछ आवांछनीय गुण हैं। इसलिये इससे कम विषवाली (टॉक्सिक) चीजें काममें लाई जाती हैं। नोभोकेन उनमें एक है। रंगहीन सूईके रूपमें यह मिलता है। यह पानीमें घुल सकती है। त्वचामें इसकी सूई लगानेसे गहरी पर क्षणिक अनुभवशून्यता होती है। इससे जलन बिलकुल नहीं होती। आंख या गलेके चीरफाड़के लायक यह नहीं है। स्थान-विशेष सुन्न करनेके लिये त्वचामें इसकी १० से २० सी० सी० तककी सूई लगाई जाती है जिसमें ०.५ से २ प्रतिशत घोल काममें आता है।

१३३३. Nux Vomica : Kuchila : Strychnine : नक्स भामिका : कुचिला : स्ट्रिकनीन

कुचिला बीज है। इसका पेड़ भारतमें होता है। बीजकी चकती बटनकी तरह होती है, जिसका व्यास एक इंचके लगभग होता है और मोटाई $\frac{1}{5}$ इंच।

ऊपरसे यह मखमली होता है। इसमें १·२५ प्रतिशत स्ट्रिकनीन होता है। इसमें एक और क्षार ब्रूसीन होता है।

कुचिलेका चूर्ण काममें आता है। सूईके लिये इसके क्षार स्ट्रिकनीनका व्यवहार होता है। कुचिलेका गुण स्ट्रिकनीनके कारण हैं।

कुचिला पेटकी बढ़िया पुष्टई है। इससे भूख बढ़ती (दीपक) है। यह पाचक भी है। यह अपकर्षिणी या कृमिगति बढ़ाता है। इसलिये अनाह (कब्ज) दूर करता है। इस कामके लिये किसी दस्तावर दवाके साथ कुचिला देते रहना चाहिये। लोहा और संखियाके साथ कुचिला देनेसे बहुत बढ़िया पुष्टई बनती है। जुलावके साथ इसे देनेसे जकड़े रोमन्थाशयको यह साफ करता है।

नाड़ीको यह चैतन्य करता है, यह नाड़ीकी थकावट और नाड़ी-तन्त्रकी सुस्ती दूर करता है। लकवा (पक्षाघात) में यदि नाड़ी बिलकुल नष्ट नहीं हो गयी है तो स्ट्रिकनीन फायदा करता है। स्थानविशेषकी नाड़ीके पक्षाघातमें जैसे मुखमंडलका पक्षाघात—यह बड़े काम का है।

यह श्वास और रक्त-तन्त्रको चैतन्य करता है। यद्यपि रक्त-तन्त्र पर इसकी क्रिया इतनी स्पष्ट नहीं है। इससे हृदय धीमा और रक्त चाप अधिक हो जाता है। क्योंकि, इसकी क्रिया केन्द्रीय नाड़ीमंडल पर होती हैं। पर हृदय पर इसकी क्रिया सीधे नहीं होती, निमोनियाँ और हृदयावरोध (हार्ट फेल्योर) में स्ट्रिकनीनका विधान है। इसके अच्छे परिणामका कारण श्वासतन्त्रकी चेतना है। श्वासतन्त्रके मन्द होने पर स्ट्रिकनीनका विधान है।

क्लोरल हाइड्रेट, अफीम, मौरफीन आदिके जहरका मारक स्ट्रिकनीन बताया गया है। ऐसी हालतमें इसे त्वचामें पूरी मात्रामें देना चाहिये।

मात्रा :— कुचिला चूर्ण १ से २ ड्राम।

स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोर—४ सी० सी० पानीमें ०·३ ग्रेन।

त्वचाकी सूईमें स्ट्रिकनीनकी बनी हुई गोली काममें लायी जाय।

१३३४. Castor Oil : **रेंड़ीका तेल**

रेंड़ीके बीजसे ठंढेमें तेल निकाला जाता है। पेट साफ करनेवाली और बढ़िया दस्तावर चीजोंमें यह एक है। बछरुओंके लिये यह निरापद है। बड़े पशुओंके लिये यह बढ़िया जुलाब नहीं है। पर बछरुओंके लिये अनमोल है। **बबूलके**

गोंद या स्टार्चकी पिट्ठी या मंडमें मिलाकर देना सबसे अच्छा है। इन चिपकनी चीजोंमें तेल मिलाकर लेईसी बनाते हैं फिर धीरे धीरे पानीमें रगड़ कर घोलते जाते हैं। इससे सब दूधिया हो जाता है जिसमें तेलकी छोटी छोटी बुँदकियाँ छितरायी रहती हैं। इस रूपमें यह आँतोंको चिकना करता और जमे मलको बाहर करता है, पर पेटकी श्लैष्मिककलाको हानि नहीं पहुँचाता। इसलिये छोटे पशुओंके अनिसारमें हमारे पास यह अच्छी दवाओंमें एक है। यदि नवजात बछरू अच्छी तरह गोबर न करे तो दो ड्राम रेंडी तेलको पानीमें मिलाकर देना चाहिये। बछरूकी पेटकी कोई बीमारी चाहे यह अनाह (कब्ज) हो, अनिसार हो, दुर्गन्धित गोबर हो या खूनका दस्त, रेंडीके तेलका घोल (एमलशन) इनकी चुनिन्दा दवा है। उमरके अनुसार मात्रा भिन्न भिन्न हो। महीनेके लगभग उमरके बछरूको प्रति खुराक २ ड्राम तेल दिनमें ३ या ४ बार देना लाभकारी है। इससे बड़ी उमरके लिये मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। ९ महीनेसे बड़े पशुको हर बार ४ आउन्स देना चाहिये। सयाने पशुको जुलाबके लिये १६ से २० आउन्स तेल देना चाहिये।

१३३५. Oil Chaulmoogra : चाउलमोगरेका तेल

चाउलमोगरेके बीजसे यह स्निग्ध तेल निकाला जाता है। यह तेल बिना कुछ और मिलाये विभिन्न चर्मरोगों पर लगाया जा सकता है। इसे खिला भी सकते हैं।

मनुष्यकी कुष्ट-चिकित्सामें इसे बहुत ऊँचा स्थान मिला है। इस कामके लिये यह बहुमूल्य दवा मानी जाती है।

पशुओंके वाह या दस्तकी बीमारीमें (जोन्स डिसीज) इसे सफलता मिलनेकी खबर है।

कोढ़, अम्लसहिष्णु (एसिड फास्ट) जीवाणुओंके कारण होता है। वाह अर्थात् जोन्स डिसीज भी इसीके कारण। दोनोंमें यह एक ऐसी समानता है जिससे खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर गया और जोन्स डिसीजमें इसका इस्तेमाल होने लगा। यह बहुत जलन पैदा करनेवाली चीज है। ½ से १ ड्राम मंडके साथ खिलाया जा सकता है।

१३३६. Oil Turpentine : तारपीनका तेल

यह पतला और रंगहीन द्रव है। गन्ध खास तरहकी है। चमड़ेमें इससे जलन होती है। कितनी देर और कितने जोरसे यह रगड़ा गया इसके अनुसार चमड़े पर लाली या फुंसियाँ हो सकती हैं। यह **कोथघ्न, विगन्धीकारक,** (डीओडरेन्ट) और **कृमिनाशक है**। पशुचिकित्सामें यह बढ़िया **प्रति-उत्तापक** माना जाता है। तारपीन, कपूर, अजवाइनका सत्त मिलाकर मालिशका तेल बनाया जाता है। कास (ब्रोंकाइटिस), पार्श्वशूल (प्लूरिसी), निमोनियाँ आदि फुसफुस सम्बन्धी प्रदाहवाले रोगोंमें त्वचा पर मालिश और प्रति-उत्तापके लिये इसका व्यवहार होता है। ये चीजें गोली चिकनी मिट्टी और गिलसरीनमें भी मिलायी जा सकती हैं।

पेशी-वात और दर्दमें ऐसी मालिशसे बहुत आराम मिलता है। तारपीन रक्तस्रावरोधक है। इसलिये भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये हल्की मात्रामें दिया जा सकता है।

तारपीन कृमिघ्नोंमें है इसलिये केंचुआ-कृमि मारनेके लिये इसका व्यवहार हो सकता है। यह अफरे (पेटका फूलना) के लिये भी शान्तिदायक है।

मात्रा :—अफरेमें शान्तिदायक १ से २ आउन्स।

कृमिघ्न २ से ४ आउन्स।

४ गुना मूँगफली या नारियलके तेलमें मिलाकर इसका घोल तैयार कर या मंडमें मिलाकर खानेके लिये देना चाहिये।

१३३७. Opium & Morphine : अफीम और मौर्फीन

पोस्तेकी बोंडी या बीजकोष पाछनेसे निकला सुखाया हुआ रस अफीम है। इसका रंग हल्का काला होता है। यह गिलगिला और चिपकना पदार्थ है। इसकी खास गंध होती है।

अफीममें कई क्षार हैं। इनमें मुख्य मौर्फीन है। मौर्फीनमें अपनी जननी (अफीम) के साधारण गुण होते हैं।

अफीममें ९·५ प्रतिशतसे कम मौर्फीन नहीं होती। अफीम और मौर्फीनका मानवी चिकित्सामें बहुत व्यवहार है। इनका उपयोग **दर्द, नाड़ीकी उत्तेजनाके शमनके** लिये होता है कि स्राव रुकें और नींद आवे। पशुचिकित्सामें अफीमका

उतना महत्व नहीं जितना मानवी चिकित्सामें है। इसका असर भी उतना स्पष्ट और खास नहीं होता। सुलानेके लिये पशुचिकित्सामें क्लोरल हाइड्रेट अफीमसे अधिक काममें आता है।

शूलके दर्दमें थोड़ी मात्रामें देने पर यह अपकर्षिणी और बृहद् अन्त्रका आक्षेप रोकती है। आँतोंका प्रदाह और अतिसारमें अफीम अपकर्षिणी रोक कर बहुत जल्दी आराम करती है। आँतोंमें छेद हो जाय और रक्त बहे तो अफीमसे बहुत लाभ होता है। यह आँतोंकी गति रोक कर थक्का जमने देती है।

अफीम श्वास-केन्द्रको मन्द कर कटकारी खासीमें बहुत आराम देती है। खाँसी या ब्रोंकाइटिसमें कफ नहीं निकलने पर तकलीफ होती है। ऐसी हालतमें इसे देनेका विधान है। पर यदि ब्रोंकाइटिसमें कफ खूब निकलता हो तो अफीम नहीं देना चाहिये। क्योंकि बाधा मिलने पर कफ जमा होने लगता है और उलझन बढ़ जाती है जिससे निरोग होनेमें देर लगती है।

ऊपर बताया जा चुका है कि, मॉर्फीनकी सुई त्वचामें शामक प्रयोजनके लिये काश रोगमें दी जाती है। रोगीकी शान्तिके लिये उदरशूलमें, धनुष्टङ्कारमें आक्षेप रोकनेके लिये, पित्ताश्मरी (gall stone) आदिका दर्द मिटानेके लिये, अतिसार या पतले दस्त, आँतके प्रदाह या पेचिश, उदरावरण-प्रदाहमें भी त्वचासे इसकी सूई लगती है। पार्श्वशूलमें अफीम देना अच्छा है।

मात्रा :— अफीम १ से २ ड्राम।

मॉर्फीन हाइड्रोक्लोर की टिकिया २ से ४ ग्रेन, त्वचाकी सूईके लिये।

१३३८. Papaya Milk : पपीतेका दूध

कच्चा पपीता पाछनेसे दूध निकलता है। इसमें एक क्रियाशील रस होता है। यह स्टार्च पचा और श्लैष्मिककला और जान्तव प्रोटीन गला सकता है।

हलके ताप पर पपीतेका दूध सुखाया जाता है। कच्चा दूध ग्लिसरीनमें घोल, लिया जा सकता है। यह घोल खानेके काममें भी आ सकता है और मस्सा (warts) गलानेके लिये लगानेके काममें भी।

मन्दाग्नि और यकृतकी खराबीमें यह बड़े कामकी चीज है। यह कृमिनाशक है। दाद पर लगानेसे फायदा होता है। पपीतेका दूध पानी और ग्लिसरीनमें

घोलकर लगानेसे कठरोहिणी (डिफ्थीरिया) का शोथ मिटता है। जान्तव पेप्सीनसे पपीतेके दूधका क्रियाशील रस श्रेष्ठ है।

मात्रा :— ग्लिसरीन, सिरका या मधु और पानीमें पपीतेके दूधका १ से ५ सैकड़ा घोल।

१३३९. Potassium Iodide : पोटाशियम आयोडाइड

पोटाशियम आयोडाइडके रवे या कण रंगहीन होते हैं। इसका स्वाद तीखा होता है। यह पानीमें तुरत घुलता है। देहमें यह तुरत सोख लिया (आचोषित) जाता है जिससे वहाँ स्राव होने लगता है। इसलिये स्राव सूख जाने पर यदि फिरसे उसे जारी करनेकी जरूरत हो तो पूरी तरह पोटाश आयोडाइड देनेसे चाहा फल मिलता है। पेटमें इससे जलन होती है। अधिक मात्रा या बारबार देनेसे आयोडिज्म होता है। आयोडिज्म होने पर कपालमें दर्द, छींक, नाक बहना, गलेकी खसखसाहट, आँसू आना, लार चलना शुरू होता है। औषधि इन राहोंसे बाहर निकल जाती है।

कठजिभिया (मुँह और जबड़ेके कठिन फोड़े) और **यक्ष्मा** आदिमें पोटाशियम आयोडाइडकी मृत तन्तु पर क्रिया-होती हैं जिससे वह द्रवीभूत होकर शरीरमें मिल जाते हैं। पोटाशियम शरीरमें सोख लिया जाता है जो आयडिनके रूपमें चुल्लिका ग्रन्थिमें जाकर जमा होता है। यह ग्रन्थि देहके लिये आयडिनका भंडार हैं।

कठजिभियामें पोटाशियम आयोडाइड खिलानेसे और टिंकचर आयडिन लगानेसे आराम होता है। इस व्रणके लिये ये दोनों अचूक दवाएं हैं। **संधिवात प्रदाहमें** पोटाशियम आयोडाइड विलक्षण लाभ करता है। **ब्रोंकाइटिस** और **कंठप्रदाहमें** यह कफ ढीला करता है और निकालता है। किसी कारणसे भी हुआ ग्रन्थिशोथ यह दूर करता और रसस्राव सोखता है। यह चुल्लिकाग्रन्थिकी क्रियाशीलता बढ़ाता है।

मात्रा :— १ से २½ ग्राम।

१३४०. Potash Permanganate : पोटाश परमैंगनेट

पोटाश परमैंगनेटके रवे या दाने काले होते हैं। इसका स्वाद कसैला और अरुचिकर है। इसकी घुलनेकी शक्ति १ : १४ है। यह ऑक्सीजनकी क्रिया

करनेवाला पदार्थ है। और इसलिये यह उग्र विग्नाशक (एन्टीसेप्टिक) और विगन्धिकारक है। सेन्द्रिय पदार्थोंकी मौजूदगीमें ऑक्सीजन छोड़कर यह ये सब करता है। इसलिये **गर्भाशय-प्रदाह, मुख-प्रदाह** (निनाव।) और **सड़े** घावमें १ से २ सैकड़ा घोलसे धोने और पट्टी बाँधनेसे लाभ होता है।

क्षारीय विषका मारक यह है। ऐसी हालतमें इसके हल्के घोलसे पेट धोया जाता है।

१३४१. Punarnava : Bœrhavia Diffusa : पुनर्नवा

संस्कृत—शोथघ्नी। हिन्दी—बिसखपरा, गदहपूर्ना। पंजाबी—इतसित। बंबई—घेटुली। तामिल—मुकुरट्टाइ।

यह लताके समान फैलनेवाली बूटी है। खेत और बागोंमें पायी जाती है। **जलोदर, खूनकी कमी** और **हृद्रोगोंमें** प्राचीन कालसे यह प्रसिद्ध है। आधुनिक ओषधि-क्रिया-शास्त्रकी अग्निपरीक्षामें भी यह उत्तीर्ण हुई है।

पुनर्नवाका क्रियाशील अंश पुनर्नवीन नामक क्षार है। पौधेमें पोटाशियम लवण प्रचुर मात्रामें है। यदि जलोदर होने पर वृक्क मुख्य हो तो यह दवा सबसे अच्छा काम करती है। हृदयके कारण हुए जलोदर पर इसका लाभ स्पष्ट नहीं मालूम होता है। इस बूटीका कई प्रकारके जलोदर पर, कुछ और पेशाबकी ज्ञात दवाओंसे अधिक असर होता है।

मात्रा :— ३ आउन्स सूखी या २½ रत्तल हरी।

१३४२. Saline : सैलाइन (नमकका पानी)

नॉरमल सैलाइन सॉल्यूशन पानीमें ०.८५ सैकड़ा सोडियम क्लोराइड मिलाकर तैयार किया घोल है। एक पाइन्ट या दश छटाक पानीमें चायकी एक चमच नोनके बराबर यह है। शुद्ध सोडियम क्लोराइड (नमक) पानी चढ़ानेके लिये बहुत अच्छी चीज नहीं है। इस घोलमें कुछ पोटाशियम और कुछ कैलशियम नमक मिलाना चाहिये। इसलिये सैलाइन पानी चढ़ानेके लिये चुआये पानी (डिस्टिल्ड वाटर) में शुद्ध सोडियम क्लोराइडके बने घोलसे, पीनेके पानीमें खानेवाले साधारण नमकसे बना घोल अच्छा है। इस कामके लिये प्रति पाइन्ट ४ ग्रेन कैलशियम क्लोराइड मिलाया जा सकता है।

नॉरमल सैलाइन :—

साधारण नमक	... ...	९० ग्रेन
कैलशियम क्लोराइड	...	४ ,,
पानी	...	१ पाइन्ट ।

अगर खून बहने से या और कारणोंसे खूनकी कमी हो गयी हो या रस (सीरम)की कमी से खून गाढ़ा हो गया हो तो नमक-पानी चढ़ानेसे कुछ देरके लिये कमी पूरी हो जाती है।

यह माना जाता है कि, पशुका २० से ३० सैंकड़ा खून निकालकर उसकी जगह उतना ही नॉरमल सैलाइन देने पर कोई बुरा असर नहीं होता। सैलाइन चढ़ाने से धमनीका चाप फिर ठीक हो जाता है और वृक्क काम करने लगते हैं। क्योंकि चापकी कमीसे उनमें रक्तका अनुधावन नहीं होता था इसलिये उनका काम रुक गया था। साँस पर इसका असर यह होता है कि, वह अधिक और गहरी चलती है। बहुत जादे पानी चढ़ाने से साँसमें कष्ट होता है। इसके बाद फेफड़ेमें सूजन होती है और अंतमें मृत्यु। यदि मनुष्य-रोगी बेचैनी दिखावे तो पानी चढ़ाना तुरत बन्द कर देना चाहिये। पर पशुओंमें धमनीका चाप ही एकमात्र निर्देशक है, इसलिये ध्यान रखना चाहिये कि, चाप अधिक न हो जाय।

यदि रक्त स्राव बढ़ता ही जाता हो तो पानी चढ़ानेसे रुक जाता है। क्योंकि इससे खून अधिक थक्का होता है। साथ ही जितना खून निकल गया पानी चढ़ानेसे उसकी पूर्ति हो जाती है।

सैलाइन पानी शिराओंसे या त्वचासे और कभी कभी उदरकी झिल्लियोंमें दिया जा सकता है। जरूरतके मुताबिक रास्ता या जरिया चुन लिया जाता है। गायके आकार और रक्तकी कमीके अनुसार २,००० से ६,००० सी० सी० तक पानी चढ़ाया जाता है। सैलाइन पानीके साथ ७ से ८ सैकड़े तक बबूलका गोंद मिलाने से और अच्छा होता है। गोंदको उबाल कर छान लेना चाहिये। ठंढा होने पर काममें लाया जाय। इस उपायसे बहुत जादे खूनकी कमी जादे पानी चढ़ाकर पूरी की जा सकती है। इससे हानि भी नहीं होगी।

१३४३. Sodium Bicarbonate : सोडियम बाइकारबोनेट

यह सफेद रंगकी अपारदर्शी बुकनी है। इसका स्वाद कुछ कुछ नमकीन है। यह १ : १० पानीमें घुलता है।

यह पशुओंकी खुजली (Mange) और छाजन (अेक्जीमा) के सूखे हुअे खंट या छिलके को गलाता है। यह श्लेष्मा पिघलाती है पर श्लैष्मिक-कलाके लिये शामक है। इसलिये इसके घोलसे नाक आदि सर्दीके मुकाम धोये जाते हैं। जलने और त्वचाकी पीड़ामें इसका घोल शामक होता है।

यह **अम्लनाशक** है। पाकाशयकी अम्लताका प्रशमन करता है। अधिक अम्लता होने पर सोडियम बाइकारबोनेट उसे ठीक करता है। बछरुओंके सफेद दस्त जैसे रोगोंमें और जहाँ अम्लकीय सधान (acidic fermentation) का शक हो यह लाभदायक है।

कैलोमेलके साथ देने से उसके कई बुरे परिणाम सोडा बाइकारबोनेट रोकता है। इसलिये जब कभी कैलोमेल खिलाया जाता है यह उसमें जरूर मिलाया जाता है।

बातरोगमें यह रक्तकी अम्लता (अेसिडोसिस) कम करता है। जबतक पेशाब क्षारीय न हो जाय इसे देते रहना चाहिये।

मात्रा :—½ से २ आउन्स।

१३४४. Sodium Sulphate : सोडियम सल्फेट

ग्लोबर्स साल्ट

सोडियम सल्फेटकी डली बड़ी और पारदर्शी होती है। यह पानीमें आसानीसे घुलती है। प्रायः हवाकी थोड़ी नमी से यह अपने स्फटिकीय जलसे आप घुल जाती है।

मैग० सल्फकी तरह यह भी नमकीन जुलाब है। मात्रा भी वही है। उससे इसमें एक सुबीता यह है कि, पांडुमें भी दिया जा सकता है।

पांडुमें बार बार देना हो तो मात्रा कम करके पशुकी अवस्थाके अनुसार प्रति मात्रा ४ से ८ आउन्स तक नित्य ३—४ या कम बार देना चाहिये।

मात्रा :—१ से २ रत्तल।

१३४५. Silver Nitrate : सिलभर नाइट्रेट

खिलानेसे यह कोथघ्न और संकोचक का काम करता है। पर इस कामके लिये कभी ही इसका व्यवहार होता है। बाहर लगाने पर त्वचा या कलाके सेन्द्रिय पदार्थोंसे मिलकर यह चादीका काले रंगका धातवीय खुंट (डिपोजिट) बनाता है। सर्दी या निनावेंकी फुड़ियों पर एक आउन्समें २० ग्रेनके घोलका फाहा लगाया जाता है। अति अधिक दाने या फसियां पड़ने पर उन्हें दूर करनेके लिये सिलभर नाइट्रेट लगाना या और भी अच्छा यह कि, इसकी बत्ती या पेनसिल छुलाना लाभप्रद है।

१३४६. Sulphapyridine : M. B. 693 : सल्फापाइरीडीन : एम० बी० ६९३

यह उन सल्फानेमाइडोंमें एक है जिनका उपयोग हालहीमें रासायनिक दवाके रूपमें विशेष चिकित्सा (केमोथेरापी) में शुरू हुआ है। यह बहुत ही शक्तिशाली जीवाणुनाशक या बैक्टीरियानाशक पाया गया है। यह जीवाणु-वृद्धि रोक भी सकता है। यह इस जीवाणुको मार सकता है और अन्तमें उस जीवाणुजनित विषकी क्रियाको दूर कर सकता है।

खानेके कुछ घंटेके भीतर ही देह इसे सोख लेती है। यह रक्तमें कुछ संयुक्त होकर और कुछ मुक्त रह कर सब जगह फैल जाता है तथा जल्दी ही पेशाबकी राह निकल जाता है।

यह वृक्कोंमें होकर निकलता है। इसलिये इसकी क्रिया वहीं अधिक देखी जाती है। इसलिये यह मूत्रप्रणालीकी छूत मिटानेमें बहुत शक्तिशाली है। यह वृक्कोंमें दानेके रूपमें जमा हो सकता है। इसलिये इसे खिलानेके बाद अधिक मात्रामें क्षार और चाहे जितना पानी पिलाना चाहिये।

अधिक गहरी छूत लगने पर काफी दवा खिलाना संभव नहीं भी हो सकता। तब पेशियोंमें इसकी सूई लगाई जा सकती है। इस कामके लिये इसका घुलने लायक रूप सूईकी शीशियोंमें (एम्पुलमें) मिलता है।

मनुष्य-चिकित्सामें विभिन्न जीवाणु-छूत (कोक्सी इन्फेक्शन) मिटानेके लिये यह प्रसिद्ध हो गया है। निमोनियाँ या मेनिनजाइटिस (गरदन तोड़) की प्रारम्भिक अवस्थामें इसे देने पर, रोग बढ़ता नहीं। मनुष्यके सूजाकमें यह खास दवा बन गयी है।

पशुचिकित्सामें **निमोनियाँ, गर्दन ताड़, गिल्टी** (एनथ्रैक्स) या **पार्श्वशूल** (प्लूरिसी) और **गर्भाशय प्रदाह** पर इसके व्यवहारमें संतोषप्रद फल निकलता है। जीवाणुकी छूनकी (कोक्सी इन्फेक्शन) सम्भावना कहीं हो तो सल्फापाइरीडीन या सल्फानिलेमाइड देनेसे छून नहीं होती।

पुरैन न निकले तो हाथ डाल कर उसे निकालते हैं। इस क्रियाके बाद सल्फापाइरीडीन देना चाहिये।

मनुष्यके लिये इसकी मात्रा एक एक ग्रामकी चार टिकियाँ हर ६ घटे पर कुल ६० ग्राम तक है। पर अनेक बार इसकी चौथाई मात्रा फलप्रद हुई है। पशुओंको पहले दिन हर बार १० से २० टिकियाँ देनी चाहिये। तीसरे और चौथे दिन यह कम की जाती है।

१३४७. Tartar Emetic : टारटार एमेटिक

एन्टीमनी पोटाशियम टारटरेट (Antimony potassium Tartrate)

इसकी सफेद बुकनी या सूक्ष्म कण होते हैं। स्वाद धातवीय मीठा होता है। १ : १२ पानीमें घुलता है।

इससे कफ अच्छी तरह निकलता है। काशमें जब कफ कड़ा हो गया हो और स्राव कम हो तो यह लाभदायक है। यद्यपि भरे रोमथाशय पर इसकी क्रिया मन्द होती है फिर भी यह बहुत अच्छा **वमनकारी** है। रक्तके ट्राइपनसोम परोपजीवोंके लिये यह विष है। इसलिये सड़ा-रोगमें इसकी सूई शिरामें लगानी चाहिये। त्वचाके लिये यह उत्तापक और विष है। शिराकी सूई लगानेके समय ध्यान रखना चाहिये कि, त्वचामें जरा भी न जाय। नहीं तो जरूर पक जायगा। नाक की नकपितिया (नैसल ग्रैनुलोमा) में यह बहुत फायदेका है। २ सैकड़ा घोलकी २५ से ४० सी० सी० सूई शिरामें हर दूसरे दिन १५ से २५ दिनों तक लगाई जाती है। घोल तुरतका बना हो और कुछ देर उबालकर निर्बीज कर लिया जाय।

मात्रा :—कफ निकालनेके लिये $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम।
वमनकारी — २ से ४ ड्राम।

शिराकी सूई के लिये ३ सैकड़ा घोल काममें लाओ, शरीरकी तौलके हर १०० रत्तल पर ५ सी० सी०। इन्जेक्सन खूब धीरे देना चाहिये।

१३४८. Thymol : थाइमल : अजवाइनका सत्त

अजवाइनका सत्त बड़े और रंगहीन पारदर्शी दानेके रूपमें होता है। इसकी गन्ध मीठी और उत्कट होती है। यह अजवान (टाइकोटिस) के उड़नेवाले तेलसे बनता है। पानीमें यह थोड़ा घुलता है। यह **कोथघ्न, कृमिघ्न** और **वीजाणुनाशक** है। इसकी क्रिया कारबोलिक एसिड जैसी है। पर यह उससे कहीं कम उत्तापक और विषैला है। वीजाणुनाशक होने से यह **इन्फ्लूएंजा और सर्दीमें** उपयोगी है। तेलमें घोल कर इसका फुहारा नाकमें डालने से **सर्दी** और **कंठप्रदाह** में आराम मिलता है। पेटकी छूत भगानेके कारण यह **खूनी दस्तमें** उपयोगी है। यह कृमिनाशक है इसलिये खूनी दस्तकी चिकित्सामें इसका मुख्य स्थान है और आंतकी छूत मिटानेके काममें आ सकता है। अजवाइनका सत्त अंकुशा या हूक वर्म मारनेके काममें आता है। यह अच्छा कृमिनाशक है।

मात्रा (खानेकी) :— ¼ से २ ड्राम

मूंगफलीके तेलमें गलाकर और पानीमें मिलाकर इसका एमलशन (दूध सदृश मिश्रण) बना कर देना चाहिये। और इस हालतमें इसके बाद जुलाब देना आवश्यक है।

त्वचामें इससे उत्तेजना होती है इसलिये तारपीन और कपूरके साथ यह भी **मालिशमें** मिलाया जाता है।

प्रतिउत्तापक व्यवहारके लिये :—

अजवाइनका सत्त	...	१०
कपूर	...	५
तारपीन	...	२५
मूँगफलीका तेल	...	१००

कोथघ्नके लिये (धोनेके निमित्त) :—

अजवाइन सत्त	...	४ ग्रेन
सुहागा	...	२४ ग्रेन
सोडाबाइकार्ब	...	४० ग्रेन
पानी	...	१ रत्तल तक।

१३४९. Tobacco : तमाकू

तमाकूमें विषैला क्षार निकोटीन होता है। इसलिये तमाकूके पत्तेका चूर्ण बीजाणु-नाशक और परोपजीवी-नाशक काममें लाया जा सकता है। इस गुणसे फ़ायदा उठाकर ढोरकी कीलनी, जूँ और कुकुरमक्खीके अर्भक (पिल्लू या ढोला) मारनेका काम लिया जाता है।

पानीमें चूना मिलाकर तमाकू उबालनेसे क्षार निकल आता है। यह घोल छानकर काममें आ सकता है। किरासनमें भिगोकर रखनेसे भी तमाकूका निकोटिन उसमें घुल सकता है। ढोरकी कीलनी (अठौरी) मारनेके लिये इसका फुहार छोड़ा जा सकता है। किरासनवाले अर्कमें करबालिक एसिड और तारपीन मिलाकर उसे तेज किया जा सकता है।

तमाकूका यह नीचे लिखा अर्क असरदार कीटनाशक है :

तमाकू चूर्ण	.	८ आउन्स।
किरासन तेल	...	१० रत्तल।

तमाकू चूर्ण किरासनमें छोड़ो। मिलाओ। हफ्ते भर एक या दो बार हिलाओ। कपड़ेसे छानो और मिलाओ :—

तारपीन	..	४ आउन्स
नीबूघास (lemon grass हरद्वारी कुश) का तेल	....	१ आउन्स
कारबोलिक एसिड	....	१ आउन्स

कुब्बके फोड़ेमें तमाकू लाभप्रद सिद्ध हुआ है। तमाकूकी महीन बुकनी और समभाग मुर्दाशंख (मुद्राशंख—शीशा भस्म) का भेसलिनमें मलहम बन सकता है या नारियल आदिके तेलमें फेँटा जा सकता है।

१३५०. Trypan blue : Trypaflavin : Methylene blue
ट्रिपन ब्लू : ट्रिपाफ्लावीन : मेथिलिन ब्लू

ट्रिपन ब्लू एक रंजक वस्तु है। यह कोथघ्न और वेदनानिवारक है। ढोरके **पिरोप्लैस्मा—जीवाणुजनित रोगोंमें** इसे देनेसे अच्छा फल हुआ है। कई तरहकी मात्रायें बतायी गयीं हैं। देहकी तौलके हर १०० रत्तल पर औसत लगभग

१·५ ग्रेन १०० सी० सी० नॉरमल सेलाइनमें देना चाहिये। इसकी सूई शिरामें लगती है। यदि द्रव त्वचामें चला आवे तो पीब पड़ जाती है और वहाँके तन्तु सड़ने लगते हैं। ट्रिपन ब्लू जर्द बुखार (टिक फीभर) की खास दवा है। **ट्रिपाफ्लाविन** ट्रिपन ब्लूसे अच्छा बताया गया है पर चमड़ेमें लगने पर इससे भी वही नुकसान होता है। ट्रिपन ब्लूकी मात्रा जो है सो इसकी भी है।

मेथिलिन ब्लू कोथघ्न और वेदनानिवारक है। यह पेशाब और दूधमें होकर निकल जाता है। इस कारण कुछ लोग इसे **थनप्रदाहमें** देते हैं। **दाह** (जोन्स डिसीज़) रोगमें यह लगातार ५ दिनों तक ३ से ४ आउन्स पानीमें ६ ग्रेनकी मात्रामें गलाकर दिनमें ५ बार दिया जाता है, इ..के बाद फिर दुहराते हैं।

१३५१. Urotropine : Hexamine : हेक्सामिन : यूरोट्रोपीन (Methenamine, Hexamethylenetetramine)

मेथिनामाइन, हेक्सामेथिलीन टेट्रामाइन।

फोर्मेल्डिहाइड पर एमोनियाँकी क्रियासे यह बनता है। जिस आसानीसे यह देहमें फौर्मेल्डिहाइड बन जाता है उसी पर इसका व्यवहार निर्भर है। यह स्वयं कोई नियमित क्रिया नहीं करता। देनेके कई मिनट बाद यह पेशाबमें निकलता है। क्षारीय मूत्र पर इसकी क्रिया कम होती है। इसीलिये एसिड सोडियम फोस्फेट पहले देकर मूत्रको अम्लीय करनेकी चाल है। ढोरकी पेशाबको एसिड सोडियम फोस्फेटसे अम्लीय करनेमें कुछको संदेह है। एसिड फोस्फेट यूरोट्रोपीनका विरोधी है। इसलिये दोनों दवायें अलग अलग देनी चाहिये।

वृक्क-शोथ (नेफ्राइटिस्) और सफेद दस्तमें इसका व्यवहार होता है। दोनोंमें यह भीतरी कोथघ्न का काम करता है।

मात्रा :— १½ ड्रामसे ३ ड्राम।

१३५२. Vasaka : Adhatoda Vasaka : वासक

वासक की सूखी पत्तियाँ

हिन्दी—अड़सा, गुजराती—अडलसो, तामिल—अधातोडाई

कफ निकालने और **आक्षेपरोधक**के लिये यह भारतमें प्रसिद्ध है। **खाँसीके साथ छातीके रोगोंमें और क्षय-ज्वरमें (हेक्टिक फीभर) बहुत दिया जाता है।**

पहलेके लोगोंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। आधुनिक खोज यह बताती है कि यह प्रशंसा अकारण नहीं है।

वासकमें वासीसीन नामक क्रियाशील अंश होता है। यह हृदय, फेफड़े आदिकी नाड़ियाँ मन्द कर क्लोमशाखा कुछ फैलाता है पर देर तक। यह कफ ढीला करता है कि, आसानीसे निकल सके। यह **क्लोमशाखका आक्षेप** आराम करता है। वासकमें गंधतैल होता है जिसमें कोथघ्न गुण है। यह भी देहको फायदा करता है।

मात्रा :— ½ से १ आउन्स चूर्ण, पानीमें उबाल कर काममें लाओ।

१३५३. Zinc oxide : जिंक ऑक्साइड
जस्तेका भस्म : सफेदा

यह चूर्ण सफेद या ईषत् पिंगल है और स्वादहीन है। पानीमें नहीं घुलता। जस्ता जलानेसे बनता है।

जस्ता भस्ममें संकोचक और विषनाशक गुण हैं। बाहर लगाने से यह शोषक है। इसे छाजन पर छिड़का जाता या मलहम बना कर लगाया जाता है। छिड़कनेकी बुकनी (डस्टिंग पाउडर) के लिये केवल यही काममें आ सकता है, चाहे किसी मात्रामें स्टार्च मिलाकर भी। मलहमके लिये पॅराफिनमें यह १० से २० प्रतिशत मिलाया जाता है। यह जले पर, छिले पर और छाजन पर पट्टी करनेके लिये बहुत उपयोगी है। गीले छाजन पर इसकी बुकनी छिड़कनेसे उसे सूखा और साफ रखता है।

अध्याय ३६

औषधियाँ और रोग : उनका व्यवहार और परीक्षा

१२५४. औषधियोंकी सूची और उनका व्यवहार

(१३०३) Acid Arsenious : एसिड आर्सेनियस, संखिया।

उत्तेजक, और पौष्टिक। रक्तकी कमी और सड़ा (Surra) में उपयोगी। जहर देनेवाले इसे काममें लाते हैं।

(१३०४) Acid Boric and Borax : एसिड बोरिक और सुहागा

कोथघ्न, सर्दी, कन्ठ-प्रदाह, दुग्ध-ज्वर, छाजन, चर्म-प्रदाह, निनावाँमें इसका उपयोग होता है।

(१३०५) Acid Carbolic and Oil Carbolic : एसिड कारबोलिक और कारबोलिक तेल।

छूत-नाशक, बीजाणुनाशक, और विष। छाजन, गिल्टी (एन्थ्रेक्स), गलसूआ, धनुष्टंकारमें उपयोगी।

(१३०६) Acid Salicylic & Sodium Salicylate.
(oil and ointment) : एसिड सैलीसिलिक और सोडियम सैलीसिलेट।
(तेल और मलहम)

कोथघ्न, परोपजीवी-नाशक। छाजन, मुहासा, दाद, बछड़ेकी रोहिणी, बात, संधिप्रदाह, हृदयावरणशोथमें उपयोगी।

(१३०७) Acid Picric : एसिड पिकरिक।

दर्दनाशक और कोथघ्न। छाजन, जलने पर और चर्मप्रदाह पर उपयोगी।

(१३०८) Aloes : मुसब्बर।

दस्तावर। अपकर्षिणीमें और कृमिरोगमें उपयोगी।

(१३०९) Alum : फिटकरी।

संकोचक, सब तरहकी सर्दी, कंठप्रदाह और रक्तस्रावमें उपयोगी।

(१३१०) Ammon Chloride : नसादर।

कफनिस्सारक। काश (क्लोमशाखाप्रदाह या ब्रोंकाइटिस) और उदरशोथमें उपयोगी।

(१३११) Arjun : अर्जुन।

हृदय चैतन्य करनेवाला। हृदयकी दुर्वलतामें और पेशाव उतारनेमें उपयोगी।

(१३१२) Bismuth Carbonate : बिसमथ कारबोनेट।

अम्लनाशक। श्लैष्मिककलाका रक्षक, कोथघ्न और संकोचक। सफेद दस्त, खूनी दस्त, अतिसारमें तथा चर्म-रोगों, घावों, जलने पर छिड़कनेके लिये डस्टिंग पाउडर आदिके लिये उपयोगी।

(१३१३) Bone Meal : हड्डीकी बुकनी।

कैलशियम और फोस्फोरस देती है। सुखंडीमें उपयोगी।

(१३१४) Calcium Carbonate : कैलशियम कारबोनेट अर्थात् खड़िया-मिट्टी। कैलशियम देती है। सुखंडीमें उपयोगी। अम्लनाशक।

(१३१५) Calcium Chloride : कैलशियम क्लोराइड।

खून जमानेवाला। रक्तस्राव और उदरशोथमें उपयोगी। नमकपानी (सेलाइन) चढ़ानेके लिये उपयोगी। पित्ती (Urticaria) में इसका घोल उपयोगी है।

(१३१६) Calcium Gluconate : कैलशियम ग्लूकोनेट।

खून जमानेवाला। दुग्धज्वर, रक्तस्राव (भीतरी या बाहरी) में उपयोगी।

(१३१७) Calomel : कैलोमेल।

कोथघ्न, विरेचक, और जीवाणुनाशक। पांडु, अतिसार, जलोदर और केंचुआ-कृमि दूर करनेमें उपयोगी। छाजनमें लगानेसे उपयोगी।

(१३१८) Camphor : कपूर।

कोथघ्न, आक्षेपरोधक, उत्तेजक, कीटघ्न और मालिशमें उपयोगी। काश (ब्रोंकाइटिस), पार्श्वशूल (प्लूरिसी), सर्दी, हृदयकी कमजोरी, दिमागकी उलझन (रक्ताधिक्य), वात, वमन, उदरच्छदा-प्रदाहमें उपयोगी। मालिशमें व्यवहार होता है।

(१३१९) Catechu : कत्था, खैर।

संकोचक। खूनी दस्त, अतिसार और अपकर्षिणी रोकनेमें उपयोगी।

(१३२०) Charcoal : कोयला।

शोषक, चोषक, कोथघ्न। खूनी दस्त, पेटके प्रदाह और बाहरी घावमें उपयोगी।

(१३२१) Chloral Hydrate : क्लारल हाइड्रेट।

निद्राकारक, चैतन्यनिवारक। गर्दनतोड़, धनुष्टकार, वमन, चीरफाड, भ्रंश और उदरशूलमें उपयोगी।

(१३२२) Copper Sulphate : तूतिया।

संकोचक, दाहक, कृमिघ्न, वमनकारी, कृमिनाशक। कंठप्रदाह, काश (ब्रोंकाइटिस), ताँबेकी कमीसे रक्ताल्पता, कृमिरोग, घाव धोनेमें उपयोगी।

(१३२३) Creosote : क्रियोजोट।

कोथघ्न, कफनिस्सारक, दर्दहर। क्रूपस (कठिन) निमानियामें उपयोगी।

(१३२४) Ferrous Sulphate : फेरस सल्फेट।

संकोचक। वाह (जोन्स डिसीज), अतिसार और रक्ताल्पतामें उपयोगी।

(१३२५) Iodine Tincture and Lugol's solution :
टिंक्चर आयडिन और लूगल सोलूशन।

कोथघ्न, वीजाणुनाशक, छूतनाशक। मुहासा, बछरूकी रोहणी (डिफ्थीरिया), गलसूआमें उपयोगी। कठजिभिया अर्थात् रे फंगसके (Ray Fungus) कारण मुँह और जबड़ेके कठिन फोड़ेकी खास दवा है।

(१३२६) Iodoform : आयडोफौर्म।

कोथघ्न। गर्भाशयशोथ, पुरैनका नहीं निकलना, घावकी पट्टीमें उपयोगी।

(१३२७) Kamala : कमला चूर्ण, कबीला।

परोपजीवीनाशक। कृमिरोगमें उपयोगी।

(१३२८) Kaolin : केओलिन, चीनी मिट्टी।

चोषक। पाकाशयप्रदाह, अतिसार और पेचिशमें उपयोगी।

(१३२९) Magnesium Sulphate : मैगनीशियम सल्फेट।

विरेचक। हृदयावरणशोथ, डेंगू, अंत्रशूल, पांडु और धनुष्टकारमें उपयोगी।

(१३३०) Myrobalan : हर्र, हरीतकी।

संकोचक, मृदुविरेचक, और कृमिघ्न। कृमिके लिये विरेचक। हौलदिल और पेट फूलनेमें उपयोगी।

(१३३१) Neem Leaves : नीमकी पत्ती।

कोथघ्न। पोल्टिश और घाव धोनेमें इसका काढ़ा या क्वाथ उपयोगी।

(१३३२) Novocain : नोभोकेन।

चैतन्यनाशक। स्थानविशेष अनुभवशून्य करनेके लिये सूई देने और धनुष्टकारमें उपयोगी।

(१३३३) Nux Vomica & Strychnine : कुचला और स्ट्रिकनीन।

पुष्टई नाड़ी और रक्तानुधावनको चैतन्यकारी। पक्षाघात, अनाह (कब्जियत) और सांसके रोगोंमें उपयोगी।

(१३३४) Oil Castor : रेंड़ीका तेल।

विरेचक। सफेद दस्त, पाकाशय-प्रदाह और बच्चेके अतिसारमें उपयोगी।

(१३३५) Oil Chaulmoogra : चाउलमोगरेका तेल।

परोपजीवीनाशक। वाहमें उपयोगी।

(१३३६) Oil Turpentine : तारपीनका तेल।

कोथघ्न, कृमिनाशक, रक्तस्राव-रोधक और मालिश। रक्तस्राव, वात, अन्त्रशूल, जूं में उपयोगी।

(१३३७) Opium & Morphine : अफीम और मौर्फीन।

निद्राकारक और शामक। पार्श्वशूल (प्लूरिसी), पाकाशय-प्रदाह, उदरच्छदाप्रदाह और सभी तरहके शूल और स्तब्धतामें उपयोगी।

(१३३८) Papaya Milk : पपीतेका दूध।

कृमिनाशक, जीवाणु-नाशक। छाजन, दाद और चर्मरोगों और रोहिणीमें उपयोगी।

(१३३९) Potassium Iodide : पोटाशियम आयोडाइड।

परिवर्तक (शरीरकी क्रियाओंको दुरुस्त करनेवाला) कफनिस्सारक, शोषक। काश (क्लोमनलिका-प्रदाह) गर्दनतोड़, गलसूआ, उदरच्छदाप्रदाह मुखविवरव्रणमें उपयोगी।

(१३४०) Potash Permanganate : पोटाश परमैंगनेट ।

कोथघ्न, विगंधकारक । गर्भाशयशोथ, बछरूकी रोहिणीमें उपयोगी ।

(१३४१) Punarnava : पुनर्नवा ।

मूत्राकारी । जलोदरमें उपयोगी ।

(१३४२) Saline (For infusion) : सैलाइन (पानी चढ़ानेके लिये)।

रक्तस्राव, जर्दबुखार (टिक फीभर) ।

(१३४३) Sodium Bicarbonate : सोडियम बाइकारबोनेट (खानेका सोडा)।

अम्लघ्न, खूँट (निःसृत होकर जमे पदार्थ) पिघलानेवाला । सर्दी, वृक्कशोथ और सफेद दस्तमें उपयोगी । जलने और छाजन पर पट्टी बांधनेमें ।

(१३४४) Sodium Sulphate : सोडियम सल्फेट ।

विरेचक । पांडुमें उपयोगी ।

(१३४५) Silver Nitrate : सिलभर नाइट्रेट ।

कोथघ्न, संकोचक और दाहक । मुखशोथ (स्टोमेटाइटिस), श्लैष्मिकप्रदाह और खुले घावों पर रक्षावरण देनेमें उपयोगी ।

(१३४६) Sulphapyridine : M.B. 693 : सल्फापाइरीडीन : एम.बी. ६९३ ।

जीवाणुनाशक । निमोनियाँ, गर्दनतोड़ और कक्काई जीवाणु जनित अन्य बीमारियोंमें उपयोगी । भीतरी कोथघ्न भी ।

(१३४७) Tartar Emetic : टारटार एमेटिक ।

कफ-निस्सारक, वमनकारक और परोपजीवी-नाशक । स्वरनाली-प्रदाह, काश, सड़ा, नकपितियामें उपयोगी ।

(१३४८) Thymol : थाइमल, अजवाइनका सत्त ।

कोथघ्न, कृमिघ्न और मालिश । सर्दी (सब तरहकी), स्वरनाली-प्रदाह, खूनी दस्तमें उपयोगी ।

(१३४९) Tobacco : तमाकू ।

परोपजीवी-नाशक और कोथघ्न । खुजली और कुकुर-मक्खीमें उपयोगी ।

(१३५०) Trypan Blue : Trypaflavin : Methylene Blue : ट्राइपन ब्लू : ट्राइपाफ्लेवीन : मेथिलीन ब्लू ।

कोथघ्न और दर्दहर । जर्द बुखार और दाहमें उपयोगी ।

(१३५१) Urotropin : Hexamine : यूरोट्रोपीन : हेक्सामीन।

भीतरी कोथघ्न, वृक्कशोथ, सफेद दस्तमें उपयोगी।

(१३५२) Vasaka : वासक।

कफनिस्सारक, आक्षेपरोधक। कास, खांसी, क्षयज्वर।

(१३५३) Zinc Oxide : जिंकऑक्साइड (जस्ता-भस्म)

शोषक, संकोचक, कोथघ्न। छाजन, मस्सा (कच्छपी) और चर्मरोगोंमें उपयोगी।

१३५५. रोगोंकी सूची और उनकी दवाएँ, इलाज, और निदान।

छूत और फैलनेवाले रोग

(१३८४). Rinderpest : रिन्डरपेस्ट : माता।

रोगाणुका संचारण और रस तथा विरस (सिरम और एन्टी सिरम) की सूई।

(१३८५). Hæmorrhagic Septicaemia : हेमोरेजिक सेप्टिसीमिया : गलघोंटू।

सिरम साइमल्टेनियसकी सूई।

(१३८६). Black Quarter : ब्लेक क्वार्टर : लगड़ी।

रस और टीका (सिरम और वैक्सीनकी सूई)।

(१३८७). Anthrax : एन्थ्रेक्स : गिल्टी।

विरस (एन्टीसिरम)। एक ड्रामकी मात्रामें कारबोलिक एसिड मंडके साथ। सल्फापाइरीडीन।

(१३८८). Foot and Mouth Disease : खुरपका।

कोथघ्नसे बारबार धोना। नीमका घोल (काढ़ा)।

(१३८९). Dengu : Three Day Fever : डेंगू : तीन दिनका बुखार।

मैग० सल्फ—मात्रा ½ रत्तल।

(१३९०). Cow-pox : चेचक।

नीमके घोलसे धोना।

(१३९१). Contagious pleuro-pneumonia : फैलनेवाला प्लूरो-निमोनियाँ।

सेन्द्रिय संखियासे बनी दवायें।

(१३६२). Tuberculosis : क्षय : छई ।

ट्यूबरकुलिन जाँच । डबल इन्ट्राडरमल जाँच । स्वच्छ आबहवा । प्राकृत चिकित्सा ।

(१३६३). Johne's Disease or Para Tuberculosis : वाह ।

जोनकी जाँच, खनिजोंकी कमी पूरी करना । स्वच्छ वातावरण । अतिसारके लिये संकोचक : फेरस सल्फेट और गंधकाम्ल । मुंहसे मेथिलीन ब्लू ८० ग्रेन ५ दिनों तक । चाउलमोगरेकी सूई ।

(१३६४). Actinomycosis : एक्टिनोमाइकोसिस : कठजिभिया ।

शल्य-चिकित्सा । मृत तन्तुओंका निकालना । संखियाकी बत्ती, आयडिनकी ५% सूई नसमें २०० सी० सी० ।

(१३६५). Bang's Disease : बैङ्गस डिसीज : संक्रामक गर्भपात ।

खनिज खिलाना । रोधक उपचार ।

(१३६६). Tick Fever : जर्द बुखार ।

देहकी तौलके प्रति २०० रत्तल पर ट्राइपन ब्लू १½ से ३ ग्रेनका १ से ५% घोल, शिराकी सूई । ६, ६ घंटे पर । ट्राइपाफ्लाबीन १५ ग्रेन ५० सी० सी० नौरमल सेलाइनमें सिराकी सूई जादा अच्छी रहेगी । नौरमल सेलाइन कमजोरीकी हालतमें । खूनकी कमीके लिये १ से २ ड्राम फेरस सल्फेट नित्य । अनाह (कब्ज) में मृदुविरेचक ।

(१३६७). Surra : सड़ा ।

प्रति १०० रत्तल देह-तौल पर ३ % टारटार एमेटिकका घोल ५ सी० सी० शिरामें । ७ ग्रेन तक संखिया दिनमें दो बार ।

(१३६८). Titanus : धनुष्टंकार ।

५० से १०० सी० सी० विरस (एन्टी सिरम) शिरामें । त्वचामें हर दूसरे घंटे १ ड्राम कारबोलिक एसिड, २ आउन्स पानीमें मिलाकर सूई । २४ घंटोंमें ३६ ड्राम दिया जा सकता है । क्लोरल हाइड्रेट १ से २ आउन्स गुदासे । त्वचामें ३ से ४ ग्रेन मौरफीनकी सूई । सुषुम्नामें नोभोकेन १% ५० सी० सी० । मैगसल्फकी सूई त्वचामें—प्रतिवार ५० सी० सी० पानीमें ½ आउन्स । १०० सी० सी० कैलशियम क्लोराइडकी सूईके बाद सालभरसन । शिरामें ८% सोडा बाइकार्ब ५०० से १५०० सी० सी० ।

(१३९९). Rabies : कुकुर-विष, कुत्ता काटना।

पाश्चरका इलाज, सिरम (एन्टीसेरम)।

(१४००). White Scour : Septicæmia Neonatorum :
सफेद दस्त।

रेंड़ीके तेलका अवद्रव (एमलसन) १ से २ ड्राम। सोडा बाइकार्ब, बिसमथकार्ब और हेक्सामिन प्रत्येक एक एक ड्राम मंडके साथ।

(१४०१). Navel Ill : Septicæmia of the New-born :
नाभिकी बीमारी : नवजातका रक्तदोष :

नाभि पर आयडिन लगा कर रोको : रोधक दवा—पोलीभेलेन्ट एन्टीस्ट्रेप्टोकोकस सिरम

(१४०२). Calf Diphtheria : वत्स-रोहिणी।

लगलका घोल लगाना पाटाश क्लोरेटसे धोना। परमैंगनेटसे धोना। सैलीसिलिक एसिड पेन्ट लगाना। ग्लिसरिनमें पर्गीनके दवका १ से ३% घोल गलेमें लगानेके लिये।

(१४०३). Coccidiosis : कोक्सीडियोसिस : खूनी दस्त।

संकोचक, कृमिनाशक। बिषमथ सबनाइट्रेट १½ आउन्स और कोयलेकी बुकनी २५० ग्रेन मिलाकर जीभ पर छिड़को। कत्थ २ से ३ गोटी, अजवाइन सत्त १५ ग्रेन, पानी या मंडके साथ नित्य।

परोपजीवी रोग

(१४०४). Helminthiasis : कृमिरोग।

तूतियेका १% घोल ३ से १० आउन्स पिलाना। ½ से १ आउन्स कबीला मंडमें मिलाकर खिलाना। तमाकू चूर्णका १% अर्क १०० से ३०० सी० सी० तक। हर्रे ८ आउन्स, मुसब्बर।

(१४१०). Nasal Granuloma or Nasal Schistosomiosis ;
नेसल ग्रेनुलोमा : नकपितिया।

सोडियम एन्टीमनी टारटरेटकी सूई शिरामें।

मुखरोग

(१४१७). Stomatitis : मुँह आना (निनावाँ)।

१ आउन्स नमक और ४ रत्तल पानोसे धोओ। अजवाइन सत्त १० ग्रेन, सोहागा १ ड्राम, पानी १ रत्तलका मुखधोअन, विरेचक।

(१४१८-१९). Stomatitis in Suckling and Salivation : दूधमुँहों या दूधपीतोंका मुँह आना और थूक आना।

सोहागाका लावा मधुमें मिला कर लेप

(१४२०). Mumps : Parotitis : गलसूआ।

कारबोलिक एसिड १ से २०% का सेक (गरम पानीसे) आयडिन मलहम। आयडिनकी सूई शिरामें। पोटाश आयोडाइड खिलाना।

(१४२१). Obstruction of Oesophagus : महास्रोतावरोध (अन्ननालीका अवरोध)।

यंत्र-उपचार और चीरफाड़।

आमाशय और आँतके रोग

(१४२२). Vomiting : वमन।

कपूर १½ ड्राम मंडके साथ। क्लोरल हाइड्रेट मंडके साथ मात्रा १ आउन्स।

(१४२३). Tympanitis : पेट फूलना।

यांत्रिक और चीरफाड़के उपचार।

(१४२४). Foreign body in the Stomach : पेटमें बाहरी चीजोंका अटकना।

यांत्रिक और चीरफाड़के उपचार।

(१४२५). Gastric Catarrh : पाकाशय-प्रदाह।

पेट साफ करनेके लिये रेंड़ीका तेल। छूत (रोग-संक्रमण) मिटानेके लिये ड्रामकी मात्राओंमें अजवाइनका सत्त। कोयलेका चूर्ण, मात्रा ८ आउन्स पानीमें घोल कर। केओलिन या चीनी मिट्टी ८ आउन्स। संकोचक, अफीम मात्रा १ ड्राम। चूनेका पानी।

(१४२६). Intestinal Colic : अंत्रशूल ।

कड़े दर्दमें, मौर्फीन २½ से ४ ग्रेन की सूई त्वचामें, तारपीन तेल १ आउन्स किसी मीठे (अनुत्तेजक) तेलमें मिलाकर, इसके बाद मैग सल्फ मात्रा १ रत्तल ।

(१४२७). Chronic Intestinal Catarrh : आँतका जीर्ण-प्रदाह ।

विरेचक, संकोचक, उपदाह-प्रशामक या स्निग्धकारक औषध (demulcents) परोपजीवी निकालना ।

यकृतके रोग

(१४२८). Jaundice : पांडु ।

कैलोमल ४ ग्रेनकी आंशिक मात्राओंमें और सोडा सल्फ ८ आउन्स नित्य नियमसे ।

(१४२९). Gall Stone : पित्ताश्मरी ।

कठिन दर्द पर २½ से ४ ग्रेन मौर्फीनकी सूई । मृदुविरेचक, रेंड़ी तेल, मैग० सल्फ ।

उदर्याकला (peritoneum) के रोग

(१४३०). Ascites : जलोदर ।

३ आउन्स सूखी या २½ रत्तल हरी पुनर्नवा । कैलशियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम । मैग० सल्फ । छेद करके पानी निकालना ।

(१४३१). Peritonitis : उदर्या-प्रदाह ।

कपूर १ आउन्स तेल ४ आउन्समें मिलाकर पेटकी झिल्लीमें उदर्याकलामें सूई दो । १ ड्राम अफीम खिलाओ, पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम । अनाहके लिये मृदुविरेचक ।

नाकके रोग

(१४३२). Nasal Catarrh : सर्दी ।

फिटकरी, बोरिक एसिड, सुहागाका १ % घोल । अजवाइन सत्त १ % तेलमें, फुहारा दो ।

(१४३३). Croupous Rhinitis : पीनस, नाकड़ा ।

सर्दीकी तरह सब कुछ । १ से २% सोडा बाइकार्बका घोल कफ या खराब श्लैष्मिक आवरणको गलानेके लिये ।

कंठ, क्लोम और फेफड़ेके रोग

(१४३४). Laryngeal Catarrh : कंठप्रदाह ।

नाककी सर्दीकी तरह । ५ % सिलभर नाइट्रेटका घोल लगाओ । कफ या नष्ट श्लैष्मिक आवरण निकालनेके लिये ? से ७ ग्रेन तूतिया पानीके साथ खिलाओ या टारटार एमेटिक २ से ७ ग्रेन पानीके साथ खिलाओ ।

(१४३५). Bronchitis : ब्रोङ्काइटिस : काश (पुरानी खाँसी) ।

स्निग्धकारक औषध, आक्षेप-रोधक, कफ-निस्सारक, मधुके साथ वासक २ आउन्स सूखी पत्ती प्रति मात्राका अवलेह । एमन क्लोराइड या नसादर २ से ४ ड्राम, पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम । कंठप्रदाहकी तरह टारटार एमेटिक और तूतिया, मधुके साथ कपूर १ ड्रामका अवलेह ।

(१४३६). Infectious Bronchitis : छूतका काश ।

काशकी तरह ही । दारुण खांसीके लिये $\frac{1}{4}$ से २ ग्रेन मौर्फीनकी सूई, त्वचामें ४० से ६० सी० सी० दूधकी सूई ।

(१४३७). Pneumonia : Croupous Pneumonia : निमोनियाँ : क्रूपस निमोनिया ।

२ से ३ % क्रियोजोट घोल ५० सी० सी० सुँघाना । सल्फापाइरीडीन । एन्टीफ्लोजिस्टीन, मालिश, प्रति उत्तापक ।

(१४३८). Catarrhal Pneumonia or Broncho Pneumonia : ब्रोंको निमोनियाँ ।

क्रूपस निमोनियाँकी तरह ।

(१४३९). Fibrous Pneumonia : फाइब्रस निमोनियाँ ।

कोथघ्नके लिये सल्फापाइरीडीन ।

(१४४०). Pleurisy : प्लूरिसी : पार्श्व शूल ।

प्रति-उत्तापक, पोल्टिस, कपूरकी मालिश । शामक अफीम, सल्फापाइरीडीन ।

हृद्‌रोग

(१४४१). Pericarditis : हृत्कोषप्रदाह ।
सोडा सैलीसिलस ४ ड्राम । हर्र ८ आउन्स दो बार । मुसब्बर १½ आउन्स, मैगसल्फ १ रत्तलकी मात्रामें ।

(१४४२). Myocarditis : हृत्पिंडप्रदाह ।
विश्राम, परिचर्या, अर्जुन, स्ट्रिकनीन ।

(१४४३). Valvular Disease : हृत्कपाटिका-रोग ।
विश्राम, परिचर्या । अर्जुन जैसी हृदयकी पुष्टिकारी दवा ।

(१४४४). Palpitation : हौलदिल ।
शामक, मौर्फिया, क्लोरल हाइड्रेट या पोटाश ब्रोमाइडकी सूई २० से ४० ग्रेनकी मात्रामें ।

(१४४५). Brady Cardia : हृदमंदना ।
विश्राम ।

(१४४६). Irregular Heart : हृदयकी धड़कनकी अनियमितता ।
सावधानीसे काम करना । अर्जुन ।

(१४४७). Heart Weakness : हृदयकी कमजोरी ।
अर्जुन २ आउन्सकी ३ मात्रायें । तेल-कपूरकी सूई । अनाहमें मैग सल्फ ।

वृक्क-रोग

(१४४८). Nephritis : वृक्क-प्रदाह ।
सोडा बाइकार्ब ½ आउन्स, पोटाश नाइट्रेट २ ड्राम । पुनर्नवा सूखी नित्य ४ आउन्स ।

(१४४९). Pyelonephritis : पाइलोनेफ्राइटिस : वृक्कमें जीवाणु-संचारके कारण सपूय प्रदाह ।
यूरोट्रोपीन १½ ड्राम । सल्फापाइरीडीन ।

रक्तरोग

(१४५०). Anæmia and Bleeding : रक्ताल्पता और रक्तस्राव ।
२० सी० सी० दूधकी सूई । कैलशियम क्लोराइड ½ आउन्सकी मात्रामें,

फिटकरी तारपीन । नौरमल सेलाइन त्वचामें ५ से १० पाइन्ट । दहीमें तांबा, संखिया २ ग्रेनकी मात्रामें ।

मस्तिष्क-रोग

(१४५१). Concussion of Brain : मस्तिष्काघात ।

विश्राम । छेडछाड़ मत करो ।

(१४५२). Congestion of Brain : मस्तिष्ककी संकुलता (रक्ताधिक्य) ।

स्ट्रिकनीन ¾ ग्रेनकी सूई । तेलमें १५% कपूर ½ से १ आउन्सकी सूई ।

(१४५३). Sun Stroke : लू लगना ।

सिर पर ठंडी पट्टी । स्पंज करना ।

(१४५४). Meningitis : मेनिञ्जाइटिस : गर्दन तोड़ ।

पोटाश आयोडाइड २ से ३ ड्राम । मालिश, कटि-छेदन, १०० सी० सी० में १० ग्रेन क्लोरल हाइड्रेटकी सूई ।

(१४५५). Milk Fever : दुग्धज्वर ।

कैलशियम ग्लूकोनेट २ आउन्स, बोरिक एसिड ३ ड्राम और पानी १४ आउन्स मिलाओ, गरम करो, त्वचामें सूई दो । चूचोंसे हवा फूको ।

(१४५६). Tetany : धनुषी ।

अलकली कारबोनेट, कैलशियम फौस्फेट, शामक ।

चर्मरोग

(१४५७). Urticaria : पित्ती ।

सरल विरेचन । कैलशियम क्लोराइड नौरमल सेलाइनमें ।

(१४५८). Eczema : एक्जीमा : छाजन ।

कारबोलिक तेल ५%, बोरिक चूर्ण १०%, सैलीसिलिक तेल ५%, जस्ता-भस्म ५%, पिकरिक घोल १%, पपीतेका १ से ५% घोल । सलीसिलिक एसिडकी सूखी बुकनीमें ५०% बोरिक एसिड । त्वचामें २० सी० सी० दूधकी सूई ।

(१४५९). Dermatitis : त्वक्प्रदाह ।

बोरिक मलहम १०%, पिकरिक एसिड १% ।

(१४६०). Gangrene of Skin : त्वचाकी ग्रेंग्रीन ।

कोथघ्न पट्टी ।

(१४६१). Acne : कील : मुहासा ।

टिंकचर आयडिन, एसिड सैलीसिलिक मलहम ५%, सोडा बाईकार्बका घोल सफाईके लिये मलो ।

(१४६२). Ringworm : दाद ।

एसिड सैलीसिलिक मलहम १०%, चूनेका पानी ५%, सोडा बाईकार्ब २½% धोअन ।

(१४६३). Mange : पकी खुजली ।

१०% तमाकूका चूनेके साथ काढ़ा ।

(१४६४). Ticks : किलनी ।

नमक, तमाकूका काढ़ा लगाओ ।

(१४६५). Lice : जूं ।

तारपीन ।

(१४६६). Warble Flies : कुकुरमक्खी ।

नमकका संपृक्त घोल । डेरीस पाउडर । तमाकू ४ रत्तल, पानी ४ रत्तल, चूना १ रत्तल मिलाओ, छानो, लगाओ ।

(१४६७). Hump Sore : कुब्बका घाव ।

तमाकू चूर्ण १ भाग, मुर्दासंख १ भाग, नारियल तेलमें लेप बनाओ, लगाओ ।

अपोषण रोग

(१४६८). Rickets : सुखडी, फक्करोग ।

कैलशियम कारबोनेट, हड्डीका चूर्ण ।

(१४६९). Osteomalacia : मृद्वस्थि ।

सुखंडीकी तरह ।

सर्वाङ्गीन साधारण रोग (Constitutional Diseases)

(१४७०). Paralysis : पक्षाघात ।

कुचला, दस्तावर, मालिश ।

(१४७१). Rheumatic Arthritis : संधिवात, गठिया ।

सोडा सैलीसिलस, १० सी० सी० में २० ग्रेनकी सूई त्वचामें । कपूर-नारपीनको मालिश ।

स्त्री-रोग

(१४७२). Mastitis : थनैला, स्तन-प्रदाह ।

एनोडाइन, एन्टीफलोजिस्टीन, सल्फापाइरीडीन । पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टोभैक्सीनकी सूई ।

(१४७३). Metritis : जरायु-प्रदाह, प्रसूती-ज्वर ।

परमैंगनेट १ : २०००, आयोडोफौर्मकी पेसरी (गर्भाशयके मुँह पर लगानेके लिये वस्तु-विशेष) सल्फापाइरीडीन । पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टो भैक्सीनकी सूई ।

भारतमें गाय

दूसरा खंड

सातवाँ भाग

रोग और उनकी चिकित्सा

गायके भीतरी अवयव
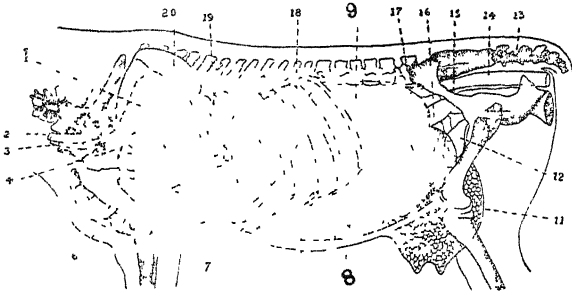
चित्र १६१

१. महा धमनी २. अन्नवहा ३. क्लोमनलिका ४. फुस्फुसाभिगा धमनी ६. हृदय ७. जालाशय ८, ९. रोमन्थाशय ११. थन १२. मूत्राशय १३. भग, योनि १४. गुदा १५. गवीनी, मूत्रनाली १६. गर्भाशय १७. बायाँ डिम्बकोष १८. प्लीहा २०. पिछली महाशिरा।

सातवें भागका परिचय

रोगपीड़ित गायोंकी चिकित्सा बड़े महत्वका विषय है। साधारण रोगोंकी चिकित्साकी एक तरहकी पद्धति भारतके देहातोंमें प्रचलित थी। पर इस चिकित्सा-पद्धतिका ज्ञान लुप्त हो रहा है। लेकिन विदेशी चिकित्सा उसका स्थान देहातमें नहीं ले सकी है। यद्यपि गायके रोग, उनका निवारण करना और चिकित्सा इस बारेमें शास्त्रवेत्ताओंने बहुत ज्ञान अब प्राप्त कर लिया है। पर यह ज्ञान देहातमें बहुत कम पहुँच पाया है। मनुष्यके रोगोंके लिये लोग कितने वैद्योंका भार उठा रहे हैं। सरकारी नौकरीके अलावा गैरसरकारी और पारिवारिक आवश्यकताओंके लिये वैद्योंका भार उठाया जाता है। हर दो आदमी पर एक ढोर है जो मोटा मोटी ४० करोड़ आदमियों पर २० करोड़ ढोर हुए। फिर भी पशुचिकित्सकका खर्च व्यक्तियों द्वारा ,उठानेकी प्रथा अभी नहीं चली है। पशुचिकित्साका सारा खर्च अभी सरकार या जिला या म्युनिसपल बोर्ड जैसी सार्वजनिक संस्थायें करती हैं। गैरसरकारी चिकित्सक इनेगिने ही हैं। इस कारण ढोरोंको अनेक रोग सताते हैं जो रुक सकते हैं। साधारण तौरपर इनका स्वास्थ्य मनुष्योंसे कहीं अच्छा रहता है, फिर भी ये रोगग्रस्त होते हैं। बुखार, निमोनियाँ, पेचिश, अतिसार, छई आदि बहुत नुकसान करते हैं। प्रायः चीरफाड़की व्याधियाँ भी हो जाती हैं। चोट, कटना, जलना, छाला, फोड़ाफुंसी, हड्डी टूटना, हड्डी उतरना इनका उपचार शायद ही होता है। इनके कारण बहुत कष्ट होता है। और सधिवात जैसे रोगोंसे पशु बेकार भी हो जाते हैं। जिस आदमीको इन रोगों और उनकी चिकित्साका थोड़ा भी ज्ञान है वह इनमें सेवा कर सकता है। पशुओं और मनुष्योंके कुछ रोग तो एक ही हैं। अनपच, अतिसार, बाहरी और भीतरी परोपजीवी, बाहरी जूं, किलनी आदि और चीरफाड़की व्याधियोंकी चिकित्सा मनुष्यों जैसी ही है। और दवा भी वही हैं। भेद केवल मात्राका है। और पाचन प्रणालीकी ·रचना पर गौर रखना होता है। जो आदमी मनुष्यकी चिकित्सा जानता है वह अपने ज्ञानको पशुकी चिकित्सा में भी अच्छी तरह लगा सकता है। इसलिये हमारे ग्राम-वैद्य को जैसा ज्ञान होना चाहिये वैसेसे गायके साधारण रोगकी बहुत कुछ चिकित्सा हो सकती है।

संक्रामक रोग

पशुओंमें विभिन्न अंगोंके रोगोंके सिवा संक्रामक और छूतके रोगोंका एक अलग वर्ग है। अन्य सभी रोग महत्वमें इनसे दब जाते हैं। बीमारी जब फैलती है तब हजारों ढोर ले बैठती है। भेटरिनरी विभागको मारी (epidemics) और बारहमासी या कायम मुकामी (endemic) रोगोंसे जितने ढोर मरनेकी खबर मिलती है उससे कहीं जादे मरते हैं। इतनी अधूरी खबरके मुताबिक भी संक्रामक रोगोंसे मरनेका लेखा खाली अंगरेजी भारतमें २½ से ३ लाख हर साल है। देशी राज्य भी जोड़नेसे मृत्युका लेखा प्रति वर्ष ४ से ४½ लाख होगा। इस कुलका आधा केवल माताकी (Rinderpest) भेंट होते हैं। माताके बाद छूतकी बीमारियोंमें गलघोंट्, लगड़ी, गिल्टी, खुरपकाका नाम है। सन् १९३७ में छूतकी बीमारियोंकी कुल मृत्यु संख्याके अनुपातमें इन बीमारियों की मृत्युसख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

संक्रामक बीमारियोंसे कुल मृत्यु २.३६,१७७

नीचे लिखे रोगोंसे मृत्यु	प्रतिशत
माता (रिन्डरपेस्ट)	४९·१
गलघोंट् (हेमोरेजिक सेप्टिसेमिया)	२२·६
लंगड़ी (ब्लैक क्वार्टर)	८·२
गिल्टी (एन्थ्रेक्स)	४·४
अन्य संक्रामक रोग	१५·७

कुल मृत्यु—१०० प्रतिशत

खुरपकेकी मृत्यु संख्या कम है। रोगग्रस्त ढोरमें ४ या ५ सैकड़ा ही मरते हैं। पर रोग देहका सत्यानाश कर देता है। बचजानेवाले पशुका पहला स्वास्थ्य बहुत दिनोंमें लौटता है। उनमें अनेक तो निकम्मे हो जाते हैं। खुरपकेसे अकूत आर्थिक हानि होती है। इसकी संक्रामकता सबसे बढ़ी चढ़ी है।

संक्रामक रोगोंसे मृत्यु और आर्थिक हानि सुस्पष्ट है। इसलिये पहले इनका ही विवेचन करूँगा। इसके बाद क्रमानुसार अन्य रोग और उनकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। चिकित्साके पहले रोगी पशुकी परीक्षा और निदानके लिये एक अध्याय

(अध्याय ३७) है। पशु-चिकित्सकका पहली बात यह जाननी चाहिये कि, पशुकी परीक्षा कैसे की जाय और किसी रोगका कारण कहाँ खोजा जाय। इस अध्यायके बादके अध्याय ३८ में इन रोगोंके साधारण लक्षण, क्षमता (immunity) और पृथक्करणके सिद्धान्तों पर विचार है। यह संक्रामक रोगोंकी चर्चाकी पूर्व पीठिका है।

संक्रामक रोगोंके बाद एक एक करके विभिन्न अवयवोंके रोगोंकी समीक्षा है। अलग अलग अध्यायोंमें ये विषय वर्णित हैं।

मूढ़ गर्भ, प्रसवकी कठिनाई और मामूली चीरफाड़ इसके बाद है। अन्तिम अध्यायमें साधारण ज्ञातव्य और शब्द परिचय हैं।

अध्याय ३७

गायकी परीक्षा और रोगनिदान।

१३५६. निदानकी आवश्यकता।

रोगकी चिकित्साके लिये सही निदान पहली चीज है। देहमें परिवर्तन, अवयवोंकी हालतमें परिवर्तन, बाहरी लक्षण, साधारण रुचि, भोजनकी रुचि, मलमूत्र और स्रावके रंग ढंग और अन्य लक्षण समझने होते हैं। इस छानबीनसे बीमारीका ठीक पता चलता है। आगे रोग-परीक्षाकी सरल विधि बतायी गयी है। इससे जिन लोगोंको इस बारेमें कुछ भी नहीं मालूम वह भी कुछ जान सकेंगे। इसीलिये कुछ रोगोंके नाम और उनके मुख्य लक्षण संक्षेपमें दिये गये हैं और अवयवोंकी जाँचकी विधि भी साथ ही बतायी गयी है। रोगोंकी विधिवत् चिकित्सामें अधिक विस्तारसे समझाया गया है। रोगोंकी कुछ पहचान और उनके स्थानका परिचय करानेके लिये यहाँ कुछ लक्षणोंका ही वर्णन है।

१३५७. परिदर्शनसे रोगका निदान।

रोगके लक्षण देखकर, रोगी अवयवकी जाँच कर और रोगकी विशेषतायें समझ कर रोगका निदान किया जाता है।

विधिवत् काम करनेके लिये, पशुके मालिक या पालकसे उसकी हालतके बारेमें प्रश्न पूछना चाहिये। इन बातोंकी जानकारीके लिये प्रश्न करना चाहिये :—

(१) किस तारीखसे रोग है।

(२) रोग बतानेवाले लक्षण।

(३) रोगका कोई कारण यदि मालूम हो।

(४) पशु कैसे बीमार पड़ा।

(५) क्या एक ही रोगसे कई पशु पीड़ित हैं? जैसे संक्रामक रोग, विष-प्रयोग इत्यादि।

(६) पशुको पहले क्या दवा दी गयी या उसका क्या इलाज हुआ।

ऊपरके प्रश्नोंके उत्तरसे पशु चिकित्सकको इस बातका कुछ अन्दाज मिल जायगा कि, गड़बड़ी क्या है। तब वह उसकी जाँच करेगा।

परीक्षाका पहला मुद्दा परिदर्शन होना चाहिये। अगर पशु पूरे आकारका है तो उसके चारों ओर घूम कर बिना छूए देखना चाहिये कि, उसके सभी अंग साधारण हालतमें हैं कि नहीं। अगर कोई असाधारण बात होगी तो उस पर ध्यान देगा। जाँचमें सहूलियत हो इसलिये देहके नीचे लिखे भाग याद रखें : (१) सिर (२) गर्दन (३) छाती (४) उदर (५) श्रोणी (६) शाखायें।

(१) सिरके दो भाग हैं (क) मुखमंडल और (ख) ललाट

(क) मुखमंडल :

१. नाक-प्रदेश।

२ ओठ-प्रदेश।

३. मुख-प्रदेश।

४. आँख-प्रदेश।

५. हनु और हन्वन्तरभाग-प्रदेश।

(ख) ललाट

६. ललाट (पुरः कपाल)–प्रदेश।

७. पश्चिमकपाल-प्रदेश।

८. शंख-प्रदेश।

(२) गर्दन

९. कनपटी (कर्णमूल)-प्रदेश ।

१०. क्लाम-प्रदेश ।

११. ग्रीवा-प्रदेश ।

१२. ग्रीवापार्श्व-प्रदेश ।
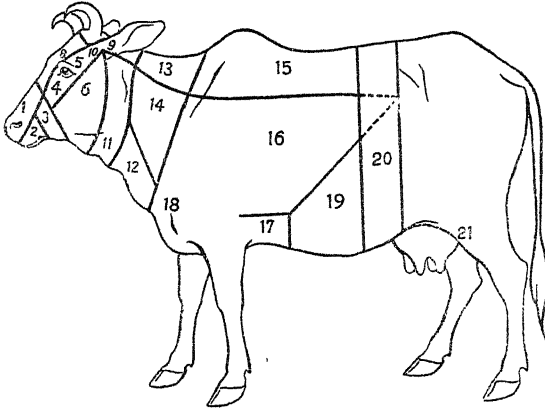
चित्र १६२. देहके प्रदेश (भाग)

1. नाक, 2. ओठ, 3. मुख, 4. आँख, 5. हनु-देश, 6. चर्वणक, 8. पुरःकपाल, 9. पश्चिमकपाल, 10. शंख, 11. कर्णमूल, 12. क्लोम, 13. ग्रीवा, 14. पार्श्वग्रीवा, 15. पुट्ठा [कुब्ब], 16. वक्षोदर, 17. उर, 18. छाती, 19. पूर्व पक्वाशय, 20. मध्य पक्वाशय, 21. पश्चिम पक्वाशय

(३) छाती

१३. पुट्ठा (कुब्ब) ।

१४. वक्षोदर प्रदेश, छातीके पार्श्व, अंशफलक, पर्शुका प्रदेश, हृद्देश ।

१५. उरीय प्रदेश ।

१६. छाती ।

(४) उदर

१७. पूर्व पक्वाशय देश. निचला किनारा

१८. मध्य पक्वाशय-देश, नाभि, श्रोणि और कटि-देश

१९. पश्चिम पक्वाशय प्रदेश

(५) श्रोणि

२०. कटि-प्रश्चात् प्रदेश. नितम्ब, गुदा, भग और वंक्षण-प्रदेश।

(६) शाखायें

आगेके अंग :— कंधा, कंधेकी नोक, बाहु, कुहनी, हाथ, घुटना. करभ, टखना, खुर।

पीछेके अंग :— जांघ, घुटना, टांग, टखना, पिछला करभ।

इन अगोंका **पाँचवें भाग—गायकी देहमें** वर्णन हो चुका है।

१३५८. स्पर्शन, ताड़न और श्रवण द्वारा निदान।

पशुको साधारण तौर पर देखनेके बाद स्पर्शन, ताड़न और श्रवण द्वारा परीक्षाकी जाती है।

१. **स्पर्शन** (Palpation) : जिस अगकी परीक्षा करनी होती है उसे अगुलियोंसे छूआ जाता है। इससे उस अंगका तापमान, सनसनी (चेतनता) असाधारणता (विषमता) और यदि सूजन हो तो कितनी और कैसी है मालूम हो जाता है। इस परीक्षासे पता चल सकता है कि, वह अंग पिलपिला है—सूजनमें रस या सिरम जमा हो जाने पर दबानेसे जिस तरह दबाव कुछ देर तक बना रहता है उस तरह है या नहीं।

अंग दृढ़ हो सकता है, हड्डीकी तरह कड़ा हो सकता है या नरम और पिलपिला हो सकता है। दबानेसे यदि किसी अंगमें तरंगसी उठे तो यह समझना चाहिये कि मवाद, खून या रस जैसे तरल पदार्थ जमा हो गये हैं।

सूजन गुब्बारेसी फूली हो सकती है जो दबानेपर चटचट आवाजके साथ जगह बदले। यह तन्तुओं या फेफड़ेमें गैस जमा हो जानेसे होता है जैसे कि लंगड़ीमें।

२ **ताड़न :** Percussion : ठोकनेसे जो आवाज निकलती है उससे परीक्षा करनेको ताड़न कहते हैं।

ताड़ित अंगकी आवाजसे प्रायः उस अंगकी हालतका पता मिल जाता है। आवाजोंमें स्पष्ट फर्क होता है।

इस कामके लिये बायें हाथकी तर्जनी या मध्यमा उँगली उस अंग पर रख कर दाहिने हाथकी मध्यमासे उसे ठोकते हैं। ताड़न ऊपरसे नीचेकी ओर लम्बरूपमें सीधे और जोरसे करना चाहिये। बायें हाथकी उँगली या उँगलियाँ देहसे खूब सटी होनी चाहिये। यदि उँगली और देहके बीच कुछ भी जगह खाली रह जायगी तो परीक्षामें ठीक पता नहीं चलेगा। कितनी जगहकी परीक्षा करनी है उसके अनुसार तर्जनी और मध्यमा दोनों ही रखनी चाहिये। ठोकर तर्जनी और मध्यमा दोनोंकी पोर मिलाकर लगायी जा सकती है। बायें हाथकी उँगली जगह जगह रख कर ठोकना और आवाज पर ध्यान देना चाहिये।

यदि ठोकर गहरी देनी हो तो मुँगरीसे (plexor) काम लिया जा सकता है। दुबले पशुके लिये हल्की ठोकरही काम देगी पर मोटेके लिये जादा जोरसे ठोकर देना होता है। साधारण तौरपर एक जगह दो तीन ठोकरोंसे आवाजका पता चल जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि पशु डर और घबड़ा न जाय। उसे पुचकारकर शान्त करना चाहिये।

ताड़नकी आवाजके लक्षण : ठोस वायुहीन भाग पर ठोकर लगानेसे आवाज अल्पकालिक और हल्की होती है। इसे मन्द (dull or flat) स्वर कहते हैं।

पर जिस अंगमें वायु भरी है जैसे कि फेफड़ा, उसके ऊपर ठोकनेसे तो आवाज काफी गहरी, स्थायी और भारी होती है। इसे गूँजनी (resonant) आवाज कहते हैं। जितने जोरकी ठोकर होगी उतनी स्पष्ट आवाज। ऊपरके तन्तु जितने पतले होंगे फेफड़ेके तन्तु उतने ही गूँजेंगे। यदि ठोकनेकी जगह पर हवावाला अंग कम होगा तो कम गहरी आवाज होगी।

गूँजनेकी आवाजका ढंग अंगकी हालतके अनुसार होता है। गूंजनकी परीक्षा उनके ढंगके अनुसार होती है। इनका वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार होता है :

(१) **दुंदुभी** (Tympanic) : यह स्वर एक तरहका और तालसे होता है।

(२) भरी आवाज : स्वर जब तालसे और एक तरहका न हो।

यह गुंजन धीरे धीरे मंद हो जा सकता है। इसे मन्द गुंजन कहते हैं। यह धीरे धीरे और धीमा होकर पूरी तरह मन्द हो जा सकता है।

'भरी' आवाज अच्छे फेफड़ेसे आती है। वायु वायुकोष, फुसफुस-तन्तु और उरकी दीवारमें गूँजती है।

ठोके जानेवाले खातका यदि बाहरी हवासे सरोकार हो जैसे श्वास-नलिकाकी (trachea) हवासे, तो आवाज दुन्दुभीकी तरह और खोखली होती है। क्लोम नलिकाओं (bronchii) से मिले फेफड़ेके कोष्ठकोंकी आवाज दुन्दुभीकी होती है। कोष्ठकके आकार और उसके बाहरी सरोकारके अनुसार आवाज ऊँची नीची होती है। दुन्दुभीकी आवाज पेटजैसे हवाभरे खातोंसे आती है।

यदि फेफड़ेके हवाभरे तन्तुके चारों ओर कड़ी चीज हो जैसे फेफड़ेकी गाँठ (tumour) तो दुन्दुभीकी आवाज सुन पड़ती है।

काँपतेहुए धातुके पत्तरसे निकली झनझनाहटकी तरह आवाज फेफड़ेके खातों से क्रूपस निमोनिया में सुनाई पड़ती है। जब कफ निकलने लगता है तब ऐसी आवाज मालूम पड़ती है। फटे फेफड़ेसे फुटे बर्तनकी आवाज आती है।

३. **श्रवण :** Auscultation : यह परीक्षा भीतरके अवयवोंकी हालत जाननेके लिये अंगपर कान रख आवाज सुनकर होती है। हृदय, फेफड़े, पाकाशय तथा आतोंपर यह होती है। इस कामके लिये दो नलीवाला स्टेथस्कोप काममें आ सकता है। अंग पर कान लगा कर सुनना यंत्रोंकी अपेक्षा अधिक उपयोगी है। कान दृढ़तासे लगाना चाहिये।

१३५६. स्थिति या आकृतिसे रोगका निदान

रोगीकी साधारण या बाहरी आकृति या भाव देखकर परीक्षा होती है :

रोगीके हावभाव और उसकी देहकी हालत और आकृति देखकर रोग पहचाना जा सकता है।

उदाहरणके लिये, नीचे लिखे रोगोंमें सिर तना और ऐंठा रहता है—गलप्रदाह, धनुष्टकार, पेशियोंका वात आदि।

पशु जब बहुत बीमार होता है तो वह सिर गिराये रहता है, सुस्त रहता है, कान झुके रहते हैं। गायोंको योनि-प्रदाह होने पर वह पूँछ उठाये रहती हैं।

बार बार मूतती हैं और उस समय पैर फैलाती हैं। यह हालत जग गौर करनेसे समझमें आ सकती है।

छाती और पेटमें दर्द हो और वह हिलने डुलनेसे बढ़े तो पशु तना और शान्त रहता है।

निमोनियाँ और पार्श्वशूल (प्लूरिसी) होने पर पशु खड़ा रहता है। लेटेगा तो उसी करवट जिधर तकलीफ है। क्योंकि दबनेसे दर्दमें कुछ आराम मिलता है।

पेट-दर्दमें पशु लेटता, खड़ा होता और बेचैन रहता है। वह बगलकी ओर देखता है। प्रसवके समय गाय बेचैन हो जाती है। उठती बैठती आगे पीछे होती रहती है। कभी कभी उदरशूलके लक्षण दिखायी पड़ते हैं। साँस लेनेमें कष्ट, बेचैनी, और चिन्ताके साथ इधर उधर घूमती है।

चाल : कड़े बुखारमें चाल मन्द और कष्टकारी हो जाती है। धनुष्टंकार और आमवातमें चाल कड़ी न मुड़नेवाली हो जाती है। लँगड़ीमें बछड़े लँगड़ाने लगते हैं। खुरपका और संन्धिवातमें एक या अधिक पैरोंमें लँगड़ापन आ जाता है।

लेटना : कभी कभी पशु खड़ा नहीं हो सकता। इसके भिन्न कारण हो सकते हैं। यदि वह खड़ा न हो सका तो उसे खड़ा करना कठिन है। कभी कभी ऐसा होता है कि, गाय जिद्दमे आकर खड़ी नही होती। यदि वह बहुत दिनसे पड़ी हो तो खासकर ऐसा करती है। यदि पशुके पैरमें कठिन पीड़ा हो तो वह उठ नहीं सकता। उदरशूलमें भी बैठ जाने पर पशुका तुरत उठना कठिन है।

धनुष्टंकारमे पशु सहारे बिना नहीं भी उठ सकता है। करवट रहनेसे ऊपरकी तरफके दोनों पैर जमीन से नहीं लगते। धनुष्टंकारमें पशु बेचैन हो सकता है और उसे पसीना चल सकता है।

पक्षाघातमें यदि रीढ़ रोगाक्रांत हो तो पशु खड़ा नहीं हो सकता। उत्तर-प्रसव (post-partum) या प्राग्प्रस (Ante-partum) पक्षाघातमें गाय खड़ी नहीं हो सकती। दुग्धज्वरमें गाय मूर्च्छाकोसी हालतमें होती है मानो गहरी नींद में सोयी हो। सिर छातीसे लगा रहता है। यदि सिर उठाया जाय तो तुरत गिर कर जहाँ था वहीं चला जायगा। गर्दन-तोड़में गर्दन कड़ी रहती है। इसके बाद लकवा हो सकता है। रोगी करवट पड़ा रहता है। उसका सिर पीछेकी ओर-मुड़ा रहता है।

सन्धिवातमें सूजन हो जाती है। यह गरम और कष्टदायक होती है। यदि कई सन्धियोंमें रोग हुआ तो रोगी पड़ा रहता है। तेज बुखार रहता है, भूख नहीं लगती और रोमन्थ बन्द हो जाता है।

१३६०. चमड़ेकी हालतसे रोग परीक्षा

चमडेकी हालतसे प्रायः स्वास्थ्यका हाल मालूम हो जाता है। सुस्थदशामें चमडेपरका रोआँ चिकना और चमकदार रहता है।

ठंडसे रोआँ खड़ा हो जाता है। अनेक छूतके रोगोंमें सारे बदनके रोएँ खड़े, हो जाते हैं।

रोआँ झड़ना : जाड़ेमें ढोर को मुलायम रोआँ निकलना है। जाडेके पहले पुराना रोआँ झड़ जाता है। बसन्तके आरम्भमें यह झड़ जाता है। मौसमी झड़नमें दुष्पोषणसे गड़बड़ी होती है। कठिन रोगके बाद भी रोआँ झड़ सकता है।

पसीना चलना : कुछ कुछ पसीना हमेशा चलता रहता है। जो दिखायी नहीं पड़ता। मेहनत करनेसे पसीना दिखायी पड़ता है। श्वासकष्ट (dyspnea) रोगमें बहुत पसीना चलता है। मल या दूषित पदार्थ निकाल बाहर करनेके लिये ऐसा होता है। कठिन गलघांटूमें भी बहुत पसीना चलता है।

चमड़ेकी सूजन : ऐसी सूजनसे रोगकी पहचानमें सहूलियत होती है। चमड़ेके नीचे जोड़नेवाले तंतुओंमें रसके जमा होनेसे चमड़ेमें सूजन होती है। यह जलोदर या साधारण तौरपर एक जगह होनेवाले प्रदाहके कारण हो सकती है।

त्वचाके श्वासावरोध से भी यह हो सकता है। इसमें गैस त्वचाके ततुओंमें जमा हो जाती है और दबानेसे चटचट आवाज करती है। जैसाकि लँगड़ीमें होता है।

पित्ती : चमड़े पर पित्ती निकल सकती है। यह अंकुर-पिंडों (papillary body) की सूजनके कारण होता है।

चमड़ेमें जल जमा होनेसे वहिस्त्वक् पर **छाले** पड़ जाते हैं। यह छोटे छोटे मटरके दानेसे होते हैं। बड़े छालोंको फफोला कहते हैं। खुरपका और शीतलामें छाले निकलते हैं। शीतलाके छाले (vesicles) जब सूखते हैं तो दाग रह जाते हैं। ये छालोंके संकुचनसे होते हैं। छालेमें पीव भरने पर उसका नाम (व्रण) फुन्सी (pustules) होता है। व्रणकी ऊपरी खाल उतर जाय और भीतरी भाग

उघर जाय तो उसे खुला व्रण (अल्सर) कहते हैं। वाह्य त्वक् उड़ने लगे तो उसे स्कर्फ कहते हैं। चमड़ेसे निकले द्रवकी बूँद (निःस्राव) जम जाती हैं। इसे पपड़ी या खुट्टी (scale) कहते हैं।

प्रूराइगो (prurigo) एक तरहकी फुसी है जिसमें खुजली होती है।

एकाएक सूजनको पित्ती (urticaria) कहते हैं।

गलघोंटूमें कंठमें सूजन होती है।

मातामें भी चमड़े पर दाने निकलते हैं।

१३६०क. आँखकी परीक्षा

आंखसे पानी बहना रोगका परिचायक है। केरेटामेलेसिया (नेत्रके स्वच्छ मंडल का नरम होना), माता और सर्दीके बुखारमें भी पानी बहता है। पांडुमें कोआका रंग बदल कर पीला हो जाता है। माता और गिल्टी आदिमें कोआ सूज जाता है।

१३६१. देहके तापमानकी परीक्षा

इसके लिये डाक्टरी थरमामीटरसे काम लेना होता है। थरमामीटर गुदामें करीब करीब पूरा घुसेड़ दिया जाता है। रोग निदानमें देहके तापमानका बड़ा महत्व है। छूतके रोग फैलने पर और कोई लक्षण प्रगट होनेके पहले नित्य ताप-मान देखनेसे भी रोगकी छूतका पता चल जाता है। कुछ प्रवीणोंके मतसे गायका साधारण तापमान १००.५ से १०३.१ डिग्री फा० है। साधारण तौर पर वह १०१ और १०२ डिग्री फा०के बीच रहता है। गाभिन गायका तापमान १.५ डिग्री जादा रहता है। तेज कामसे तापमान बढ़ता है। तापमानमें नित्य कुछ फर्क हुआ करता है। सबसे कम सबेरे और साँझको सबसे जादा।

तापमान बढ़नेसे ज्वर होता है। यदि तापमान तेजीसे बढ़े तो ठंढ और कँपकपी होती है। ऐसी ठंढ माता, गलघोंटू आदिमें होती है।

घातक रोगोंमें मरणकालमें तापमान साधारणसे कम हो जाता है।

मुट्ठीसे कानकी जड़ पकड़कर बाहरी तापमान जाना जाता है। कभी कभी थरमामीटरकी अपेक्षा हाथसे साधारण तापमानमें हुआ फर्क अधिक साफ मालूम होता है। यदि गुदामें मल हुआ तो थरमामीटरसे सही पता नहीं चलता।

१३६२. नाड़ी-परीक्षा

सुबीतेकी किसी मुख्य धमनी पर नाड़ी देखी जा सकती है। गायकी नाड़ी सबसे जादा जबड़ेके नीचे देखी जाती है। बहिःप्रकोष्ठी या (radial) धमनी या प्रपादीया या पादतलिका (planter) धमनी आदि भी देखी जा सकती हैं। पूँछकी जड़में भी सुबीतेसे नाड़ी देखी जा सकती है। पूँछ जरा उठाकर नाड़ी देख सकते हैं। बोचकी तीनों उँगलियोंका छोर धमनी पर दबाकर नाड़ी देखी जाती है। अँगूठा लबको तरह रहता है। दबावमें कमी बेशी करिये और धमनीको सरकाइये इससे स्पन्दन बहुत स्पष्ट मालूम होता है। जब नाड़ीकी चाल साफ मालूम होने लगे तो घड़ी देख कर प्रति मिनट उसकी चाल गिनिये।

गायकी नाड़ी प्रायः ४५ और ५५ के बीच रहती है। छोटेकी अपेक्षा बड़े पशुओंकी नाड़ी कम चलती है। सयानोंकी नाड़ी छोटोंसे कम चलती है। स्त्रियोंकी पुरुषोंसे जादा। अच्छी नस्लके पशुकी नाड़ी दोगलोंसे धीमी चलती है।

गायोंकी नाड़ी यदि प्रति मिनट १०० से अधिक जैसे कि, १२०-१५० हो तो यह कठिन रोगकी सूचक है। हर हालतमें नाड़ी तापमानके अनुसार नहीं होती। गलघोंटू या गिल्टी आदिमें ऐसा ही होता है। ज्वरकी प्रतिक्रिया हृदय पर जैसी होती है उसी पर नाड़ीकी चाल निर्भर है

दर्दकी हालतमें नाड़ी तेज हो जाती है जैसे कि, कड़ी चोट, हड्डी टूटना, खुर पर फोड़ा आदि होने पर। दिमागी उत्तेजना होने पर भी नाड़ी तेज होती है।

नाड़ी "क्षीण" या "प्रबल" हो सकती है। यह बिचली उँगली दबा कर जाना जा सकता है। हिलने डुलनेसे नाड़ीकी प्रबलता बढ़ जाती है। नाड़ीकी क्षीणताकी मात्रासे रोगकी कठिनता जानी जाती है।

नाड़ी 'कठिन' या 'मृदु' हो सकती है। कड़े दर्दमें नाड़ी कठिन होती है। इतना थोड़ा स्फुरण हो कि, जरासा भी होने पर कंपन मालूम पड़े तो इसे 'कंपित' नाड़ी कहते हैं। नाड़ी इतनी क्षीण और मृदु हो कि, कठिनतासे मालूम पड़े तो उसे 'सौत्रिक' कहते हैं।

१३६३. हृदय-परीक्षा

छातीपर हथेली रख कर हृदय देखा जाता है। खड़े पशुकी परीक्षा सबसे बढ़िया होती है। मन्द धड़कन मालूम होगी। हृदयकी धड़कन सबसे बढ़िया

वहाँ मालूम होती है जहाँ ५ वीं पसली तरुणास्थिसे मिलती है। ताड़न द्वारा हृदयकी स्थितिका पता लगाना चाहिये। क्योंकि इसका एक भाग छातीकी दीवालसे लगा रहता है।

हृदयका बड़ा भाग फेफड़ेसे ढका रहता है। इसलिये बायीं तरफ तीसरी और चौथी पसलीके बीचकी जगह ताड़न करनेसे अपेक्षाकृत कम आवाज सुनायी देगी। पार्श्वशूल या हृदयशूलमें ताडन करनेसे पशुको पीड़ा होती है।

चित्र १६३. अस्थि-पञ्जर (पसली) के बीच हृदय।

a-b. कंधेकी सीध ; १. वाम अलिन्द और निलयके द्वार : २. प्रतिहारिणी ; ३. फुसफुसाभिगा धमनी।

हृदय-श्रवण : बायीं ओर बायीं कुहनीसे जरा पीछे, पैर आगेकी ओर खींच कर वहाँ कान लगानेसे हृदयकी धड़कन सुनायी देगी। दो स्वर सुन पड़ते हैं। संकोची (सिस्टोलिक) अर्थात पहला स्वर और दूसरा स्वर विकासी (डायस्टोलिक)। पहला स्वर अपेक्षाकृत मन्द, गंभीर और लंबा होता है और साधारण तौरपर दूसरेसे ऊँचा होता है। यह दूसरा उतना गभीर नहीं होता है। और

कभी कभी धातुके स्वरकी तरहका होता है। लब, डब इन शब्दोंसे हृदयके स्वरकी नकल की जा सकती हैं। रोगजनित स्वरोंको पहचानने और उससे हृदयकी हालत और रोग समझनेमें बहुत अनुभवकी आवश्यकता होती हैं।

१३६४. श्वासकी इन्द्रियोंकी परीक्षा

प्रति मिनिट साँस गिननेके लिये पार्श्वका फूलना पचकना गिना जा सकता हैं। गायको साधारण तौरपर प्रति मिनट १२ से १६ बार साँस चलती है।

परिश्रम या खानेके बाद तुरन साँस साधारण ढंगसे नहीं चलती। रोगमें भी यह मामूली चालसे नहीं चलती। यदि रोगके कारण साँसलेनेमें कष्ट हो या जादा साँस चले तो उसे श्वास कृच्छ्र या श्वास-कष्ट (डिस्पनीया) कहते हैं।

साँस तालसे चलती है। रोगमें यह भी गड़बड़ा जाता हैं। श्वास मार्गमें बाधा होनेसे साँस खींचनेमें देर लगती है। इसे श्वास-कष्ट (श्वास लेनेमें कष्ट—इन्सपिरेटरी डिस्पनीया) कहते हैं। महाप्राचीरा साँस खाली करने लायक काफी नही सिकुड़ तो साँस छोड़नेमें देर लग सकती हैं। इसे निःश्वास या प्रश्वास कष्ट (एक्सपिरेटरी डिस्पनीया) कहते हैं।

साँस लेनेके क्रममें एक विचित्र परिवर्तन चेन स्टोक नामक रोगमें होता है। इसमें साँस बढ़ते बढ़ते तेज साँस चलने लगती है। इसके बाद घटते घटते रुक जाती है और फिर पहलेकी तरह तेज साँस चलने लगती है। यह क्रम जारी रहता है।

मामूली साँस लेनेमें नथने (नाकके छिद्र) हिलते नहीं, पसलियाँ कुछ उठती हैं। साँसकी तकलीफमें, यदि मेहनतके कारण यह न हो तो, नथने फूलते हैं। पसली जादा चलती है। गहरी साँस कम चलती है। साँस ऊपर ऊपर चलती है। छातीकी दीवाल या उरस्या (pleura) के रोगोंमें पूरी या गहरी सास कम चलती है। ऐसी हालतमें श्वास-कष्ट बढ़ जाता है। साँस लेनेमें छाती और पेट दोनोंही तालसे फूलते हैं। यदि मुख्यरूपसे केवल छातीकी पेशियोंके सहारे साँस ली जाय तो उसे 'कोस्टल' (costal) कहते हैं। यह तब होता है जब हवा बेरोक आ नहीं सकती या महाप्राचीरा और उसके पासके अवयव रोगग्रस्त हों। पेटके अर्बुद या पेट फूलने से ऐसा होता है।

पर अगर उर-पेशियोंकी अपेक्षा उदर-पेशियाँ अधिक क्रियाशील हों तो साँसका ढंग बदल जाता है और वह उदर्या हो जाती है। छातीकी दीवालमें दर्द होने और उल्टी साँस या निःश्वासमें कठिनाई होने से यह होता है।

साँस लेनेमें असाधारण आवाज : यदि नाकमें सूजन हो, अर्बुद निकल आया हो और इस कारण साँसकी राह सँकरी हो गयी हो या नाकमें कोई और गड़-बड़ी हो अथवा नाक रेंट या नकटी आदिसे भर गयी हो तो साँस लेनेमें फुफकार जैसा स्वर होता है।

यदि कंठ या श्वासनालीमें कफ भरा हो तो साँस लेनेमें घरघराहट होती है। लंबी लंबी सस्वर साँस चलने पर आह सी आवाज सुन पड़ती है। सुस्थ पशुकी साँसमें भी यह स्वर हो सकता है। इसका कारण महाप्राचीरा पर उदरके फैले हुए अवयवोंका दबाव है। भरपेट भोजन या गर्भकी हालतमें ऐसा होता है।

नाक बहना : गायकी नाक साधारण तौरपर थोड़ा थोड़ा बहती रहती है। गाय नथनेमें जीभ डालकर उसे पोंछ लेती है। रोगमें नाक अधिक बहती है। नाकका पानी मुँह या गलकक्ष या ग्रसनिकासे आ सकता है। सर्दीमें नाक जरा जादे बहती है। रोगी हालतमें नाकके पानीका रंग भी बदल जाता है। कभी वह रंगहीन, पीला, लाल या भूरा होता है।

रक्त-रस या श्लैष्मिक प्रदाहमें पीले रंगका पानी निकलता है। यदि लाल रक्त-कणिकायें उनमें हों तो रंग पीला, या भूरा-पाला हो जाता है। नाकके छिद्रोंमें क्षत, खुले व्रण या रक्तस्रावयुक्त अर्बुद (रक्तार्बुद) होने पर ही रक्त बहता है। गिल्टी रोग (एन्थ्रेक्स) होने पर नाकसे खून बह सकता है।

खाँसी : गायको खाँसी होना हमेशा अस्वाभाविक बात है। गायकी खाँसी, तेज, मृदु, निःस्वर और लंबी होती है। कंठ या ऊपरी श्वासनालीमें चुभानेसे या चिमटी काटकर गायको खँसवाया जा सकता है। खाँसी अकष्ट या सकष्ट हो सकती है। खाँसी हल्की या जोरदार, लंबी या अल्पकालिक हो सकती है।

१३६५. फेफड़ोंकी परीक्षा

ताड़न-परीक्षा

ताड़नकी विभिन्न आवाजोंका वर्णन हो चुका। अगर फेफड़ेका एक हिस्सा ठोस तंतुओं या कफसे कम या जादे घिरा रहे तो दुंदुभी-स्वर सुनायी पड़ता है। यह

कफ उस भागको आसपासके अन्य भागसे अलग रखता है। फाइब्रस निमोनियाँकी पहली और आखरी हालत, ब्रोङ्को-निमोनियाँ और यदि अर्बुद फेफड़ेको घेरे हों और यदि फेफड़ेमें बड़े खात हों तो यह आवाज होती है। यदि खातकी हवाका सीधा सरोकार क्लोमशाखासे हो तो फूटे बर्तनकी आवाज आती है। साधारण गुंजनके बदले यदि मन्द स्वर सुनायी दे तो यह रोग-सूचक है।

श्रवण-परीक्षा

इस परीक्षाके लिये ढोर गोशालासे बाहर निकाला और फिर तेजीसे लौटाया जाता है। इस श्रमसे स्वर अधिक साफ निकलता है। क्योंकि साँस गहरी चलती है।

सुस्थ फेफड़ेकी छातीके ऊपरकी आवाज मृदु, चूसने जैसी होती है। 'भी' के मृदु उच्चारणसे जैसी आवाज होती है उसी तरहकी यह है। यह आवाज साँस लेनेके समय शुरू होती है और साँसके साथ धीरे धीरे बढ़ती है। फिर साँस छोड़नेके समय धीरे धीरे थोड़ी और मन्द हो जाती है और फुसकार जैसी (अर्थात् मृदुतासे 'एफ्' उच्चारण करनेसे जैसी) आवाज होती है। यह फुसफुसाहट अत्यन्त मृदु और मन्द होती है।

फेफड़ेकी यह फुसफुसाहट श्वासकृच्छ्र (dyspnoea) की सघन साँसमें बढ़ जाती है। जब एक फेफड़ा काम नहीं करता और उसकी एवजी भी दूसरेको करनी होती है जैसे कि, निमो-थोरेक्समें, तो यह आवाज बढ़ जाती है।

काश रोगमें साँसकी राह कम हो जाती है उस समय भी छाती पर की फुसफुसाहट बढ़ती है। पर मेदवृद्धि या रोगके कारण यदि छातीकी दीवाल मोटी हो जाती है तो यह स्वर धीमा पड़ जाता है।

खाँसीका स्वर : Bronchial tones : यह स्वर साधारण तौर पर क्लोम या कंठमें सुनाई देता है। पर यदि यही स्वर फेफड़ोंसे आवे तो रोग का सूचक है। जब निमोनियाँकी तरह कोष्ठक (vesicles) कफसे भरे हों तो यह स्वर निकलता है। पार्श्वशूलमें स्रावसे जब फेफड़ा उरस्यामें दबता है तब भी यह स्वर निकलता है।

क्लोमकी गड़बड़ीवाली साँसमें उसका स्वर सँकड़े मुँहकी बोतलमें फूँकनेसे होनेवाले शब्दकी तरह होता है। जब फेफड़ेमें बड़े बड़े खात क्लोम तक फैले होते हैं तो ऐसा होता है।

साँसकी नलियों और फेफड़ेके खातोंमें कफ भर जाने पर हवाको जोर देकर आना जाना होता है तब घरघराहट सुनायी पड़ती है।

पार्श्वशूल सम्बन्धी स्वर : Pleuritic sounds : साधारण हालतमें फेफड़ा उरस्या पर सरकता है। इससे कोई स्वर नहीं निकलता। पर पार्श्वशूल या प्लूरिसी होने पर रगड़की या टूटने फूटने की आवाज सुनायी पड़ती है।

इन परीक्षाओंसे श्वासतंत्रकी जिन बोमारियोंका पता चलता है वे ये हैं :

१. **नाकसे खून बहना :** सर्दी जुकाम। इसमें नाककी झिल्लीमें रक्ताधिक्य हो जाता है, नाकमें रेंट भर जाती है और कफ तथा खून निकलने लगते हैं।

२. **कंठकी सर्दी :** खाँसी होती है, पहले सूखी और कष्टकारी, बादको नम या गीली।

३. **कंठका पक्षाघात :** एकाएक तीव्र श्वास-कष्ट शुरू हो जाता है।

४. **क्लोम-प्रदाह :** इसका पता रोग बढ़ने पर भी चल सकता है जब बुखार, तेज नाड़ी और तीव्र श्वास-कष्ट हो जाय। जीर्ण अवस्थामें बुखार नहीं होता। तब हल्की, मन्द कुछ खाँसी पायी जाती है। एकाएक तीव्र श्वासकष्ट से यह सूचित हो सकता है कि, फुसफुस भरा है। साँस प्रति मिनट १०० से अधिक चलती है, साथ साथ नाकसे फेनिल पानी बहता है।

५. **ब्रोंको निमोनियाँ :** यह पहले कैटरल निमोनियाँ के रूपमें शुरू हो कर ब्रोंको-निमोनियाँ हो जा सकता है। साथ साथ तेज बुखार, तकलीफवाली खाँसी हो सकती है। स्वाभाविक फुसफुसाहट मन्द हो जाती है।

६. **पार्श्वशूल :** साँस तेज हो जाती है। साँस लेनेमें कष्ट होता है। प्रारम्भिक अवस्थामें रगड़की आवाज सुन पड़ती है। पर आगे चलकर जब स्राव बहुत जमा हो जाता है तब रगड़की आवाज सुनाई नहीं देती।

७. **क्षयी : यक्ष्मा :** जब फेफड़ा पूरी तरह आक्रान्त हो जाता है ऐसी हालतमें ही पता चल सकता है। खाँसी बराबर रहती है। स्वाभाविक फुसफुसाहट अस्वाभाविक रूपसे बढ़ जाती है। घरघराहट सुनाई देती है।

१३६६. खाने पीनेका निरीक्षण

कई रोगोंमें प्यास बढ़ जाती है। बुखार होने पर पशु थोड़ी थोड़ी देर पर कुछ कुछ पानी पीना चाहते हैं। इनफ्लूएञ्जाके संकटकाल (crisis) में पेशाब और प्यास

बढ जाती हैं। अतिसारमें पतला दस्त बहुत होने पर प्यास बढ़ जाती है। साधारण तौर पर उदरशूल, पाकाशय और आंतके रोगमें प्यास घट जाती है। बहुत देर तक पानीकी अनिच्छा बुरा लक्षण है। यदि मुँहमें कोई घाव हो या दांतमें तकलीफ तो चबानेकी क्रिया अस्वाभाविक तौर पर होती है।

गलप्रदाहमें निगलनेमें कठिनाई होती है। निगलनेकी चेष्टा करने पर दर्द होता है। ऐसी हालतमें पशु शिर या गरदन लंबी करता और सिर हिलाता है।

गल या कंठके पक्षाघात, अर्बुद और कठजिभियामें निगलनेमें कष्ट होना है। मुखप्रदाह होने पर मुँहसे लार और फेन निकलता है।

१३६७. मुख-परीक्षा

बुखार या मुँहकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह होने पर मुँहका तापमान बढ जाता है। सभी तरहके बुखार, शूल और आँतोंकी बीमारीमें थूक कम निकलता है। इसी कारण बीमार होने पर पशु खाना छोड़ देता है।

मुँहके प्रदाह (तिनावाँ) तथा अन्य कई रोगोंमें मुँहमें गाँठ, फुंसी और घाव निकल आते हैं। किसी बाहरी चीजसे जीभमें जखम हो सकता है। दाँतोंकी खराबीसे निगलनेमें कष्ट हो सकता है। ध्यान रखना चाहिये कि, सभी रोमथकोंके कर्तनक दाँत ढीले हैं। चर्वणकोंमें तेज नोक हों तो चबानेमें कठिनाई होती है। उनपर उँगली फेरकर यह देखा जा सकता है।

कठजिभियासे जीभ कड़ी और गिरहदार हो जाती है। गलप्रदाहमें गला या कंठदेश सूज सकता है। फोड़ा होने पर भी कंठका प्रदाह या सूजन हो सकती है। तालुका पक्षाघात होने पर पशु नथुनेसे निकले तरल या मृदु पदार्थ निगल नहीं सकता। गल या कंठके पूर्ण पक्षाघातसे पशु खा नहीं सकता। खिलानेकी कोशिश करने पर खिलाया हुआ नाकसे निकल जाता है।

रोगके कारण पागुरमें गड़बड़ी हो सकती है। पागुरका कौर फिर निगलनेके पहले साधारण तौर पर प्रति मिनट ६० बार चबाया जाता है। खानेके बाद पागुरमें लगभग दो घंटेकी जरूरत होती है। पशु पागुरके लिये आरामसे रहना चाहता है।

सभी बुखारोंमें पागुरमें गड़बडी हो जाती है। प्रति मिनट पागुरकी कमीसे अस्वाभाविक या विषम स्थितिका पता चलता है। पागुर या जुगाली बिलकुल बन्द

हो सकती है। बुखार और कठिन रोग तथा चारफाड़के रोगोंमें ऐसा होता है। ठूँस ठूँस कर खाने और पेटकी बिमारियोंमें भी जुगाली या रौंथ रुक जाती है। पशुओंको अपने आप डकार आती है। इसके द्वारा पेटकी गैस मुँह और नाकसे निकल जाती है। साधारण तौर पर पशुओंकी डकारका साथ पागुरसे है।

तुरत फफदनेवाले चारे पेटका ढक्कन बन्द कर दे सकते हैं। इससे डकार नहीं हो सकती या पूरी नहीं हो सकती। इससे गैस बहुत जादे जमा होती है और पेट फूलता है। वमन रोगका लक्षण है। जीभकी जड़ या गले पर अवांछित पदार्थ होनेसे भी यह हो सकता है। अन्ननलिकाके अवरोधसे भी यह हो सकता है। आंतकी बीमारी और पाकाशयकी श्लैष्मिक कलाकी जलनके कारण भी कै हो सकती है। अन्ननलिकाके अवरोध, महाप्राचीरा पर अन्त्रवृद्धि, मुद्रिकाकुंचन (अनुग्रहणिकाकुंचन) आदि कारणोंसे वमन बहुत दिनोंतक होता रहता है और इससे वह जीर्ण या बद्धमूल हो जा सकता है। यह बुरा लक्षण है।

१३६८. उदर-परीक्षा

नस्ल और आहारके हिसाबसे उदरका आकार साधारण या असाधारण हो सकता है। भोजनके प्रकार और नसलके अनुसार उदरका आकार विभिन्न हो सकता है।

गर्भके कारण पेट बढ़ जाता है। यह साधारण तौर पर तीसरेके पिछले भाग पर मालूम होता है। और बायेंकी अपेक्षा दाहिने तरफ जादा मालूम होता है। भ्रूण बड़ा हो जाय तब बाहरसे छूकर या थोड़ा दबाकर मालूम किया जा सकता है। उसका आकार भी जाना जा सकता है।

भोजन जमा होनेसे पेट फैल जाता है। ऐसी हालतमें साधारण दुन्दुभी-स्वरके बदले मन्द स्वर सुन पड़ता है।

पेट फूलने पर फैलाव ऊपरकी तरफ होता है। बगलकी खाली जगह भर जाती है और दीवाल फैल जाती है।

पेटके अर्बुद, प्लीहे और यकृतसे पेट बढ़ा हो सकता है।

स्पर्श-परीक्षा

पेटका दर्द और आंतोंको हालत जाननेके लिये पेट दबाया जा सकता है। पूरी हथेली पेट पर रख थोड़ी थोड़ी देर पर दबाया जाता है

पेटकी चीजोंको मुलायम होना चाहिये। यदि वह मुलायम हुई तो लगभग १¾ मिनटमें अपकर्षिणी द्वारा चली जाती है। यदि यह अपकर्षिणी या क्रमिगमन न हो तो अवरोध होता है अर्थात् पेट काम नहीं कर सकता। यदि पेटमें अधिक पानी हो तो स्पर्शनसे छपाकेकी आवाज निकलती है और लहर सी उठती है।

अंत्रवृद्धिसे पेट असाधारण या अस्वाभाविक हो सकता है।

श्रवणद्वारा परीक्षा

ठोस, तरल और वायुकी विभिन्न गतियाँ श्रवणसे जानी जा सकती हैं। घनी आवाज आँतोंकी घनी चाल बताती है। बायीं तरफ छातीपर ६ ठी और ७ वीं पसलीके नीचले छोर पर फुसफुसके छोरके पीछे सुननेसे थोड़ी थोड़ी देर पर संकुचनका स्वर सुन पड़ता है। कुछ सुनायी न पड़े तो इसे इस अवयवकी निष्चेष्टता नहीं समझनी चाहिये। पर साधारण तौर पर क्रियाकी अवस्थाका कुछ हाल मिल ही जाता है।

जमा होना, अवरोध और फूलना निश्चेष्टताका सूचक है जिससे आवाज कम हो जाती है। स्थायी अतिसार और कठिन प्रदाहमें स्वर घट जाता है। जलन या उत्तेजना होने पर स्वर तेज होता है। गैसके फुलावमें सनसनी सुन पड़ती है।

२३६१. मल-परीक्षा

मल सूख जाय और कड़ा हो तो कठिनतासे निकलता है। यदि उदरमें दर्द और प्रदाह हो तो पाखाना होनेमें दर्द होता है। ढोर दिनमें १०-१२ बार गोबर करते हैं। मामूलीसे कम बार मल-त्याग को अनाह, काष्ठबद्धता या कब्ज कहते हैं। मामूलीसे जादा बार पतला या गाढ़ा दस्त हो तो वह अतिसार है। अच्छी तरह खिलाये पशुको दिनमें ९० रत्तल तक मल निकल सकता है। पेटमें गयी वस्तु १½ से ४ दिनों तक अन्त्रमें रहती हैं।

आहार जितने दिन जादे अन्त्रमें रहता है उतना ही काला होता है। हरा चारा खिलानेसे भोजनके प्रकारके अनुसार मलका रंग कितनी तरह का गहरे या हल्के रंगका हो सकता है। पौष्टिक चारा मलमें भूरापन लाता है।

यदि पित्त साधारणसे कम निकले तो मलका रंग भूरा या मटियाला होगा। यदि मलमें रक्त मिल जाय तो वह लाल, बादामी या कत्थई हो सकता है।

अँतड़ीसे निकले खूनके कारण कुछ देरके बाद रंग प्रायः काला हो जाता है। यदि मलमें खून अच्छी तरह मिल गया है तो आँतसे खून बहना समझना चाहिये। गुदासे खून निकलने पर वह कुछ कुछ मलमें रेखा या थक्केके रूपमें लगा रहता है।

बछड़ोंकी प्रवाहिका (पेचिश) में मलका रंग भूरा या भूरा और सफेद होता है। साधारण मल पर आँवका पतला आवरण होता है जिससे वह चमकदार हो जाता है। अत्यधिक आँव हो तो वह चिकना मालूम होता है। यदि पाकाशयमें सड़ाँद हो गयी हो तो गोबरमें दुर्गन्ध आती है। मलमें अंडे, केंचुए और लिभर फल्यूक (liver flukes) जैसे परोपजीवी हो सकते हैं। अणुवीक्षण परीक्षणसे इनका पता चल सकता है।

पेटके कुछ रोग

निनावाँ : Stomatitis : जीभ और मुँहकी कलामें फुंसी या व्रण और प्रदाहके कारण परिवर्तन होता है।

कठजिभिया : Actinomycosis : जीभ, निचले जबड़े और गलकोष या कंठमें अर्बुद जैसे निकल आते हैं।

गलप्रदाह : Pharingitis : बुखार होता है। गर्दन कड़ा और सिर तना रहता है। चबाना और निगलना ठीकसे नहीं होता। तरल वस्तु घाटनेकी कोशिशमें नाकसे निकल जाती है।

अन्नवहका पक्षाघात : Paralysis of œsophagus : प्रदाहके लक्षण नहीं होते पर निगलनेमें कठिनाई होती है।

अन्नवहमें विजातीय पदार्थ : स्पेकुलम यन्त्रसे अन्नवह नलिकाका निरीक्षण हो सकता है। लार बहती है, निगलनेमें कष्ट और दम घुटता है। पेट फूलता है। नाकसे लार चलती है।

उग्र अध्मान (अफरा) : Acute tympanites : देखनेसे सूजनका पता चल सकता है। पेट फूल जाता है। साँस लेनेमें कष्ट होता है और पाखाना साफ नहीं होता।

उग्र संग्रहणी : अग्निमान्द्य : Dyspepsia : आमाशय काम नहीं करता। भूख नहीं लगती। अपकर्षिणी अधूरी होती है। बगल या कुक्षि दबी रहती है।

उग्र पाकाशय और अंत्र प्रदाह : Acute gastrointestinal catarrh : बुखार रहता है। नाड़ी तेज। संग्रहणी जैसे लक्षणभी रहते हैं।

नाभी टलना : निनाई : Dislocation of bowel : यह एकाएक अकारण होता है। पशु लेट जाता है। अपने पेटमें ठोकर मारता और फिर खड़ा हो जाता है। भोजन और रौंथ बन्द कर देता है। गुदाकी राहसे हाथ डालकर अवरोधका पता चल सकता है।

पोकाशयके छूतवाले रोगोंमें माता अर्थात् रिन्डरपेस्ट सबसे कठिन है। तापमान ऊँचा रहता है। साँस लेनेमें कष्ट। पहले अनाह इसके बाद अत्यन्त दस्त। आँख और नाक बहती हैं। बहुत कमजोरी और थकावट हो जाती है। अतिसार और प्रवाहिका भी पेटकी बीमारियोंमें हैं।

अध्याय ३८

छूत, क्षमता, पृथक्करण और छूत मिटाना

Infection, immunity, isolation and disinfection

१३७०. छूत क्या है ?

छूतके जरिये एकसे दूसरे पशुको रोग होता है। ऐसे रोगोंको छूतके रोग कहते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे रोग फैलाते हैं। रोगवाहक ऐसे पदार्थ थोड़ी मात्रामें किसी पशुमें जाकर वहाँ बहुत हो जाते हैं। ये रोगप्रसारक या संक्रामी पदार्थ जीवाणु हैं। कुछ इतने छोटे हैं कि अणुवीक्षणसे भी उन्हें नहीं देख सकते। इन्हें **दृष्टिपर रोगाणु (अल्ट्रा-भिजिबल भाइरस** Ultra-visible Virus) कहते हैं।

तन्दुरुस्त पशुमें छूतके वाहक प्रत्यक्ष या परोक्ष संसर्गसे पहुँच जाते हैं। वह रोग तब संक्रामक या स्पर्शप्रभव कहा जाता है। परोक्ष संसर्गसे छूत ले जानेवाले विभिन्न वाहक हो सकते हैं। संसर्गकी छूत एक ही रखवालेसे हो सकती है, खाने

पीनेके बरतनोंसे हो सकती है, बिछावन, साज, दीवाल, मिट्टी या घाससे हो सकती है या अन्य पशुओंसे भी हो सकती है। ये पशु स्वयं रोगग्रस्त नहीं भी हों पर केवल रोगवाहक हो सकते हैं। नदी, गली कूचे और सडकोंसे छूत आ सकती है। तेज हवा भी दूर तक छूत ले जा सकती है।

रोग फैलानेवाले जीवाणु बीजाणु या बैक्टीरिया दो वर्गके हो सकते हैं:— (१) जो किसी जीवित शरीर या मेजबान (host-होस्ट) से अपना पोषण लेते हैं। इन्हें **परोपजीवी (पैरासाइट्स** parasites) कहते हैं। (२) जो मृत या सड़े सेन्द्रिय पदार्थसे अपना पोषण लेते हैं उन्हें **शवजीवी (सेप्रोफाइट्स** saprophytes) कहते हैं। जो जीवाणु केवल अपने मेजबानके भरोसे रहते हैं उनका उपाय आसानीसे किया जा सकता है। यदि मेजबान या होस्ट नष्ट कर दिया जाय तो रोग-प्रसारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पर शवजीवीमें ऐसा काम नहीं चलता। वह शवके भरोसे जीता रहता है। कुछ देशोंमें माताका उन्मूलन सफलताके साथ किया गया। वहाँ मेजबानों या रोगी पशुओंको मार डाला गया। दुष्ट जीवाणु अपने मेजबान या होस्टसे अलग होकर देर तक जी नहीं सकते।

१३७१. जीवाणुकी प्रकृति या स्वभाव

जीवाणुओंका आकार और प्रकार बहुत तरहका होता है। कुछ शलाका या छड़ीकी तरहके होते हैं। इन्हें "**वैसीली**-bacilli" कहते हैं। कुछ गोल होते हैं जो "**कौक्सी**-Cocci" कहे जाते हैं। कुछ पेचदार होते हैं जो "**स्पिरिला**-Spirilla" कहे जाते हैं। कुछ को बारीक तन्तु (फिलामेन्ट्स) होते हैं। जिनके तन्तु शाखायुक्त होते हैं उन्हें "**केल्डोथ्रीक्स**-caldothrix" कहते हैं। इन सभी जीवाणुओंको बैक्टीरिया कहते हैं। बैक्टीरिया या जीवाणु बहुत सूक्ष्म होते हैं, उनका आकार एक इंचके ५००० वें भागसे २५०००वें भाग तक होता है। साधारण तौर पर जीवाणुको १००० गुणा बढ़ा कर देखने पर $\frac{१}{५०}$ इंच दिखायी पड़ता है। उसी तरह उनका २००० गुणा आकार बढ़ाने पर वे $\frac{१}{१०}$ इंचके मालूम होते हैं। इनकी नाप माइक्रन (micron) में बतायी जाती है। माइक्रन लगभग $\frac{१}{२५०००}$ इंचका होता है। कुछ जीवाणु ऊपर कहे आकारसे कहीं छोटे हैं। वह बड़ीसे बड़ी शक्तिवाले अणुवीक्षणसे भी देखे नहीं जा सकते। इनको दृष्टिपर-रोगाणु (अल्ट्रा-भिजिबल् भाइरस) कहते हैं। माता, खुरपका, गोशीतला और कुकुर-विषके रोगाणु

इसी कोटिके हैं। यह देखे नही जा सकते इसीलिये नापे भी नहीं। यह चीनी मिट्टीकी महीनसे महीन चलनोमें (porcelain filters) से निकल जाते हैं।

उद्भिद् वर्गमें ये बेक्टीरिया सबसे सूक्ष्म और निम्नतम माने जाते हैं और प्राणिवर्गके सबसे सूक्ष्म और निम्नतमको "प्रोटोजोआ" कहते हैं। वनस्पति वर्गमें भी ये बैक्टीरिया फफूँड़े (मोल्ड-moulds) या किण्व (ईस्ट-yeast) गोष्ठियोंमें विभक्त हैं। फफूँड़ेको किसी नम जगहमें जहाँ उसे पोषण मिले पनपते देखा जा सकता है। कुछ ऐसे हैं जो पशु-शरीरमें पनपते हैं और रोग पैदा करते हैं। गलघोंट, गिल्टी और लगड़ी ये तीन ढोरके मुख्य और मार्मिक तथा सांघातिक रोग हैं। इनका कारण छत्राक (फंजी-fungi) वर्गके बैक्टीरिया-जीवाणु हैं।

वंश-वृद्धि और वृद्धिकी विधिके कारण जीवाणुके भेद किये जाते हैं। वंशवृद्धि टुकड़ा होकर या बीज (स्पोर-spore) से हो सकती है। दो टुकड़ोंमें बँटकर वंशवृद्धि होने को "फिसन fission" कहते हैं। जीवाणु लंबा हो जाता है। इसके बाद बिचला भाग पतला होते होते अन्तमें टूटकर दोनों भाग अलग हो जाते हैं। यदि जीवाणु गोलाकार 'कोक्सी' हैं तो वे-जहाँ तहाँसे टूट कर अगूरके गुच्छेसे हो जाते हैं। इनको स्टाफिलोकोक्सी (staphylococci) कहते हैं। यदि ये मनकों या माला की तरह एक शृंखलामें होते हैं तो इनको स्ट्रेप्टोकोक्सी (streptococci) कहते हैं। कोक्सीका विभाजन एक ही स्थान पर होने से डिप्लोकोक्सी (deplococci) बनते हैं। ये जोड़ा जोड़ा मिलते हैं। दो स्थानोंपर विभाजन होनेसे टेट्राकोक्सी (tetracocci) बनते हैं।

बीज या स्पोर दो तरहसे बनते हैं। एक गर्भज (एन्डोजेनसे) बीज और दूसरा पिंडज (अर्थ्रोस्पोर्स)। जीवाणु एक कोषीय शरीरधारी अर्थात् जीववस्तु (प्रोटोप्लाजम) है जो एक पतली कलासे आवृत रहता है। बीज बननेके लिये जीवाणुके जीववस्तुमें गोल और अत्यन्त आवर्तक (रेफ्रेक्टाइल) पिंड उत्पन्न होता है। यही बीज स्पोर है। आवरण फट जाता है और बीज मुक्त हो जाता है। पिंडज बीजमें कुल जीववस्तुका एक बीज या स्पोर बनता है। इसलिये एक जीवाणुसे एकही बीज तैयार होता है। बीजमें वातावरणकी प्रतिरोध-शक्ति बहुत है। जबतक संख्या-वृद्धिके लिये अनुकूल परिस्थिति न होवे वह बहुत दिनों तक स्थिर और अक्रिय रहता है।

गिल्टीके बीजके विशेष वर्णनकी आवश्यकता है। इसका बीज चार वर्ष तक पड़ा रहता है। यह थोड़ी देर तक उबलनेवाले तापमानमें भी डटा रहता है। यह देखा गया है कि, साधारण हालतमें इसकी जीवनी शक्ति १२ से १८ वर्ष तक बनी रहती है और अनुकूल स्थिति होने पर बैसिलस बन जाता है। गिल्टीके बैसिली ऑक्सीजनमें ही बीज बना सकते हैं। इसलिये यदि इस रोगसे मरे पशुको गहरा गाड़ दिया जाय तो ऑक्सीजनके अभावमें बीज नहीं बन सकते। पर इस रोगसे मरे पशुका रक्त या देहसे निकला द्रव खुला रहे तो बैसिली बीज बनाते हैं। बीज मिट्टीमें अनिश्चित कालतक पड़े रह सकते हैं। पर वर्षा होने पर वह अंकुरित होते और घासमें छूत लगाते हैं। इस घासको खानेवाले पशुको छूत लग सकती है। ये बैसिलो अकुरित होते, संख्या-वृद्धि करते और फिर बीज या स्पोरमें परिणत होते जिनसे नये नये बैसिली पैदा होकर अनन्त काल तक धरतीको दूषित करते रह सकते हैं।

कुछ जीवाणु सरक भी सकते हैं। ये गतिशील कहे जाते हैं। इनकी गतिशीलता अणुवीक्षणसे देखी जा सकती है। इनको महीन चाबुकसा प्रवर्धन होता है। इसे आगे पीछे हिलाकर ये देह को ढकेलते हैं। चाबुक जैसे प्रवर्धनको फ्लैजिल्ली कहते है। इनकी गति को फ्लैजिल्लेट गति कहते हैं।

अनुकूल तापमान, आबहवा और आहार मिले तो जीवाणु बडो तेजीसे सख्या-वृद्धि करते हैं। तब भी संख्या-वृद्धि अमर्यादित नहीं होती। उनकी जीवन-क्रियासे ही एक विष पैदा होकर कुछ कालके बाद उनकी वृद्धिको रोकता है।

जीवाणुकी वृद्धिके लिये लवण, कारबन, और नाइट्रोजनकी जरूरत होती है। वातावरण के कारबन डाइऑक्साइडसे पौधे अपने क्लोरोफिलके जरिये कारबन प्राप्त करते हैं। पर जीवाणुको क्लोरोफिल नहीं होता इसलिये वह अपने कामके लिये चीनी जैसे सेन्द्रिय पदार्थसे कारबन लेते हैं। अलबुमिनोयड जैसे नाइट्रोजन-कंपाउन्डसे वे नाइट्रोजन लेते हैं। नाइट्रोजन के लिये कुछ जीवाणु अमोनिया और नाइट्रेट भी काममें लाते हैं।

गिल्टीके बैसिलीके बारेमें जैसा कहा गया है, कुछ की वृद्धिके लिये ऑक्सीजन चाहिये। ऐसोंको वायुजीवी (एरोबिक) कहा जाता हैं। दूसरे केवल ऑक्सीजनके अभावमें जी सकते हैं जिन्हें निर्वायुजीवी (एनएरोबिक) कहते हैं। एक तीसरा वर्ग है जो ऑक्सीजनमें भी और उसके अभावमें भी जी सकता है।

जीवाणुकी वृद्धिके लिये उचित तापमान विभिन्न हैं। साधारण तौर पर रोगजनक जीवाणुकी वृद्धिके लिये पशुदेहका तापमान चाहिये। प्रकाश इनके लिये प्रतिकूल है। कुछ तो थोड़ी देर तक प्रकाशमें रहने से मर जाते हैं और कुछ तो धूपमें तुरत मर जाते हैं। रासायनिक विष भी इन्हें मारते हैं जीवित प्राणी अर्थात् अपने मेजबान या होस्ट के शरीरसे पोषण प्राप्त करनेवाले परोपजीवी कहे जाते हैं।

१३७२. जीवाणुका स्वभाव

जीवाणुकी सूरत और संख्यावृद्धिकी सामर्थ्यका अध्ययन अणुवीक्षणसे होता है। वहाँ यांत्रिक पद्धतिसे उनकी घनीभूत गिनती की जाती है। एक घनमान (volume) में उनकी संख्या गिनी जा सकती है। इनमेंसे कुछ खास तरहका रंग लेते हैं और दूसरे अन्य तरहका। इन रंगोंकी मददसे अणुवीक्षणमें इनकी सूरत उभर आती है। रंगोंके प्रति इनका जो व्यवहार है उससे इनका वर्गीकरण और अंतमें पहचान हो जाती है।

कृत्रिम उत्पादन : अध्ययन, सख्यावृद्धि, चिकित्सा और प्रयोगशालाकी आवश्यकताओंके लिये जीवाणु कृत्रिम अवस्थामें भी पैदा किये जा सकते हैं। जीवाणुके लक्षणके अनुसार इनकी वृद्धिके लिये विभिन्न माध्यम काममें लाये जाते हैं। साधारण माध्यम यूष (मांसरस), आगर, आलू, जिलेटिन, रक्तरस (सिरम), दूध आदि हैं। शुद्ध कृष्टि (culture) प्राप्त करनेके उपाय निकाले गये हैं। इससे अन्वेषक जिस जीवाणुविशेषको चाहता है उसे चुन लेता और उनकी संख्या-वृद्धि करता है।

साधारण तौर पर जो उपाय काममें आता है वह यह है। किसी जाँच-नलीमें (टेस्ट ट्यूबमें) पोषक माध्यम थोड़ा भर कर डाक्टरी रूईसे उसका मुँह बंद कर देते हैं। फिर लगातार तीन दिनों तक आध आध घंटा उस नलीको भाफमें जीवाणुरहित करते हैं। इस क्रियासे उस माध्यममें यदि कोई जीवाणु या उनके बीज पहुँच गये हों तो नष्ट हो जाते हैं। यह जीवाणु रहित पोषक माध्यम तैयार है। इसमें प्लैटीनमकी जीवाणुरहित की हुई सूईसे थोड़ीसी वह सामिग्री डालते हैं जिसमें कृष्टि (culture) किया जानेवाला जीवाणु है। नलीको बंद कर २ या ३ दिन ३७ डिगरी सेन्टीग्रेड तापमानमें रखते हैं। इसके बाद परीक्षा करने पर

पता चलेगा कि जीवाणु उपनिवेश पैदा हो गये हैं। यह खाली आँखों ही दिखायी पड़ता है। ऐसे उपनिवेशोंमें मिश्रित वर्गके जीवाणु होते हैं। इनको अलग अलग तापमानसे अलग करते हैं। कोई किसी तापमानमें मर जाता और कोई जीता रहता है। उस उपनिवेश-पदार्थको हल्का या पतला करना भी अलग अलग अध्ययन करने और उनका अंतर जाननेका एक उपाय है। किसी पशुमें कृष्टिका संचारण करके भी उन्हें अलग किया जा सकता है। क्योंकि जीवित पशुके शरीरमें उनकी वृद्धिका परिमाण अलग अलग होता है और परीक्षणीय जीवाणुसे विशेष रोग पैदा होते हैं।

१३७३. छूतका फल

अपने मेजबानके शरीरमें घुसकर जीवाणु अनेक उत्पात कर सकते हैं। रक्तके पोषक पदार्थ चूसकर और उसकी प्रकृति बदलकर वह हानि कर सकते हैं। वह असंख्य वृद्धि कर रक्त-वाहिनियोंकी केशिकाओंको अवरुद्ध कर सकते हैं। दूषित रसायनिक पदार्थ या विषकर स्राव करके भी वह हानि कर सकते हैं। यह अंतिम कारण ही रोग पैदा करनेमें मुख्य है।

विष देहमें घुल जाता है और सारी देहमें फैल कर खास खास रोग पैदा करता है।

जीवाणु क्षतोंकी राह देहमें घुस सकते हैं और छूत लगा सकते हैं, जैसे कुकुरविष या धनुष्टंकारमें, साँससे जैसे इन्फ्लुऐंजामें, खानेके साथ पेटमें जाकर जैसे माता और खुरपकामें, या कीड़ोंके काटनेसे जैसे सड़ा, जर्द बुखार आदिमें।

१३७४. व्याधिक्षमता

पशुकी रोगनिरोधकी योग्यताको व्याधिक्षमता या अनाक्रम्यता (Immunity) कहते हैं। यह प्रतिरोध जीवाणु या उससे उत्पन्न विषका हो सकता है।

सहज क्षमता : Natural Immunity : कुछ पशु किसी रोगके शिकार होते हैं। पर कुछको वह आक्रमण नहीं कर सकता जैसे कि, घोड़ेके रोग (strangles कंठकीसूजन) का असर गाय पर नहीं होता और माता या खुरपका आदि ढोरके रोगोंका असर आदमी पर नहीं होता। इस वर्गको इन जीवाणुओंको रोकनेकी क्षमता है। ये सहज क्षमताके उदाहरण हैं।

रोगज क्षमता : प्राप्त क्षमता : Acquired Immunity : क्षमता प्राप्त की जा सकती है। रोगज (प्राप्त) क्षमता प्राप्त करनेका उपाय रोगनिरोधक चिकित्सावर्गमें रखा गया है। कभी कभी एक बार रोग होनेसे जिन्दगी भर उस रोगकी क्षमता आ जाती है। मातामें यही होता है। जो पशु मातासे एक बार बच जाता है उसे फिर कभी यह नहीं होती। मनुष्योंको चेचकका पाछ लगाना रोगज क्षमता पैदा करना है।

जिसे रोगजनक जीवाणुकी छूत लग सकती है उसे उस रोगका "ग्रहणशील" कहा जाता है। अलग अलग पशुओंमें ग्रहणशीलता अलग अलग होती है। तरुण पशु अधिक ग्रहणशील हैं।

कमजोर और हारे पशुओंकी अपेक्षा सुस्थ पशु अधिक प्रतिरोधी होते हैं। छूतप्रसारक किस तरह देहमें घुसे इस पर भी ग्रहणशीलता निर्भर है। रोगज क्षमता अधिक समय तक रह सकती है अथवा अल्पकालिक भी हो सकती है। अगर रोगज क्षमता जीवन भर या साल भर भी ठहरे तो उसे **सक्रिय** क्षमता कहते हैं। यदि क्षमता कुछ दिन ही ठहरे तो उसे **निष्क्रिय** क्षमता कहते हैं। छूतरोगनिरोधके उपायोंके विकाशमें दोनोंकी उपयोगिता है।

१३७७. सक्रिय क्षमता

जैसाकि, माता या गोचेचकके बारेमें कहा जा चुका है, कभी कभी रोगके पूर्व आक्रमणसे सदाके लिये क्षमता हो जाती है। सक्रिय क्षमता (१) शुद्ध रोगाणु (pure virus) (२) मिलावटी रोगाणु (attenuated virus)के संचारसे हो सकती है। यदि किसी पशुको शुद्ध रोगाणुकी हल्की मात्राका संचार कर दिया जाय तो वह जिस रोगका छूत है उसे पैदा करता है। यह पैदा किया रोग हल्का या मारक हो सकता है। हल्का हुआ तो प्रतिरोधक चिकित्सामें उपयोगी है। मारक हो तो व्यर्थ है। पर यह देखा गया है कि, यदि मिलावटी रोगाणुका सचार किया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया या उत्पादित रोग हल्का होता है। यदि रोग ऐसा है कि, एक बार होने पर काफी दिनोंके लिये पशुको क्षमता हो जाती है तो इससे प्राणकी आशकाके विना रोगसे रक्षा हो जाती है। उन बीमारियोंमें जिनके एक बार होनेसे वह सदा या बहुत दिनोंके लिये नहीं होती उनको मिलावटी

रोगाणु लगाकर हल्की बीमारी पैदा करते हैं। पर मिलावटी रोगाणुके अन्य उपयोग भी हैं।

रोगाणुमें मिलावट करके उन्हें क्षीणबल किया जाता है। इसकी नीचे लिखी विधियाँ हैं।

१. रोगाणुको गरम करके।

२. दूसरे पशुओंमें उसे डालकर।

३. रासायनिक पदार्थ मिलाकर।

४. रोगी या रोगमुक्त पशुके शरीरमें होनेवाले अज्ञान कारणोंसे आदि।

मिलावटी रोगाणुको भैक्सीन (vaccine) कहते हैं। भैक्सीनसे सक्रिय क्षमता होती है। जिस पशुमें सक्रिय क्षमता डाली गयी है उसके रक्तरस (सिरम)का संचार करके निष्क्रिय क्षमता पैदा की जा सकती है। रससे डाली हुई क्षमता बहुत अल्पकालिक होती है। इससे जितने दिन छूतकी बीमारी फैली रहे उतने दिन उससे बचा रह सकता है। कभी कभी ऐसे समय सकुशल बचनेके लिये रस देना आवश्यक है। जैसेकि, माता फैलने पर हर दसवें दिन दिया जाता है।

रस (लसीका) रोग निवारक हैं और आधुनिक लसीका चिकित्साके आधार हैं। पर यहाँ हम रोग चिकित्सा पर विचार नहीं कर रहे हैं। क्षमता या रोग प्रतिरोध पर विचार रहे हैं। रसकी प्रतिक्रियाका लक्ष्य जीवाणुजनित विष बनाया जा सकता है अथवा स्वयं जीवाणु ही। जब जीवाणुके विरुद्ध इसका प्रयोग होता है तो इससे निष्क्रिय क्षमता पैदा की जाती है; पर विषके विरुद्ध प्रयोग करने पर, इससे चिकित्साका काम लिया जाता है। जीवाणु और उसके विष दोनोंसे मोर्चा लेनेका संयुक्त काम भी हो सकता है।

१३७६. सिरम या लसीका-चिकित्साका सिद्धान्त

रोगजनक जीवाणु पशुदेहमें घुस बढ़ते और विष पैदा करते हैं। पर शरीर इस घातक क्रियाको चुपचाप देखता नहीं रहता। इस घातसे बचनेके लिये देह प्रतिपिंड या प्रति-विष (anti-body or anti-toxins) बनाती है। प्रतिपिंड विषको व्यर्थ करनेवाला होता है। विषके संसर्गमें आने पर यह उनको व्यर्थ कर देता है। यह क्रिया शरीरके बाहर भी दिखायी जा सकती है। नलीमें यदि

विषके साथ प्रतिविष मिलाया जाय तो दोनों मिलकर निर्दोष पदार्थ बन जाते हैं। यदि नियंत्रित मात्रामें इसकी सूई पशुको लगायी जाय तो कुछ नुकसान नहीं होगा।

घोड़ा, गाय या किसी पशुको मिलावटी रोगाणु देनेसे वह रोगसे बच जाता है। ऐसा पशु विषकी और कड़ी मात्रा पचा सकता है। धीरे धीरे यह मात्रा यहाँ तक बढ़ायी जा सकती है कि, पशु घातक क्या कई गुना घातक मात्रामें विषका सचार सह लेता है। इस विधिसे पशु अतिक्षम (hyper-immunised) हो जाता है। इसमें महत्वकी बात यह है कि पशुमें कई गुना घातक विषकी क्षमता आ जाती है। अर्थात् अतिक्षमके रक्तरसमें प्रतिविष पैदा हो जाते हैं जिसके कारण उसमें प्राप्तक्षमता आ गयी है। अब यदि ऐसे पशुका रक्त निकालकर उसका थक्का जमने दिया जाय तो उसके रसमें प्रतिपिंड भरे मिलेंगे। यह रस अन्य पशुओंको चिकित्सा या रोगसे निष्क्रिय रक्षाके लिये दिया जा सकता है। यह प्रतिपिंड देहमें बहुत देर तक नहीं रहता। रोग निवारण करनेके बाद या तो वह नष्ट हो जाता है या यदि क्षमताके लिये दिया गया है तो कुछ देरके बाद मलमूत्रादि के साथ निकल जाता है और प्राप्तक्षमता भी उसीके साथ निकल जाती है।

सिरमके लिये गाय या घोड़ेका खून निकाला जा सकता है। अच्छा पोषण पानेके बाद वह काफी खन फिर दे सकता है। यदि घोड़ेकी पूरी हिफाजत हो तो ऐसा लगातार हो सकता है। बाजारू प्रतिविष रस (Anti-toxic Serum) बनानेके लिये एक एक बारमें कई रत्तल खून लिया जा सकता है।

एक ही strain-स्ट्रेन जातिके जीवाणुका संचार कर जब रस निकाला जाता है तब उसे एकयोजी (monovalent) रस कहते हैं। और जब उसी वर्गके कई स्ट्रेन या जातियोंके जीवाणु डाले जाते हैं तो रसको बहुयोजी (polyvalent) कहते हैं।

रससे मिली क्षमताका कारण फैगोसाइट (phagocytes) या अणुजीवनाशक श्वेतरक्तकणिकाएँ हैं। यह रक्तमें पुलिसकी तरह हैं और दौड़कर खतरेकी जगह पहुँचते हैं। आक्रमणकारी जीवाणुसे लड़कर उसे मार डालते हैं अथवा प्रतिविष पैदा कर विषको निश्चेष्ट कर देते हैं। पर इस फैगोसाइटोसिस (phagocytosis) या जीवाणुसंहार सिद्धान्तको ऑप्सोनिक (opsonic) या कल्पनक सिद्धान्त पूरा करता है। यह सिद्धान्त कहता है कि, फैगोसाइट स्वयं जीवाणुओंको गिरफ्तार कर नहीं मार सकते। फैगोसाइटोसिस होनेके पहले देहके कुछ तरल पदार्थ जिसे

कल्पन या ऑप्सोनिन (opsonins) कहते वह जीवाणुको सिद्ध करते हैं। ऑप्सोनिन का भोज तैयार करनेवाला (feast preparers) कहते हैं अर्थात् जीवाणुके भक्षण करनेवाले फैगोसाइट का भोज।

रोगोंके प्रतिकारका हिसाब ऑप्सोनिक या कल्पनक गणना मूल्यसे किया जाता है। जब यह क्षमता पैदा करता है तब अधिक और जब रोगको होने देता है तब कम माना जाता है।

भैक्सीनसे क्षमता पैदा करनेमें पहले कई दिन कल्पनक (opsonic) मूल्य कम हो जाता है इसके बाद बढ़ने लगता है। यह क्षमताके विभिन्न काल तक अधिक रहता है। इस आधार पर सावधान किया जाता है कि, भैक्सीनसे जिस पशुकी क्षमता कुछ दिनके लिये घट जाती है उसे छूतसे बचाना चाहिये।

इससे एक दूसरी बातका पता चलता है। जिस पशुमें रोगाणु पहलेसे मौजूद हो उसे भैक्सीन या मिलावटी रोगाणु लगा देनेसे यह नया रोगाणु पहलेको उभाड़ता है। इससे मौत हो सकती है। इसलिये संदेहवाले स्थानोंमें क्रमसे रस और भैक्सीनकी सूई दी जाती है। यदि पहलेसे छूत मौजूद हो तो रस रोग नाश करता है। और जब रसकी क्षमताका काल बीत जाय तो सक्रिय क्षमताके लिये भैक्सीन दिया जाय। सचारित होते ही यह रस सद्यः रक्षा करता है।

१३७७. बैक्टीरियोफेज

बैसिलरी पेचिशके रोगीका मल यूषमें घोलकर छाननेसे एक विचित्र चीज मिलती है। इस छनी चीजका यूषमें पेचिशकी बैसिलीके साथ अगर मिलावें और २४ घंटे तक उचित तापमान (३७ डिगरी सेन्टीग्रेड) में देनेके लिये छोड़ दें तो पेचिशके बैसिली मर जायेंगे और यूष जो बैसिलीके कारण गँदला था वह फिर साफ हो जायगा। इस साफ पदार्थको देखनेसे पता चलता है कि, मलसे तैयार किये मूल द्रवमें जो पदार्थ है वह इसमें कई गुना अधिक घनीभूत है।

मलसे छाने द्रवमें कुछ ऐसी चीज है जो उस बैसीलीका घातक है। मलसे छनी चीज या घनीभूत की गयी चीजको बैक्टीरियोफेज नाम दिया गया है।

बैक्टीरियोफेज जिस बैक्टीरियाको मार देता है उसीकी तरह सप्राण माना गया है। यह जीवित जीवाणुके सहारे बढ़ता भी है।

बन्द नलियोंमें साधारण तापमानमें फेज बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। मेमनोंको बैसिलरी पेचिश और भैंसके गलघोंटूमें यह सफल हुआ है।

यह कहा जाता है कि, फेजके उन्नायकोंमें एक, श्री डी हिरील (D. Herrille) ने हिन्दचीनमें (Indo-China) भैंसोंको सफलताके साथ सक्षम किया। ऐसा मालूम होता है कि, हिन्दचीनसे यह रोग उन्मूल हो गया। फेज मुँहकी राह पिलाया जाता है।

१३७८ Anaphylaxis : एनेफाइलेक्सिस

किसी पशुको दूसरी जातिके पशुके रसका संचारण करनेसे कोई उल्लेखनीय हानि नहीं होती। पर १२ दिनके भीतर वह सूई फिर लगायी जाय तो कठिन रोग या अचानक मृत्यु हो सकती है। एनेफाइलेक्सिस (anaphylaxis) अर्थात् विजातीय पशुके सिरमकी सूईका असर विभिन्न पशुओं पर विभिन्न होता है। मनुष्यपर एनेफाइलेक्सिस का असर थोड़ा ही होता है। एनेफाइलेक्सिस में रस, दूध, एलबूमिन (albumen-अंडेकी सफेदी) आदि शामिल हैं। कुछ हालतोंमें यह विजातीय चर्बीयुक्त (albuminous) पदार्थों पर अतिचेतना पैदा करता है। ऐसे पदार्थ स्वयं अविष हैं। अतिचेतनता (super sensitiveness) नीचे लिखे तौर पर दिखायी जा सकती है :

यदि विलायती चूहेको घोड़ेके साधारण रसकी थोड़ी मात्रा १⁄₁₀ सी० सी० की सूई चमड़ेमें लगायी जाय और १२ दिनके भीतर ही उसी की ५ सी० सी० की सूई पेट पर दी जाय तो तुरत ही अति भयंकर प्रतिक्रिया होगी। सांस लेनेमें श्रम होता है, हृदय मन्द पड़ जाता है। तापमान गिर जाता है। मल मूत्र निकल जाते हैं। मरणस्थिति आ पहुँचती है। मृत्यु भी हो सकती है। खरगोश पर इससे बहुत कम असर पड़ता है। एनेफाइलेक्सिस सिरम पाये पशुका भयंकर लक्षण दूसरी मात्रा कम करके मिटाया जा सकता है। इसके बादकी मात्रा बढ़ायी जा सकती है।

१३७९. रस (सिरम) और भैक्सीनके उपयोगके उपाय

भैक्सीन (एन्टीजेन्स) : भैक्सीनकी सूईसे कुछ दिनोंमें क्षमता पैदा होती है। इस बीच एक प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रियाकालमें रोगकी ग्रहणशीलता

बढ़ जाती है। आप्तक्षमता बलवती होती है और कई वर्ष ठहरती है। जैसे जैसे समय बीतता असर घटता है। जहाँ रोग फैले न हों वहाँ साधारण तौर पर रक्षाके लिये केवल भैक्सीन ही दिया जाता है। यह इसलिये कि. भैक्सीन की प्रतिक्रियाके कारण बढ़ी ग्रहणशीलता और क्षमताके विकाशके लिये जो समय चाहिये वह मिलता है।

रस (प्रतिरस) : Serum (anti-serum) : प्रतिरसके संचारणसे प्रतिक्रियाके बिना तुरत रक्षा मिलती है। बढ़ी ग्रहणशीलताका काल इसमें नहीं होता। इसमें कमी यही है कि, रक्षा थोड़े दिनकी होती है। केवल १० से १४ दिन ठहरती है।

१३८०. भैक्सीन और रसीय (सिरम) चिकित्सामें रक्षात्मक उपाय

रोगोंके भावी आक्रमणसे तन्दुरुस्त पशुओंकी रक्षाके उपाय रोगोंके अनुसार अलग अलग हैं। साधारण सिद्धान्तोंका वर्णन नीचे है :

१. **केवल भैक्सीन** : यह उन स्थानोंमें दी जाती है जहां रोग अभी तक न फैले हों पर उनके फैलनेका डर हो।

२. **केवल प्रति-रस (एन्टीसिरम)** : जहाँ छूत फैली हो वहाँ चारों तरफ क्षमताशील पशुओंका एक व्यूह रचनेके लिये इसका उपयोग होता है कि, रोग आगे न बढ़े। रस-रक्षित हल्केमें जब छूत पहुँचती है तब रुक जाती है और आगे नहीं बढ़ सकती। खुरपका रोकनेके लिये यह कभी कभी किया जाता है।

३. **प्रतिरसके बाद सहज संसर्ग** : इस विधिमें पशुओंको रक्षात्मक मात्रामें प्रतिरससे संचारित कर उन्हें रोगसे पीड़ित पशुओंमें मिला देते हैं। इसी मतलबसे छूत लगी चीजें रस-संचारित पशुके संसर्गमें लायी जा सकती हैं। इस विधिसे पशुको रोग होता है पर रसकी रक्षाके कारण रोगका आक्रमण हल्का होता है। इससे वास्तवमें पशुओंको निष्क्रिय क्षमता हो जाती है जो पीछे रोगके हल्के आक्रमणसे सक्रिय बन जाती है। संसर्गसे जो रोग फैलते हैं उन पर इस विधिका प्रयोग होता है। ऐसे रोगोंका माता (रिन्डरपेस्ट) उदाहरण हो सकता है। मातामें इस विधिका प्रयोग होता था पर अब और अच्छी विधियाँ भी काममें आती हैं। जो रोग संसर्गके बदले जमीनकी छूतसे होते हैं उन पर यह विधि व्यर्थ है। क्योंकि, इसका कोई ठिकाना नहीं कि, निष्क्रिय क्षमताको सक्रिय कर देनेके लिये

ही जमीनसे जीवाणु देहमें पहुँच जायँगे। जमीनको छूतवाले ऐसे रोग धनुष्टंकार और गिल्टी हैं।

४. **दुहरा संचारण :** इस विधिमें प्रतिरस और भैक्सीन दोनों दिये जाते हैं। इसमें सक्रिय जीवाणु कहीसे प्रवेश करनेके भरोसे नहीं रहते। रससे निष्क्रिय क्षमता होती है और भैक्सीनसे सक्रिय। इस विधिके ब्यौरेमें कुछ भिन्नता रहती है। रस और भैक्सीन दोनोंके सचारण साथ साथ भी किये जा सकते हैं या पहले प्रतिरस और कुछ दिनके बाद भैक्सीन (एन्टीजेन)।

इस विधिको साधारण तौरपर "सिरम साइमलटेनियस" विधि ('serum simultaneous' method) कहते हैं। इस विधिमें भैक्सीन और रस एक ही सूईकी पिचकारीमें भर दिये जा सकते हैं। या ज्यादातर होता यह है कि, रसका सूई एक कधेमें दी जाती है और भैक्सीनकी दूसरेमें।

कुछ रोगों, जैसे लगड़ीमें, दूसरी सूई कुछ देरके बाद दी जाती है। अगर किसी ठट्ठमें लगड़ी (black quarter) शुरू हो जाती है तो पहला काम बच्चे बछड़ोंको प्रतिरसकी सूईसे बचाना होता है। इसके कुछ दिनके बाद भैक्सीनकी सूई दी जाती है। इसमें भी बीचका समय कितना हो इसकी कठिनाई होती है। अगर बीचका समय लबा हुआ तो प्रतिरसका असर गायब हो चुका रहता है और भैक्सीन यदि तेज हुआ तो पशुको मार सकता है। पर ये कठिनाइयाँ अब खतम हो रही हैं। क्योंकि अब हल्के भैक्सीन मिल जाते हैं। इन्हें रसके बिना भी यदि सीधे दे दें तो लँगड़ी जैसे रोगोंमें कोई हानि नहीं होती। ऐसे रोगोंमें रसका उपयोग उन पशुओंको खतरेसे बचाता है जिन्हें ऐसे रोग लग चुके हैं पर बाहरी लक्षण प्रगट नहीं हुए। यदि ऐसी हालतमें भैक्सीन दी जाय तो पशु मर जायगा। इसीलिये रसके उपयोगका विधान है। अगर पशुको पहलेसे छूत लगी हो तो रस रोगनिवारक का काम करता है। इसके बाद सक्रिय क्षमता पैदा करनेके लिये भैक्सीनकी सूई देने की जरूरत है। प्रतिरस भैक्सीनकी तीव्रता रोकनेके लिये भी दिया जाता है।

दुहरा संचारण "सीरम साइमल्टेनियस" विधिसे माता और कई दूसरे रोगोंके लिये किया जाता है। भैक्सीनकी दारुणता रोकनेके लिये रस देते समय उसकी मात्राके बारेमें सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि, उचितसे कम मात्रामें रस देनेसे भैक्सीनसे कड़ी बीमारी हो सकती है जिससे पशु मर सकता है। और

बहुत जादे रस से भैक्सीन निष्प्राण हो जाता है। नयी विधियाँ बराबर निकल रही हैं कि, भैक्सीन देना निरापद हो जाय और पशुके मरनेका डर न रहे।

१३८१. भैक्सीन और प्रतिरस

भारतमें ढोरके रोगोंके भैक्सीन और प्रतिरस इज्जतनगरके केन्द्रीय कार्यालयमें बनते हैं। कुछ सरल प्रकारके प्रांतीय सिरम इस्टिट्यूटमें भी बनते हैं। मुक्तेश्वर और इज्जतनगर इंस्टिट्यूटों से मिलनेवाले रस और भैक्सीनकी सूची नीचे दी जाती है: १९४०-'४१।

तैयार माल		इस साल कितनी मात्रामें भेजा गया
रिन्डरपेस्ट (माता) सीरम "स्पेशल"	...	१,२६,०२०
,, ,, "साधारण"	...	५,५९,०४०
एन्थ्रेक्स (गिल्टी) सीरम	...	७०,७३८
,, स्पोर भैक्सीन	...	७१,९००
हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया सीरम		२,६४,३९५
,, ,, भैक्सीन		११,९१,३०९
ब्लैक क्वार्टर (लँगड़ी) सीरम	...	४१,५००
,, भैक्सीन	...	२,२१,६५०
मिक्सड् स्ट्रैप्टोकोक्सी भैक्सीन	...	३२५
बोभाइन एवोर्टिस भैक्सीन	...	३३
ट्यूबरकुलिन आर्डिनारी	...	९७२
,, कंनसेन्ट्रेटेड	...	१४,७६५
रिन्डरपेस्ट बुल भाइरस	...	१,८५५ सी० सी०
,, गोट भाइरस	...	३२७ एम्पुल
,, गोट टीसू भाइरस	...	२,४८८ एम्पुल
ब्रु० एवोर्टस एन्टीजेन	...	१,९७५ सी० सी०

—(मुक्तेश्वर और इज्जतनगरकी वार्षिक रिपोर्ट, १९४०-४१—पृ० ६३)

भारतके कुछ प्रान्तोंमें अपनी जरूरतें पूरी करनेके लिये रस और भैक्सीन स्वयं बना लिये जाते हैं। बननेवाली ऐसी चीजोंमें गोट टिसू भैक्सीन और गोट ब्लड भाइरस तथा प्रतिरस मुख्य हैं।

बगाल भैटेरिनरी विभागके दो केन्द्र कलकत्ता और चटगाँवमें गोट टिसू भैक्सीन बनाने और बाँटनेके लिये हैं। इन दोनों केन्द्रोंमें इस दवाकी सौ सौ मात्रावाली ७,६०९ बन्द शीशीयाँ बनी जो सात लाख मात्राओंके बराबर थीं। इन ७ लाख मात्राओंसे १९४०-४१ में ५ लाख पशुओंमें संचारण किया गया।

मदरासके सिरम इंस्टीट्यूटमें एन्टी-रिन्डरपेस्ट सिरम, रिन्डरपेस्ट बुल भाइरस, रिन्डरपेस्ट गोट भाइरस, डेसोकेटेड गोट स्प्लीन भैक्सीन, एन्टी हेमोरेजिक सेप्टीसीमियाँ सिरम और भैक्सीन, एन्टी ब्लैक क्वार्टर सिरम और भैक्सीन आदि बनते हैं। सन् १९४१-४२ में यह इंस्टिट्यूट बल्ड भाइरस बनानेके लिये १३२२ बकरियाँ काममें लाया। इसने ९६४ भैसोंसे एन्टी-रिन्डरपेस्ट सिरमकी १३,९५,१५० मात्रायें बनायीं। प्रत्येकने औसतसे १,४४७ मात्रा सीरम दिया।

युक्तप्रान्तमें रिन्डरपेस्ट भैक्सीन बनानेका केन्द्र लखनऊमें है। सन् १९४०-४१ में इस केन्द्रसे भैक्सीनकी ३ ०७,०२५ मात्राएँ चलान हुईं।

१३८२. संक्रामक और छूतके रोगोंका नियंत्रण

छूतके रोग जब फैलें तो पशुपालक सावधान हो जाँय और पशुओंके तापमानका ख्याल रखें। पास पड़ोसमें भी छूतके रोग फैलें तो बुद्धिमान पशुपालकोंको चाहिये कि, भेटेरिनरी विभागवालोंको खबर करें और रक्षात्मक उपाय काममें लावें। सरकार और जिलाबोर्ड सूई लगानेका मुफ्त प्रबध करती हैं। इन सस्थाओंने यह सार्वजनिक सेवा अपने ऊपर ले रखी है। पहले कहा जा चुका है कि, हर साल इन रुक सकनेवाले छूतके रोगोंको रोकनेके लिये दवाओंकी लाखों मात्राएँ काममें लायी जाती हैं। हर प्रान्तके भेटेरिनरी विभाग अपने अपने प्रान्तोंको इन आफतोंसे बचाना चाहते और जो उनसे हो सकता है करते हैं। इनका उद्योग और भी सफल हो यदि पशुपालक इन सरकारी संस्थाओंको समझें और हर जरूरत पर इनके अफसरोंसे काम लें। जिलाबोर्डोंकी ओरसे भेटेरिनरी अस्पताल होते हैं, जिनमें भेटेरिनरी एसिस्टेन्ट सरजन रहा करते हैं। इनमेंसे कुछ तो प्रायः सदा दौरे पर ही रहते हैं। इन अस्पतालों और अफसरोंका पता ठिकाना जानना चाहिये कि, रोग

फैलते ही इनको खबर की जाय। इन केन्द्रोंको बुलावा मिलता भी है। पर जरूरत तुरत खबर भेजनेकी है।

पच्छिमी यूरोपमें पशुचिकित्साका प्रबन्ध उत्तम है। वहाँ ढोरकी देखभाल करनेके लिये सरकारी नौकर अधिक हैं। वहाँ उन लोगोंने भेटरिनरी पुलिस कायम की है। छुतहे रोगोंको रोकनेके उपाय करना उनके कामोंमें एक काम है। रोग फैलने पर वह "स्थिनगति" ('stand still') उपाय काममें लाते हैं। इसे वह खासकर ढोरोंके प्लेग (माता) में काममें लाते हैं। ऐसे उपायोंसे काम लेने पर पच्छिमी यूरपसे अनेक रोग मिट गये।

१३८३. "स्थितगति" (स्टेन्डस्टिल) विधान

यह कहा जाता है कि, रोगी और उनके संसर्गमें रहनेवाले पशु अलग रखे जायँ। पर इतना ही काफी नहीं है। जब तक कुछ पशुओंमें रोगके लक्षण प्रगट हों तब तक उनकी छूत साथके दूसरोंको गोचर आदिमें लग जाना अधिक संभव है। यह जाननेका कोई उपाय नहीं कि, कितनोंको छूत लग चुकी है। इसलिये इसका प्रबन्ध किया जाता है कि छूतवाले इलाकेके सभी पशुओंका इधर उधर जाना रोक दिया जाता है। महामारी फैलने पर समस्या यह नहीं रह जाती कि, रोगियोंका इलाज कैसे हो। समस्या रोगका फैलना रोकनेकी है। ढोरके प्लेग जैसे रोगोंके कीटाणु एक दो दिनमें धूपमें मर जाते हैं। असली खतरा उन पशुओंसे है जिन्हें रोग हल्के रूपमें है और जो दूसरोंको छूत लगाते हैं।

महामारी फैलने पर रोग-रोधक संचारण करनेवाले सहायक दलके आनेमें देर लग सकती है। यहाँ भेटेरिनरी विभागमें बहुत कम आदमी हैं। तुरत कार्रवाई करना उनसे शायद ही बन पड़े। इस विभागका अफसर जब एक ओर फँसा हो दूसरी ओरको उसका आसरा देखना पड़ सकता है।

ऐसी हालतमें पशुपालकोंको अपने इलाकेमें स्थितगति-उपाय काममें लाना सबसे अच्छा है। जिनके पास बहुत बड़ी संख्यामें पशु हैं, उन्हें अपने ही फायदेके लिये स्थितगति-उपाय करना चाहिये।

संकुल स्थानोंसे दूर एक जगह चुननी चाहिये। वहाँ रोगी पशुओंको अलग रखना चाहिये। रोगीसे संपर्कवाले पशु दूसरी जगह रखे जायँ।

जहाँ व्यक्तियोंके लिये स्थितगतिका प्रबन्ध करना संभव न हो वहाँ तुरत ही मिलजुलकर ऐसा प्रबन्ध करना बुद्धिमानीकी बात होगी। यहाँ पर सभी बीमार पशु जमाकर एक साथ रखे जायँ। बंगालमें जैसा स्थितगति-उपाय बताया गया है उसे लोग पसन्द कर रहे हैं। बंगालके भेटेरिनरी विभागकी १९४०-'४१ की रिपोर्टका अंश नीचे दिया जा रहा है।

"प्रान्तके विभिन्न भागोंमें छूत और संक्रामक रोगोंके रोगी पशुओंको, खासकर माताके रोगियोंको, अलग रखनेके लिये "स्थितगति-शिविर" खोले गये। इनसे बहुत उपकार हुआ। क्योंकि, महामारी फैलने या संकुल स्थानोंमें उनके बढ़ने पर खासकर आचारिक या स्वास्थ्यजनक उपायोंसे जहाँ रोग निर्मूल करना कठिन या असंभव होता वहाँ भेटेरिनरी अफसर तुरत पहुँच सकते थे। छूत लगे पशु बराबर खतरा और बुराई न बढ़ाते रहें यह रोकनेके लिये उन्हें तुरत गाँवसे दूर हटा ले जाना इन शिविरोंके कारण ही संभव हो सका। ये शिविर रोगरोधनके तत्र बन गये। जैसा ऊपर कहा गया है इनसे तुरत काम लिया जा सका। एक जगह रहनेसे वहाँके अधिवासी या पशुपालक स्वयं ही रोगकी पहचान कर लेते थे। पासके प्रधान केन्द्रसे डाक्टरोंकी सहायता या कलकत्तेसे रस (सिरम) और भैक्सीन आनेके आसरे नहीं रहते थे। लोग अपने आप शास्त्रीय सहायता पानेके आसरेमें रहनेके बीचका सारा समय रोगी पशुओंको स्थितगति-उपायसे तुरत अलग करनेमें लगाते थे और उसका अच्छा असर होता था। इसका अभिप्राय यह कि, रोग फैलने पर तन्दुरुस्त पशुओंके बीचसे रोगी और शंकावालोंको अलग करना और फिर रोगियों और शकावालोंको स्थितगति-शिविरोंमें पहुँचाना। इसे शुरू करनेमें कुछ कड़ाईसे काम लेना पड़ा पर फल उत्साहप्रद रहा"। —(पृ० ४)

अज्ञात स्थानोंसे पशु खरीदते समय लोग सावधान रहें यह बचावका उपाय है। पर स्थान यदि जाना हुआ हो और ठट्ठमें कोई महामारी न फैली हो तो वहाँसे खरीदनेमें खतरा नहीं हो सकता है।

पर मेलों और हाटों आदि अज्ञात स्थानोंसे खरीद करनी ही होती है। इसलिये नये खरीदे पशु ठट्ठके पशुओंसे १५ दिनके लगभग अलग रखे जायँ जिससे कि, यदि किसी पशुको छूत लग चुकी है तो इस बीच प्रकट हो जायगी। ठट्ठके किसी पशुका अचानक मरना दुर्घटना या विषके कारण भी हो सकता है। पर साधारण तौर पर

गलघोंटू या गिल्टी जैसे छुतहे रोगोंके घातक आक्रमणसे भी यह होता है। बछड़ोंका मरना लंगड़ीकी वजहसे हो सकता है।

इसलिये ऐसी हालतमें इसे छूतका रोग मानकर ही कोई कार्रवाई करना बुद्धिमानी है। ठट्ठके अन्य पशुओंकी हिफाजतके ख्यालसे लाशको ठिकाने लगानेका उचित उपाय करना चाहिये।

लाशको खूब गहरे गाड़ दो। गाड़नेकी जगह लाश ले जानेमें सावधानी रखो। मुर्देके मुँह या गुदासे निकलनेवाला कोई पानी या मल राहमें इधर उधर न गिरे। लाशके तमाम छेद बन्द कर दिये जायँ। अच्छा यह हो कि, मुँह पर टाट कसकर बाँध दिया जाय जिससे मुँहसे चूनेवाली चीज उसीमें रह जाय। गुदा साफ कर बन्द कर दी जाय। सफाईवाली दूषित चीजें वहीं जला दी जायँ।

गहरे गढ़ेमें लाश गिरा देनेके बाद चाकूसे उसके चमड़ेको जहाँ तहाँ टुकड़ा टुकड़ा कर काट दो। इससे चमार चमड़ेके लोभसे उसे नहीं उखाड़ेगा। फिर चूनेसे उसे ढक गढ़ेमें मिट्टी भर दो। जब गढ़ा भरनेका कुछ बाकी रहे तब कँटीली झाड़ियाँ डालो फिर मिट्टीसे पाट दो कि, उसे सियाल न खोदें।

गोशाला और बाँधनेकी जगहें अच्छी तरह जीवाणुरहित कर दी जायँ। जीवाणुरहित करनेकी जगह पर पुआल फैलाकर उसे जला दो।

अज्ञात कारणोंसे हुई अचानक मौतोंके लिये यह उपाय है।

मातामें छूतके सामानोंको दो दिन धूप दिखानेसे वह हानिकारक नहीं रहते। किसी छूतके रोगसे मृत्यु होने पर उस जमीन पर घासफूस फैलाकर आग लगा देनी चाहिये। वहाँके कूड़े करकट और फालतू सामान भी जला देना चाहिये।

लाश घसीट कर न ले जानी चाहिये। उसे टाँग कर ले जाओ। जो सामान जलाये या झुलसाये जाने लायक न हों जैसे कि, परिचारकोंके कपड़े उन्हें उबाल लेना ठीक रहेगा। रस्सी आदि जला देनी चाहिये।

अध्याय ३९

छूत और संक्रामक रोग

(१३८४) Rinderpest : माता। (१३८५) Haemorrhagic Septicaemia : गलघोंटू। (१३८६) Black Quarter : लंगड़ी। (१३८७) Anthrax : गिल्टी। (१३८८) Foot and Mouth Disease : खुरपका। (१३८९) Three Day Fever : डेंगू। (१३९०) Cow-pox : गोशीतला। (१३९१) Contagious Pleuro pneumonia : संक्रामक प्लूरो निमोनियाँ। (१३९२) Tuberculosis : क्षय। (१३९३) Johne's Disease : वाह। (१३९४) Actinomycosis : कठजिभिया। (१३९५) Bang's Disease : संक्रामक गर्भपात। (१३९६) Tick Fever : जर्द बुखार। (१३९७) Surra : सड़ा। (१३९८) Tetanus : धनुष्टंकार। (१३९९) Rabies : कुकुर विष। (१४००) White Scour : सफेद दस्त। (१४०१) Navel Ill : नवजातका रक्तदोष। (१४०२) Calf Diphtheria : वत्स रोहिणी। (१४०३) Cocci-diosis : खूनी दस्त।

१३८४. Rinderpest : Cattle Plague : माता।

पर्याय :— **बंगाली**—गूटी, गो-बसन्त, जगदम्बा, माता। **गुजराती**—शिली। **कन्नड़**—दोड्डरोग। **मलयालम**—बसन्तरोगम्। **पंजाबी**—जहमत। **सिंधी**—सीत। **तैलगी**—पेड्डाजाड्यामु।

लक्षण : पशुओंका यह रोग उग्र है। इसमें छूतसे टाइफाइडकी तरहका बुखार लगता है। इसका आक्रमण अचानक और शीघ्रगामी है। बुखार तेज रहता है। अति निर्बलता, आँत और मुँहकी श्लैष्मिककलाकी सूजन। इस रोगसे अधिक मृत्यु होती है। कहा जाता है कि भारतमें मृत्यु संख्या २५ से ५० सैकड़ा है, यूरोपमें यह और भी जादे ८० से १०० सैकड़ा थी।

स्थान : पच्छिमी एशियाके पठार और भारत इसका घर माने जाते हैं। अब यह मारी दुनियाँमें फैल गया है। यूरोपमें इस रोग और इसके उन्मूलनके प्रयासमें काफी खींचतान हुई है। पच्छिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिकासे यह मिट चुका है। किसी नये देशमें जब यह पहले पहल फैलता है तब एक छोरसे दूसरे तक फैल जाता है और अंतमें खतम हो जाता है। पर कुछ अनुकूल स्थानोंमें बारहमासी बन जाता है। यूरोप और अमेरिकावालोंने रोगी पशुओंको मारकर अपने यहाँ इसको निर्मूल कर दिया है। जब जब रोग शुरू हो यही करके और पृथक्करण (quarantine) से उन लोगोंने इसके उन्मूलनमें पूरी सफलता पायी है। लेकिन कभी कभी पृथक्करणसे यह बच निकलता है। सन् १९२० में भारत-से ढोरोंका एक चलान एन्टवर्प गया था। इनमेंसे कुछ तो स्थानीय कुरेंटाइनमें मर गये जो बचे सो दक्षिणी अमेरिका भेज दिये गये। ६ महीनेके भीतर जुलाईसे सन् १९२० के अन्ततक सारे बेलजियममें यह रोग फैल गया। तब चूड़ान्त उपाय किये गये। "इस रोगसे २७५ पशु मर गये, ४९० रोगी हुए, ८५ जिलोंके २२२ क्षेत्रोंमें १८५९ पशु जिनके बारेमें रोगका संदेह था मार डाले गये" —(हुटीरा-Hutyra)। बेलजियम इस रोगसे सन् १९२० में ६ महीनेमें मुक्त हुआ।

भारतमें यह बहुत पहलेसे है। इसीलिये भारतके ढोरोंको कुछ अशमें साधारण तौरपर क्षमता आ गयी है। पर भारतके पहाड़ी ढोरोंमें इस रोगकी ग्रहणशीलता बहुत है। इनकी मृत्युसख्या ८० से १०० सैंकड़ा पहुँच जाती है।

भारतीय ढोरकी वंशज प्रतिरोधशक्ति पूर्ण नही है। कुछ ऐसे पशु होते ही हैं जिनमें छूत रहती है। भारतमें यह प्रायः होता है कि महामारी फैलनेके बाद रोग किसी प्रान्त वा जिला या गांवसे कई वर्षके लिये गायब हो जाता है। उस समय यही माना जाता है कि, ग्रहणशील पशु जितने थे सब रोगसे मर गये केवल प्रतिरोधी बच गये। वर्ष पर वर्ष बीतते हैं और ग्रहणशीलोंकी संतानवृद्धि होती है। जब रोगकी दूसरी लहर आती है तब अनेक ढोर बहा ले जाती है। भारतको समय समय पर होनेवाली महामारी नुकसान पहुँचा रही है। एक वर्ष एक प्रान्तमें मारी फैलती है तो दूसरे वर्ष दूसरे प्रान्तकी बारी आती है। कुछ कुछ तो हर समय मरते ही रहते हैं या रोग पहचाने नहीं जाते। पहचाने इसलिये नहीं जाते कि; उन पशुओंमें रोगकी तीव्रता नहीं होती जिससे उन्हें कोई ताड़ सके।

किसी किसी नस्लमें मृत्यु बहुत होती है। विदेशी ढोरमें इस रोगकी ग्रहणशीलता बहुत है। इन्हें जब छूत लगती है तब १०० सैकड़ा तक मृत्यु हो जाती है। भारतीय नस्लोंमें पहाड़ी ढोरकी बढ़ी ग्रहणशीलता और मृत्युसंख्या बतायी जा चुकी है। सिंधी नस्ल भी बहुत ग्रहणशील है, मरती भी बहुत हैं। रोगकी छूत भैंस, बकरी, भेड़ जैसे अन्य रोमन्थकोंको भी लग सकती है। भैंस बहुत ग्रहणशील है। मैदानकी भेड़ शायद ही इसका शिकार होती है। जंगली जानवरोंको भी यह महामारी पकड़ सकती है। अफ्रीकाके जंगली रोमन्थक एक बार इसकी लहरमें प्रायः नष्ट ही हो गये थे। घोड़े, कुत्ते, खरगोश, पक्षी और आदमी क्षमताशील अर्थात् इस रोगसे अनाक्रम्य हैं।

छूत : यह रोग दृष्टिपर रोगाणुके कारण होता है जो इतना सूक्ष्म है कि, बर्कफोल्ड पोर्सलेन फिल्टर (Berkfeld Porcelain Filter) से भी निकल जाता है। इसके रोगाणुके बारेमें पहले लोगोंका विचार अतिरंजित था। लेकिन बीमारी फैलनेके बारेमें अनेक विचार असिद्ध हो चुके हैं। जब छूत बढ़ी रहती है तब निकट संपर्कसे रोग फैलता है। मुक्तेश्वरकी प्रयोगशालामें विषबीज पकनेके काल—पहलेसे चौथे दिन तक—छूत लगानेका प्रयास सफल नहीं हुआ। सपर्कके एक प्रयोगमें यह पाया गया कि, जिन पशुओंमें संचारणके जरिये छूत लगायी गयी, संचारणके दिनके ५ वें से १० वें दिन तक उनके संपर्कमें आनेवाले पशुको छूत लगी। छूत लगनेके १० दिन बादसे १५ वें दिन तक संपर्कका असर नही हुआ। (कूपर—Cooper, मुक्तेश्वर : इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनीमल हस्बैन्डरी, १९३२)

रोगाणु देहके बाहर बहुत कमजोर और अल्पजीवी होता है। सूखी आबहवामें वह साधारण तौर पर बाहर २४ घंटे जीता नहीं रहता। श्री बीटन (Beaton) ने नाइजेरियामें पाया कि, मातासे मरनेवाले ढोरकी खाल छायामें २४ घटे सुखानेसे छुतही नहीं रहती। जैसा कि, बरसातमें होता है, यदि हवा नम हो और तापमान कम हो तो रोगाणु छायामें ३६ घंटे जीये, पर ४८ घंटेमें मर गये। धूपकी ३४ डिगरी सेन्टिग्रेड गर्मीमें रोगाणु दो ही घंटेमें मर जाता है। खुले मैदानमें, गोचरमें यह ३६ घंटेसे अधिक नहीं जीता। गोशालामें यह २० घंटेसे अधिक दारुण नहीं रहता। मुक्तेश्वरमें ग्रहणशील पशुओंको रोगी पशुओंसे लकड़ीके पर्देसे अलग कर देने पर छूत नहीं लगी। आधा सैकड़ा कारबोलिक एसिडसे रोगाणु

नहीं मरता पर २ सैकड़ासे मर जाता है। परक्लोराइड ऑफ मरकरी (perchloride of Mercury) १ : १००० या १ प्रतिशत चूनेके घोलसे रोगाणु मर जाता है। रोगाणु विभिन्न तापमानमें छाया और पानीमें ठीक कितने समय जी सकता है इस बारेमें कई मत हैं। परिचारकों, गाड़ियों, नावों और मक्खियोंसे यह फैल सकता है, यह पुराना विचार अब रोगाणुके लक्षण देख बदल रहा है। टीले और खाईसे घेरकर किसी स्थानमें यदि रोगी पशु रखे जायँ कि, वह पार न जा सकें तो वह उस घेरेके बाहरके पशुको छूत नहीं लगा सकते। इससे मालूम होता है कि, छूत हवासे नहीं लगती।

सुखाने या सड़ानेसे रोगाणु आसानीसे नष्ट हो जाता है। प्रयोगशालामें रोगाणु जीना रखनेके लिये विशेष सावधानी रखनी होती है। तापमानका नियंत्रण करना होता है और खास तरीकेसे पालना होता है। यदि रोगी पशुका खून सूख जाय तो ४८ घंटेके बाद उसकी छूत नहीं लग सकती।

सवाल यह उठता है कि, वास्तवमें छूत होती कैसे है और कैसे फैलती है। इस बारेमें खोज हो रही है।

खोजनेसे पता चला है (दत्त और राजगोपालन : मुक्तेश्वर) कि, रोगी पशु रोगबाहक हो सकते हैं। एक साँढ़को संचारण करके छूत लगायी गयी। उस पर प्रतिक्रिया हुई और वह बच गया। संचारणके १५ दिन बाद वह ऐसी जगह हटा दिया गया जहाँ सम्पर्कसे छूत नहीं लग सकती। लगायी गयी छूतके ७४ दिन बाद उसे माता हो गयी और वह मर गया। शव-परीक्षासे पता चला कि, मौत मातासे हुई। इससे सिद्ध होता है कि, पशुओंमें जीना रोगाणु बहुत दिन तक रह सकता है और इस तरह वे चुपचाप नयी जगहोंमें छूत ले जा सकते हैं। सन् १९२० में एंटवर्प और दक्षिणी अमेरिका भेजे गये भारतीय ढोरोंसे जो बीमारी फैली थी शोधक उससे मुक्तेश्वरकी खोजका समर्थन करते हैं। जहाँ तत्काल बाहरसे आये पशुओंका पता नहीं चलता वहाँ भी अचानक यह रोग कैसे फैलता है, यह इससे जाना जा सकता है। साधारण तौरपर यह देखा जाता है कि, रोगाणु रोगी शरीरमें १५ दिनसे ज्यादा नहीं जीता। स्वच्छ दिखायी पडनेवाले स्थानोंमें रोग हो जानेके कारण इन अपवादोंसे स्पष्ट हो सकते हैं।

ऐसा समझा जाता था कि, कुछ मक्खियाँ यह रोग फैलाती हैं। मुक्तेश्वरके प्रयोगसे सिद्ध हुआ कि, यदि टबैनस ओरियन्टिस (Tabanus Orientis)

जातिकी अनेक मक्खियाँ रोगी पशुको काटनेके बाद किसी ग्रहणशील पशु पर भरपेट भोजन करें तो उस पशुको माता हो जायगी। पर बादके (मुक्तेश्वर) प्रयोग से पता चला कि, स्वाभाविक स्थिति प्रयोगशाला जैसी नही होती। और जहाँ तक इस मक्खीकी बात है इससे छूत फैलना असम्भव है।

आम रास्ते पर चलनेसे यह रोग लग सकता है। हिसारके सरकारी क्षेत्रमें एक बार ढोरोंमें यह रोग फैला। यहाँ लगभग ६००० ढोर रहते हैं। यह सब लगभग ६० वर्गमीलके घेरेमें स्वच्छन्द रहते हैं। इस स्वच्छ स्थानमें यह रोग आ कैसे सकता है? अनुमान होता है कि, इस अहातेमें होकर जो रास्ते हैं उन्हें पड़ोसी गाँवोंके लोग काममें लाते हैं। छूत इसी ओरसे लगी होगी।

इन बातोंसे सिद्ध होता है कि, वाहक पशुसे छूत आरम्भ होकर संसर्गसे फैलती है। रोगी पशुके रक्तकी सूक्ष्मतम मात्राको सूईसे छूत लगायी जा सकती है। दूषित रक्त, थूक, नासिकास्राव, मूत्र, मल, अश्रु, योनिस्राव, पसीना आदि खिलानेसे भी छूत लगती है।

लक्षण : छूत पकनेमें ३ से ८ दिन लगते हैं। छूत लगनेके तीसरेसे ८ थे दिन तक साधारण तौरपर लक्षण प्रकट होने लगते हैं। छूत लगे पशुका तापमान बढ़ने लगता है। प्रारम्भिक लक्षणोंमें यह एक है। इसके एक या दो दिन बाद अन्य लक्षण दिखायी देते हैं। तापमान १०४ से १०८ फ० तक चढ़ता है। छूत पकनेके बाद रोगके तीसरे या चौथे दिन यह जादेसे जादे होता है। तापमान बना रहता है और मरनेसे पहले उतरता है। कभी कभी कठिन अतिसारके बाद यह साधारणसे नीचे बड़ी तेजीसे उतरता है। अनुकूल अवस्थामें यह धीरे धीरे साधारण तक उतर सकता है। तापके चढ़नेसे अन्य लक्षणोंका उग्र या कठिन होना जरूरी नहीं है। रोगग्रसित स्थानमें या छूतकी जगहसे आये पशुका ताप चढ़ना यह बताता है कि उसे छूत लगी है। निरोग स्थानमें एक ही समय यदि कई पशुओंका ताप चढ़ा रहे तो भी छूत समझनी चाहिये

बुखारके दूसरे या तीसरे दिनसे अचेतनता और क्षीणता शुरू होती है। पशु सिर झुकाये खड़ा रहता है, कान भी झुके रहते हैं, पीठ कमानकी तरह टेढ़ी हो जाती है। वह अन्य पशुओंसे अलग चलग खड़ा होता है। जब अन्य पशुओंके साथ उसे हाँका जाता है तब वह पीछे पड़ जाता है और मरू मरू चलता है। किसीको कुछ घटेके लिये बेचैनी हो सकती है पर उसके बाद अचेतनता आ जाती है।

सींग और कान गरम मालूम पड़ते हैं। थूथन सूख जाता है। जोड़ोंके पीछेकी ओर चमड़े पर पसीना रहता है। बाल, खास करके रीढ़ परके, खड़े और रूखे रहते हैं।

भूख नहीं रहती पर कभी कभी प्यास बढ़ जाती है। रौंथ मन्द पड़ जाती है और पीछे बन्द हो जाती है। अनाह होता है। पेशाब पाखाना देरसे होता है। गोबर सूखा काले रंगका होता है। चोन लहरदार नहीं होता और प्रायः आवमें सना होता है। पेशाब कम, काले रंगकी होती है। कंधे, पीठ और पिछले अंगकी पेशियाँ फड़क सकती हैं। ताप चढ़ने पर साँस और नाड़ी तीव्र हो जाती हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें खाँसी भी हुआ करती है। श्लैष्मिक कलामें दूसरे दिनसे परिवर्तन दिखायी देता है। पलकें सूज जाती हैं। इसकी कलायें लाल हो जाती हैं और आँसू बहता है। पीछे यह स्राव गाढ़ा पीबसा हो जाता है। नाकसे पानी बहता है। पीछे रेंट भी बहने लगती है। नाककी श्लैष्मिककला लाल हो जाती है पीछे इस पर जमी रेंट भर जाती है। सूखे और फटे थूथन पर भूरी पपड़ी पड़ जाती है।

परीक्षाका महत्वपूर्ण स्थान मुँह है। इसकी श्लैष्मिककला पर रोगका प्रभाव होता है। लार जादे बहती है। उसमें बुलबुले और कभी कभी रक्त मिले रहते हैं। लार लसलसी नहीं होती। इसलिये उसके तार नहीं बँधते। गालकी भीतरी और तालू परकी श्लैष्मिककलामें लाल चकत्ते होते हैं। ये चकत्ते मिले जुले होते हैं, भूरे रंगके मालूम होते हैं। उनपरकी खुंट सरलतासे हटायी जा सकती है। इससे लाल, दानेदार तन्तु जिनसे जरा जरा खून बहता है निकल आते हैं। मसूढ़े भी लाल हो जाते हैं। इन पर थूककी खुंट या पपड़ी जम जाती है जिसे छीलनेसे लाल तन्तु निकल आते हैं। जीभ पर मैलकी उभड़ी हुई तह जम जाती है।

रोग बढ़ने पर आँख, नाक, और मुँहके स्राव बढ़ जाते हैं और लसीले हो जाते हैं। साँसमें गन्ध आती है। गायकी योनिसे इसी तरहका स्राव होता है और वह लाल हो जाता है। इस पर पपड़ी जमती और इसके झड़ने पर वह जगह लाल दिखायी देती है जिससे रक्त चलता है। स्त्रियोनिमें परिवर्तन जल्दी ही हो जाता है इससे परीक्षाकी सुविधा जल्दी हो सकती है। नाक, थूथन, योनि और गुदाकी श्लैष्मिक कलापरकी भूरी पपड़ी लाक्षणिक वस्तु है।

पेशाब बारबार या लगातार बूँद बूँद होती है। कभी कभी चमड़ेपर खास तरहका असर होता है। दूसरे तीसरे दिन थन और वृषणसे मसूर जैसे रक्तस्राव होते हैं। दस्त होनेके बादकी अवस्थामें जाँघोंकी भीतरी ओर मुँह पर कभी कभी गर्दन पीठ और कंधेके पीछे मटरके आकारके छाले निकल आते हैं। छालों पर पपड़ी पड़ जाती है। इसलिये भारतके कई प्रान्तोंमें इस रोगका शीतला मान वही नाम दे दिया है और माता या गोटी आदि कहते हैं।

तीन दिनके बाद जब रोग बढ़ता है तब अनाहके बदले दस्त आते हैं। दस्त पानीसा होता है जिसमें रक्त और आँवसे सनी गाठें होती हैं। आगे चलकर रक्त और आँवदार केवल पानी ही निकलता है। रंग भूरा-पीला है। गंध बुरी होती है। पेट कमजोर हो जाता है। पशु बहुत पड़ा रहता है। निगलनेमें कठिनाई होती है। पीड़ा बहुत रहती है। पशु जब तक खड़ा रह सकता है इधर से उधर अपना सिर हलाता है। इसके बाद पड़ रहता है और बड़े कष्टसे मरता है।

अंतकाल जब पास आ जाता है तब धँसी हुई निस्तेज आँखें, आँख, नाक, मुँह और भगसे निकला पीबसा स्राव, फेनसा थूक, दाँत पीसना, जबतब अपने आप पानीसा दस्त और उसकी बुरी गंध तथा सारे शरीरसे निकलनेवाली सड़ी गंध, यह इस रोगका दृश्य है। इन लक्षणोंके रहते दूसरा रोग भूलसे समझा नहीं जा सकता।

यदि आंशिक आनुवंशिक क्षमता हो तो रोग बहुत कठिन नहीं होता है। ताप चढ़ना, पेट और आँतोंकी गड़बड़ी, सर्दी और गालकी कलाका क्षत जैसे हल्के लक्षण प्रगट होते हैं। ताप धीरे धीरे उतरता और पशुकी अवस्था साधारण जैसी हो जाती है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि रोग लोगोंका कुछ भी ध्यान नहीं खींचे। कभी हल्की बीमारीमें तापमान भी नहीं चढ़ सकता है। पर ऐसे हल्के रोगमें भी छूत ता वैसी ही फैलती है।

रोग ४ से ८ दिन रहता है। कभी कभी २ से ३ सप्ताह भी लग सकता है। बड़े क्षेत्रोंमें माता बहुत तेजीसे नहीं फैलती। पहले कुछ बीमार होते हैं। इसके बाद ६, ७ दिनमें और कुछ। इसके बाद तेजी जादे से जादे होने लगती है और बहुत से पशु बीमार पड़ जाते हैं।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि, एक बारकी बीमारीमें या किसी एक बीमार पशुमें सभी लक्षण नहीं भी दिखाई दे सकते हैं। पर कुछ लक्षण तो जरूर रहेंगे।

भेददर्शी निदान (Differential Diagnosis)

कुछ रोग भूलसे माता माने जा सकते हैं :

(१) **ढोरोंको सर्दीका सांघातिक ज्वर** (Malignant catarrhal fever of cattle) : इस ज्वरसे लोगोंको प्रायः माताका भ्रम हो जाता है। कठिन ज्वरमें श्लैष्मिक कलामें परिवर्तन होता है जिसके सबब यह माता सा मालूम देता है। मातामें अचेतनता दूसरे दिनसे होती है पर इसमें शुरूसे ही। भेद इतना ही है कि, यद्यपि मुँह, नाक, और आँखकी श्लैष्मिक कला बुरी तरह पीड़ित होती है पर महास्रोतस और जननेन्द्रिय पर प्रभाव कम ही रहता है। रोग संक्रामक नहीं है। १ या २ पशु बीमार हो सकते हैं। आँखोंकी खराबी मातासे कहीं जादे कठिन होती है। सींगों पर असर होता है और वह कभी कभी गिर जाते हैं।

(२) **मुँह पकना** (Thrush of the mouth) : ज्वर नहीं होता और पेटमें भी कोई उल्लेखनीय लक्षण नहीं होते।

(३) **खुरपका :** मुँह और खुरके ऊपर छाले पड़ते हैं। माताकी तरह पेटकी गड़बड़ी नहीं होती। उसकी अपेक्षा खुरपका कहीं तेजीसे फैलता है।

(४) **गलघोंटू :** अतिशय स्राव, कंठकी सूजन, मुँहमें क्षतोंका अभाव इसकी पहचान है। रक्तकी परीक्षा करनेसे इसमें पेस्च्यूरेला (Pasteurella) मिल सकता है। इस रोगमें बहुत जल्दी मृत्यु हो जाती है।

(५) **खूनी पेचिश** (Red Dysentery) : इसमें पहले पाचनकी गड़बड़ी होती है इसके बाद बुखार। रोग, पेट और आँतमें ही होता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलापर कोई प्रभाव नहीं होता।

(६) **गिल्टी :** इस रोगसे मृत्यु तुरत हो जाती है। मुँहमें कोई लक्षण नहीं होते। जीवाणु रक्तमें मिलते हैं। शव-परीक्षामें प्लीहा बहुत बढ़ी हुई मिलती है।

(७) **विष-प्रयोग :** विष खानेपर बहुतसे मिलते जुलते लक्षण मिलते हैं। पर विषमें पेटका दर्द उल्लेखनीय है। मृत्यु साधारण तौर पर उतने विलम्बसे नहीं होती।

चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्सा शायद नहीं है। पहली अवस्थामें अधिक मात्रामें लसीका (सिरम) देनेसे प्राण बच सकता है। पर लसीकाकी इतनी मात्रा सरकारी क्षेत्रोंमें

ही हो सकती है। लसीका दामी चीज है। अधिक मात्राकी जरूरत होने पर यह या तो मिले नहीं और नही तो दाम शक्तिसे जादे होगा। लसीका शुरू शुरूमें देनेसे प्राण बच सकता है। रोग अच्छी तरह बढ़ जाय तब इसे देनेसे कोई लाभ नहीं। हिसारके सरकारी क्षेत्रमें कुछ गायोंका प्रारम्भिक अवस्थामें यह दिया गया और वे बच गयीं।

इसके फैलने पर असली काम इसका फैलना रोकना और जिन्हें छूत नहीं लगी है उन्हें बचाना है। इसलिये रोगसे बचाना ही सामूहिक चिकित्सामें संभव है।

रोग फैलने पर नीचे लिखा उपाय करना चाहिये :

(१) सुस्थ ढोर और छूत लगोंको तीन दलमें अलग कर देना।

(क) जो ग्रस्त हो चुके हैं।

(ख) जो सपर्कमें रहे और सदिग्ध हैं।

(ग) सुस्थ, अग्रस्त और असंदिग्ध।

इन सबको अलग अलग रखा जाय। (क) और (ख) खाईसे घिरे "स्थितिगति" स्थानोंमें अलग अलग रखे जायँ जिससे वहाँसे निकल वह दूसरोंके संपर्कमें नहीं आवें। एक घेरेसे काम नहीं चलता। इकहरे घेरेमें बाहरके पशुओंका संपर्क भीतरवालोंसे हो जाता है। जहां टीला या धुस्स और खाई संभव न हो वहां एक घेरेके कुछ गजोंके बाद दूसरा घेरा देना चाहिये। पर टीला या मेंड़ देना सबसे अच्छा है।

उस स्थानके सभी अछूते पशुओंको आगे बताये जानेवाले तरीकेसे संचारण करना चाहिये।

पृथक्करणके लिये भी ढोरोंको हटानेमें आम रास्तोंसे काम न लिया जाय जिससे कि दूसरोंके ढोरोंको छूत न लगे। एक बार बीमारी फैल जाने पर प्रकृति अपना काम करती है। बीमारीकी हालतमें परिचारक पशुओंको जितना आराम दे सके देनेकी कोशिश करे। वह उनका बिछावन ठीक करे, पानीका इन्तजाम रखे, करवट बदलनेमें असमर्थ होने पर उसमें मदत करे, और सुस्थ होनेवालोंको खिलावे।

छुतहे पशुओंमें केवल २५ से ५० सैकड़ाही मरते हैं। इसलिये सभीको आराम देना जरूरी है कि जिससे जितने बच सकें बचें। जाड़ोंमें रोग फैलने पर ओढ़नोंका भी प्रबन्ध रखना चाहिये। जब स्थितिगति-शिविरोंमें गाँवके पशु अलग रखे जायँ तो गाँववाले घर घरसे एक परिचारक दल संघटित करें जो इन शिविरोंमें पशुओंकी

खबरगीरीका प्रबन्ध करें। यह पृथक्करण कैसा हो इसके लिये मुक्तेश्वरका अनुभव मार्गदर्शक है।

"अभी हालमें इस संस्थामें श्री कूपरने (१९३२) दिखाया है कि, छूतवाले पशुओंके अस्तवलको केवल तख्तेसे घेर कर अलग कर दिया गया था जिसमें तीव्र मातासे हाल ही एक पशु मरा था। उसमें एक तन्दुरुस्त साँढ़ को रखनेसे उसे छूत नहीं भी लग सकती है। (अनुसंधान-काल १५ दिनका था)। मुक्तेश्वरका इन्सटीट्यूट ४० वर्षसे कायम है। तबसे वहाँ ग्रहणशील और छूतवाले पशु एक दूसरेसे कुछ सौ फीटकी दूरी पर एक टीलेके आरपार रखे जाते हैं। वहाँका अनुभव है कि, दूरी और रोग फैलनेका कोई उदाहरण नहीं है। आदमी और सवारीके आने जाने पर कोई रोक नही थी, केवल छूतवाले पशुओंपर रोक थी।"—(दत्त और राजगोपालन: मुक्तेश्वर)।

संपर्कवाले और संदिग्ध पशुओंको उसी तरह अन्य शिविरमें ले जाना चाहिये। यह जरूरी नहीं कि, यह स्थान छुतहे शिविरके बहुत दूर हो। उनपर उसी तरह देखभाल हो और जिनको छूत मालूम दे उन्हें छुतहे शिविरमें ले आया जाय। संदिग्ध शिविरके पशुओंको पहले केवल लसीका विधिसे बचाना चाहिये। इसके बाद अन्तमें साधारण तरीकेसे रोगाणु संचारण कर रक्षा करनी चाहिये। अस्तवलको और छूतके रोगोके खड़े होनेकी जगह पूरी तरह छूतरहित करो। तन्दुरुस्त पशुओंको कुछ दिनके लिये हटा ले जाओ। छूतरहित करनेकी विधिसे रोगाणु मार डालो। गाँवके सभी पशुओंका बचाव करके और शिविरमें १५ दिन बितानेके बाद शिविर तोड़े जा सकते हैं।

माताके रोगाणु लाशमें सड़ जाते हैं। हवामें सुखानेसे कच्चे चमड़ेके रोगाणु ३६ घंटोंमें नष्ट हो जाते हैं। धूपमें सुखा छूतरहित चमड़ा बचा लेना चाहिये। लाशकी फालतू चीजें साधारण तरीकेसे खपा देनी चाहिये।

रक्षात्मक संचारण

माताकी छूतसे ढोरको बचानेके लिये कई तरीके काममें आते हैं। इनमें से कई भारतमें खोज करनेवालोंने निकाले हैं। ऐसाही होना चाहिये। इस व्याधिसे अतिशय कष्ट भोगनेवालोंमें भारत भी एक है। यूरोप और अमेरिकामें रोगी पशुओंको

मार और उचित प्रतिकारी उपाय कर इस रोगका उखाड़ फेंका है। यह रोग उनके देशका नहीं है। अगर किसी तरह यह उनके देशमें पहुँच पाता है तो वहाँकी सरकारें तुरत इसे मार भगानेका उपाय करती हैं। रोगी और संदिग्ध पशु मार डाले जाते हैं। अनेक बार सरकार इस हानिको पूरा करती है।

भारतकी हालत दूसरी है। यहाँ यह बारहमासी है। रोग इस या उस जगह बना ही रहता है। बंगाल जैसे कुछ प्रान्तोंके अनेक जिलोंमें यह रोग हर साल होता है। पर भारतमें मृत्यु संख्या बहुत कम है। क्योंकि, पशुओंको आनुवंशिक रोगक्षमता या अनाक्रम्यता कुछ हद तक आ गयी है।

यहाँकी समस्या बचावकी है। यदि रोगका उन्मूलन संभव भी हो तो विशेषज्ञ सोचते हैं कि उनका तरीका अक्लमन्दीका है कि नहीं। क्योंकि, यदि देश इस रोगसे कई वर्षोंतक मुक्त रहे तो इसकी परम्परीण क्षमता मिट सकती है। इसके बाद बर्मा, हिन्द चीन या तिब्बतसे यह महामारी आवे तो बहुत हानि कर सकती है। फिर कई वर्ष तक इस रोगसे मुक्त रहनेका जितना फायदा हुआ उससे जादे हानि महामारी फैलने और उसके बराबर जारी रहने से हो सकती है। यह इसलिये नहीं कहता हूँ कि, यह सरकारकी निश्चित नीति है। पर जब कभी पूर्वी भाग जिधरसे यह रोग फैलता है, उधर प्रतिरोधक प्रबंध करनेका सवाल आता है तब ऊपर कही दलील भी सामने आती है।

भारतमें इस रोगका विचित्र महत्व है। सभी रोगोंमें कुल जितनी मौतें होती हैं उसकी आधी इससे होती हैं।

खोज करनेवाले ऐसे उपाय की खोजमें हैं जिससे यह रोग रोका जाय और वह सस्ता भी पड़े, रामवाण (अचूक) भी हो और साथही देशमें जितने कम नौकर हैं उनके जरिये जादेसे जादे काम बन सके। यह आदर्श है। खोज करनेवालोंके पूर्ववर्त्तियोंने इस या दूसरे देशोंमें जो काम किये हैं उनके आधार पर यह लोग काम कर रहे हैं।

खोजके कामोंमें पिछले १० वर्षोंमें आशातीत सफलता मिली है। १० वर्ष पहले जो अवस्था थी उससे आजकी अवस्था कहीं अच्छी है। इसके लिये खोज करनेवाले बधाईके पात्र हैं।

जिस आधार पर चेचकके टीके की खोज हुई है उसी पर इसकी भी हो रही है। यदि बीमारी अच्छी हो गयी तो चेचक की तरह इसमें भी जन्मभरके लिये क्षमता आ

जाती है। अब समस्या यह थी कि, यदि टीका जैसे उपायसे हल्की बीमारी पैदा की जा सके तो पशु सदाके लिये रोगसे बच सकता है।

छूतवाले पशुकी देहसे जीवित-रोगाणु टीकाकी सामग्री मानी गयी है। यदि किसी ग्रहणशील पशुके चमड़ेमें रोगी पशुके खूनकी सूई दी जाय तो उसे रोग पकड़ लेता है। रोगकी दारुणता एक कठिनाई थी। ऐसा हुआ कि, टीका लगाये अनेक पशुओंको कठिन रोग हो गया जिससे वह मर गये। इसके सिवा टीका लगानेसे छूत फैल गयी। क्योंकि, टीका लगे पशुके स्राव और मलके संपर्कसे छूत फैली। रक्तके रोगाणुका टीका लगानेमें ये कई त्रुटियाँ थीं। इन त्रुटियोंके होते भी इससे बचाव हुआ।

दूसरा उपाय क्षमताशील लसीकासे काम लेना था। पशुओंको माता-भैक्सीनकी हल्की मात्रा दी गयी जिससे बहुत हल्की बीमारी हुई। ऐसे पशु रोगाणुकी बड़ी मात्रा सह सके। बार बार ऐसा करने पर वह घातक मात्रासे भी कई गुणा सह सके। ऐसे पशुओंकी लसीका कई दिनों तक निष्क्रिय क्षमता पैदा करती है यह पहले बताया जा चुका है। अब माताकी प्रतिलसीका (एन्टी सिरम) केवल निष्क्रिय क्षमताके लिये ही नहीं दी जाती, भैक्सीनकी प्रतिक्रिया कम करनेके लिये भी दी जाती है। केवल लसीका या केवल भैक्सीनकी जगह इस तरह सिरम-साइमल्टेनियस विधि प्रारंभ हुई।

फिर भी सभी बातें संतोषप्रद नहीं थीं। माताका रोगाणु अन्य पशुओं जैसे बकरीके देहमें डालकर निकाला जाय तो हल्का हो जाता है। इस जानी हुई बातका फायदा उठाया गया। भारतमें इसकी परीक्षा की गयी। भारतमें साँढ़के रक्तके रोगाणुके उपयोगके पहले बकरीके रक्तका रोगाणु काममें लाया गया। साँढ़के रक्तके रोगाणुसे बकरीके रक्त-रोगाणुकी प्रतिक्रिया कहीं कम थी।

पिरोप्लाज्मोसिस (piroplasmosis) से स्वयं पीड़ित हुअे बिना जो पशु पिरोप्लाज्मके बाहक होते हैं उनके रक्तके रोगाणुमें पिरोप्लाज्म हो सकते हैं। साँढ़के पिरोप्लाज्म-मिश्रित रक्तके रोगाणुकी सूई लगायी जानेवाले पशुओंको प्रायः पिरोप्लाज्मोसिस हो जाती है जिससे मौत हो जाती है।

मुक्तेश्वरके भेटेरिनरी रिसर्च इंस्टिट्यूटके तत्कालिन डाइरेक्टर डा० अेडवर्डसने बकरी के रक्तका रोगाणु (blood virus) चालू किया था। साँढ़के रक्तके रोगाणुसे बकरी वालेमें ये लाभ हैं :

(१) बकरी पिरोप्लाज्मकी ग्रहणशील नहीं है इसलिये उसके रक्तमें यह नहीं होता ।

(२) इस रोगाणुकी दारुणता निश्चित है और साँढ़के रोगाणु की दारुणतासे कम है । इसलिये अधिक निरापद है । बकरीके अन्दरसे निकलनेपर यह हल्की हो जाती है ।

(३) प्रयोगशालासे प्राप्त बीजसे अधिक सरलता और कम खर्चीसे रोगाणु कार्यक्षेत्रमें बनाया जा सकता है । प्रयोगकर्ता इस बातकी दिलजमई कर सकता है कि, वह समर्थ रोगाणु काममें ला रहा है ।

बकरीके रोगाणुने साँढ़के रोगाणुके उपयोगका रास्ता खोल दिया । आज सारे भारतमें नीचे लिखे तीन उपाय मातासे रक्षा करनेके काममें आरहे हैं :—

(१) केवल बकरीके रक्त का रोगाणु ।

(२) बकरीके रक्तके रोगाणुके साथ लसीका (सिरम) या सिरम साइमल्टेनियस ।

(३) केवल लसीका ।

निष्क्रिय रक्षाके लिये केवल लसीका-विधि थी और है ।

पता चला है कि, छुतहे पशुका केवल रक्त ही नहीं दूसरे अवयव भी रोगाणुवाहक भैक्सीनके काममें आ सकते हैं । आज इस खोजसे फायदा उठाया जा रहा है । यह पता चला कि माताके रोगाणु प्लीहाकी ओर बहुत आकर्षित होते हैं और उसमें अधिक संख्यामें रहते हैं । प्रयोगसे पाया गया कि, ग्रहणशील पशुका संचारण करनेमें बकरीके रक्तका रोगाणु जितना काम कर सकता है उतना ही बकरीके प्लीहेका भी ।

सक्रिय रक्षाके लिये केवल बकरीके रक्तका रोगाणु सबसे पहले बंगालके श्री पी० जी० कर्रने चालू किया । वह महामारीमें केवल रक्त-रोगाणुका उपयोग करना चाहते थे । पर अपनी विधि काममें लानेके पहले वह इसके हर पहलू पर श्री वेयर, इंस्टिट्यूटके डाइरेक्टर और श्री हैंदो, लसीका-शास्त्री (serologist) से विचार करने मुक्तेश्वर गये । वहाँ उन्हें पता चला कि, श्री हैंदो बकरीके रक्तके बदले तंतुका रोगाणु चलानेवाले हैं । इसलिये उन्होंने इस नयी चीज, बकरीके तंतुके रोगाणुके उपयोगका निश्चय किया ।

जब श्री कर्र बकरीके रक्तका रोगाणु केवल काममें ला रहे थे तब उन्हें नीचे लिखी कठिनाइयाँ हुई थीं :—

(१) यह विधि साधारण भेटेरिनरी असिस्टेन्टकी, योग्यतासे परेकी बात है, क्योंकि बकरीको सूई लगाकर उसका रक्त उस समय लेना होता है जब छूत पूरी उठानमें हो ।

(२) छूतकी जगह पहुँचने पर ३-४ दिन भी लगाना जरूरी था । क्योंकि, बकरीको सुई लगा कर तब तक ठहरना होता था जब तक रोग खूबसे खूब न बढ़ जाय ।

इसलिये जब कर्रने बकरीके तंतुकी विधि सुनी तो केवल रक्तके रोगाणुके बदले केवल तंतुकी सुईका प्रयोग करने लगे । बकरीके तंतुकी भैक्सीनके फायदे ये हैं :

(१) यह प्रधान कार्यालयमें सरलतासे बनाया जा सकता है और सूई की शीशियोंमें भरकर बरफमें रखा जा सकता है । किन्तु रक्तके रोगाणुको तुरत बनाकर काममें लाना होता है ।

(२) ये सूई-शीशियाँ (एम्पुल) डाकसे भेजी जा सकती हैं ।

(३) भैक्सीन पहुँचनेके साथ काममें आती है ।

(४) एक बकरीसे २,००० से २,५०० मात्रा भैक्सीन निकलती है । इसकी तुलनामें रक्तसे केवल ५०० मात्रा ।

(५) बरफमें ४५ डिग्री फा० में इसकी शक्ति ३० दिन तक बनी रहती है । प्रयोगशालाके बाहर जाड़ोंके साधारण तापमानमें यह सात दिन तक काम कर सकती है ।

मातासे रक्षा करनेमें केवल तंतु-भैक्सीनका उपयोग कर श्री कर्र बहुत सफल हुए । आगे चलकर उन्हें पता चला कि, डाकसे सूई-शीशी भेजनेकी अपेक्षा पसिंजर गाड़ीसे बर्फमें रख कर भेजना चाहिये । क्योंकि अधिक गर्मीसे रोगाणु मर जाते हैं ।

विधि : बकरीको रोगाणुके ५ सी० सी० अवद्रवका संचारण किया जाता है । तीन चार दिनमें बकरीको अधिकतम ताप १०३ से १०४ डिग्री फा० चढ़ता है । उसे मार दिया जाता है । उसका पेट मूँड़ कर उसे छूतरहित किया जाता है । इसके बाद पेट चीर कर प्लीहा निकाली जाती है । प्लीहाके प्रायः १ ग्राम (१५ ग्रेन) के टुकड़े किये जाते हैं । इन्हें सूई-शीशीमें भर मुँह जोड़ दिया जाता है । इन्हें अगले पखवारेके भीतर काममें ले आनेके लिये प्रधान कार्यालयकी प्रयोगशालामें ४५ डिग्री फा० टेम्परेचर पर बर्फमें रखते हैं ।

माँग होने पर एक ग्रामवाली शीशियाँ भेजी जाती हैं। जरूरतकी जगह पर शीशी तोड़ कर एक ग्राम तंतु निकाल काँचके खरलमें ०.५ सैकड़ा नमकके घोलके साथ रगड़ कर अवद्रव बनाया जाता है। इस एक ग्राम ततुमें १०० सी० सी० नमकका घोल मिलाया जाता है। १०० सी० सो० घोल थोड़ा थोड़ा खरलमें डाला जाता है। इसे निचोड़ कर तामचीनी (इनैमल) के ढक्कनदार मगमें छान लिया जाता है। १०० सो० सी० अवद्रव कुलका कुल मगमें कर लिया जाता है। इस मगको ठंडी जगहमें छायामें रखा जाता है।

इस अवद्रवकी एक सी० सी० एक पशुको दी जाती है। भैंस गायसे अधिक चेतनाशील होती है। इसलिये उसे आधा सी० सी० ही दी जाती हैं। अवद्रव उसी दिन उपयोगमें लाना होता है। जो बच रहे उसे फेक देना चाहिये। दूसरे दिन काममें नही लाया जा सकता।

सन् १९३५ में बंगालमें यह प्रयोग १ लाख पशुओं पर किया गया। टीकाके कारण ०.५ सैकड़ा मृत्यु हुई। इस तरह आयी क्षमता ठोस थी। क्योंकि, १ सी० सो० बकरी-तंतुका टीका पायेहुए पशुओंको कुछ दिन बाद तंतु या रक्तके रोगाणुकी सूई अधिक मात्रामें देने पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई।

तबसे बंगालमें केवल बकरीके तंतुका रोगाणु (G.T.V.) ही मातासे बचावके लिये दिया जाता हैं। कठिन प्रतिक्रिया होने पर या संदिग्धोंकी निष्क्रिय रक्षाके लिये या रोगकी प्रारभिक अवस्थामें ही केवल रस (लसीका) दिया जाता है।

अब भारतमें बकरीके तंतुकी भैक्सीनका उपयोग बहुत हो रहा है। कुछ एसे प्रांत हैं जैसे मदरास जहाँ जी० टी० भी० चालू नहीं की गयी है। किन्तु वहाँ बकरीके रक्तका रोगाणु, सिरम साइमल्टेनियसके साथ काममें लाया जाता है।

केन्द्रीय सस्था, इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चकी नीति यह रही है कि, हर प्रांत अपने पसन्दके रोगाणु और सिरम तथा भैक्सीन से काम लें। इसलिये भारतमें अभी पाँचों विधियाँ काममें आ रही हैं :

(१) निष्क्रिय रक्षाके लिये "केवल लसीका"।
(२) बकरीके रक्तके रोगाणुके साथ 'सिरम साइमल्टेनियस'
(३) केवल बकरीके रक्तका रोगाणु।
(४) केवल बकरीके तंतुकी भैक्सीन (जी० टी० भी०)।
(५) 'सिरम साइमल्टेनियस'के साथ जी० टी० भी०।

यह प्रान्तीय भेटेरिनरी विभागोंके ऊपर छोड़ दिया गया कि, वह अपने प्रान्तके लिये सबसे उपयुक्त चुनाव कर लें।

सचारणसे हुई ०·५ सैंकड़ेकी मौतसे बंगाल संतुष्ट मालूम होता है। किन्तु लाखोंकी गणनामें ०·५ सैकड़ा विचारणीय हो जाता है। जैसे कि, सन् १९४०-४१ में बंगालमें जी० टी० भी० संचारण कुल ४,९२,००० पशुओंमें किया गया। संचारित पशुओंमें २,६३० मर गये अर्थात् लगभग ०·६ सैकड़ा या प्रति हजार ६ मर गये।

मद्रासमें 'सिरम साइमल्टेनियस'के साथ बकरीके रक्तके रोगाणुसे ४,१९,००० पशु संचारित किये गये। इनमेंसे कुल १३१ मरे। यह अन्तर चौंकानेवाला है। यदि मद्रासके ४,१९,००० पशुओंको बंगालकी तरह केवल जी० टी० भी० दी जाती तो मृत्युसंख्या वास्तविक १३१ के बदले २,२४० हुई होती। अर्थात् २,१०९ पशु व्यर्थको मर गये होते। मद्रासमें मातामे कुल मृत्युसंख्या १६,००० थी और केवल ४ लाख पशुओंको भैक्सीन देकर २,००० को मरने देना बुरा होगा।

मद्रास और बंगालकी गाय भैसोंकी कुल संख्या, माताकी सूईकी संख्या और सूईके बाद हुई मृत्यु-संख्या नीचे लिखे अनुसार हैं।

(१९४० की गणना)

	पशु संख्या	कुल सचारण	सचारितोंकी मृत्यु संख्या
मद्रास—१९४०-४१	१,८०,२९,५५९	४,३४,७९४	१६६
बंगाल—१९४०-४१	२,२७,५६,२८१	४,९२,७१२	२,६३०

मद्रासमें ग्रहणशील पशुओंका संचारित करनेका अनुपात कहीं ज्यादे है। फिर भी संचारितोंमें केवल १६६ मरे जब कि, बङ्गालमें २,६३० मरे। यह स्वाभाविक है कि, मद्रासके किसान बङ्गालकी अपेक्षा टीकेका स्वागत अधिक करेंगे। रक्षार्थी पशुओंके मरनेका नुकसान किसान ही सहता है। ऐसी हालतमें प्रति २०० रक्षार्थीमें १ का मरना बहुत अधिक है। मद्रासकी संख्या नगण्य है। रक्षाके लिये आये ३,००० में वहाँ एक ही पशु मरता है। रक्तके रोगाणुके साथ सिरम साइमल्टेनियस देनेसे इतना अच्छा फल जब होता है कि, ३,००० में एक मरता है तब मद्रास यदि सिर्फ जी० टी० भी० देना ना पसन्द करे तो यह स्वाभाविक ही है।

यह दुःखकी बात है कि, मदरासने जी० टी० भी० और सिरम साइमल्टेनियस विधिका प्रयोग नहीं किया। मदरासने केवल जी० टी० भी० का कुछ संचारण किया और फल भी वही बंगालसा निकला। ०·५ सैकड़ा मौतें हुईं। इससे मदरासको अपने किसानोंका विश्वास खो बैठनेका डर हुआ। यह समझा जाता है कि, यदि बंगालने जी० टी० भी०के साथ सिरम साइमल्टेनियस विधि अपनायी होती तो मदरासकी तरह अच्छा फल मिलता। लसीका का दाम राहका रोड़ा बनता है। मुक्तेश्वरसे लसीका लेनेके बदले मदरासकी तरह बंगाल भी अपने लिये लसीका बनानेका प्रबंध कर सकता था। इससे दाम सस्ता हो जाता और वह सिरम साइमल्टेनियसका उपयोग करता। केवल भैक्सीनका टीका लगानेसे २,००० ढोर मरते हैं उससे जो आर्थिक हानि होती है उसका मुकाबला लसीकाके खर्चसे करना चाहिये।

मातासे बचनेके लिये जो विधियाँ काममें आती हैं उन्हें समझनेके लिये विस्तारसे लिखा गया है। किसी व्यक्तिके लिये यह संभव नहीं कि, वह अपने पसन्दकी विधि काममें लावे। माता या अन्य छुतही बिमारियोंसे अपने पशुओंको बचाना चाहनेवालोंको प्रान्तीय भेटेरिनरी विभागके पास जाना चाहिये। उस समय विभाग जो विधि पसन्द करे वही काममें आवेगी। बंगालमें सिरम साइमल्टेनियसका टीका दाम देनेसे मिल सकता है। यह खर्च लगभग प्रति पशु एक रुपया होता है।

भैंसें माताके लिये अधिक ग्रहणशील और कम प्रतिरोधी हैं।

टीकाकी विधियोंमें महत्वका विषय क्षमताका टिकाऊपन है। मदरासने छागरक्त-रोगाणु की जाँच साढ़े पाँच वर्ष कर यह पाया कि, रक्षा ठोस होती है। केवल जी० टी० भी० के प्रयोगके बारेमें ऐसा निश्चित आँकड़ा नहीं मिलता। मदरासमें छागरक्त-रोगाणुके प्रयोगमें ७५ सैकड़ा पशुओं पर प्रतिक्रिया हुई। पर जी० टी० भी० में केवल ५० सैकड़ा। इस नतीजेके कारण मदरासको जी० टी० भी० की क्षमताके टिकाऊपनके बारेमें शंका है। बंगालको निश्चित राय बतानी चाहिये। बंगालके भेटेरिनरी विभागकी सन् १९४०-४१ की रिपोर्ट में माता के टीकेके बारेमें नीचे लिखा अस्पष्ट जिक्र है।

....“साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि प्रान्तोंके पश्छिमी भागमें टीकेका फल बहुत संतोषप्रद रहा। पर पूर्वी बंगालके गोवंशको दी गयी क्षमता उतनी

टिकाऊ और मजबूत नहीं हुई। यह समस्या सचमुच बहुत आकर्षक है। विधिवत् प्रयोग और खोजकी इसे जरूरत है।"—(पृ० ११)

इस रोगसे बचनेके बारेमें निश्चित मत हमने अभी तक नहीं सुना है। खोज करनेवाले खोज कर रहे हैं। अधिक प्रगति होने की उम्मीद है।

माताके लिये प्रति-लसीका बनानेमें सूखी लसीका बनानेका प्रयोग चल रहा है। श्री हैदो, सेन और रायने (मुक्तेश्वर) इसके सक्रिय पदार्थोंका क्षेपण (precipitation) कर सघन लसीका तैयार की है। ०·५ सैकड़ा कारबोलिक एसिड जिसमें हो ऐसी माताकी लसीका यदि अँधेरेमें रखी जाय तो वह चार वर्षों तक सक्रिय रहती है। रक्त-रोगाणु साधारण तापमानमें कुछ घंटे टिकता है और जी० टी० भी० को बनानेके बाद सिर्फ पखवारे तक ४५ डिग्री फा० में रखनेके लिये कहा जाता है।

१३८५. Hæmorrhagic Septicæmia : गलघोंटू।

पर्याय :—बफेलो डिजीज, पेस्टियोरेलोसिस इन कैटल एन्ड बफेलो। **बंगला**—गलाफूला, कंदी। **गुजराती**—गलघोंटू। **कन्नड़**—गन्टलब्यानी। **मलयालम**—थोंडाभीखम। **मराठी**—गलसूजा। **उड़िया**—तंतिकाता, सोहाना। **पंजाबी**—गलघोंटू। **सिन्धी**—घेटर, घूटको। **तामिल**—थोंडियादप्पन। **तैलंगी**—गोंटुका वापु।

यह प्रायः सब देशोंमें होता है। पर समशीतोष्ण अञ्चलमें इसका महत्व कम है। उष्णकटिबंध (tropics), मिश्र, हिन्दचीन, मालय प्रायद्वीप, फिलीपाइन द्वीप, यवद्वीप (Java) आदिमें यह उग्र रूपमें होता है।

इसको पैदा करनेवाला जीवाणु पास्च्यू रेला है। भैंस और गायके लिये दो भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। गायवाली जाति **पास्च्यू रेला बोभिसेप्टिका** और भैंसवाली **पास्च्यू रेला बुबालीसेप्टिका** कही जाती है। ये दोनों जीवाणु सभी जरूरी बातोंमें समान हैं। भारतमें गाय और भैंस दोनोंकी यह बीमारी एक ही मानी जाती है।

भारतमें इसका महत्व बहुत है। क्योंकि माताके बाद सबसे जादे मौत इसीसे होती है। छुतहे रोगोंकी कुल मृत्युसंख्याकी चौथाई और माताकी आधी इसकी है।

यह मुख्यरूपसे भैंसोंको होती है। ढोरको कम। फिरभी ढोरोंकी मृत्युसंख्या नगण्य नहीं है। बंगालमें भैंसें नाममात्रको हैं। वहाँ भी छुतहे रोगोंसे ३१,००० मौतें गाय भैंसोंकी हुईं। इसमें मातासे २३ हजार और गलघोंटूसे २ हजारसे जादे गाय भैंसे मरीं। बंगालमें भैंस नाममात्रकी है इसलिये वहाँ गलघोंटूकी मृत्यु का अंक लगभग ६ सैकड़ा होता है। मदरासकी तुलना करने पर भैंसकी अधिक ग्रहणशीलता इस आँकड़ेसे प्रकट होती है।

गलघोंटूसे मृत्यु

मदरास (१९४१-'४२)

		१९४० की गणना लाखमें पशु संख्या	१९४१-'४२ गलघोंटूसे मृत्यु
ढोर	...	१५९	२,८०७
भैंस	...	६१	२,४४१

लगभग १ करोड़ ६० लाख ढोरमें २,८०० मृत्यु हुई, पर केवल ६० लाख भैंसोंमें ही २,४०० मृत्यु गलघोंटूसे हुई। इससे पता चलता है कि, भैंसोंकी मृत्युसंख्या करीब २$\frac{1}{2}$ गुना जादे है। पंजाबमें ९२ लाख ढोर हैं और ४९ लाख भैंस। वहाँ गलघोंटूसे भैंसोंकी मृत्युसंख्या और जादे होगी।

यद्यपि बूढ़े पशु क्षमताशील नहीं हैं फिरभी यह रोग जवानोंको अधिक होता है। गाय-भैंस और भेड़-बकरी दोनों श्रेणीके पशु इस रोगके ग्रहणशील हैं। कुत्ते, चिड़ियाँ और मनुष्य सक्षम हैं।

यह रोग नम जमीनसे होनेवाला माना जाता था। यह देखा गया कि, नीचेकी डुब्बा जमीनमें यह बहुत होता है। और सिंचाईवाले स्थानोंमें यह बारहमासी मालूम होता है। पंजाबमें नदी, और नहरवाले इलाकोंमें इससे हरसाल गाय-भैंसोंकी बहुत हानि होती है। बीमारी बरसात और उसके बाद फैलती है। छूतवाले जिलोंमें यदि जाड़ेमें पानी पड़ जाय तो इसका होना प्रायः निश्चित ही है।

प्रयोगशालाके प्रयोगोंसे यह मालूम होता है कि, पास्च्यूरेलाकी प्रतिरोधशक्ति पशु-शरीरके बाहर बहुत मन्द है। यह साधारण छूतनाशकोंसे भी सरलतासे नष्ट हो जाता है। पशुशरीरमें जाते ही यह बहुत वेगसे बढ़ता है और दारुण विष पैदा करता है।

छूत : छूत कैसे लगती है यह अभीतक ठीक नहीं मालूम हुआ है। और इसी कारण इसका निरोध भी कठिन हो रहा है। फिरभी यह सिद्ध हो चुका है कि, यह रोग जीवाणुकी कृष्टि खानेसे नहीं होता। पर छूत लगे पशुओंकी चीजें खानेसे छूत लग जाती है। उग्र गलघोंट्रके रोगी बछड़ेका मल १ ग्राम खानेसे ५४ घन्टेके बाद एक साँढ़ निमोनियाँसे मर गया। —(बोलिंजर—हुटिरासे)

गैगर और डेभिस (भेटेरिनरी पैथोलजी एन्ड बैक्टीरियोलोजी, १९४१) कहते हैं :

…"छूत पेटमें जानेसे लगती है। छूत पकनेका काल कई घंटोका होता है। केवल संसर्ग या संगसे रोग नही लगता है।"…

"प्रयोगके लिये गाय-भैंसोंको रूखो घास और जीवाणुकी कृष्टि खिलानेसे जितनोंको खिलायी गयी उनमेंसे कुछको ही छूत लगी। बाकी तो बहुत जादे सक्षम हो गये कि, उन्हें जाँचके लिये घातक मात्रामें चमड़ेमें सूई लगायी जा सकी और उससे कोई हानि नहीं हुई। चमड़ या शिरामें जीवाणुकी कृष्टि की सूई बहुत कम मात्रामें लगानेपर भी ढोरको निश्चितरूपमें घातक छूत लगती है।"—(पृ० १९४)

संचारणसे रोग तुरत पैदा होता है—यह छूतका सही तरीका माना जाता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलाके क्षतसे छूत लग सकती है। भोजन सामग्री चरने, और खानेके समय जीवाणुओंका संपर्क इस क्षतसे हो सकता है। कीटोंके दशनसे छूत सीधे लग सकती है। बरसातमें काटनेवाली मक्खियाँ बहुत हो जाती हैं। इस मौसममें इस रोगकी वृद्धिसे इस अनुमानकी पुष्टि होती है कि, यह कीटदंशनसे होता है। छूत कैसे लगती है इसके बारेमें अधिक जानकारी अभी नही हो सकी है। रोग अपने आप फैलता है जिससे बहुत मौतें होती हैं फिर उसी तरह अपने आप गायब हो जाता है।

लक्षण : गलघोंट्रसे बहुत जल्दी मृत्यु होती है। इस मामलेमें यह गिल्टीसे मिलता है। इसके लक्षण अचानक दिखायी देते हैं इसके बाद ही मृत्यु हो जाती

है। कभी कभी पशु मरा पाया जाता है। किसी लक्षणसे रोगकी ओर लोगोंका ध्यान जाय उसके पहले मौत ही इसकी सूचना दे देती है। जो पशु कुछ देर जीते हैं उनमें नीचे लिखे लक्षण दिखायी देते हैं :—

ताप बहुत चढ़ता है—१०७ से ११० डिग्री फा० तक। खिन्नता बहुत रहती है। झालर, कंठ और निचले जबड़ेके बीच कष्टदायक, कड़ी और गरम सूजन होती है। सूजन बड़ी होती है। दबानेसे दबती नहीं। सूजन गाल तक बढ़ सकती है और बढ़ते बढ़ते छाती और कंधे तक भी। मुँहसे लार चलती है। पर माताकी तरह पतली और फेनिल लार नहीं होती। यह घनी लसीली और तारदार होती है। नाकसे गाढ़ा रेंट निकलता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलाका रंग रक्तस्रावसा गहरा लाल होता है। इस रोगके यह खास लक्षण हैं। मुँह खोलने पर जीभ साधारण मालूम पड़ सकती है। पर मुँहमें नीचेकी तरफ दोनों ओर सूजन और लाली रहती है। कभी कभी जीभ सूज जाती और मुँहसे बाहर निकल आती है।

नाड़ी तेज और साँसकी कठिनाई इतनी बढ़ जाती है कि, दम घुटने लगता है। साँस लेनेकी कोशिशमें नथुने और छाती फूलती हैं। आँतोंकी अन्य गड़बड़ीके साथ पेचिश, पतले दस्त और पेटका दर्द भी होता है। दस्तमें मटमैला लालरंगका पानी और आँव गिरती है।

पशु सिर घुमाकर अपनी बगलें और पेट देखता है। यह पेटके दर्दका चिह्न है। वह मुश्किलसे चल पाता है और सुस्त होकर पड़ रहता है। गर्भिणीका गर्भ गिर जाता है। पशु दर्दसे कराहता और दाँत पीसता है अथवा रंभाता है। दम घुटने या आक्षेपसे मौत हो जाती है। लक्षण प्रगट होनेके ६ से २४ घंटेके भीतर मौत होती है। रोगके एक दूसरे प्रकारमें पेचिश और दस्तके साथ कंठकी सूजन नहीं भी हो सकती है। रोग छातीमें भी हो सकता है। तब बीमारी लंबी होती है और मौत निमोनियाँसे होती है।

भेददर्शी निदान

(१) **गिल्टी :** अचानक मृत्यु और ताप चढ़नेमें यह गिल्टीके समान है। गिल्टीमें भी पेटका दर्द और अंगोंकी सूजन होती है। पर गलघोंटूकी तरह इसकी सूजनमें दर्द नहीं होता और न वह गरम होती है। कभी कभी बाहरी लक्षणोंसे

इसमें और गलघोंटूमें भेद करना कठिन हो जाता है। दोनोंके भिन्न भिन्न जीवाणुओंका पता अणुवीक्षण यंत्रसे ही लग सकता है। शव-परीक्षामें रक्तके काले रंग, बहुत बड़ी प्लीहा जो काला और भुरभुरा हो जाता है, के कारण यह आसानीसे पहचान लिया जाता है। गलघोंटूकी शव-परीक्षामें ये दोनों चिह्न नहीं होते।

(२) **लंगड़ी :** इससे गलघोंटूका भेद समझना आसान है क्योंकि, इसमें गला सूजता नहीं। इसकी सूजन पहले कष्टकारी और गरम होती है बादको ठंढी और कष्टरहित। यद्यपि इसके सभी रोगियोंको गैसके बुलबुलेकी आवाज नहीं भी हो सकती है पर कभी कभी सूजनमें गैसके बुलबुलोंकी आवाज महसूस की जा सकती है। अधिकतर यह ३ से ६ महीनेके बछड़ोंकी बीमारी है। गलघोंटू जादा भैंसको होता है।

(३) **माता :** गलघोंटूकी आरम्भिक बातोंसे दोनोंका फर्क जाना जा सकता है। मातामें अचानक मौत नहीं होती। कंठ आदिकी सूजन भी इसमें बिलकुल नहीं होती।

रोगका नियंत्रण : रोग जिस तरह अचानक आ पहुँचता है उसी तरह चला भी जाता है। किसी जगह दस दिनमें तहलका मचा वह खतम हो जाता है। जिन्हें रोग पकड़ता है उनमें ८० से १०० सैकड़ा मर जाते हैं। जैसा बताया जा चुका है उसी ढंग पर पृथक्करण होना चाहिये। पशुओंके रहनेकी जगह बदल देनी चाहिये। रोगीके संपर्कमें जो रहें उन्हें अन्योंसे अलग रहना चाहिये। अगर पृथक् किये दलोंमें रोग दिखायी दे तो उनकी फिर छटाई कर अलग जगह हटा देना चाहिये। जगह बदलना बड़े महत्वकी बात है। क्योंकि दुष्ट जीवाणुओंको शरण देनेका दोष जमीनके मत्थे मढ़ा जाता है। अस्तवल, गच, और दीवालें, छूतके केन्द्र हो सकती हैं। इसलिये पुराना अस्तवल एक महीनेके लिये खाली कर देना चाहिये।

क्षमता पैदा करना : लसीका (सिरम) देकर बचाव किया जाता है। निवारणके लिये सिरम साइमल्टेनियस का भी व्यवहार होता है। अगर कहीं किसी खास मौसममें रोग फैलता हो तो वहाँ मौसमके प्रारम्भके पहले ही सिरम साइमल्टेनियसका संचारण करना चाहिये।

रोग थोड़े दिन ही रहता है। इसलिये उसे रोकनेके लिये केवल लसीका (सिरमके) व्यवहारसे भी बहुत लाभ होता है। माताकी तरह निरोधक उपचारोंसे

इस रोगसे होनेवाली मौतें वैसी कुछ कम नहीं होतीं। पशुको एक बार रोग पकड़ ले उसके बाद दवा व्यर्थ है। लसीका रोगहारी होती है।

यह कहा जा चुका है कि हिन्दचीनमें बैक्टीरियोफेजके चलनसे यह रोग मिट सा गया है। पर मालूम होना है इस दिशामें भारतमें काम नहीं किया गया है।

१३८६. Black Quarter : लंगड़ी।

पर्याय :—ब्लैक क्वार्टर, ब्लैक लेग। **हिन्दी**—एकत्रकिया गोली, सुजवा, गाढ़ी, जहरबाद। **बंगला**—बदला, सन्निपात। **आसाम**—गठिआ। **गुजराती**—गठियो-ताव। **कन्नड़**—चेप्पारोग, चप्पीवावु। **मलयालम**—करिकाल। **मराठी**—घाट्टा, फर्या। **उड़िया**—चाटना। **पंजाबी**—गोली। **सिन्धी**—तूकली, कनाढ़ो, धाधरी। **तामिल**—चप्पाई नोई। **तैलंगो**—जेब्बावापु।

यह रोग तीव्र, ज्वरयुक्त, बारहमासी और छूतका है। यह ढोर और भेड़ोंको होता है। देहके विभिन्न भागोंमें चरचराहटदार सूजन इसकी पहचान है। यह एक पशुसे दूसरेको नहीं होता। छूत **क्लोस्ट्रीडियम चौभी** (Clostridium Chauvaei) नामक जीवाणुके कारण होती है। ढोरके भीतर यह भोजनके जरिये और भेड़में साधारणतः क्षतोंसे पहुँचती है।

स्थान : यह रोग सभी देशोंमें होता है। पहाड़ी प्रदेशोंमें भी घाटियोंके बीच दलदलवाली जमीनोंमें या नीचे सतहके नम मैदानोंमें होता है। गोशालाओंमें खानेवाले पशुओंमें, गोचरोंमें चरनेवाले पशुओंकी अपेक्षा यह कम होता है। भारतमें दलदलवाली जमीनोंमें यह जादे होता है। गोशालाओंमें छूत चाहे जब लग सकती है पर गोचरोंकी छूत गर्मियोंमें लगती है। छूतका मौसम जिलेके अनुसार भी अलग अलग होता है। आदमियोंकी गैस-गैंग्रीनकी तरह यह रोग होता है। इसके जीवाणु भी उसी वर्गके हैं जिससे गैंग्रीन होती है। आजकल यह माना जाता है कि, भारतमें लगड़ी कई तरहके सजातीय जीवाणुओंके कारण होती है। केवल क्लोस्ट्रीडियम चौभीके कारण नहीं। क्लोस्ट्रीडियम चौभीके साथ गैस-गैंग्रीनका जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम वेल्ची (Cl. Welchii) प्रायः पाया जाता है। उसी तरह घातक शोथ (malignant oedema) के जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम

इडिमोटिस मैलिगनी (Cl. Œdemotis maligni) भी पाये जाते हैं। ये मिले जुले जीवाणु ऐसी अवस्था पैदा करते हैं कि, जो बिलकुल लंगड़ीसे मिलती है। वह इतनी समान होती है कि, फर्क जानना संभव नहीं।—(शिग्लो)।

ग्रहणशीलता : ६ महीने से २ वर्ष तककी उमर सबसे जादे ग्रहणशील है। यह रोग जवान और बूढोंको भी हो सकता है। जमीनकी छूतमे फैलनेवाले रोगोंका यह खास नमूना है। धूल आदिमें पडे जीवाणुबीज (स्पोरस) आहार या पानीके साथ पेटमें पहुँचें तो छूत लगती है या क्षतकी राह भी इनकी छूत लग सकती है। ढोरकी अपेक्षा भेड़में क्षतकी छूत जादे होती है।

यद्यपि यह माना जाता है कि, छूत खाने पीने से लगती है पर यह देखा गया है कि प्रयोगके लिये कोई जीवाणु खिलाकर छूत नहीं लगा सकता। अभी तक छूत कैसे लगती है यह ठीक नहीं मालूम हो सका है। मनुष्यको इस रोगकी क्षमता या अनाक्रम्यता है।

यह जीवाणु अवायुजीवी है। इसके बीँज बहुत प्रतिरोधी होते हैं। जो बहुत प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी बहुत दिनों तक छूत लगानेकी सामर्थ्य रखते हैं। गिल्टीके बीजके बारेमें पहले कहा जा चुका है। उसी तरह छूत लगी चीजों और लाशोंसे इसके जीवाणु मट्टीमें घुस सकते हैं। इससे रोग बहुत दिनों तक किसी स्थान या गोचरमें टिक जाता है। मृत्युसंख्याकी सूचीमें माता और गलघोंटूके बाद लंगड़ीका नम्बर तीसरा है। अंगरेजी भारतमें सन् १९३७-'३८ में इनसे कुल १९,४७४ मृत्युएँ हुईं। यह छुतही बीमारीके कुल मौतोंका ८·२ सैकड़ा है।

लक्षण : साधारण तौर पर पहला लक्षण जो देखनेमें आता है वह है लगड़ापन। अगले एक पैरमें या पिछले एक पैरमें हो सकता है। पशु सुस्त हो जाता है और सबसे अलग खड़ा होता और खाता नहीं है। साँसमें कष्ट होता है और ताप चढ़ जाता है। अगले या पिछले पैरके ऊपरी हिस्सेमें सूजन होती है। यह सबसे उल्लेखनीय लक्षणोंमें एक है। छातीके पास, कंधे, गर्दन तथा पैर पर और कभी कभी जबड़ेकी पेशी, जीभकी पेशी, कंठ और गलेमें भी हो सकता है। बहुत बार खास पेशियोंमें ही सूजन होती है। सूजनका आकार तेजीसे बढ़ता है। यह पहले गरम और पीड़ायुक्त होती है। पीछे ठंढी और पीड़ारहित। सूजन दबानेसे पिलपिली (emphysematous) मालूम होती है और उसमें चरचराहट होती है। चरचराहटका स्पर्शानुभव इसका पक्का लक्षण है। कुछ दबाकर हाथ फेरनेसे

ऐसा मालूम होगा कि, सरसोंपर हाथ फेरा जा रहा है। पेशियोंकी दरारोंमें अटकी गैसके सरकनेसे ऐसा मालूम होता है। कभी कभी पेशियोंमें बहुत नीचे गैस रहनेसे उसकी चरचराहट नहीं मालूम होती। सूजन चीरने पर उसमें गहरा लाल और खूनसा स्राव दिखायी देगा। सूजनके स्रावमें सड़े घीकी तरह दुर्गन्ध होती है। सूजनकी सतहसे स्राव निकलता और गन्ध भी। खींचनेसे सूजी जगहका बाल प्रायः उखड़ जाता है। उग्र रोगमें कभी कदाच सूजन नहीं भी हो सकती है। प्रायः लसीका-ग्रन्थियोंमें सूजन रहती है और उनमेंसे स्राव होता है। छूत पकनेका समय (incubation) १ से ३ दिन है। रोगका यह प्रच्छन्न काल ५ दिनसे जादे कभी ही होता है।

रोग बढ़ने पर पशु खड़ा नहीं रह सकता है। वह बैठ जाता है। कभी कभी पेट फूलता है। साँस लेनेमें कष्ट बहुत होता है। साँस लेनेकी कोशिशमें तड़प तड़प कर बडे कष्टसे पशु मर जाता है। इसकी अवधि १२ घटे से २ दिन है। पर कभी कभी ४ दिन भी खेप लेता है।

इस रोगसे मरने पर कुछ देरके बाद चीरनेसे रक्त हृदयमें थक्कासा मिलता है। लाश जल्दी सड़ती नहीं। सूजी पेशियोंसे बुरी गंध निकलती है।

बचाव : कुछ ऐसी जगहें और मैदान हो सकते हैं जो छुतहे मशहूर हों। पर उसीके आसपास दूसरी जगहें अछूती हो सकती हैं। ग्रहणशील उमरके पशु छुतही जगहोंमें न जायँ इसकी सावधानी रखनी चाहिये। जोतने और चूना डालनेसे ऐसी जगहें सुधर सकती हैं। जहाँ जहाँ यह किया जा सके करना चाहिये।

भैक्सीन और लसीकाकी सूईसे बचाव किया जाता है। इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च इस बारेमें गंभीरतासे सोच रही है। मुक्तेश्वरकी प्रयोगशालामें जो नये प्रयोग हुए हैं उनसे फायदा उठाया जा रहा है। पहले बीजकी कृष्टि (कलचर) के टीकेसे बचाव किया जाता था। छूत लगे बछड़ेकी सूखी पेशीके चूर्णसे या सुखाकर गरम की हुई पेशीसे यह बनता था। यह असरदार होता था। पर दारुणता अनिश्चित थी। किसी किसी पर कठिन प्रतिक्रिया होती थी जिससे मृत्यु हो जाती थी। और किसी किसी को कुछ भी क्षमता नहीं होती। इसका कारण शायद यह हो कि, बेहद गर्मीसे बीज मर जाते हों। एक मानका (standardised) भैक्सीन मिल नहीं सकी।

पीछे यह पता चला कि, जब जीवाणुओंकी वृद्धि होती है तब विष पैदा होता है और वहीं प्रतिविष भी बनता है। इस घटनाका फायदा उठानेके लिये किसी पेशीमें छूत डालकर उसका रस निचोड़ लिया जाता था। इससे प्रतिविष या एग्रेसिन (aggressins) की प्राप्ति हो जाती थी। इसका चलन भारतमें किया गया। पर एक और अच्छी विधिके लिये इसे छोड़ दिया गया।

इसके बाद दूसरी विधि फौर्मेलिनसे मारे हुए कृष्टिके उपयोगकी हुई। मृत कृष्टिकी प्रतिक्रिया कठिन नहीं होती और प्रतिविषसे चाही क्षमता मिल जाती है।

इसके बाद यह पता चला कि, सेंद्रिय पिंडोंके बदले किसी रासायनिक द्रव्य पर कृष्टि तैयार या विकसित करनेसे उनका रोगोत्पादक गुण नष्ट हो जाता है। इन कृष्टियोंकी रोगकारिता यद्यपि नष्ट हो जाती है फिर भी उनका क्षमताकारी गुण बना रहता है। मुक्तेश्वरमें इस खोजका समर्थन हुआ।

आजकल मुक्तेश्वर प्रतिलसीका (एन्टी सिरम) और भैक्सीन दोनों ही इस रोगके लिये दे रहा है। दोनोंही निरापद और गुणकारी हैं।

प्रतिलसीका या प्रतिरस ९ से १० दिन तक बचाता है। रोग फैलना दूर करनेके लिये यह काफी है। रोग फैलना खतम हो जाने पर ठट्ठकी रक्षा भैक्सीनसे की जाती है। यह क्षमता ६ महीने से १२ महीने तक टिकती है। बछरुओंके जीवनका सबसे ग्रहणशील काल बीत जानेके लिये यह काफी है।

रोग फैलने पर छूतरहित करने और लाशोंको ठिकाने लगानेके लिये क्या किया जाय, इसके बारेमें जोर देकर यही कहना है कि गिल्टी (१३८७) के बारेमें जो बताया गया है वही किया जाय। क्लोस्ट्रीडियम चौभीके बीज बहुत प्रतिरोधी हैं। इसलिये पृथक्करण, छूतरहित करने और लाश गाड़नेमें ढिलाई या अधकचरा काम कभी नहीं करना चाहिये।

१३८७. Anthrax : गिल्टी।

पर्याय :— एन्थ्रैक्स, स्प्लीनिक फीभर, स्प्लीनिक एपोप्लैक्सी, मेलिगनेन्ट कारबंकल। **हिंदी**—गढ़ी, गोली, गिल्टी। **बंगला**—तरका, पश्चिमा। **गुजराती**—भामरिया, क्रिओनाव। **कन्नड़**—गंटलकट्टू। **मलयालम**—अदप्पन। **मराठी**—गोली, फन्सी, सुर्‍या। **उड़िया**—चोरा, पिल्ही। **पंजाबी**—साट। **सिंधी**—कारो वा। **तामिल**—अदप्पन। **तैलंगी**—दोम्मा।

यह रोग बहुत तेजीसे मारनेवाला है। यह **बैसीलस ऐन्थ्रासीस** (bacillus anthracis) जीवाणुके कारण होता है। यह जीवाणु रक्त नष्ट कर देता है और उसे काम नहीं करने देता। यह मिट्टीका रोग है और जहाँ खेती होती है वहाँ पाया जाता है। कुछ जगहोंका यह देशी रोग है। दलदल और कभी कभी डूबनेवाली जमीन इसकी वृद्धिके अनुकूल है। ऐसी जगहोंमें यह बारहमासी है। गर्मी इसकी छूतके लिये बहुत अनुकूल मालूम होती है। एशिया और यूरोपमें भी पुराने जमानेमें भी इसका पता था। जिस तरह एशिया, भारत, बर्मा, हिंदचीन आदिमें इसका घर है उसी तरह अफ्रीकामें भी है।

सभी पशुओंको संपर्कसे यह रोग हो सकता है। तरुण सबसे जादे ग्रहणशील हैं। ढोर, भेड़ और बकरियोंको यह बहुधा हुआ करता है। जिन अन्य पशुओंको भी यह ग्रसता वह हैं — ऊँट, घोड़े, सूअर, कुत्ते, लोमड़ी, बिल्ली, खरगोश और विलायती चूहे। चूहोंको भी यह हो सकता है। पक्षियोंको काफी क्षमता होती है। मेढ़क सक्षम हैं। मनुष्योंको यह संचारणसे हो सकता है। जीवाणु क्षतोंसे देहमें घुस सकते हैं। बीजयुक्त मांस यदि पूरी तरह पका न हो तो उसे खानेसे और साँसके जरिये भी जीवाणु शरीरमें पैठ जाता है जैसा कि, ऊन और बुरुशके कारखानोंके मजदूरोंको हुआ करता है। जंगलके मांसभोजी पशु बहुत ग्रहणशील हैं। इस रोगके जीवाणु दीर्घाकार रोगकारी जीवाणुओंमें एक हैं, इसलिये अणुवीक्षण यंत्रसे सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। यह जीवाणु बीज पैदा करनेवाला है। यह वायु-जीवी है। इसे जीनेके लिये ऑक्सीजनकी दरकार होती है। पर जब इसे कठिनाई होती है तो यह अपनी देहसे बीज बनाता है। बीजकी हालतमें यह वर्षों तक ऑक्सीजनके बिना मूर्छित अवस्थामें रहता है। उचित ताप और वातावरण देनेसे बीजसे जीवाणु पैदा किये जा सकते हैं। जीवाणुकी सूरतमें आकर वह फिर बीज पैदा कर सकता है और अनिश्चित काल तक बीजकी हालतमें रह सकता है। इसलिये इस रोगसे मरे रोगीकी लाशके जीवाणुओंके बीज बनकर जमीनमें रहते हैं। बरसात आनेपर उचित नमी और गर्मीसे बीजसे जीवाणु फूट निकलते हैं और फिर बढ़ते हैं। और इससे उस जमीनकी घासमें छूत लग जाती है। वह घास जो पशु चरते हैं उन्हें छूत लग जाती है। सूखे मौसममें जीवाणुसे बीज बन जाते हैं और उसी हालतमें रहते हैं। इस तरह छूत लगी जमीन हर साल छूत फैलाती रहती है।

यह जीवाणु वायुजीवी है इसलिये लाशमें नहीं रह सकना। क्योंकि, वहाँ ऑक्सीजनका अभाव है और इसी सबब बीज भी नहीं बना सकना। इसलिये यदि इस रोगकी मरी लाश चीरी न जाय और गहरे गाड़ दी जाय तो छूतका मूल नष्ट हो जाता है। पर यदि कहीं कुछ खून निकल कर सूख जाय तो जीवाणु उसमें बीज बनाते हैं जो उस रूपमें बने रहते हैं। इसलिये सूखा खून छूतकी जड़ बना रहेगा। जब कभी अनुकूल मौका मिलेगा वह सक्रिय हो जायगा। जमीनमें अन्य जीवाणु भी हैं और देहके सड़ानेवाले जीवाणु भी बीजको मार सकते हैं। पर सूखा खून या मलमूत्र आदि छूतकी जड़ बने रहते हैं।

बीज, पानीमें और पानीके नीचे कीचमें रह सकता है। बीज भरा ऐसा पानी जो पशु पीता है उसे छूत लग जाती है। यदि गिल्टीसे मरेकी लाश जलाशयमें फेंक दी जाय तो उसके बीज पानीमें चले जायेंगे और पानीको अशुद्ध कर देंगे। इसी कारण जलाशयोंके किनारे उगी घासें छूत फैलाती हैं। श्री नायकने किसी नालेके बँधे पानीमें गिल्टीकी छूतकी जड़के पता चलनेका हाल बताया है। (इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स ऐन्ड ऐनिमल हस्बैन्डरी, सितम्बर १९३८, पृ० २४३)। बरसातमें छूत लगे जानवर नाला पार किया करते थे। बरसात में वह बीज गिराते जाते थे जिससे सूखे मौसममें पशुओंको छूत लगती थी। गर्मीमें उन पशुओंको खूँटे पर सूखी घास खिलाई जाती थी। इसलिये प्रगट रूपसे उस मौसममें उनको छूत लगनेका कोई खतरा नहीं था। पर, उन्हें छूत इसलिये लगती थी कि, उन सबोंको उस नाले पर ले जाकर पानी पिलाया जाता था। उस संदिग्ध नालेके फेन और कीच की सूई पशुको लगानेसे गिल्टी हो गयी। अणुवीक्षण यन्त्रमें अन्य जीवाणुओंके होने की खोज की गयी।

धूपमें पतली तहमें फैलाकर सुखानेसे जीवाणु ६½ से १५ घंटोंमें मर जाते हैं। मोटी तहमें और अंधेरेमें वह दो तीन हफ्ते जीते हैं। सूखे खूनमें ये महीने भर या और जादे भी जी सकते हैं। फिर पानी मिलनेसे बीज बनाते हैं। आमाशयके रस (gastric juice) में जीवाणु १५ मिनटोंमें मर जाते हैं। तरल खादसे जीवाणु दो तीन घंटेमें मर जाते हैं पर बीज नहीं। बीज दारुण बने रहते है। १ : ५०,००० जलमिश्रित सालभरसन (salvarson) जीवाणुकी वृद्धि रोक देता है।

साधारण सुखानेसे बीज नहीं मरते। रेशम पर सुखाने पर वह ३२ वर्ष तक अंकुरित होनेकी शक्ति रखते हैं। बीज ७२ से ७६ डिग्री से० तापमें खादमें ४ दिनमें मर जाते हैं। खालमें लगे बीज सुखाने और नमक देनेसे नहीं मरते। चूनेके पानीमें डुबानेसे वह १२५ दिन जीते हैं। कुछका मत है कि, कमानेके समय चूनेके पानीमें वह १२ से १७ दिनमें मर जाते हैं। पर दूसरे कहते हैं कि, कमानेकी नादके पानी और चर्मालयकी नालियोंमें जीता बीज पाया जाता है। चर्मालयकी नालीके पानीके बीज मारना कठिन काम है। इस रोगसे मरे पशुकी खालके जरिये चर्मालयमें इसके बीज आते हैं और वह चूनेके पानीकी नाद और नालीके पानीमें सदा पाये जाते हैं।

छूतनाशक : साधारण छूतनाशकोंसे ये जीवाणु सरलतासे मारे जा सकते हैं। पर साधारण तौर पर छूतनाशकका जैसा घोल काममें लाया जाता है, उससे यह बीज नहीं मरते। कोरोसिभ सबलीमेट १ : १,००० बीस मिनटमें बीजोंको मार देगा। इसमें आध सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक तेजाब या दो सैकड़ा कारबोलिक तेजाब मिलानेसे इसकी तेजी और बढ़ जाती है। आयडिन या क्लोरीनका पानी दो सैकड़ा, फौर्मेलडिहाइड २ सैकड़ा, परमैंगनेट ५ सैकड़ा, कारबोलिक तेजाब ५ सैकड़ा, क्लोराइड आॅफ लाइम ५ सैकड़ा से बीज मर जाते हैं। एक सैकड़ा कास्टिक सोडा इन्हें मार देता है। नस्लके अनुसार बीजोंकी प्रतिरोधशक्ति विभिन्न होती है। २४ घंटे तक २४ डिग्री से० तापमें ३ सैकड़ा नमकके घोलमें, और इसके बाद २ सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक तेजाब और १० सैकड़ा नमकके मिले घोलमें २८ डिग्री से० तापमें ४८ घंटे डुबानेसे खाल छूतरहित की जा सकती है। इससे खालमें खराबी नहीं होती। ४ से ६ घंटे तक १ सैकड़ा फौर्मेलिनके घोलमें डुबानेसे बाल छूतरहित हो सकता है और ऊन पहले भिगाकर फिर २ से २·५ सैकड़ा फौर्मेलिनमें रखनेसे। भाफमें नाममात्रके अर्थात् २¾ रत्तलके दबावके अन्दर ये छूतरहित हो सकते हैं।

बीज भरा खाना खानेसे शाकभुक् पशुओंको छूत लगती है। चरने और सूखा चारा खानेमें कुछ धूल पेटमें जाती ही है। छुतही सामग्रीकी हवामें उड़ी धूलसे भी धरती की ऊपरी मिट्टी और पानी अशुद्ध हो सकते हैं। पानीकी सतह ऊपर उठनेसे मिट्टीमें दबे बीज ऊपर उग सकते हैं। जमीनके नीचेके बीज को केंचुए खोद कर ऊपरी सतह पर ला सकते हैं। छुतहे पशुओंके मलभी

छूत फैलानेमें हिस्सा ले सकते हैं। छुतही गायोंके दूधसे भी शायद छूत फैल सकती है।

पशुओंको छूत भोजनके जरिये लगती है पर चमड़ेके जरिये छूत लगना कम ही देखा जाता है। खुरपकाके समय गिल्टी प्रायः हुआ करती है। यह जीवनी शक्तिकी कमीसे हो सकती है। और इसीसे ग्रहणशक्ति भी बढ़ जाती है। यह रोग सीधे तौर पर एकसे दूसरे पशुको साधारणतः नहीं होता।

यह साधारण तौर पर माना जाता था कि, बीज और जीवाणु खा लेनेसे, जीवाणु तो आमाशयके रसमें मर जाता है पर बीज पर उसका कोई असर नहीं होता। वह आँतोंमें जा पहुँचता है। वहाँ उसमेंसे जीवाणु निकल पड़ते हैं और बढ़ते रहते हैं। **कोचके** संचारण-प्रयोगसे यह मत पुष्ट होता है। इसके विरुद्ध बेसरेडका (Besredka) का सिद्धान्त है कि, छूत केवल त्वचामें ही लग सकती है। और उसमें साधारणतः छूत लगनेका कारण यह है कि, त्वचामें भी साथही साथ क्षत होता है। यद्यपि बेसरेडकाके सिद्धान्त पर बचावके लिये सचारणकी एक नयी विधि बनी है, फिर भी त्वचाकी छूतका सिद्धान्त अधिक नहीं माना गया।

लक्षण : पशुकी उमर, ग्रहणशीलता और जीवाणुकी नस्लके अनुसार छूत उग्र, मन्द, अति उग्र और बाहरी प्रकारकी होती है। अनेक छुतहे रोगोंकी तरह इसके भी प्रथम आक्रमण बहुत घातक होते हैं। जब बीमारी मिटने लगती है तब केवल हल्का आक्रमण होता है जिनमें बहुतसे बच जाते हैं।

साधारण तौर पर महामारी उग्रतम रूपमें प्रकट होती है। अच्छी से अच्छी हालतमें भी एक या अनेक पशु मरे पाये जाते हैं। प्रायः यह रोग फैलनेका पूर्वसूचक है। नाकसे रक्तस्राव या पीताभ रंगका स्राव होता है, गुदा उलट जाती है जिससे गहरे रंगकी श्लैष्मिक कला दिखाई पड़ती है। लाश तुरत बहुत जादा फूल जाती है। ये चिन्ह गिल्टीके सूचक हैं। पर अणुवीक्षण यन्त्रकी परीक्षासे ही मृत्युका कारण सही जाना जा सकता है। यदि पशुको मरे बहुत देर न हुई हो, आठ ही दश घंटे हुए हों तो उसका कान सूईसे छेद काँचके स्लाइड पर एक बूँद खून निकाल दूसरी पट्टी या स्लाइडसे ढक दिया जाय। इसे निदानके हेतु परीक्षाके लिये भेज दो। पर मालिक इसे गिल्टी मानकर ही आवश्यक सावधानी बर्तें।

अति उग्र रोग (fulminant or apoplectic anthrax) में यदि कोई रोगी जीवित अवस्थामें पाया जाय तो उसे साँस लेनेमें कठिनाई, नीलिया (Cynosis), कराहना और आक्षेप होता पाया जायगा। नाकसे खून निकलता देखा जायगा और कुछ मिनट या घन्टेमें मृत्यु हो जायगी।

इसके बाद उग्र और मन्द रूप हैं। इन प्रकारोंको गिल्टी-ज्वर, प्लीहा-ज्वर या भीतरी गिल्टी (internal anthrax) कहते हैं। उग्ररूपमें मृत्यु २४ घंटेके भीतर हो जाती है। मन्दरूपका रोगी पशु कई दिन खेप मर सकता है या बच भी जा सकता है। ताप १०४ डिग्री से १०७ डिग्री फा० तक या इससे भी जादे चढ़ सकता है। नाक बहती है जिसमें कभी कभी खून मिला रहता है। गोबर और मूतमें भी खून रहता है। नाड़ी मन्द हो जाती है। साँसकी तकलीफ बहुत बढ़ जाती है। उदरशूल और पेट बहुत फूला रहता है। साधारण तौर पर ये लक्षण ढोरको होते हैं और घोड़ोंको भी होते हैं। कभी कंठ और गर्दनमें सूजन होती है। दूध उतरना बन्द हो जाता है। यदि कुछ उतरा तो उसमें पीलापन या खूनके रंगका दाग होता है। गर्भणीका गर्भ प्रायः गिर जाता है। ७० से ९० सैकड़ा मृत्यु हो जाती है।

तीसरा प्रकार बाहरी गिल्टी है। यह प्रकार कम कठिन है। काफी रोगी अच्छे हो जाते हैं। भारतमें घोड़े साधारण तौर पर इससे बीमार पड़ते हैं। त्वचाके नीचे, सिर, गला, गर्दन, छाती, कंधा और अन्य अङ्गोंमें सूजन होती है। सूजन अचानक होती और वेगसे फैलती है। पहले वह गरम और पीड़ाभरी होती है बाद को ठंढी और नरम हो जाती है। इसकी सूजनमें उँगलीसे दबानेपर गैस की चरचराहट नहीं होती। लंगड़ी और इसमें यह फर्क है। गिल्टीका संदेह होने पर शवपरीक्षामें सावधानी करनी चाहिये। क्योंकि, देह चीरनेका अर्थ है जीवाणुओंको हवामें ले आना और उन्हें बीज बनानेमें सहायता देना। लाशकी परीक्षा गाड़नेकी जगह पर करनी चाहिये।

व्यापकता : छूतकी बीमारियोंसे मरे कुल पशुओंमें लगभग ५ सैकड़ा इससे मरते हैं। अंगरेजी भारतमें इससे हुई कुल मृत्यु संख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

वर्ष		मृत्यु संख्या
१९३४–'३५	...	५,८६९
१९३५–'३६	...	७,११८
१९३६–'३७	...	१०,४७८
१९३७–'३८	...	१०,३९६

इस रोगसे जितने पशु मरते थे रिपोर्टमें उनसे कमही रहता था। क्योंकि, इसके कुछ शिकार उचित निदान या शव-परीक्षाके अभावमें दूसरे रोगोंमें दर्ज कर लिये जाते थे। यद्यपि बचावके उपाय अधिक किये जा रहे हैं तो भी मृत्युका हिसाब सन् १९३५ से १९३८ तक दूना हो गया है। पर असल बात यह है कि, जैसे जैसे भेटेरिनरी विभाग सचेत होता गया तैसे तैसे अब अधिक मौतें इसीसे मानी जाती हैं। यह भी माना जा सकता है कि, बचावके लिये किया गया संचारण अभी तक मृत्युसंख्या कम नहीं कर सका है। सन् १९३४–३५ में जितने पशुओंके बीमार पड़नेकी रिपोर्ट आई सबके सब मर गये जिससे मृत्यु संख्या सौ सैकड़ा दिखाती है। प्रान्तोंमें सन् १९३४–३५ में नीचे लिखे अनुसार गिल्टीके रोगी और उनकी मृत्यु संख्या हैं :—

प्रान्त	कुल रोगी	कुल मृत्यु	टिप्पणी
आसाम	८३९	८३९	
बंगाल	१,१६७	१,१६७	
	८	१	घोड़ा
बिहार और उड़ीसा	२४६	२४६	
	३	३	घोड़ा
युक्तप्रान्त	२७५	२७५	
पंजाब	३	३	
सीमाप्रान्त	१२	१२	
मदरास	२,३००	२,३००	
मध्यप्रान्त बरार	१,६७०	१,६७०	
	६,५१३	६,५१३	

—(पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठककी रिपोर्ट, १९३६, पृ० १११ में एम० आई० मालिकके भाषणसे लिया गया आँकड़ा)।

क्षमता पैदा करना और बचाव : क्षमताके लिये यूरोपमें पाश्चरकी भैक्सीन काममें आती है। भारतमें प्रतिलसीकाका व्यवहार होता है। पर इसकी उपयोगितामें शंका है। क्योंकि इससे आयी क्षमता क्षणस्थायी है।

सन् १९३६ में पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठकमें इस विषय पर श्री मालिकने ध्यान दिलाया था। बर्मा और अन्य देशोंमें जैसे भैक्सीन बनायी जाती है उसी तरह मुक्तेश्वरमें केवल प्रतिलसीकाकी जगह भैक्सीन बनाने पर जोर दिया गया।

श्री मिचेल (Mr. Michell) ने उस बैठकमें बताया कि, वह एक जातिकी भैक्सीन दक्षिण आफ्रिकासे लाये हैं और बर्मामें बना रहे हैं। इसका नतीजा बहुत संतोषप्रद रहा है। उस बैठकमें सूचित किया गया कि, मुक्तेश्वरमें भैक्सीनोंकी जाँच हो रही है। कठिनाई उपयुक्त जातिकी भैक्सीन पानेमें हो रही है। जातियोंमें तीव्रताकी भिन्नता होनेकी प्रवृत्ति रहती है।

सन् १९४०-४१ की मुक्तेश्वरकी रिपोर्टमें है कि, गिल्टीके बीजकी भैक्सीन बाहर भेजनेके लिये उस साल पहले पहल बनायी गयी।

दक्षिणी आफ्रिका गिल्टी-बीज-भैक्सीनसे क्षमता पैदा करनेमें बहुत आगे बढ़ गया है। सन् १९३९ में औंडर्सटेपूर्ट के श्री मैक्स स्टर्न ने एक लेखमें दिखाया है कि, वे लोग गिल्टी बीजका अदारुण प्रकार बड़ी सफलतासे काममें ला रहे हैं। ३४ एफ$_2$ ($34F_2$) प्रकार ऐसा था कि, भैक्सीन सालभर तक रखी जा सकती थी और इससे उसके गुणमें कुछ कमी नहीं होती थी। सन् १९३८ के बिचले हिस्सेके बाद ५०% गिलसरीन-सैलाइनमें ०·५ सैकड़ा सैपोनीन (saponin) घोलकर उसमें भैक्सीन मिलाकर बाहर भेजी जाने लगी। इससे भैक्सीन की क्षमता पैदा करनेकी शक्ति बढ़ गयी और पशुपालकोंने भी अत्यधिक प्रतिक्रियाकी शिकायत नहीं की।

ट्रान्सकीमें हर साल इससे हजारों मरते थे। जैसे भारतमें माता उसी तरह वहाँ यह बहुत फैला हुआ था। पर बीजकी भैक्सीनने अद्भुत फल दिखाया। सन् १९३८ के मई-जूनमें अदारुण बीज-भैक्सीनसे १५,५९,५३० पशुओंको टीका लगाया गया। इस मौसममें इनमेंसे कुल ३० पशु मरे जहाँ साधारण तौर पर हजारों मरते। अदारुण भैक्सीनें बिनाथैलीवाली या अनावरक जातियों (uncapsulated variants) से तैयार की जाती थीं। गिल्टीके जीवाणुओंको साधारण तौर पर थैली (कैपस्यूल) होती है। इस प्रयोगमें भैक्सीन बनानेके लिये बिनाथैलीवाले जीवाणु काममें लाये गये। मुक्तेश्वरकी रिपोर्टमें यह नहीं लिखा

गया है कि, वह लोग भी दक्षिण अफ्रिकामें इतनी सफल अदाहरण प्रकार की भॅक्सीन काममें ला रहे हैं या नहीं। मैक्सस्टर्नकी बतायी विधि सैपोनिनवाली भॅक्सीनोंकी विधिसे सुधरी हुई थी। पाश्चरकी द्विविध-भॅक्सीन-क्षमताकरणकी विधिके बदले सैपोनिनवाली विधि ही सब जगह काममें आती थी।

रोग फैलने पर : छूत लगे पशु नीचे बतायी विधिसे पृथक् कर दिये जायँ और अछूते पशुओंको प्रतिलसीका और भॅक्सीन संचारण करना चाहिये। पर इसमें एक व्यावहारिक कठिनाई है। भेटेरिनरी विभाग तभी लसीका संचारण करता है जब मृत (या जीवित) पशुमें गिल्टी के जीवाणु पा लिये जायँ। लाश बहुत जल्दी सड जाती है। इसलिये जब डाक्टर लाश देखने आता है तब साधारण तौर पर अणुवीक्षण-परीक्षाके लायक रक्त इत्यादि नहीं मिल सकते। रोगके दूसरे आक्रमणके समय यदि डाक्टर वहाँ मौजूद हो तो वह रक्त लेकर प्रधान केन्द्रको परीक्षाके लिये भेज सकता है। यदि परीक्षामें गिल्टीके जीवाणु मिलें तब कहीं लसीका-संचारण का उद्योग शुरु किया जाता है। जिस समय तक, प्रतिलसीका उस स्थान पर पहुँचती है रोग खतम होनेको रहता है और तब वहाँ इसकी कोई जरूरत नहीं रहती। यह कठिनाई सही है पर ऐसी नहीं कि, दूर न हो सके। यदि इस रोगसे पशुओंकी रक्षा करनी है तो यह कठिनाई दूर करनी चाहिये। जिन प्रांतोंमें या जगहोंमें भेटेरिनरी विभाग मौसमी छूतकी संभावनासे संचारण या टीका दिया करता है उन्हें छोड़ बाकी जगहों पर क्षमताके लिये संचारण या टीकाकी बात अभी हमें छोड़ देनी चाहिये। रोग फूटने पर जो दूसरे उपाय किये जायँ वह नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) छूत लगा अस्तबल खाली कर देना।
(२) मरे और मरतोंको ठिकाने लगाना।
(३) गोचर या चारा लेनेकी जगह बदलना।
(४) छूतकी शुद्धि करना।
(५) चिकित्सा।

१. छूत लगा अस्तबल खाली करना : यदि गिल्टीसे कोई मौत हो जाय या अचानक मृत्युसे शंका हो जाय तो उचित यह है कि, वह स्थान छोड़ दिया जाय। जो पशु छूत लगे पशुके निकट संपर्कमें हों उन्हें बिना सम्पर्कवालोंसे पृथक्

कर दिया जाय। दोनों दलोंको सूखी ऊँची जमीन पर रखनेके लिये ले जाना चाहिये। स्थान-परिवर्तनसे नयी छूतकी गुंजाइश बहुत कम हो जाती है। अलग किये गये पशुओंका ताप नित्य सबेरे और साँझ लेना चाहिये। जिन्हें ताप चढ़े उन्हें अलग कर देना चाहिये। जब जब कोई नया रोगी हो जगह बदलना चाहिये।

२. **मरे और मरतोंको ठिकाने लगाना :** मरते हुए पशुओंको मरने देना चाहिये और इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि, छूत फैलने न पावे। इसलिये मलमूत्र और खून वगरह जला दिये जायँ। लाश खूब गहरे (६ फूट) गाड़ दी जाय। संभव हो तो गढ़ेमें पहले चूनेकी एक तह बिछा तब लाश गिरानी चाहिये और उसके चारों तरफ चूना भर देना चाहिये। इसके बाद लाशके ऊपर चूनेकी एक तह और देनी चाहिये। उस मृत पशुने जो जमीन गन्दी की है उसे भी खुरच कर गाड़ दो। पशुकी लाश रास्तेमें घसीटकर मत ले जाओ। टाँगकर ले जाना चाहिये। शव परीक्षाके सिवा और कभी हरगिज फाड़ा न जाय, सो भी दफनानेकी ही जगह पर।

यदि शवपरीक्षा की जाय तो प्लीहा और हृदयके रक्तकी छाप (स्लाइड) ले लेनी चाहिये। इस रोगसे मरनेवाले पशुका रक्त और पेशियाँ काली मालूम होती हैं। प्लीहा बहुत बढ़ जाता है और भगुर हो जाता है। रक्त और पेशियोंका कालापन और प्लीहेका बढ़ना इन दो चिह्नोंसे निदान हो सकता है। इसकी पुष्टि अणुवीक्षणसे की जाय। इस रोगमें रक्त थक्का नहीं होता। यदि किसी अगमें थक्का खून मिले तो गिल्टीकी बीमारी नहीं है।

दफनानेके बाद दफनानेकी जगह और आसपास जला दो और उस जगहको घेर दो। शवपरीक्षाके औजार अच्छी तरह खौला लिये जायँ।

३. **गोचर और चारा लेनेकी जगह बदलना :** छूत कहींसे भी लग सकती है। जब तक यह ठीक ठीक न मालूम हो तब तक गोचर और चारेकी जगह बदल देनी चाहिये। क्योंकि, हो सकता है छूत लगे गोचर या छूत लगे सूखे चारेसे छूत लग सकती है।

४. **छूत मिटाना :** आग और ब्लीचिंग पाउडर भी इसके लिये बताये गये हैं। छूत लगे पशु और अस्तबलका सारा सामान सोडा या अन्य छूत नाशक मिलाकर खौलाना चाहिये। हिफाजतके लिये, जिनके जलानेमें अधिक हानि न हो ऐसी सभी चीजें जला दी जायँ।

५. चिकित्सा : रोगी पर मक्खी न बैठने पावे। इससे वह छूत नहीं फैला सकती। इसलिये कई जगह भीगा पुआल और गोबर जलाया जाय कि, वह सदा धुआँता रहे। धुएँसे आखमें जलन हो सकती है पर मक्खियाँ दूर रहेंगी।

गिल्टीकी छूतमें पशुओंके वर्ग और उनकी ग्रहणशीलताके अनुसार रोगकी प्रच्छन्नावस्था का (incubation period) काल भिन्न भिन्न होता है। ढोर और घोड़ेके लिये यह काल ३ दिन और भेड़ तथा बकरियोंके लिये २ से ४ दिन है। खरगोश और विलायती चूहोंको कृत्रिम संचारण करने पर २४ से ४८ घंटेमें रोग हो जाता है।

रोगके आक्रमणकी निगरानी रखनेके लिये थरमामीटरका व्यवहार करना चाहिये। छूत कितने दिनोंमें पकती है या छूत लगने पर रोग कितने दिनों तक प्रच्छन्न रहता है इसका ज्ञान ऐसी निगरानीमें साधक होता है।

चिकित्साके लिये प्रतिलसीका पर भरोसा करना चाहिये। जहाँ यह न हो वहाँ कारबोलिक का घोल पिलाना चाहिये।

कारबोलिक तेजाब	—	१ ड्राम।
नमक	—	१ आउन्स।

इसे गाढ़े मंडमें मिलाकर पिला दो। सूजन पर ५ सैकड़ा कारबोलिक घोल लगाओ। दूसरे कोथघ्न, जैसे एम० बी० ६९३, दिये जा सकते हैं। ढोरको आदमीकी मात्राका १० गुना सालभरसन या निओसालभरसन दिया जा सकता है।

पशु पी सकता है तो उसे मंड और पानी दो। और इसके बाद हरी घास भी दो। कोथघ्न कार्योंके लिये नीमकी पत्ती और उसका काढ़ा खूब व्यवहार करो।

मनुष्योंकी गिल्टी : मनुष्योंको त्वचा की राह छूत लग सकती है। घातक छाले और कारबंकल हो जाते हैं। यह रोग उनलोगोंको साधारण तौर पर हो जाया करता है जो मरे पशुओंके संपर्कमें आते हैं जैसे पशुचिकित्सक या गो-परिचारक, कसाई, चमार, बाल और ऊनका काम करने वाले। मनुष्योंको मक्खीसे भी छूत लग सकती है।

छाले या गिल्टीका कारबंकल निकलनेके पहले छूतकी जगहोंपर (जो साधारण तौर पर मुखमंडल, गरदन और बाँह पर होती हैं) छिदनेवाली पीड़ा होती है। इसके बाद लाल गाँठें निकलती हैं जो काले रंगकी डिम्बिकायें (bulla) बन जाती हैं। इनमें लाल पानी भरा रहता है। यह फट जाता है और तन्तु सुन्न

या निष्प्राण (necrosed) हो जाते और पासही नयी गाँठें और नयी डिम्बिकायें बनती हैं। ताप चढ़ता है। रक्त-विकारके साधारण लक्षण दीख पड़ते और रोगी मर जाता है।

ऐसी हालतमें प्रतिलसीका बहुत उपयोगी है। सालभरसन और निओ-सालभरसन जैसी दवाओंकी, शिरामें सूई देनेकी परीक्षा हो रही है।

१३८८. Foot-and-mouth disease : **खुरपका : मुँहपका।**

पर्याय :—फुट-एन्ड-माउथ डिजीज। **हिन्दी**—मुँहखुर, मुँह-पाँवकी बीमारी, खुरपका, रोड़ा, खोरा। **आसामी**—चबका। **बंगला**—खुरा, एशो। **गुजराती**—मोवासा, मोवा, खरवा। **कन्नड़**—काल्ल बोई ज्वर। **मराठी**—लाल, खुर, कुट। **उड़िया**—फटूआ, असुआ। **पंजाबी**—मुनखुर। **सिन्धी**—समारो, छारी। **तामिल**—कोमारी। **तैलंगी**—गल्लू, कालीगल्लू।

रोगका स्वभाव : यह रोग बहुत छुतहा, तेजीसे फैलनेवाला, उग्र, संक्रामक, विशेषतः रोमन्थकोंको होता है। मुँहमें, पैर और थन पर दाने निकलते हैं। ढोर, भैंस, भेड़ बकरियोंको यह होता है। सूअर और घोड़ेको भी छूत लगकर हो सकता है। मनुष्योंको कभी कदाच होता है। यह रोग भारतमें सदा बना रहता है।

इसका जनक-रोगाणु : यह एक रोगाणुके कारण होता है। मालूम होता है यह सभी रोगाणुओंमें सबसे सूक्ष्म है। यह रोगाणु अणुवीक्षणकी शक्तिके परे है और पशुशरीरके बाहर किसी वस्तुमें पैदा नहीं किया जा सकता है। छूत लगने पर मुँहकी श्लैष्मिक कला पर कुछ छाले निकलते हैं। ये अनदेखेही रह जाते हैं। बाहरी लक्षण कोई नहीं हैं। जब ये छाले पक कर फूटते हैं तब उनका रोगाणु रक्त-स्रोतमें मिल जाता है। इसके बाद लक्षण प्रगट होते हैं। ताप चढ़ने और थूथनकी ललाईसे ये प्रगट हो जाते हैं। इसके बाद छाले निकलते और लार चलती है। छूत फैलानेमें यह रोगाणु सबसे चढ़बढ़ कर है। छालोंमें एक द्रव रहता है जो रोगाणुसे भरा रहता है। यह इतना शक्तिशाली होता है कि, इस द्रवको ५० लाखमें एकके अनुपातसे हल्का करने पर भी यह छूत लगा सकता है।

छूत संसर्गसे फैलती है। खाने पीने और सजीव माध्यम जैसे आदमी, कुत्ते, कीड़े, चिड़ियोंसे फैलती है। ये छूतवाले पशुके संसर्गसे छूतको इधर उधर ले जाते हैं। लारपर पैर रखने मात्रसे तलवे या जूतेके तलेमें लगकर छूत कितनी ही दूर जा सकती है। ब्लैककी डिक्सनरीमें (Black's Vet. Dictionary) एक काल्पनिक उदाहरणके द्वारा यह दिखाया गया है कि, रोग कैसे फैल सकता है। श्री क चरवाहे हैं। इनके ठट्ठमें खुरपकाकी बीमारी है। वह बाजार जाते हैं और वहाँ श्री ख से हाथ मिलाते हैं। श्री ख सर्वश्री ग, घ, ङ और च से मिलते हैं। ये सब अपने घर जा अपने ढोरोंकी परिचर्या करते हैं। इससे ग, घ, ङ और च के ढोरोंको भी छूत लग जाती है। इसकी छूत कितनी संक्रामक है उसका यह उदाहरण एक नमूना है। ऐसे प्रसारक रोगाणुके रहते यदि ठट्ठका एक पशु भी बीमार पड़ जाय तो रोगका रोकना असंभव है।

एक बार यह बीमारी होनेसे पशुको सालभर क्षमता रहती है। यह भी देखा गया है कि, आराम होनेके तुरत बाद पशु दूसरी बार बीमार पड़ सकता है। इसका कारण यह है कि, रोगाणुकी तीन जातियाँ ए, बी, और सी—A. B. & C. हैं। एक जातिके रोगाणुसे आराम होने पर उसी जातिकी क्षमता आती है पर अन्य जातियोंकी ग्रहणशीलता बनी रहती है।

रोगाणुका लक्षण : आच्छादक तन्तु (epithelial tissue) का रोगाणु सुखाने पर मरता नहीं। सूखी हालतमें ढोरके बाल पर ४ हफ्ते तक छूत फैलानेकी शक्ति इसमें रहती है। सूखी घास पर १५ दिन, और **चोकरमें २० हफ्ते**। पर छालों या फफोलों की लसीका (vesicular lymph) का रोगाणु कमरेके तापमें २४ घंटेमें मर जाता है। आच्छादकीय तन्तुका रोगाणु जल्दी सड़ाँदमें भी नहीं मरता। धोअनमें यह १०३ दिन तक छूत फैलानेवाला रह सकता है और नालीके पानीमें ३९ दिन तक। पेशाबमें मिलते ही इसकी शक्ति उससे निकले अमोनियाँसे नष्ट हो जाती है। गोबरकी छूत फैलानेकी शक्ति २ से ४ दिनमें खतम हो जाती है।

कोथघ्नोंमें कास्टिक सोडा या पोटाश बहुत अच्छा काम करते हैं। इनका १ से २ सैकड़ा घोल रोगाणु मार डालता है। ४ सैकड़ा घोलमें ५० से ६० डिग्री से० तक गरम करनेसे रोगाणु मरता है। एक सैकड़ा फौर्मेलीनका असर कास्टिक सोडाके घोल सा ही होता है। छूतघ्नका काम लेनेके लिये सोडाके गरम घोलमें

कुछ चूना मिला उसे थिरा लेना चाहिये। इससे वह कास्टिक बन जाता है। इसमें परिचारकोंके कपडे उबालनेसे उनकी छूत मिट जाती है।

व्यापकता (prevalence): इंगलैन्ड और यूरोपमें वहाँकी सरकारोंने व्यापकता पर गहरा ध्यान दिया है। इंगलैन्डमें यह कोशिश हो रही है कि, छुतहे पशुओंको मार रोग निर्मूल कर दिया जाय। हजारों पाउन्ड (स्टर्लिङ्ग) इस काम पर खर्च हो रहे हैं। नियम यह है कि, जिसका पशु मारा जाय उसकी क्षतिपूर्ति सरकार करे। इतना होते हुए भी लगातार बहुत दिनों तक इंगलैन्ड इस रोगसे मुक्त नहीं रहता। कुछ वर्षोंके बाद यह फिर हो जाता है। क्योंकि यद्यपि रोगी पशुओंके आने पर रोक है और छुतहे मार भी दिये जाते हैं तोभी चलानी सूखी घासमें छूत-रोगाणु पहुँच जाता है। विलायतमें एक बारकी बिमारीके कारणका पता चलानी सूखी घासमें लगा।

भारतमें भी यह देखा गया है कि, छूत फैली जगह से आये चारे और गाड़ीसे भी छूत फैलती है।

यह हल्का रोग है। सांघातिक नहीं होता। इसमें पशु कम मरते हैं। दुबले पतले कमजोर पशु इसके फलस्वरूप हुई कमजोरी या अन्य रोगोंसे मर जाते हैं। यूरोपमें इसका एक घातक रूप भी है जिसमें बहुत पशु मरते हैं। पर भारतमें यह नहीं पाया जाता। यूरोपमें भी घातक रूपके अधिक रोगी नहीं होते। घातक रूपका रोगाणु हृदयकी पेशियों पर सीधा प्रहार करता है इसलिये प्राण लेता है।

छूत: गन्दे खानपानसे तुरत छूत लगती है। छूतका मुख्य कारण यही है।

छुतहे पुआल, नाद, अस्तबलकी फर्श, गोचर, पगडंडी, रेलके डब्बेके व्यवहार और रास्ते या रेलसे आनेवाले रोगी पशु भी छूत फैलाते है। पशुकी हाट, व्यवसायी, परिचारक और अन्यलोगोंका छूत फैलानेमें मुख्य हाथ है। पुआल, भूसा, चोकर, खली आदिके चलान से भी दूर दूर तक छूत फैलती है। क्योंकि भूसे आदिमें सूखे अच्छादक तन्तु (epithelium) का रोगाणु महीनोंतक जीवित रहता है।

इन सभी तथा अन्य मार्गोंसे बड़ी सरलतासे छूत फैलती है। किसी छुतहे पशुका संसर्गमात्र ही छूत लगानेके लिये यथेष्ट है। मुँहमें प्राथमिक छालोंके भी

निकलनेके पहले, छूत लगनेके ९ घन्टे बाद, लारमें रोगाणु हो सकता है। जब छाले निकलते हों और फूटते हों वह समय सबसे जादे छुतहा है। तब छालेका मवाद क्षत आच्छादक या वहिस्त्वक्के टुकडोंसे मिल जाता है। पीछे जाकर लारका छुतहापन घट जाता है। लक्षणोंके प्रगट होनेके दश दिन बाद लार छुतही नहीं रहती। छूत लगनेके पाँचवें या छठे दिन से अर्थात् लक्षणप्रकाशके चौथे और पाँचवें दिनसे यह छुतही नहीं रहती।

सर अलवर्ट होवर्डके बैल, बाड़ेके पारसे उन रोगी बैलोंके थूथनसे थूथन रगड़ा करते थे फिर भी छूतसे बच गये। (देखो खंड १, विषय परिचय, पृ० २९)। समझा यह गया कि, यह प्रतिरोध-शक्ति पशुओंको अधिक स्वास्थ्यप्रद ढंगसे पालनेके कारण है।

यह भी हो सकता है कि, जब पाँच दिनके बाद रोगाणुकी दारुणता खतम हो गयी तब उन्होंने थूथन रगडा हो। यह भी हो सकता है कि, पहले कभी यही रोग होनेके कारण वह पशु क्षमताशील हो गये हों। यह भी हो सकता है कि, संसर्गसे हुए संचारणसे उनमें रोगके प्रकट-लक्षणके बिना भी क्षमता आ गयी हो।

लक्षण : छूत लगनेके बाद पहला लक्षण (प्राथमिक छालेका निकलना नहीं देखने पर) ताप चढ़ना है। जवान हट्टे-कट्टे पशुओंको पूरा ताप चढ़ता है। बूढ़ोंको इतना कम ताप चढ़ता है कि, ध्यानमें भी नहीं आ सकता। एक दो दिन तक तेजीसे बुखार बढ़ता है। और छाले निकलने पर तेजी से उतरता है। पहले पहल बुखार चढ़ने पर कँपकँपी हो सकती है। मुँह, सींग और पूँछ गरम हो जाती हैं। पाँवमें छाले पड़ सकते हैं जिससे पशु लँगड़ाने लगता है। यह पहले लक्षणोंमें एक है। ओठके भीतर की ओर और मसूड़ेकी श्लैष्मिककला गरम, सूखी, और लाल हो जाती है। मुँहसे लारका तार छूटना है। रोमन्थ बन्द हो जाता है। खाना भी बन्द हो जाता है। पशु मुँह बन्द रखता है। जब कभी खोलता है तब चपचप आवाज होती है। जबरदस्ती मुँह खोलनेसे बहुतसा थूक निकल पड़ता है। मुँहकी श्लैष्मिक कला में भी वही परिवर्तन होते हैं जो ओठ और मसूड़े पर होते हैं।

रोगके दूसरे तीसरे दिन छाले निकलते हैं। छालोंका व्यास $\frac{1}{3}$ से १ इंच होता है। जीभके नीचेके छाले बड़े भी हो सकते हैं। एकसे तीन दिनमें छाले फूट जाते हैं। फूटा क्षत लाल रंगका और गीला रहता है। उसमें दर्द भी

होता है। छालेका सफेद या भूरे रंगका बचाखुचा अंश इसके चारों तरफ होता है।

एक या दो दिनमें क्षत पर नयी चमड़ी आ जाती है और घाव आराम हो जाता है। घाव आराम होते ही पशु चारा खाने लगता है। गायके थन पर छोटे छोटे छाले निकलते हैं। यदि दुहनेवालेके हाथों वह न फूटें तो ३६ से ४८ घंटेमें फूट जाते हैं। इनका रंगढग भी मुँहके छालोंसा ही होता है। थूथन और सींगकी जड़में भी छाले निकल सकते हैं।

मुँहके साथ साथ खुरमें भी बीमारी हो जाती है। लंगड़ापन या चलनेमें कठिनाई प्रत्यक्ष होती है। खुरकी चारों तरफ की चमड़ी और खुरकी दरार गरम और सूजी रहती और उनमें दर्द रहता है। खुरके ऊपरके छाले छोटे हो सकते हैं। उनमें पहले साफ और बाद को गंदले रंगका द्रव भरा रहता है। खुरके नीचे धीरे धीरे नयी चमड़ी निकलती है। एक दो सप्ताहोंमें पैरकी सूजन और दर्द मिट जाते हैं। बहुत जादे छाले निकलने पर खुरके चारों तरफकी चमड़ी अलग हो जा सकती है और नीचेकी चमड़ी भी निकल आ सकती है। कभी केवल मुँह और कभी केवल पैरमें रोग होता है।

साधारण तौर पर तीन चार दिनमें बुखार उतर जाता है। १५ से ३० दिनमें आराम होता है। बीमारीकी हालतमें यदि पशुकी देख भाल नहीं की गयी या उससे काम लिया गया तो खुर गिर सकता है, फोड़ा हो सकता है और पशुकी मृत्यु भी हो सकती है।

चिकित्सा : शुश्रूषा और संभालकी बहुत जरूरत है। पैरमें कीड़े न पड़ें इसलिये बहुतसी जगहोंमें रोगी पशुको छिछले पानीमें खड़ा रखते हैं। इससे पृथक्करणके साथ साथ कीड़ोंसे पैरकी हिफाजत हो जाती है जिससे खुर खराब नहीं होते। पर ऐसा करना अच्छा नहीं। क्योंकि खुरकी दरारमें कीच और गंदगी भरनेसे जलन होती रहती है और इससे छाले निकल सकते हैं।

पशुओंको खुलेमें कड़ी जमीन पर रखना चाहिये। घास फूसका बिस्तर बिछाया जा सकता है। मुँह साफ रक्खो। नीमकी पत्तियाँ और नोन डालकर उबाले पानीसे दिनमें कई बार मुँह धोओ। दिनमें दो तीन बार थन, चूची और पैर धोना चाहिये। पैरकी हिफाजतके लिये तूतियेके बहुत हल्के घोलसे धोना चाहिये। धोनेके बाद किरासनमें अलकतरा घोलकर पोतना चाहिये। इससे मक्खियाँ नहीं बैठेंगी और यह कोथघ्न भी होगा। एक एक करके पैर उठाकर उसकी गंदगी

साफ करनेके बाद धो देना चाहिये। बैलोंकी नाल उखाड़ देनी चाहिये। नहीं तो उसके नीचेका क्षत बहता रह सकता है। यदि गाय दूध देती है तो इसका ध्यान रखना चाहिये कि, चूचीमें दूध लगा न रहे। इसका भी ध्यान रहे कि, दुहनेके समय चूचीको चोट न पहुँचे। गहरी बीमारीमें बच्चे मर जाते हैं। दूध पीनेवाले बच्चोंकी मृत्यु बहुत होती है। रोग फैलने पर पृथक करने या निरोधक उपाय करनेके समय इनकी देखभाल खास तौर पर की जाय।

पंजाबके श्री वाकर और श्री टेलरने मन्या शिरामें (जुगुलर भेन) आयडिनकी सूई लगानेको बताया है।

आयडिन	...	१ ग्राम।
पोटाश आयडाइड	...	२ ग्राम।
डिस्टिल्ड (चुलाया) पानी	...	३०० सी० सी०।

सयानोंके लिये १०० सी० सी० और छोटोंके लिये २५ से ५० सी० सी० मात्रा है।

ताप चढ़ने पर छाला निकलनेके पहले सूई लगानी होती है। कहा जाता है कि, आयडिनकी सूई से रोग जल्दी आराम होता है।

इंगलैन्डकी खुरपका-अनुसंधान-समितिकी चौथी रिपोर्टमें लिखा है कि, भारतमें पाये गये परिणाम पूरी जाँच करने पर सिद्ध नहीं हो सके। आगे चलकर भारतमें वेयरने इसे अनेक बार अजमाया। पंजाबके नुस्खेके मुताबिक आयडिनका प्रयोग उसने भी किया। पर उसका भी यही मत है कि, खुरपकामें आयडिनका साधारण पुष्टईके सिवा कोई असर नहीं है।

आहार : रोग जब पूरे जोर पर रहे और छाले भरे हों तो पशुको कुछ भी चबाना कठिन है। मंड खिलाना और प्यास बुझानेके लिये पानी पिलाना सबसे अच्छा है। थोड़ीसी हरी और नरम घास दे देनी चाहिये कि, वह मन हो तब खाय। जैसे जैसे वह आराम होता जाय हरी घासके साथ थोड़ा मंड उसे दिया जाय। जबतक वह साधारण चारा खाने लायक न हो जाय यही उसका आहार होना चाहिये।

उपद्रव (Complications) : रोगके बीच उपद्रव या उपसर्ग भी हो सकते हैं जिससे इसका स्वभाव विषम हो जा सकता है। क्षतोंमें पूयकारक जीवाणुओंका आक्रमण हो सकता है। ऊपरी क्षत गहरे भी हो जा सकते हैं। इनमें पीब हो सकती है

और अगल बगलके तन्तु सूज सकते हैं। पैरोंमें पीब हो सकती है, यह प्रायः होनी भी है। सफाई रखने और नित्य कोथघ्न से कई बार धोनेसे पीब नहीं होनी चाहिये। पर असावधानी करनेसे प्रायः पैरमें खराबी हो जाती है। चलनेसे प्रदाह बढ़ जाता है। क्षतोंमें कीच और गंदगी लगनेसे यह अधिकतर होता है। कठिन प्रदाहसे खुरके ऊपर फोड़े निकल आ सकते हैं। कभी कभी क्षत ऊपर की ओर बढ़ सकता है। कभी पीब गहरे तक हो सकती है जिससे दरार हो जाती है। इस कारण खुर अलग होकर गिर जाता है।

कभी कभी दुधार गायके थनमें जमे दूधसे थनैला (स्तनप्रदाह) हो जाता है जिससे थनका रोगी भाग नष्ट हो जाता है। क्षतोंकी छूतसे पशुको जीवाणुजनित रक्तविकार (बैक्टीरियल सेप्टीसीमिया) हो सकता है जो घातक भी हो सकता है। पैरोंमें पीब या दर्द होनेके कारण यदि पशु पड़ा रहता है तो जिस करवट पड़ा हो उस तरफ गैंग्रीन हो जा सकती है। जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है।

प्रति वर्ष प्रत्येक प्रान्तमें खुरपकासे बहुत पशु मरते हैं। दुधमुँहे बच्चे सबसे अधिक मरते हैं। कमजोर पशु बहुत मरते हैं। पर इसका कोई आँकड़ा नहीं है। बात यह है कि, भारतमें छूतके बहुत घातक रोग इतने हैं कि, अपेक्षाकृत कम मृत्यु-संख्यावाले खुरपकाको लोग प्रायः सह लेते हैं। इसके सिवा अभौतिक क्षमताकारी कोई सस्ती दवा भी नहीं निकली है। यह रोगका नियंत्रण करने और तज्जन्य मृत्युसंख्या घटानेमें बाधक है।

क्षमताकरण : यूरोपमें हाइपर इम्यूनाइज्ड सिरम काममें लाया जाता है। इससे क्षणिक निष्क्रिय क्षमता आ जाती है। इससे किसी स्थानमें रोगका आगे बढ़ना रुक जाता है। भारतमें यह नहीं किया जाता। डा० जे० टी० एडवर्ड्स, डिरेक्टर भेटेरिनरी रिसर्च इंस्टिट्यूट, मुक्तेश्वर, १९२७ ने अपनी किताब "ए हैन्ड बुक फौर सटॉक ओनर्स" में ठट्ठसे रोग झटपट भगानेके लिये नीचे लिखी विधि सुझायी है :—

"जब किसी ठट्ठमें खुरपका शुरू होता है तब उसका फैलना रोकना प्रायः असंभव है। ऐसी हालतमें यही उचित और सुकर है कि, उसे कृत्रिम उपायोंसे जल्दी फैल जाने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि, इसके कारण हुई गड़बड़ी थोड़े समयमें खतम हो जायगी। इसके लिये रोगी पशुकी लार सभी पशुओंके मुँहमें चुपड़ी जाती है। यह तरीका बहुत अच्छा है। क्योंकि, लारमें जीवाणु बहुत कम होते

हैं। और प्रायः बादकी हालतमें लारमें जीवाणु बिलकुल नहीं होते। (ऐसी हालतमें मार्गी क्रिया निःसन्देह व्यर्थ है), इसलिये यह अच्छा होगा कि, चुपड़नेके लिये कई पशुओंकी लार लेकर मिला ली जाय। (रोगकी प्रारम्भिक अवस्थावाले पशुके) संसर्गसे अपने आप होनेवाले रोगकी अपेक्षा इस तरीकेसे हुआ रोग बहुत हल्का होगा। बहुत दिनोंतक रोगको फैलनेसे रोकनेमें यह उपाय बहुधा कारगर होता है।"—(पृ० ३७-३८)

रक्षाका यह उपाय संकटकालका जरूरी संचारण (एमर्जेन्सी इनअकुलेसन) कहा जाता है। हुटीरा कहते हैं कि, "गहरी हानि रोकनेके लिये यह विधि तभी काममें लानी चाहिये जब छूत हल्की हो और सयाने पशुओंमें कोई मरा न हो।"

इसका तरीका यह है कि, रोगीको कपड़ेका एक टुकड़ा चबानेको दिया जाता है। फिर उसीको चंगे पशुओंको चबाने देते हैं।

यह संचारण काममें लानेपर पृथक्करणके लिये स्थितगति-शिविरोंकी जरूरत नहीं रहती। मैं यह कहूँगा कि दोनोंमें पहला तर्जीहके लायक है। यह रोग बहुत बेगसे फैलता है और पृथक्करणकी कोशिश बेकार कर देता है। इसलिये पृथक्करण-शिविरसे बचाव संशयकी बात रह जाती है।

पृथक्करण : रोगी पशु और (उसके दोनों तरफके) सबसे नजदीकी संसर्गवाले पशुओंको अलग अलग रखना चाहिये। रोगीको एक शिविरमें और संसर्गवालोंको दूसरेमें। संपर्कवालोंको २ सैकड़ा कारबोलिक घोलसे धोना चाहिये। उनके सिर और पैरका ख्याल अधिक रखना चाहिये। दुहनेके पहले गायोंका थन छूतरहित कर लेना चाहिये।

पृथक्करण-शिविर माता-प्रकरणमें बताये स्थितगति-शिविरसा होना चाहिये। इन दोनोंमें केवल एक भेद परिचारकोंके बारेमें हो। मातामें परिचारक शिविरमें नहीं भी रह सकता है। पर खुरपकामें शिविरमें उसे वहीं पशुओंके साथ ही रहना होगा। क्योंकि यह रोग मनुष्यके द्वारा भी फैलता है। परिचारक और पशु दोनोंका खाना वहाँ पहुँचा दिया जाय और घेरेके बाहर रख दिया जाय। देनेवाले भीतर न जायँ। यदि एक सप्ताहके बाद कोई नया रोगी न हो तो शिविर तोड़ा जा सकता है।

रोगी पशुका दूध गरम करके काममें आ सकता है। पर शर्त यही है कि, थन पर छाले न हों और दूधका रंग बदला हुआ न हो।

अंतमें इस रोगके बारेमें अपनी निस्सहाय स्थितिका उल्लेख करना जरूरी है। वेयर और बनर्जीका लिखा (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३२) ऊपर कही आयडीनके द्वारा खुरपकाके नियंत्रणवाला लेख इस तरह शुरू होता है :

"यूरोपकी अपेक्षा भारतके पशु कम मूल्यके होते हैं, इसलिये भारतमें यह रोग उतना भयकर नहीं माना जाता जितना यूरोपमें। फिर भी जब कभी यह बैलों या दुधार गायोंमें फैलता है तो बड़ी कठिनाई होती है। आर्थिक हानिकी तो बातही क्या ? यह रोग प्रायः फैलता है। जान्तव या रासायनिक औषधियोंसे यदि इसका होना रोका जा सके तो इस देशके पशुपालक इसे चाहेंगे। इसी सिलसिलेमें यह कहा जा सकता है कि, मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटके प्रयोगोंमें इस रोग से बड़ी बाधा होती है। वहाँ कई सौ पशु बराबर रहते हैं। नये खरीदे पशुओंमें वर्षमें कई बार नियमित और इतने उग्ररूपसे यह फैलती है कि, तबियत ऊब जाती है।"—(पृ० १०३)

इस लेखमें रोगी पशुओंपर हुए आयडिनके प्रयोगका वर्णन है। हमारे केंद्रीय पशुरोग-गवेषणामंदिरमें यह रोग 'उबानेवाली नियमिततासे' फैलता है, इसका भी उदाहरण इसमें मिलेगा। साथ ही रोगी पशुओंकी मृत्युसंख्याका अंदाज भी मालूम होगा।

१. "मुक्तेश्वरके सिलंगुरी क्रालमें सन् १९२६ में ३० साँढ़ थे। २७ सितंबरको उनमें से ५ या ६ के बारेमें खबर मिली कि, उन्हें खुरपका हो गया है।...दूसरे दिन उनमेंसे २२ को इस रोगके क्षत स्पष्ट दिखायी दिये।"—(पृ० १०८)। औसत २० दिनोंमें सभी चंगे हो गये।

२. "१९२६ में भुलमरिया क्रालसे भी रोग फैलनेकी खबर ३० सितम्बरको मिली। दूसरे दिन जाँच करने पर २९ में २० साँढ़ों पर खुरपकाके बड़े बड़े क्षत दिखायी पड़े।"—(पृ० ११२)।

..."२० में से ९ पशु जिनकी हालत पहले से ही गिरी हुई थी इसके शिकार हो गये।"—(पृ० ११६)

३. इसके बाद सन् १९३० की अप्रैलको काम शुरू हुआ। लेखमें लिखा है कि : ... "इस सालके अप्रैलमें ८३ साँढ़ खरीदे गये। उन्हें इस इंस्टिट्यूटसे संलग्न सीतला क्रालमें रखा गया। उसी महीने की २६ तारीखको पाया गया

कि १९ पशुओंको इस रोगके क्षत हो गये है।"—(पृ० ११६)। क्षतोंकी औसत अवधि ३०·३ से २३·५ दिन दो दलोंमें रही।

४. २६ पशु खरीदे गये जिनमें ३ को खुरपकाके क्षत थे। सबके सबको रोग-रोधनके लिये आयडीन दी गयी। केवल ११ परिमापक रखे गये। आयडीन देने पर भी केवल ६ पशुओंको ही रोग नहीं लगा।

मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटकी निगरानीमें यह हाल है। इससे भारतके साधारण पशुओंमें कैसा उत्पात मच जाता हैं और कितने कमजोर पशु हर साल मर जाते हैं यह पाठक अनुमान कर लें। आरम्भकी टिप्पणीमें "कममूल्यके" पशुओंका जिकर है। पर यही कम मूल्यके पशु किसानकी एकमात्र चल या अस्थावर संपत्ति हैं इसलिये हानि बहुत बड़ी होती है।

भारतमें इस रोगके बारेमें अधिक ध्यान नहीं दिया गया है इसका यह कारण हर्गिज नहीं कि, "पशु कम मूल्यके" होते हैं। क्योंकि, यह बात तो माताकी छूतके बारेमें भी लागू होती है। कारण यह है कि, हमारे कार्यकर्ता अधिक मारक रोगोंके कार्यमें बेतरह फँसे हैं। साथ ही भारतीय स्थितिके अनुकूल इस रोगका कोई बढ़िया रोधक मिल नहीं सका है।

..."भारतमें खुरपका बहुत फैलता है। ढोरके प्लेग (माता) से भी जादे यह फैलता है। इस रोगके बीज दृष्टिपर-रोगाणु भी हैं। औरोंसे अधिक प्रतिरोधी हैं तथा अधिकतर अप्रत्यक्ष उपायोंसे फैलते हैं—जैसे, मनुष्य, चारा, बिस्तर या अन्य सामान जो रोगी पशुके संपर्कमें रहे हों उनके जरिये। यह वायुके द्वारा भी फैलते हैं ऐसा मालूम होता है।

"यूरोपमें और विशेषकर इंगलैन्डमें खुरपकाके नियंत्रण पर बहुत खर्च किया जाता है। पर भारतमें यह इतना ध्यान देने लायक नहीं माना जाता। इसके अपेक्षाकृत कम महत्वके दो कारण माने जाते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं :—(१) भारतमें ऐसे संक्रामक रोग हैं जिनसे मृत्यु अधिक होती है जैसे कि माता और गलघोंटू। इसलिये इन पर अधिक ध्यान देना होता है। (२) इस रोगसे भारतीय ढोर बहुत कम मरते हैं। इसलिये बहुत व्यापक नियंत्रण की जरूरत नहीं होती। ऐसे नियंत्रणोंका भारतकी अवस्थामें काममें लाना बहुत कठिन है।"

..."रोगकी उग्रता इसके अलग अलग आक्रमणोंमें (outbreaks) में विभिन्न होती है। कुछ जिलोंके, खासकर पहाड़के ढोर औरोंकी अपेक्षा अधिक ग्रहणशील

मालूम होते हैं। कभी कभी उग्ररूपमें खुरपका होने से छोटे बछड़े मर जाते हैं। बूढ़े पशु मजबूत सयाने पशुओंकी अपेक्षा अधिक ग्रहण-शील मालूम होते हैं।

"पर इस रोग से हुई हानियाँ मृत्युसंख्यासे नहीं आँकी जा सकतीं। रोग होने पर पशुओंकी हालत खराब हो जाती है। खासकर वह अपना नियमित आहार नहीं खा सकते। दुधार पशुओंका दूध घट जाता या बन्द हो जाता है, कामके पशु लंगड़ाने के कारण काम नहीं कर सकते। मिलनेवाला आहार यदि कड़ा या कम हुआ तो छूत लगे ठट्ठके बहुतसे, खासकर कमजोर पशु, मर जा सकते हैं। मृत्यु रोगके कारण उतनी नहीं होती जितनी जीवनधारण करनेलायक आहार नहीं खा सकनेके कारण होती है।"—(एडवर्ड : ए हैन्डबुक ऑफ स्टॉक ओनार्स, पृ० ३४-३७)

भारतमें खुरपकाका सही चित्र ऊपरके वर्णनमें दिया गया है। यह सन् १९२७ में लिखा गया था। तबसे १८ वर्ष बीत गये। पशुचिकित्सा शास्त्रने तबसे उल्लेखनीय प्रगति की है। पर भारतमें हम १९२७ में जहाँ थे वहीं हैं, एक डेग भी आगे नहीं बढ़े हैं। यह असहाय स्थिति है। इस ओर अधिक ध्यान दिया जाय और जो लोग देश विदेशमें गवेषणा कर रहे हैं वह सफल हों, हम लोग तो यही केवल चाह सकते हैं। आयडिन की सूईसे कुछ आशा हुई थी पर वह भी भ्रामक सिद्ध हुई। इसके बाद अनेक दूसरी रसायनिक दवायें, रंजन पदार्थ, जीवाणुनाशक आदिके प्रयोग हुए और विभिन्न स्थानोंसे उनके लिये सिफारिशें हुईं। पर साधारण जाँचमें एक भी नहीं ठहरा।

पारद और लौहजन्य औषधियाँ अच्छी मानी गयीं। पर कमी उनमें भी पायी गयी। संखियाकी बनी विभिन्न दवायें भी जोशके साथ अजमायी गयीं। पर व्यावहारिक फल कुछ नहीं निकला। टारटर एमेटिक (वामक), पोटैशियम आयोडाइड और कुनैन भी इस रोग पर व्यर्थ हुये। विभिन्न नीलरंजकों, उनके संखियायुक्त पदार्थ, यूरियाजन्य पदार्थ, आयडिन, गंधक, फौर्मोल और टार (अलकतरा) के भी व्यापक प्रयोग निष्फल हुए।

खमीर (ईस्ट) की वस्तुओंका अलबूमेनके साथ योग खास कमीशनने अजमाया। उसके बारेमें भी जो दावा था वह सिद्ध नहीं हो सका।

भैक्सीन और सिरमके प्रयोग भी निराशाजनक रहे। कृत्रिम माध्यममें रोगाणु तैयार नहीं किये जा सकते। इसलिये यह काम भी जहाँका तहाँ है। क्षमताके लिये सिरम अबतक बनाये जा रहे हैं। पर अधिक मात्राके उपयोगसे

ही यह क्षमता पैदा कर सकते हैं। वह भी इतने थोड़े दिनके लिये कि, जबतक रोग फैला रहता है तब तक भी उसका असर नहीं रहता। इसलिये प्रायः दो तीन बार सूई लगानी होती है जिसमें बहुत खर्च होता है।

इन कारणोंसे खुरपकेकी बुराई हमें अन्य बुराइयोंकी तरह धीरजसे सहनी होगी। साथही हमें अच्छी परिचर्या (तीमारदारी), अच्छे अकोथीय ढगसे पशुकी संभाल, उन्हें जादे अच्छे वातावरणमें रखना, उन्हें जादे अच्छा खाना देना कि, उनमें सहज प्रतिरोध-शक्ति अधिक हो जाय, इन बातों पर अपना ध्यान जमाना होगा।

१३८६. Dengue : तिनदिना बुखार : डेंगू।

पर्याय :— एफेमेरल फीभर, स्टिफ सिकनेस। **हिंदी**—भिल, चारमेख, ऊचवाली।

यह सभी जातिके ढोरोंको होनेवाला उग्र ज्वर है। यह एक तरहका डेंगू है। इसकी अवधि ३ दिनोंकी है। इसके बाद रोगी अच्छा हो जाता या कभी कभी मर जाता है। पश्चिमोत्तर भारत और उसके आसपास यह बहुत होता है। मिश्र, ट्रांसवाल, नेटाल, केपकलोनी और वेस्ट इंडीजमें यह हुआ करता है। यह प्रायः बरसातमें या उसके बाद होता है। यह संक्रामक नहीं है। पर इसकी छूतके बाहन कीड़े (मच्छर, डाँस) हैं। छूत लगानेवाले जीव, दृष्टिपर-वर्गके रोगाणु हैं। ये रक्तमें विकार पैदा करते हैं। लक्षण-प्रकाशका समय २ से ३ दिन है। यह अचानक हो जाता है, एक साथ कई पशुओं पर इसका आक्रमण हो सकता है। आक्रमण एकही समयमें विभिन्न स्थानों पर हो सकता है।

लक्षण : अचानक आक्रमण होता है। इसमें तापमान १०४ से १०७ डिग्री फा० तक हो जाता है। बुखारमें एक या अनेक जगहोंकी पेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। यह अकड़न गर्दन या सारे शरीरमें फैल सकती है। अकड़नसे पशु लंगड़ाने लगता है। कभी कभी वह खड़ा नहीं हो सकता और खड़ा भी होता है तो कमर कमानसी तिरछी हो जाती है। भूख नहीं लगती, रौंथ बंद हो जाती है और निगलनेमें कठिनाई होती है। कब्जियत या पतले दस्त, कुछ भी हो सकते हैं।

तापमान चढ़ने और लंगड़ेपनसे लँगड़ीका भ्रम हो सकता है। उसी तरह तापमान और पतले दस्तसे माताका संदेह हो सकता है। ठट्ठके बहुत थोड़े पशु, प्रायः २० सैकड़ा बीमार पड़ सकते हैं।

रोग तीन दिनमें खतम हो जाता है। मृत्यु बहुत कम होती है। शवपरीक्षामें देखा जाता है कि खून बहुत जल्दी थक्का हो जाता है।

चिकित्सा : लक्षणोंके अनुसार केवल परिचर्या करनेकी जरूरत है। पूर्वावस्थामें एप्सम नमककी (मैगसल्फकी) एक मात्रा (½ से १ रत्तल) देनी चाहिये।

निरोधक उपाय : यदि लंगड़ी या माताका शक हो तो बीमार पशुओंको अलग कर देना ही बुद्धिमानी होगी। क्षमताकारी दवाकी कोई जरूरत नहीं। कुछ है भी नहीं।

१३६०. Cow-Pox : चेचक : गोशीतला।

पर्याय :— भैरिओला, भैक्सीना। **हिंदी** — माता, चेचक।

मनुष्य और पशुकी चेचक : मनुष्य, गाय, भेड़, बकरी, ऊँट और घोड़ेकी इस बीमारीका साधारण नाम चेचक है। इस रोगमें बुखार होता है। यह संक्रामक और उग्र है। इसमें त्वचा और उससे संलग्न कलापर पतले छाले निकलते हैं। एक भीषण रोगाणुके कारण यह रोग होता है।

सभी पशुओंकी चेचकका मूल एक ही माना जाता है। पर विभिन्न पशुओंमें अगिनत बार होनेके कारण उसके विभिन्न लक्षण हो गये हैं। सभी पशुओंके चेचकके रोगाणु जब खरगोशमें डाले जाते हैं तो वह बदल कर गोचेचक हो जाते हैं। यही इसकी पहचान है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, गोचेचक और नर-चेचकमें बहुत निकट सम्बन्ध है। यह माना जाता है कि, जब नरचेचकका रोगाणु गायमें डाला जाता है तब वह गोचेचक बन जाता है। यह माना जाता है कि मूलमें गायको चेचक मनुष्यसे मिली। यूरोपमें नरचेचकके उन्मूलनके साथ ही साथ गोचेचक भी खतम सी हो गयी है। यह बात ऊपरके अनुमानको पुष्ट करती है। अन्य पशु भी नरचेचकके लिये ग्रहणशील हैं। गायमें जानेके बाद नरचेचकका रोगाणु कमजोर हो जाता है। गायसे प्राप्त यह कमजोर किया हुआ रोगाणु मनुष्यको टीका लगानेके काममें आता है। इससे चमड़ेमें केवल उसी स्थान पर छाला निकलता है। एकस्थानीय छालेमें

प्रतिपिंड बनते हैं जो रक्तमें मिल जाते हैं। इससे पूरी क्षमता आ जाती है। टीका लगने से मनुष्यको कई सालके लिये क्षमता हो जाती है। गायको क्षमता इतनी स्थायी नहीं होती।

चेचकका रोगाणु तापका बड़ा भारी प्रतिरोधी है। ग्लिसरीनमें १८० डिग्री से० तक की गर्मीमें भी वह जीता रहता है। अंधेरेमें रखनेसे ग्लिसरीनमें वह ८ से १० महीने तक उग्र बना रहता है। साधारण तौर पर ६ मिनट तक ५८.५ डिग्री से० ताप पर सुखानेसे यह मर जाता है।

विस्तार (Incidence) : तन्दुरुस्त गायोंको यह रोग रोगी गायोंसे होता है। पर अधिकतर चेचकका टीका तुरत लगवाये हुए आदमीसे हुआ करता है। इसका प्रमाण यह है कि, मनुष्योंको टीका लगनेके बाद गायोंको चेचक होती है। दुहनेवालोंसे ठट्ठकी गायोंमें छूत फैलती है। एक गायकी छूत अन्योंको इनके हाथों दुहनेके समय लग जाती है। पुआल, चारा या गोबर आदि जैसे पदार्थसे भी छूत फैल सकती है।

लक्षण : गायोंका यह हल्का रोग है। चार से सात दिनकी प्रच्छन्नावस्थाके उपरान्त रोग प्रगट होता है। उस समय हल्का बुखार हो जाता है। भूख घट जाती है। रौंथ बन्द हो जाती है। चूचियाँ गरम हो जाती हैं और सूज जाती हैं। दूसरे या तीसरे दिन चूचियों पर छाले निकल आते हैं। वह मटरके बराबर होते हैं और एक दो दिनमें वह भर जाते हैं। भरे छालोंका रंग चमड़ेमें उनकी गहराई के अनुपातसे गुलाबी, नीला या मटमैला हो सकता है। ये ८ से ११ दिनमें पूरा बढ़ जाते हैं। इसके बाद वह बीचमें कुछ धँस से जाते हैं। इसके बाद उनमें पीब होती है और तब वह सूखते हैं और पपड़ी पड़ती है। पपड़ी झड़ने पर दाग रह जाते हैं। थन और चूची पर कम ही दाने, एक से २० तक निकलते हैं। नरके फोते या अडकोष पर छाले निकल सकते हैं। कठिन रोगमें छाले जाँघ, पेड़ू, छाती, गरदन और थूथनपर निकल सकते हैं।

खुरपकाके छाले चेचकके छालोंसे बहुत बड़े होते हैं। इसलिये वह अलग पहचाने जा सकते हैं। खुरपकामें खुरके शिखरदेशपर भी छाले निकलते हैं पर चेचक में नहीं।

चिकित्सा : गायका थन साफ और सूखा रखना चाहिये। दुधार पशुओंको सावधानी से दुहना चाहिये। थनमें दूध छोड़ना बुरा है। इससे थनैला हो

सकता है। बछरू को पिलानेसे छालेमें क्षत हो सकते हैं। इसलिये सावधानीसे दुहना होता है। फुंसियोंमें पकानेवाले जीवाणु रह सकते हैं। इससे घाव या अन्य उपद्रव हो सकते हैं। छाले जब फूटें तब नित्य दो बार नीमकी पत्तीके साथ उबाले पानीसे धोना चाहिये। इसके बाद बोरिक मलहम जैसे कोथघ्न लगाना चाहिये। जिस लसीकाका टीका मनुष्यको लगता है और जैसे लगता है उसी तरह टीका लगा कर पशुकी रक्षा की जा सकती है। पर यह अनावश्यक है। गायोंमें यह रोग वेगसे नहीं फैलता। स्वास्थ्यसम्बन्धी सावधानी और दुहनेवालों तथा रखवालोंकी सतर्कता ही जरूरी है। स्वस्थ और रोगी गायोंको एक ही आदमी न दुहे। रोगी गायके दूधका रंग यदि स्वाभाविक हो तो उबालकर काममें लाया जा सकता है।

मनुष्यके लिये भैक्सीन बनानेके लिये लगभग ६ महीनेके बछरूका उपयोग होता है। पेटपरका सारा रोंआँ मूँड़कर त्वचा साफ की जाती है। इसके बाद पाछकर ऐसी भैक्सीनका संचारण किया जाता है, जो पहले खरगोश और बछरू में क्रमसे पाछकर निकाली हुई रहती है। छाले और फुंसियाँ समय पर निकलते हैं। खास तरहके निचोड़नेवाला चमच से छाले जमा किये जाते हैं। इससे मंड बनता है। मंडमें ५० सैकड़ा ग्लिसरीन मिलायी जाती है, इसे पी एच (pH) ७·६ तक क्षारीय बनाया जाता है और ०·१ सैकड़ा लौंगका तेल मिलाया जाता है। यह वस्तु — ११ डिग्री से० ताप पर रख दी जाती है जो दो वर्ष तक रह सकती है। इसमें यदि कोई दूषित करनेवाले जीवाणु हों तो उन्हें ग्लिसरीन और लौंगका तेल मार डालता है। एक बछरूसे भैक्सीनकी एक हजार मात्राएँ जमा की जा सकती हैं। चेचकके रोगाणु बछरू और खरगोशकी देहमें डालनेके बाद भैक्सीनिया (गोचेचक) बन जाते हैं। इनका पाछ लगानेसे मनुष्यको कई वर्षतक चेचक की छूत नहीं लगती।

१३६१. Contagious Pleuro-Pneumonia : संक्रामक प्लूरोनिमोनियाँ।

यह ढोरका विशिष्ट रोग है और संक्रामक है। मुख्यरूपसे फेफड़ा और उरस्याकलामें रोगका असर होता है। फेफड़ेके संयोजक ततुओं और उरस्याकी

दरीमें बहुतसी लसीका भर जाती है। यह रोग एक विशेष प्रकारके बहुरूपी (पोलीमोरफस) जीवाणुके कारण होता है।

पहले यह समझा जाता था कि, यह रोग भारतमें नहीं होता। पर हालकी खोजसे स्पष्ट पता चला है कि, यह भारतमें संक्रामक रूपमें है और इसके कारण बहुतसे पशु मर जाते हैं। उदाहरणके लिये आसाम भी एक प्रान्त है जहाँ इस रोगका होना निश्चित रूपसे सिद्ध हो चुका है। वहाँ आजकल मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटकी ओर से इसका मुकाबला करनेका उपाय खोजनेके लिये गवेषणा हो रही है।

यूरोपमें यह बहुत होता था। पीड़ित और संदिग्ध पशुओंको मारकर वहाँ यह वश कर लिया गया है। इंगलैंन्डमें बहुत खर्च करके यह निर्मूल कर दिया गया। सरकारकी तरफसे रोगी और संदिग्ध पशुओंको मार देनेके लिये उनके मालिकोंको पशुओंका दाम दे दिया जाता था। इस रोगका घर एशिया है। यहाँ यह बारहमासी है।

जीवाणु (micro-organism) : पहले यह समझा जाता था कि, इसके जीवाणु छन जाने लायक (संमृजनीय) रोगाणु हैं और प्रयोगशालामें प्रस्तुत कृष्टि-रूपमें ही इन्हें देख सकते हैं। पर अब हालकी गवेषणासे इनके लक्षणोंका पता चल गया है। विभिन्न लोगोंने इसके विभिन्न नाम रखे हैं। सर्वश्री टरनर, कैंपबेल और डिकने इसका एक नाम बोरेलोमाइसेस पेरीनिमोनियाँ रखा। यह एक प्रकारका स्किजोमाइसीटीज (स्वयं विभक्त होकर वंशवृद्धि करनेवाला फंजाई या बैक्टीरिया) है। इसे एम' फैडियनने (M' Fadyan) दिखा दिया है।

ग्रहणशीलता : स्वाभाविक अवस्थामें यह रोग गाय भैंसको हो जाता है। अन्य पशु या मनुष्यको इसकी छूत नहीं लगती। इसकी ग्रहणशीलता व्यक्ति, नस्ल और रहनसहनके अनुसार विभिन्न होती है। किसी ठट्ठमें बहुत से ऐसे पशु पाये जाते हैं जो इस रोगके प्रतिरोधी हैं। प्रायौगिक संचारणमें लगभग २० सैकड़ा बछरुओंपर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं होती।

सहज छूत (Natural infection) : रोगी पशुकी छोड़ी साँस लेनेसे नाकके द्वारा छूत लगती है। किसी ठट्ठमें एक रोगी पशुका रहना ही धीरे धीरे छूत फैलानेके लिये काफी है। सबसे पासवाला पहले छूत पकड़ता है। निरोग होनेके दो तीन वर्ष बाद सुस्थ दिखायी पड़नेवाले पशुके फेफड़ेमें इसके जीवाणु हो

तो वह भी छुतहे हो सकते हैं। यदि संचारित पशुके फेफड़ेमें कुछ फेर बदल हो गया है तो संचारणकी प्रतिक्रिया मिट जानेके बाद वह भी छुतहा हो सकता है।

लक्षण : त्वचामें छूत लगनेके बाद लक्षण प्रकट होनेका काल ६ से २७ दिनका होता है और साँस द्वारा छूत लगनेसे १२ से १६ दिनका। पर सहज छूतमें यह काल शायद जादा, प्रायः चार सप्ताहका होता है। **क्रूपस निमोनियाँकी** तरह इसके लक्षण धीरे धीरे बढ़ते हैं। तापमान थोड़ा बढ़ता है। कष्टदायक सूखी खाँसी होती है। इसीसे इस रोगका संदेह होना चाहिये। खाँसी धीरे धीरे बढ़ती है। विशेषकर सबेरे, खड़े होने या पीने के समय या ठंढ लगनेसे खाँसी बढ़ती है। भूख घट जाती है, रौंथ देरसे होती है और दूध घट जाता है। कभी कभी गरदन पर सूजन हो जाती है। साँस-कष्टके चिह्न क्रमशः अधिकाधिक स्पष्ट होते हैं। नाकसे रेंट (नेटा) बहती है। ताड़न-परीक्षासे कंधेकी हड्डीके पीछे और कुछ ऊपर तक प्रतिध्वनि अस्पष्ट मालूम पड़ेगी। श्रवण-परीक्षासे साँसमें क्षीणता और कुछ करकराहट सुनाई पड़ेगी। उरस्याकला या फुसफुसावरण आक्रान्त हो तो घर्षण-स्वर सुनाई देगा। कड़ी बीमारीमें कराहनेका स्वर सभी स्वरोंको दबा सकता है।

पेशाब कम और गहरे या काले रंगकी होती है। जैसे जैसे रोग बढ़ता है तापमान १०५ या १०६ फा० हो जाता है और अंत तक बना रहता है। पिछली अवस्थामें त्वचाकी फैलने सिकुड़नेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। बालकी चमक मिट जाती है। कब्ज या दस्त हो सकते हैं। जीवन-शक्ति घट जाती है।

इस रोगसे रक्त विषाक्त हो सकता है जिसमें केवल बुखार होता है। इसके बाद यह बन्द हो जाता है और रोगी स्वस्थ हो सकता है। बहुत जादे बुखार होनेसे इस रोगसे सप्ताह भरमें ही रोगी मर सकता है। पर साधारण तौर पर रोगका समय करीब चार सप्ताहका होता है, जिसमें प्रायः ३० से ५० सैकड़ा रोगी मर जाते हैं। जो आरोग्य हो जाते हैं, उनके फेफड़ेमें क्षत बना रह सकता है जो कभी रोगको फिरसे प्रगट कर सकता है। हल्की बीमारीमें रोगी पूरी तरह निरोग हो सकता है।

भेदसूचक निदान : अणुवीक्षण या शवपरीक्षाके बिना केवल ऊपर कहे लक्षणोंसे **उरस्याकलाकी निमोनियाँ या यक्ष्मा** (Pneumona Pleuritis or Pulmonary Tuberculosis) का भेद समझना बहुत कठिन है।

भेदसूचक निदानमें गलघोंट्र और सेपटिक निमोनिया का भी विचार करना चाहिये। ट्यूबरकुलिन-परीक्षणसे यक्ष्मा पाये जानेसे दोनों बीमारियोंके संयुक्त आक्रमणकी संभावना मिटती नहीं।

चिकित्सा : इस रोगकी कोई अव्यर्थ औषधि अब तक नहीं मिली है। 'नियो-सालभरसन" की बड़ी तारीफ हुई थी पर वह लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई। आसाम प्रान्तके भेटेरिनरी रिपोर्टमें (सन् १९४०-४१) लिखा है कि, "नोभरसेनोबियोन (N.A.B.)" की सूई शिरामें लगानेसे "फायदेकी उम्मीद मालूम हुई"।

प्रतिरसकी चिकित्सा बहुत तारीफके लायक नहीं। यद्यपि कुछ अवस्थामें सिरम और भैक्सीनकी रक्षात्मक सूईसे पशुओंकी मृत्युसंख्या घटी है फिर भी भारतमें यह उपाय काफी बढ़ नहीं सका। पर इस उपायमें कई व्यावहारिक दोष हैं। उनमेंसे एक यह है कि, संचारित पशु भी कुछ समयके बाद छूत फैला सकते हैं।

पृथक्करण : छूत लगे पशुओंको पृथक् कर देना चाहिये। इन पशुओंको स्वास्थ्य-विधिसे रखना और अच्छी तरह खिलाना पिलाना चाहिये। उनकी संभाल भी अच्छी हो। पुराने रोगियोंको खुली आबहवा और धूपमें पुष्ट भोजनका उपयोग स्वच्छन्द करने देनेसे वह रोगमुक्त हो सकते हैं। रोगमुक्त दिखायी देनेवाले पशुओंको अन्योंसे मिलने देनेके पहले उनकी जीवाणुशास्त्रीय परीक्षा कर लेनी चाहिये।

१३९२. Tuberculosis : **यक्ष्मा या क्षय।**

पर्याय :— ट्यूबरक्यूलोसिस, कंसंपसन, थाइसिस। **हिंदी**—सूखा, खानाजीर, क्षय, छयी, तपेदिक। **आसाम**—खेह रोग। **गुजराती, मराठी, कन्नड़, मलयालम, तैलंगी**—क्षय। **पंजाबी**—हंजीरन। **सिंधी**—सिला। **तामिल**—क्षयम्।

यक्ष्मा : मनुष्योंमें होनेवाले रोगका ही यह एक प्रकार है। गायकी यक्ष्मा प्रायः बच्चोंको हो जाती है। इसमें लसीका-बाहिनियाँ, हड्डी और जोड़में रोग पकड़ता है। पर गायकी यक्ष्माका फेफड़ेकी यक्ष्मासे कुछ लेना देना नहीं है। गायसे

मनुष्यका साधारणतः इतनी गायके दूध द्वारा छूत लगती है। क्षयीके जीवाणु उबालनेका ताप नहीं सह सकते। उबालनेसे दूधके जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भारतमें गोक्षयकी छूत मनुष्योंको लगनेकी संभावना कम है। क्योंकि, यहाँ साधारण तौर पर लोग उबाल कर ही दूध पीते हैं।

गोक्षयका यूरोपमें बड़ा आतंक है। क्योंकि, वहाँ बहुत जादे गायोंको इस रोगकी छूत रहती है। वहाँ दुधार गायें कृत्रिम रीतिसे रखी जाती हैं। उन्हें धूप कम नसीब होती है। इसीलिये वहाँ गाय और अन्य ढोरको क्षयी होती है। भारतमें भी यह रोग है। पर अपेक्षाकृत बहुत कम। कसाईखानेकी रिपोर्टोंसे कुछ क्षयग्रस्त गायोंका पता चलता है। लेकिन उरस्या और उरकी लसीका-ग्रन्थियोंमें भी रोग घुस गया हो ऐसे रोगी शायद ही देखे जाते हैं।

भारतमें भी यूरोपके ढंग पर जो पशु जादेसे जादे दूधके लिये पाले जाते हैं उनमें क्षय अधिक होता है। किसानोंके ढोर जिन्हें अधिकतर बाहर रहना होता है उन्हें अपेक्षाकृत यह रोग नहीं के बराबर है। यह रोग कदाचित् ही होता है। तो भी इसके बारेमें पूरी जानकारी होना अच्छा है। क्योंकि इससे यह जाना जा सकेगा कि, किस पशुको यह रोग है और तब उसकी रोकथाम की जा सकती है।

ग्रहणशीलता : बहुतसे पशुओंको सहजही या संचारणसे यह रोग लग जाता है। गायमें इसकी ग्रहणशीलता विशेषकर है। भेड़-बकरीकी क्षमता उल्लेखनीय है। घोड़े खच्चर और गदहोंको शायद ही इसकी छूत लगती है। उसी तरह कुत्ते बिल्लियोंको भी नहीं। ऊँटको यह हो जाता है। बँधे रहनेवाले बनमानुस और बंदर इस रोगसे मर जाते हैं। यह गोक्षयके बारेमें है जो नरक्षयसे भिन्न है। एक तरहका क्षय चिड़ियोंको होता है। इसे पक्षिक्षय (avian tuberculosis) कहते हैं। कभी कभी मुर्गियों, तुर्कों (पेरू पक्षी) और बतकोंमें यह महामारीकी तरह फूट पड़ता है।

क्षयका जीवाणु परोपजीवी ही है। पर यह माना जाता है कि, यह मृतजीवीकी तरह भी रह सकता है। यह एसिड-फास्ट वर्गका जीवाणु है। इस जीवाणुके धब्बे (stain) पर तेजाबका असर जल्दी नहीं होता। इस वर्गके केवल कुछ ही जीवाणु हैं। यह ऑक्सीजनमें या उसके बिना भी जीता है। इसकी कृष्टिपर सूर्यप्रकाश पड़नेसे ७ से १८ दिनमें उसके सब जीवाणु मर जाते हैं। तीव्र प्रकाशसे थूकके जीवाणु कुछ घंटोंमें ही मर जाते हैं। सुखाये थूकमें यह

महीनों तक छूत फैलाने लायक रह सकते हैं और पानीमें कई सप्ताह। १४० डिग्री फा० का आर्द्र ताप (ऊमस) इसे घंटे भरमें मार देता है। यह साँस और खाने पीनेसे भी फैलता है। बछड़ेको अपनी माँसे यह रोग लगनेका कारण प्रायः क्षययुक्त दूध पीना होता है।

ग्रेट ब्रिटेनमें यह अनुमान है कि, वहाँ कमसे कम २० सैकड़ा ढोर क्षयग्रस्त हैं। आर्थिक सलाहकार समितिकी साक्ष्यके अनुसार क्षयपरीक्षामें ४० सैकडामें इसकी छूतका पता चला। ग्रेट ब्रिटेनमें गोक्षयसे प्रतिवर्ष बीस लाख पाउन्डकी आर्थिक हानिका अनुमान किया जाता है। रोगियोंकी संख्या बहुत बड़ी है। इसलिये वहाँ इस रोगके उन्मूलनका सरकारी प्रयासभी उतना ही बड़ा है। ग्रेट ब्रिटेन तथा और कई देशोंमें कानून है कि, ढोरको क्षय प्रगट होने पर उनके मालिक सरकारको इसकी सूचना दें। रोगका स्पष्ट पता पाकर कानूनी तौर पर उनका वध कर दिया जाता है। मालिकोंको उनके लिये हर्जाना दिया जाता है। सन् १९३४में ग्रेट ब्रिटेनमें ७८,०७७ पाउन्ड अर्थात् लगभग १० लाख रुपये हर्जाने की रकमके चुकाये गये। २२,००० ढोर मार डाले गये थे।

जीवाणुकी दारुणता : ढोरमें गोक्षयके जीवाणु अत्यन्त दारुण हो जाते हैं। त्वचामें इसकी कृष्टिका ०.०५ ग्राम संचारण करनेसे क्षयकी प्रगति बढ़ जाती है। पर ढोरमें नरक्षय का सचारण करनेसे एकस्थानीय क्षय विकार ही चकत्तेके रूपमें होता है, यह चकत्ता या उभार सब शरीरमें नहीं होता। तरुण पशु यदि गोक्षय जीवाणुयुक्त कोई वस्तु खा लें तो उन्हें कठिन छूत लग जाती है। यद्यपि थूक छूत फैलानेवाली मुख्य वस्तु है तौभी छुतहे पशुके थूकमें जीवाणु प्रायः नहीं पाये जाते। पर छुतहे पशुके गोबरसे छूत बहुत फैलती है। प्रायः यह होता है कि, छुतहे पशु फेफड़ेके जीवाणुसे भरे कफ या थूक निगल जाते हैं। यह पेट या आँतमें मरते नहीं, गोबरके साथ बाहर निकल आते हैं। इसके अलावा आँतोंके व्रण या छुतहे यकृतके जीवाणुभी गोबरके साथ निकल आते हैं। इसलिये छुतहे पशुका गोबर जीवाणुसे भरा रहता है और गोशाला या जमीनमें छूत फैलाता है। गोशाला या जमीनकी धूलके साथ ये जीवाणु जीते जागते साँसकी राह पशु-शरीरमें पहुँच जाते हैं।

मूत और दूधमें भी जीवाणु होते हैं और छूत फैलाते हैं। जिस पशुसे क्षयके जीवाणु बाहर निकलते हों या जो रोगग्रस्त हो चुका है वह बराबर छूत फैलाता

रहता है। ट्यूबरक्युलिन परीक्षामें जिन पशुओं पर प्रतिक्रिया होती है उन्हें स्पष्ट रोगियोंकी श्रेणीमें नहीं रखना चाहिये। जिनमें इस परीक्षाकी प्रतिक्रिया होती है वह बुरी तरह छुतहे नहीं भी हो सकते हैं। यदि इनमें रोग-लक्षण नहीं हों, इनके मलमूत्र और स्रावोंमें जीवाणु नहीं पाये जायँ तो केवल प्रतिक्रियाके कारण पशुको केवल संदिग्ध ही मानना चाहिये। ग्रेट ब्रिटेनमें केवल उन्हीं पशुओंको कानूनके द्वारा वध कर दिया जाता है जो स्तनके क्षयसे ग्रसित हों या जिनके दूधमें क्षयका असर हो या जिनमें जीर्ण खाँसीके साथ क्षयके स्पष्ट लक्षण मिलते हों।

अर्बुद या क्षत : ढोरमें क्षयके अर्बुद प्रायः उर और फेफड़ोंमे होते हैं। उनकी पार्श्ववर्ती ग्रन्थियाँ विशेषकर आक्रान्त हो जाती हैं। क्षयके अर्बुद फेफड़ोंके तंतुमें भी पाये जा सकते हैं। वहाँ उनका रूप भूरे पनीरके अर्बुद या अर्बुदसमूहसा होता है। क्लोमशाखामें भी इसका असर हो जाता है। महास्रोतस् या अन्नवहा नाली, यकृत, उरस्या, आँतोंकी लसीका-ग्रन्थियाँ, प्लीहा, वृक्क, नासाखात, कंठ, थनमें भी रोगका असर हो सकता है।

लक्षण : सहज छूतमें प्रच्छन्नकाल दीर्घ होता है। देरसे लक्षण प्रकट होते हैं। कई महीनों या वर्षोंपर रोगके लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

फेफड़ेका क्षयही जादा होता है। प्रारंभिक अवस्थामें हल्की, सूखी और कष्टकारी खाँसी होती है। ठंडी या धूलभरी हवासे या दौड़ने और मेहनतके कारण रक्तसंचार की अधिकतासे अथवा ठंढा पानी पीनेसे साँसकी नलीकी श्लैष्मिक कलाकी उत्तेजना इसका कारण होती है। मेहनतसे थकावट बहुत होती है।

आगे चलकर जैसे जैसे रोग बढ़ता है फेफड़ेके लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। खाँसी प्रायः होने लगती है और कष्टदायक भी होती है। कभी यह सूखी होती है। कभी मुँहमें पीबमिश्रित कफ भर आता है और कभी यह नाककी राह बाहर निकल आता है। पर अधिकतर यह कन्ठके नीचे उतर जाता है। खाँसीके बाद मुँह खोलने पर कोमल तालुके आगे जीभ और पिछले चर्वणक दाँतोंके बीच थूक पाया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शकमें परीक्षा करनेसे इसमें पीब, फेफड़ेके वायुकोषकी झिल्लियाँ, तंतु और कभी कभी क्षय-जीवाणु मिलते हैं। रोग जैसे जैसे बढ़ता है साँस लेनेकी तकलीफ वैसे वैसे बढ़ती है।

श्रवण-परीक्षामें साँसका स्वर कभी जोरका, कभी मन्द सुनाई पड़ता है और कहीं सुनाई भी नहीं पड़ता। थोड़े बढ़े रोगमें घरघराहट या पानीदार पटपट आवाज भी सुनाई पड़ सकती है। जब फेफड़ेका क्षत सतहकी ओर जादे बढ़ने लगता है तब नाड़नस्वर मन्द या अस्पष्ट होता है। जब बड़े बड़े छेद बन जाते हैं तब दुन्दुभी-स्वर या घनघनाहट सुनाई पड़ती है। लसीका-ग्रन्थियोंमें परिवर्तन और प्रदाह होने लगता है।

कहा जा चुका है कि, क्षय केवल फेफड़ेमें ही नहीं होता। यह किसी अवयव, अस्थि या संधिमें भी हो सकता है। जिस अंग या अस्थिविशेषमें इसका आक्रमण होता है उसके अनुसार इसके लक्षण भी विभिन्न होते हैं।

खूनकी कमी होती है और देह दुबलाने लगती है। इससे पुराने क्षय रोगीका विशिष्ट रूप या बाहरी लक्षण मालूम होता है।

यदि पाचन-प्रणाली पर आक्रमण हुआ तो मुँहके भीतर घाव और फुड़ियाँ निकल सकती हैं। आँतोंके क्षयमें पाचनकी गड़बड़ी होती है और समय समय पर शूलसा दर्द होता है। दस्त थोड़ा या जादे पतला होता है जिसमें पीब, रक्त और आंव भी हो सकती हैं।

यदि जीवाणु थनमें घर कर लेते हैं तो वह कड़ा हो जाता है। कभी कभी ग्रन्थि-ततुओंमें कड़े और पीड़ाहीन अर्बुद हो जाते हैं। चूचियाँ टेढ़ी मेढ़ी हो जाती हैं और कभी कभी सूख जाती हैं। थनके क्षयमें प्रारम्भिक अवस्थामें दूध साधारण रहता है पर पीछे दूषित हो जाता है और उसके रंग ढंग बदल जाते हैं। वह पतला हो जाता है और उसमें बारीक छिलके के टुकड़े दिखाई पड़ते हैं। और आगे चलकर वह पिलौंहा (पीताभ) और पानीकी तरह पतला हो जाता है, जिसमें छिलकेसे टुकड़े बहुत जादे दिखाई पड़ते हैं। ये टुकड़े थिराने पर तलमें बैठ जाते हैं।

अस्थियोंके क्षयमें साधारण तौरपर किसी एक पसली पर इसका आक्रमण होता है जिससे वहाँ पर सूजन हो जाती है। संधियोंमें साधारणतः घुटना पहले ग्रसित होता है। पीड़ा सहित सूजन होती है और ग्रसित सन्धि अपना काम नहीं कर सकती। पार्श्ववर्ती कंडरायें भी ग्रसित हो जाती हैं। वह कड़ी और पीड़ायुक्त हो जाती हैं।

निदान : प्रारंभिक अवस्थामें रोगलक्षणोंसे क्षयका निदान नहीं किया

जा सकता। साधारण स्वास्थ्यका क्रमशः ह्रास, तरुण पशुओंकी वृद्धिमें रुकावट, नियमित समयपर बुखार, फेफड़ेकी गड़बड़ी और लसीका-ग्रन्थियोंका बढ़ना ये क्षय-सूचक बड़े लक्षण हैं। यदि अन्य लक्षण न हों, केवल ग्रन्थियाँ ही बढ़ गयी हों तो यह सन्देह किया जाता है कि, वह ग्रन्थिवाला अवयव ग्रसित हुआ है। अवयवीय जीर्ण क्षयमें लसीका ग्रन्थि साधारणतः ग्रसित नहीं होती।

निदानका पक्का उपाय यह है कि, थूक, कफ या क्षय-खातोंके भीतरकी वस्तुओंकी अणुवीक्षण-परीक्षा करके उनमें क्षय-जीवाणुका होना देखा जाय। सिरम-परीक्षा भी महत्वकी है। इसमें रोगीकी अतिचेतना (allergy-एलर्जी) या सिरमकी प्रतिक्रिया से काम लिया जाता है।

कुछ रोगोंसे पीड़ित पशुओंमें उसी रोगके जीवाणुसे निर्मित प्रतिपिंडक (एन्टीजेन)के संचार से अतिचेतना (एलर्जी) हो जाती है। यह अति ग्राहकताके (anaphylaxis) बहुत कुछ समान है। पर इसमें एक महत्वका भेद है। अतिचेतनामें सूई लगानेकी जगह पर गहरी प्रतिक्रिया होती है। और कुछ घंटोंके लिये तापमान भी बढ़ सकता है। इसके सिवा कोई दूसरी साधारण प्रतिक्रिया या आघात नहीं होता। अतिग्राहकता (एनेफाइलेक्सिस)में स्थानीय प्रतिक्रिया कुछ भी नहीं होती और साधारण तौर पर आघातके साथ तापमान घट जाता है।

क्षय और पाराट्यूबरक्युलोसिस (क्षयका भेद) के निदानके लिये परीक्षणीय पशुके शरीरमें अतिचेतनाकी प्रतिक्रिया की जाती है। इसके लिये क्षय-जीवाणुकी कृष्टिसे तैयार प्रतिपिंडक की सूई दी जाती है। क्षयके निदानके लिये जो प्रतिपिंडक काममें लाया जाता है उसे ट्यूबरक्युलिन और पाराट्यूबरक्युलोसिसवालेको पाराट्यूबरक्युलिन कहते हैं। एक विशेष प्रक्रियासे निर्मित पाराट्यूबरक्युलिनको "जोनिन—Johnin" कहते हैं।

क्षय-जीवाणुकी कृष्टिको छानकर ट्यूबरक्युलिन बनाई जाती है। छाना हुआ रस जीवाणु रहित होता है। पर सूई लगनेसे तन्तुओं पर जिनकी प्रतिक्रिया हो ऐसे पिंड उसमें रहते हैं। इसके निर्माणमें कई विधियाँ काममें लायी जाती हैं। कोई कृष्टिको गरमाकर शुद्ध कर लेते हैं और दूसरे लोग छनेहुए (परिस्रुत) रसको ०·५ सैकड़ा फौर्मलीनसे शुद्ध (जीवाणुरहित) करते हैं। फिर अमोनियम सल्फेट और ग्लिसरीनके घोलके साथ उसे मिलाने पर जो तलछट (precipitate) होता है

उससे ट्यूबरक्युलिनका काम लिया जाता है। मुक्तेश्वरमें भी ट्यूबरक्युलिन बनता है जो भारतमें कामके लिये मिल सकता है।

ट्यूबरक्युलिन परीक्षाकी कई विधियाँ हैं। विभिन्न विधियोंके विभिन्न लाभ बनाये जाते हैं।

अन्तस्त्वक्-ट्यूबरक्युलिन परीक्षाके लिये ट्यूबरक्युलिनकी सुई त्वचामें (sub-cutaneous) लगाई जाती है। प्रतिक्रियावाले पशुका तापमान ८ से १६ घंटेमें बढ़ता और उतने ही समयमें घटता है। जिन पशुओंमें तापमानका यह चढ़ाव उतार होता है उसे प्रतिक्रियाधारी (reactors) माना जाता है।

दूसरी चाक्षुषी ट्यूबरक्युलिन परीक्षा है। इसमें ट्यूबरक्युलिनकी कुछ बूँदें आंखोंमें डाली जाती हैं। ग्रसित पशुमें प्रदाहयुक्त प्रतिक्रिया होती है। गोक्षयके घने ट्यूबरक्युलिनका उपयोग निदानके लिये बहुत उपयोगी पाया गया।

पलक-परीक्षा : पलकमें ट्यूबरक्युलिनकी सूई देना भी एक विधि है। इसमें प्रतिक्रियाधारीकी पलकमें सूजन होती है, साथ साथ आँखोंसे बहुत पानी गिरता है। तापमान नहीं बढ़ता।

त्वक्परीक्षामें चमड़ेकी मोटाईमें सूई लगायी जाती है जिससे ग्रसित पशुको सूजन हो जाती है। ग्रेटब्रिटेनके कृषि-विभागने दोहरी अन्तस्त्वक् (double intradermal) परीक्षा चलायी है। क्योंकि परीक्षाकी सभी विधियोंमें यह भरोसे को मानी गयी है। इस विधिमें पहले त्वचामें ट्यूबरक्युलिनकी कुछ बूँदोंकी सूई लगाई जाती है। अप्रतिक्रियाधारीमें जरासी सूजन होती है। पर प्रतिक्रियाधारीमें कहीं जादे सूजन होती है। ४८ घंटेके बाद उसी जगह दूसरी लगाई जाती है। दूसरी सूईके २४ घंटेके बाद, और फिर ४८ घंटेके बाद नाप ली जाती है। मुक्तेश्वरकी रिसर्च इंस्टिट्यूटने नीचे लिखे तरीके की सिफारिश की है :—

मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटमें बना सघन ट्यूबरक्युलिन प्रति सूई (इन्जेक्सन) $\frac{1}{10}$ सी० सी० काममें लाया जाता है। यदि अप्रतिक्रियाधारियोंमें जादे सूजन हो तो ट्यूबरक्युलिनको पानीमें घोलकर उसकी शक्ति आधी या चौथाई अथवा $\frac{1}{8}$ कर दी जाय। इस पतले या हलके ट्यूबरक्यूलिनका $\frac{1}{10}$ सी० सी० काममें लाया जाय।

१. गरदनपर एक बगल बीचमें बाल मूँड़कर जगह साफ करो।

२. मूँड़े चमड़ेको बायें हाथकी चुटकोसे जोरसे पकड़ो।

३. चुटकीसे पकड़े भागमें सूई तिरछी घुसेड़ो। छोटी और मोटी सूई काममें लाओ। ध्यान रहे कि सूई वहिस्त्वक् छेदकर अतस्त्वक्में घुस जाय। जितनी मात्रा देनी है दे दो। सूईकी जगह पर चकत्ता या गाँठ उभड़ आवेगी।

४. ठीक पहली सूईकी जगह पर ४८ घंटेके बाद दूसरी सूई लगाओ। इस बार मात्रा ठीक उतनी ही होनी चाहिये जितनी पहले थी।

अप्रतिक्रियाधारी पशुओंमें भी कुछ सूजन हो जाती है पर क्षयग्रस्तकी सूजन कही जादे होती है।

५. परीक्षाके आरम्भमें कैलीपर (कालापास, कर्कटी) की सहायतासे मुटाईकी नाप ले लो।

६. पहली जाँचके २४ घंटे बाद और ४८ घंटेके बाद यानी दूसरी जाँचके प्रारम्भमें नापो। दूसरी जाँचके २४ घंटे और ४८ घंटेके बाद फिर नापो। प्रतिक्रियाधारियोंमें काफी सूजन होगी। यह सूजन काफी गरम और नरम तथा कुछ फैली रहती है। वहाँ पर छूनेसे खास तरहकी स्पर्शानुभूति होती है। बढ़े नापसे जादे यही लक्षण-सूचक होती है। भैंस गायसे जादे प्रतिक्रिया करती है।

जाँचका महत्व : जाँचसे शरीरमें क्षयाणुके होनेका ठीक पता चलता है। यह आक्रमणकी गंभीरताके बारेमें कुछ नहीं बताती। बहुतसे प्रतिक्रियाधारियोंमें रोगके लक्षण बिलकुल प्रगट नहीं होते, सुस्थ पशु जैसे वे मर जाते हैं। जाँच केवल यही बताती है कि, इस पशुमें क्षयाणु हैं। कहा जाता है कि, शहरवाले मनुष्योंमें ९० सैकड़ाकी देहोंमें क्षयाणु किसी न किसी अवस्थामें होते हैं। ये या तो प्रसुप्ति-अवस्थामें रहते हैं या फेफड़े पर असफल आक्रमण करते पाये जाते हैं। कहा जाता है कि, ग्रेट ब्रिटेनमें ८० सैकड़ासे ऊपर गायोंमें क्षयाणु किसी न किसी अवस्थामें होते हैं और सभी तरहके ढोरोंको मिलाकर ४० सैकड़ेमें। जहाँ छूत इतनी फैली हुई है वहाँ इससे सावधान रहनेके लिये ट्यूबरक्युलिन जाँच एक नियमित आवश्यकता बन गयी है।

विभिन्न देशोंमें व्याधिकी भयंकरता और आशंकाके अनुसार इससे निबटनेके लिये विविध उपाय हैं। हम देख चुके हैं कि, ग्रेट ब्रिटेनमें इस रोगको निर्मूल करनेके लिये ग्रसित पशुको मार डालते हैं। दूसरी विधि यह है कि, गव्य व्यवसाइयोंको

इनाम देकर गव्यशालाओंको इस रोगसे पाकसाफ रखनेके लिये प्रोत्साहित किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेनमें क्षयाणु-रहित दूध लाइसेंस लेकर, एक विशेष नामसे, बेचा जाता है। ठट्ठकी ट्यूबरक्युलिन जाँच हर ६ महीने पर होती है। सन् १९३४ के रेगुलेशनके अनुसार पूरी तरह क्षयाणु-रहित ठट्ठके मालिकोंको केवल प्रमाणपत्रही नहीं, उत्पन्न दूध पर पुरस्कार भी दिया जाता है। ऐसी हालतमें सभी ढोरोंकी जाँच की जाती है, केवल दुधारकी ही नहीं।

क्षमताकरण : अनेक उपाय अजमाये गये हैं पर अबतक कोई बहुत सन्तोष-दायक सिद्ध नहीं हुआ है। जो सबसे जादे सफल माना जाता है वह बी० सी० जी० (B.C.G.) भैक्सीन कहा जाता है। बी० सी० जी० का अर्थ है बैसीलस कैलमेट और गुएरिन कैलमेट। गुएरिन तथा कैलमेट और दूसरोंने पाया कि, आलू पर लगातार बहुत दिन कृष्टि-विकाश करनेसे गोक्षयकी तीव्रता इतनी मन्द हो जाती है कि, वह ढोरमें क्षय पैदा नहीं कर सकती पर कुछ दिनोंके लिये उसे क्षमताशील बना देती है। फल सही सिद्ध हुआ। पर प्रायः ६ महीनेके बाद क्षमता शीघ्रतासे घटने लगती है और सालभरके बाद प्रायः कुछ भी नहीं रहती। प्रतिवर्ष टीकेसे सभी पशुओंका क्षमताकरण होता नहीं मालूम पड़ता। पहले या दूसरे वर्षके बाद उनमेंसे अधिकांशको क्षमता नहीं रहती। यद्यपि इनको २ से ५ टीका समय समय पर लग चुका रहता है।

बी० सी० जी० क्षमताकरणमें दूसरी कठिनाई यह है कि, पशु पर ट्यूबरक्युलिन जाँचकी प्रतिक्रिया हमेशा होती है। इसलिये प्रदर्शन या पुरस्कारवाले पशुपर इसका प्रयोग नहीं हो सकता।

इस देशमें इस रोगका फैलना रोकनेके लिये ठट्ठकी दुहरी अन्तस्त्वक् ट्यूबरक्युलिन जाँच करनी होगी और प्रगट रोगियोंकी अणुवीक्षण परीक्षा। ठट्ठको ३ भागमें बाँटना होगा। खाँसी, दुबलेपन या प्रगट क्षयपरीक्षामें जो स्पष्ट ग्रसित पाये जायँ और जो देखनेमें भी ग्रसित हों उन्हें अलग रखना चाहिये। यह क वर्ग हुआ।

जिनमें ट्यूबरक्युलिन जाँचके स्पष्ट लक्षण मिलें पर प्रगट व्याधिलक्षण दिखाई न दें उन्हें भी निरीक्षणके लिये अलग रखना चाहिये। यह ख वर्ग हुआ।

तीसरा वर्ग ट्यूबरक्युलिन जाँचमें अप्रतिक्रियाधारी पशुओंका होगा। यह ग वर्ग हुआ।

चिकित्सा : क वर्गके पशुका प्राकृतिक उपचार करना चाहिये। उन्हें पोषक आहार, विश्राम और धूप मिलनी चाहिये। और यदि उनके लिये अलग चराई का प्रबंध हो सके तो वह भी करना चाहिये। ख वर्ग पर दृष्टि रखनी चाहिये। यदि किसी पशुमें क्षयके चिह्न प्रगट हों तो उसे क वर्गमें भेज देना चाहिये। इस वर्गकी ट्यूबरक्युलिन जाँच हर ६ महीने या वर्षपर करके देखना चाहिये कि इसमें से कुछमें सुधार हुआ है या नहीं।

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चने हालमें मदरास और मैसूरमें जाँच कराई थी। इससे पता चला कि, पशुओंमें क्षय नहींके बराबर है किन्तु मदरासकी कूड़ागाड़ीके बैलोंमें यह रोग कई वर्षोंसे है। और जगह की तुलनामें वहाँ रोगका कम होना क्षयके भारतीय जीवाणुओंकी कम तीव्रता और भारतीय ढोर की बढ़ी प्रतिरोधी शक्तिके कारण माना जाता है। काउन्सिल इस मामलेमें गहरा अध्ययन कर ऊपरके मतकी सचाईकी जाँच करना चाहती है। सन् १९४१-४२ की काउन्सिलकी रिपोर्टमें कहा गया है कि, भारतमें क्षयकी तुलनात्मक अभावका चाहे जो कारण हो पर जैसा कि, हिसारके सरकारी पशुक्षेत्रमें पाया गया, अनुकूल अवस्था मिलते ही रोग भीषणरूपसे फैल सकता है।

१३६३. John's Disease : वाह (जोन्स डिजीज)।

पर्याय :— पाराट्यूबरक्युलोसिस, पाराट्यूबरक्युलस एन्टराइटिस आफ कैटल, क्रोनिक बैक्टीरियल एन्टराइटिस आफ कैटल। **हिन्दी**— वाह, दस्त।

यह ढोरका जीर्ण, छुतहा रोग है। इसमें पहले क्षुद्र आँतमें प्रदाह होता है जिसके कारण पतले दस्त होते हैं। दुबलापन इसका लक्षण है। यह एसिड अलकोहल-फास्ट जीवाणुके कारण होता है जो क्षयाणुकी सूरतसा होता है।

स्थान : व्यापकता : यह रोग दुनियाँ भरमें होता है। पहले भारतमें लोगोंका ध्यान इसकी ओर अधिक नहीं गया। ग्रेट ब्रिटेनमें क्षयके बाद ही इसका महत्व है। पर भारतमें इसका महत्व क्षयसे कहीं जादे है। इसकी छूत मनुष्यको नहीं लगती।

जीवाणुशास्त्र : सन् १८९५ में जोन और फरदिंघमने देखा कि, इस अतिसारका कारण एक जीवाणु है जो क्षयाणुकी तरह शलाकाकार तो है पर छोटा और कुछ वक्र। जोनके नाम पर इसका नाम जोनका रोग या पारा ट्यूबरक्युलोसिस पड़ा। क्षयसे इसकी समानता केवल आकृतिहीमें नहीं अनेक बातोंमें है।

इसके जीवाणुकी कृष्टि विकसित करना पशुशरीरके बाहर कठिन कार्य था। पर अब एक उपाय निकल आया है। यह जीवाणु (माइक्रोबैक्टीरियम पाराट्यूबरक्युलोसिस) नरक्षयके मृत जीवाणु या अन्य मृत एसिड-फास्ट जीवाणु जिस कृष्टिमें हों उसमें बढ सकते हैं। अब यह देखा गया है कि, एसिड-फास्ट जीवाणुकी कई बार की हुई कृष्टिमें एसिड-फास्ट मृत जीवाणु मिलाये बिना भी ये बढ़ सकते हैं। अब संश्लिष्ट माध्यम काममें लाये जा रहे हैं।

छूत : छूत मुँहके रास्ते खायी चीजोंके साथ पेटमें पहुँचती है। छूतलगे पशुके मलसे निकले जीवाणु खानेके सामानमें मिल जाते हैं। छूत लगने पर रोग मन्दगतिसे बढ़ता है। दो वर्ष तक रोगके कोई लक्षण प्रगट नहीं भी हो सकते हैं। यह माना जाता है कि सभी ग्रसित पशुओंमें स्पष्ट लक्षणोंका विकाश नहीं होता। ग्रसित पशुओंके मलसे दूषित गोचर, जलस्रोत और गंदे नाले छूत फैलाते हैं। जीवाणु खुलेमें स्वाभाविक अवस्थामें बढ़ते रह सकते हैं। बाहरी प्रभावोंसे सरलतासे नष्ट नहीं होते। एकबार ग्रस्त हुआ गोचर हफ्तों या महीनों तक भयावह बना रह सकता है।

ग्रहणशीलता : तरुण पशु विशेषकर ग्रहणशील हैं। परन्तु रोगके विकार गायोंमें ३ से ६ वर्षकी उमरमें देखे जाते हैं। रोग वर्षोंतक सुप्त रह सकता है और जब पशुकी शक्ति क्षीण होती है या उसकी प्रतिरोध-शक्ति घट जाती है तब वह प्रकट होता है। इस कारणसे ब्यानेके कुछ सप्ताह बाद गायमें रोगके लक्षण देखे गये हैं। सांढ या बैलोंको यह कदाचित् होता है। उनमें भी शिथिलता और थकावटके कारण इस रोगका होना हो सकता है। खनिजोंकी कमी इस रोगके भीतरी कारणोंमें एक माना गया है।

महास्रोतमें पहुँच कर जीवाणु श्लैष्मिक कलामें प्रविष्ट हो जाते हैं और अंत्रप्रदाह पैदा करते हैं। इसका एक विशेष लक्षण श्लैष्मिक कलाका मोटा होना है। कभी कभी उनके दबावसे आँतोंकी ग्रन्थियाँ क्षीण हो जाती हैं।

लक्षण : कहा जा चुका है कि, यह रोग गुप्त या अलक्षित रूपसे बढ़ता है। मन्दाग्नि, दूध घटना और क्रमिक दुबलापन इसके आरम्भिक लक्षण हैं। कुछ सप्ताह या महीनोंके बाद विशेष लक्षण प्रगट होते हैं। इसमें समय समय पर पतला और पनीला आँवयुक्त दस्त होना है जिसमें बहुत दुर्गन्ध रहती है। इसमें प्रायः हवाके बुलबुले रहते हैं। दस्तमे पशुकी जाँघ, गोशालाकी जमीन और दीवार

गन्दी हो जाती हैं। आगे चलकर दस्त और जल्दी जल्दी आने लगते हैं। श्लैष्मिक कलामें पीलापन आ जाता है। साधारण अवस्था कुछ दिनों तक सह लेने लायक रहती है पर भूख घटती जाती है।

जब अतिसार बहुत जल्दी जल्दी होने लगता है और अधिक समय तक बना रहता है तब दुबलापन बहुत तेजीसे बढ़ता है, रक्ताल्पता बहुत जादे हो जाती है, चमड़ा रुखड़ा हो जाता है और अंतमें मौत हो जाती है। गुदाकी परीक्षासे आँतका ग्रसित अंश मोटी नलीसा मालूम हो सकता है।

इस रोगकी विभिन्न गति है। कभी कुछ सुधार मालूम होता है और पुनराक्रमण हो जाता है। साधारण तौर पर इसकी अवधि कई महीनोंकी होती है और १ या २ वर्ष लंबी भी हो सकती है। ४ सप्ताहमें ही रोग तेजीसे बढ़ कर मृत्यु होनेकी भी खबर है।

निदान : यदि विशेष प्रकारके अतिसारसे संदेह पैदा हो तो रोगके बारेमें मलकी अणुवीक्षण परीक्षासे निश्चय कर लेना चाहिये। इसमें पाराट्यूबरक्युलोसिसके एसिड-फास्ट जीवाणु मिल सकते हैं। मलकी परीक्षाके लिये आँवके लच्छे चुन लेना चाहिये। पेटकी धोअनसे मल जादे अच्छा मिल सकता है। पेट धोनेकी विधि श्री कूपर और श्री श्रीनिवासनके लेखमें है। (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३१, पृ० २१५) हाथको जीवाणुरहित करके गुदामें जहाँ तक वह घुस सके घुसाना होता है। इसके बाद सारा मल बाहर निकालकर रबरकी एक नली कुछ आगे तक घुसेड़ी जाती है। इसके बाहरी छोर पर लगे हुए जलपात्र (फ्लश-कैन) से पानी चढ़ाते हैं। धोअनका पानी एक नाँदमें जमा करना होता है। इसे निथारकर बीस मिनट तक चाक (सेन्ट्रीफ्यूज) पर घुमाना होता है। चाक पर घुमायी काँचकी नलीके ऊपरी सतह पर जमी जो निथार आ जाती है उसमें श्लैष्मिककलाका अंश होता है। इसे अणुवीक्षण परीक्षाके लिये लेते हैं। धोते समय गुदाके भीतरी छोर पर लगी आँवको उँगलियोंसे पोंछ लेना चाहिये। यह धोअनके साथ निकल आती है।

संदेहकी हालतमें अतिचेतना की प्रतिक्रियाका सहारा लिया जाता है। यह पक्षिट्यूबरक्युलिनकी सूई अथवा उसी तरहके पदार्थ जिसे "जोनिन" कहते हैं, उससे पैदा करते हैं। जोनिनसे क्षयकी तरह दुहरी अंतस्त्वक् सूई लगानेसे संतोषप्रद फल मिलनेकी प्रसिद्धि है। ट्यूबरक्युलिनसे क्षय में जैसा निश्चय हो जाता है वैसा

पारा-ट्यूबरक्युलोसिसमें अतिचेतना-जाँचसे नहीं होता। इस रोगमें यदि सही प्रतिक्रिया हुई तो वह निदानकारी होती है। पर उल्टी प्रतिक्रिया होने से यह नहीं कहा जा सकता कि, छूतका असर नहीं है। श्री मिनेटने जोनिनकी दुहरी अंतस्त्वक् परीक्षामें पाया कि, इस रोग के ५९ रोगी पशुओंमें केवल ६ में प्रतिक्रिया नहीं हुई। इनमेंसे ४ का रोग कड़ा था और ३ की जाँच केवल एक बार हुई थी।—(इंडियन जर्नल आँफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३५, पृ० ३८९)

चिकित्सा : पूरी तरह रोग दूर करनेका कोई उपाय ज्ञात नहीं। आँतकी व्याधियाँ कोथघ्नों, रक्तस्रावरोधकों और पशुके साधारण स्वास्थ्यके सुधारसे दूर हो सकती हैं। यदि ठट्ठमें परोपजीवी व्याधियाँ हों तो पारा-ट्यूबरक्युलोसिस सरलतासे अपना शिकार खोज लेती है। आसाममें श्री पाँडेने कई तरहकी जाँच की। उन्होंने पाया कि, परोपजीवी व्याधिग्रस्त पशुको परोपजीवियोंसे छुटकारा दिलाने और आहारमें खनिज मिलानेसे वाह (john's disease) की संख्या घट गयी। मुक्तेश्वरमें वाहवाला एक ठट्ठ १० बर्ष तक सुस्थ ढोरोंके साथ रखा गया। उनसे कोई स्पष्ट परिणाम नहीं मिलने पर उन्हें हटा दिया गया। श्री वेयर और श्री श्रीनिवासनने मुक्तेश्वरके प्रयोगके बारेमें एक लेख. लिखा है। —(इडियन जर्नल आँफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड ऐनिमल हस्बैन्डरी, दिसम्बर, १९४१, पृ० २८९)।

लेखकोंका निष्कर्ष है कि, इस तरह उम्मीदके मुताबिक ठट्ठमें रोग नहीं फैलनेका कारण पशुओंके रहनेका सहज स्वास्थ्यपूर्ण ढंग है। उनका मत है कि, अच्छी अनुकूल अवस्थामें रोग आसानीसे फैलता है।

..."(क) जब किसी सीमित स्थानमें छुतही चीजें बहुत हों,

(ख) जबकि पशुओंमें ग्रहणशीलता बहुत जादे हो जैसे कि, बहुत तरुण पशुओंकी संख्या अधिक हो।"...

मुक्तेश्वरके ठट्ठके बारेमें भी उनका मत है कि, ..."छूत फैलनेका डर किसी समय जादे नहीं हो सका, उसका कारण संसर्गमें आनेवाले पशुओंकी अधिक उम्र और प्रगट रोगी पशुओंकी कम संख्या है। ऐसी हालतमें सबसे अधिक ग्रहणशील उम्रके लगभग ७५ सैकड़ा पशु छूत लगनेसे बच गये। मुक्तेश्वरके प्रयोगका फल श्री हेगन और श्री जीसिंग के प्रयोगके (१९३३) अनुसार साधारण

तौरपर है। इन लोगोंने प्रयोगके लिये छूत लगाये पशुओंके ६ वर्षके अनुभवसे पाया कि, बुरी तरह छुट्टा रहने पर भी काफी पशुओंको सहज रीतिसे छूत नहीं लग सकी।"

उनका निष्कर्ष है कि: ... "यद्यपि सहज छूतसे कुछ सयाने पशु मर गये और ठट्ठमें उत्पन्न लगभग २५ सैकड़ा बछरुओंको छूत लगी और वह मर भी गये फिर भी वहाँ जैसी अवस्था थी उसमें साधारण तौर पर छूत फैली हुई नहीं थी। प्रयोगकी समाप्ति पर पूरे ठट्ठकी जोनिन परीक्षा और सोचे समझे बिना चुने गये ६ पशुओंकी शवपरीक्षासे मालूम हुआ कि रोग गायब हो चुका है।

"इसलिये मालूम होता है कि, जबतक सीमित स्थानमें छूत बहुत जादे न हो और अत्यधिक ग्रहणशील अर्थात् बहुत छोटे पशुओंका तुलनात्मक प्रतिशत अधिक न हो तो सुव्यवस्थित ठट्ठमें बादके रोगके जड़ पकड़नेकी आशंका अधिक नहीं है।"

छूतग्रस्त पशुओंके साधारण स्वास्थ्यका सुधार करना चाहिये। साथ ही उन्हें अतिरिक्त खनिज आहार देना चाहिये। आँतोंके परोपजीवियोंका उपद्रव हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें तूतिया और कमला या कबीला देना चाहिये। ये सुन्दर कृमिघ्न हैं।

क्षमताकरण : वाहकी क्षमताके लिये कोई विशेष साधक नहीं है। रोगका प्रसार रोकनेके लिये ठट्ठकी परीक्षा क्षयकी तरह जोनिनसे करनी चाहिये। सही प्रति-क्रियाधारियोंको पृथक् करना और उनकी चिकित्सा करनी चाहिये।

कष्टनिवारणके लिये तात्कालिक उपायकी तरह भी अतिसारकी चिकित्सा होनी चाहिये।

एम'फैडियनने (M'Fadyan) हल्के गन्धकाम्लके साथ फेरस सल्फेट या हीराकससे अतिसार मिटाकर साधारण अवस्था सुधरते पाया है। १ रत्तल पानीमें ३० ग्रेन मेथिलीन ब्लू घोल कर लगातार पाँच दिनों तक प्रति दिन पाँच मात्रा और ८ दिनके बाद इसेही फिर दुहराना यह दूसरोंने अजमाया है। कोढ़ एक एसिड-फास्ट जीवाणुके कारण होता हैं। चालमूगरा इसकी खास दवा है। इसी आधारपर वाहमें चालमूगरेका उपयोग हुआ पर कोई फल नहीं मिला। श्री अचारने (मैसूर सिरम इंस्टिट्यूट) वाह पर एक लेख लिखा है। इसमें लिखा है कि, श्री डाउनहमने (सन् १९२८ में) ६ रोगियों पर चालमूगरा अजमाया जिसमें ५० सैकड़ा फल मिला और मैसूरमें चालमूगरेका रोगनिवारण-गुण खोजा जा रहा है (सन् १९३९)।

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चने क्षय और वाहकी खोजके लिये खास अफसर नियुक्त किया है।

१३६४. Actinomycosis : कठजिभिया।

पर्याय :— रे फंगस डिजीज, एक्टिनोमाइकोसिस, एक्टिनोबैसीलोसिस, ऊडन टंग (Wooden tongue), लंपी जॉ (Lumpy Jaw)।

यह रोग छुतहा और जीर्ण है। इसमें अर्बुद उभड़ते हैं जिससे विशेष प्रकारके दाने होते हैं, जिनमें पीब भरी रहती है। यह साधारण तौर पर जीभ, मुँह, जबड़ा, त्वचा और मुँह तथा गरदनकी त्वचाके भीतरी तंतुओं पर निकलते हैं।

कभी कभी इनका ढंग महा मारीकी तरह होता है। भारतमें कुछ घटनाओंके मिलनेकी रिपोर्ट है। श्री मंगहलकरने भिन्न समय पर १० रोगियोंकी मुक्तेश्वरमें हुई निदान-शास्त्रीय (पैथोलोजी) परीक्षाका वर्णन और चित्र छापा है। —(इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, दिसम्बर १९३८, पृ० २७१)

छूत : इस रोगसे संबंधित जीवाणु स्ट्रेप्टोथ्रिक्स वोभिस या एक्टिनोमाइसेस बोभिस (Streptothrix bovis or Actinomyces bovis) है। यह जीवाणु अपने वृद्धिकालमें शाखा फैला सकता है। यह तीन रूपोंसे बढ़ता है— फिलामेन्ट, क्लब और कोक्सी (filaments, clubs and cocci)। यदि किसी क्षतकी पीब काँचकी पट्टी (स्लाइड) पर फैलाकर खाली आँख देखी जाय तो दाने दिखायी पड़ेंगे। यदि इन दानोंको फोड़कर कम शक्तिवाले अणुवीक्षण यंत्रसे देखा जाय तो वह सौत्रिकपिंड (filamented bodies) दिखायी पड़ेंगे अथवा मूसलाकृति, जो एक केन्द्रके चारों तरफ किरणकी तरह सजे हैं। मूसलाकृति, सौत्रिकोंका एक रूप है जो प्रारंभिक अवस्थामें देखा जाता है। अलबुमिनयुक्त माध्यममें शरीरतापमें कृष्टि तैयार हो सकती है।

यह कहा जाता है कि, यह जीवाणु मनुष्य और पशुशरीर पर अवलंबित परोपजीवी हैं और पाचन-प्रणाली तथा संभवतः श्वासप्रणालीके ऊपरी भागमें रहते हैं। किसी भाग की कलाके क्षत द्वारा यह रोग देहमें अपने आप बढ़ सकता है। दाँत टूटनेमें, खुरपका या छूतके अन्य रोग, जिनसे श्लैष्मिक कला ग्रसित होती हो, होनेसे रोगको मौका मिलता है।

अनाजके नुकीले कण का भी महत्व है। नुकीले अनाज जीभ जैसे कोमल भागमें लगकर उसीमें टूट जाते हैं और पेशियोंके संकोचसे भीतर धँसते जाते हैं। इससे बने छेदकी राह इस रोगके जीवाणु तंतुओंमें घुस जाते हैं। इसी तरह मसूढ़ेमें घुसकर ये जीवाणु जबड़ेकी बीमारी पैदा कर सकते हैं। इसी तरह बछड़ेके दूध पीनेसे हुए क्षतके कारण थनमें रोग हो सकता है।

लक्षण : ढोर की जीभ सबसे जादे ग्रसित होती है। इसके बाद जबड़ेकी अस्थिका नम्बर है। जीभके ग्रसित होने पर पहले कड़े और दृढ़ अर्बुद उभड़ते हैं। यह भीतरकी ओर बढ़ते हैं। सौत्रिक तंतु पैदा होकर जीभको लकड़ीकी तरह कड़ी कर देते हैं। इसलिये इस रोगका नाम "काष्ठ-जिह्वा" पड़ गया है। खानेमें पशु जीभसे काम नहीं ले सकता और उसके भूखे मर जानेका भी डर रहता है। कभी कभी जबड़ा, खासकर निचला जबड़ा ग्रसित होता है। हड्डी स्पंजकी तरह हो जाती है और उसकी आकृति विकृत हो जाती है। वह भंगुर हो जाती है और उसमें जीवाणुके उत्पन्न विकार भर जाते हैं। गलपर भी आक्रमण हो सकता है और वहाँ अर्बुद निकल सकते हैं।

सिर और गर्दनकी त्वचा और अंतस्त्वक्के तंतु ग्रसित हो सकते हैं और उनमें अर्बुद उभड़ सकते हैं।

रोगजीर्ण हो जाता है और महीनों या वर्षों तक लटपटा सकता है। यह अलक्षित रूपसे शुरू होता है, खासकर जब अस्थियोंपर आक्रमण करता है। जब बाहरी परिवर्तन होने लगे या पोषण अथवा श्वासकी गड़बड़ी होती है तब यह प्रगट मालूम होता है। जब तक रोग एक स्थान पर रहता है तापमान नहीं बढ़ता। जब पीब पैदा होने लगती और कोथ रक्त तक पहुँचता है तब ज्वर होता है।

चिकित्सा : जबतक अर्बुद बाहरी उभाड़ मात्र है और सरलतासे अलग किया जा सकता है उसे काटकर निकाल देना तुरत-फुरतका इलाज है। यदि रोग काटनेके सुबीते की जगह पर न हो तो उसे गहरा चीर देना चाहिये और दूषित पदार्थ पोंछकर साफ कर देना चाहिये और उसमें कोथघ्न, खासकर आयडिनकी पट्टी भर देनी चाहिये। मुँहके बाहर यदि अर्बुद हो तो उसमें छेद कर दबाकर पीब निकाल देनी चाहिये। फिर जिलेटिनकी बनी कैपस्यूलमें १५ से ३० ग्रेन संखिया भरकर उस छेदमें घुसेड़ देनी चाहिये। इससे अर्बुदपिंड सूख जाता है और गिर पड़ता है। इसके बाद क्षत भर जाता है। जीभके अर्बुदमें छेदनके बाद टिंक्चर

आयडिन लगानी चाहिये। जहाँ छेदन सम्भव न हो वहाँ आयडिनकी सूई लगाना उत्तम उपाय है।

५ सैकड़ा आयडिनके घोलकी २०० सी० सी० शिराकी सूई (सयानोंके लिये) बहुत उपयोगी होती है। यह जीभ, कंठ, त्वचा और अंतस्त्वक् तन्तुओंके ग्रसित होने पर विशेषकर लाभप्रद होती है। पर यदि अस्थियाँ बहुत जादे ग्रसित हों तो आयडिनका आभ्यन्तरिक उपयोग अधिक लाभका नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेनमें शल्यचिकित्सा की जाय चाहे नहीं, आयडिन खिलानेकी प्रथा है।

पोटाशियम आयडाइड भी दिया जाता है। छोटे पशुओंके लिये ३० ग्रेन से १ ड्राम तक मात्रा है। सयाने पशुओंके लिये दूनी मात्रा है। दो से चार सप्ताह तक पानीके साथ एक मात्रा प्रतिदिन तब तक दी जाती है जब तक सभी अर्बुद खतम न हो जाँय। अधिक मात्रामें आयडाइड या आयडिन देनेसे आयडिनकी व्याधि (आयडिज्म—iodism) हो जाती है। नाक या गले की सर्दी, त्वचामें फुंसी निकलना, बाल झड़ना, दुबलापन इसका पता बताते हैं। ऐसी हालतमें कुछ दिनोंके लिये चिकित्सा बन्दकर फिर थोड़ी मात्रासे शुरू करनी चाहिये आयडिन खिलानेका असर अर्बुदों पर (खासकर जीभके) टिकचर आयडिन लगाने और आयडिन तथा पोटाश आयडाइडके घोलकी सूई लगानेसे और बढ़ जाता है।

१३६५. Bang's Disease : छुतहा गर्भपात।

पर्याय :—बैंग्स डिजीज, ब्रुसीलोसिस, कन्टेजियस एबोर्सन।

छुतहे गर्भपातमें एक के बाद दूसरे पशुका गर्भ गिर सकता है। इससे गायको कोई बाहरी क्षत नहीं होता। यह रोग ब्रुसेला नामक जीवाणुके (Brucella abortus) कारण होता है। यह जीवाणुयुक्त चारा खानेसे एकसे दूसरी गायको होता है।

एक तरहके ब्रुसेला जीवाणु मनुष्योंका माल्टाज्वर पैदा करते हैं। दूसरी तरहके गायका गर्भ गिराते हैं और तीसरी तरहके शूकरीका गर्भपात करते हैं। तीनोंके नाम क्रमसे ब्रुसेला मेलीटेनसिस, ब्रुसेला एबोर्टस और ब्रुसेला सुइस (Br. Melitensis, Br. abortus and Br. suis) हैं।

ब्रुसेला एबोर्टस अवायुजीवी है। प्रयोगशालाके कामके लिये यह कार्बन-डाइऑक्साइड की उपस्थितिमें शुद्ध कृष्टिमें बढ़ सकता है।

कृष्टिमें ज़ीवाणु दो वर्षोंतक तीव्र रह सकता है। जरायुके भीतर और मरे भ्रूणमें यह महीनों तक दारुण रहता है। धूपसे यह तुरत मर जाता है। भ्रूणकी कला, छाया और शीतकालमें यह ४ महीने तक जीता है। ५० से ५५ डिग्री से० की सूखी हवामें यह दो घंटेमें मर जाता है। प्रचलित छूतनाशक इन्हें कुछ ही मिनटोंमें मार डालते हैं।

आहार या प्रजनन-इंद्रियोंके द्वारा देहमें जीवाणुके प्रवेश करनेसे तुरत ही गर्भपात नहीं होता। यह सच है कि अनेक गायोंका गर्भपात यह नहीं भी कर सके।

जहाँ खूब अधिक ढोर सम्वर्धन किया जाता है वहाँ यह रोग बहुत होता है। यह भारतमें होता है। पहले इस तरफ ध्यान नहीं दिया गया था तब यह रोग अव्यापक माना जाता था। अब इधर ध्यान देने पर पता चला है कि, अनेक ठट्ठ ग्रसित हैं और रोग बहुत व्यापक माना जाता है। किसी किसी देशमें ४० से ६० सैकड़ा पशु छूतग्रस्त हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकामें यह जितना व्यापक है भारतमें भी उतना ही है। इससे गव्यक्षेत्रोंको आर्थिक हानि बहुत होती है। क्योंकि, एक बार गर्भ गिरनेसे गायें कठिनतासे गाभिन होती हैं और नहीं भी होती हैं। यदि कोई विशेष उपाय नहीं किया गया हो तो गर्भपातके बाद दो वर्ष तक गाय गरम नहीं होती।

प्रसवकाल या उसके बाद भी छूत प्रायः फैलती है। ऐसी हालतमें उनके गर्भोदक (लिकर एमनी) तथा अन्य कलामय स्रावोंके साथ यह जीवाणु भी बाहर निकलते हैं। यह होने पर आसपासका चारा, पानी सब दूषित हो जाते हैं। नर को भी छूत लग सकती है और वह समागमके समय छूत लगा सकता है। ऐसा समझा जाता है कि, यदि स्रावके ऊपर गाय लेटी हो तो चमड़ेके द्वारा भी छूत लग सकती है।

देहमें घुसनेके बाद जीवाणु लसीका-ग्रन्थियोंमें डेरा डालते हैं। भ्रूणके तंतु और जननीके पुरैनकी ओर उनका विशेष आकर्षण है। गर्भिणी गायके देहमें जीवाणुके घुसनेसे इसीलिये गड़बड़ी पैदा हो जाती है। उसके कारण गर्भपात, भ्रूणकी निर्बलता या समयसे पहले प्रसव हो जाता है।

जीवाणु थनके तंतुओंमें भी डेरा डाल सकते हैं। इसलिये दूसरी बार गर्भधारण करने पर वह यहींसे भ्रूणको ग्रस सकते हैं और तब बाहरी छूत लगे बिना भी गर्भ गिर सकता है।

गर्भपात होने पर प्रायः पुरैन नहीं गिरती। यदि वह भीतर रह जाती है तब सड़ाने और पीब पैदा करनेवाले जीवाणु एक दूसरी छूत पैदा करते हैं। इनके कारण जरायुमें प्रदाह होता है इससे कभी कभी रक्तविकार हो जाता है। यह कह देना अच्छा होगा कि, चाहे जिस कारण गर्भपात हुआ हो यदि पुरैन (जेर) न गिरे तो उसकी खोज खबर लेनी चाहिये। गाय प्रायः पुरैन खा लेती है। हर हालतमें यही हुआ नहीं मानना चाहिये। आभ्यन्तरिक परीक्षा करनी ही चाहिये। सहज प्रसवके समय परिचारक वहाँ रहे और पुरैन निकलनेके बारेमें सावधान रहे। पर गर्भपात तो अचानक होता है। रातमें हुये गर्भपातका पता सबेरे चलता है। पुरैन न मिली तो यही मान लिया जाता है कि, गाय खा गयी। प्रायः भीतरी जाँच नहीं की जाती। जिस गायको पुरैन नहीं गिरती वह दुबलाने लगती है, उसकी भूख मिट जाती है। जरायुमें बाहरी पदार्थ रहनेके कारण कई तरहके उपद्रव होते हैं। रक्त दूषित हो सकता है जिससे गाय मर सकती है। गर्भपात होने पर यदि पुरैन नहीं मिले तो ठहरना मूर्खता होगी। भीतरी जाँच करनी चाहिये और यदि वह भीतर हो तो उसे बाहर करनेका उपाय होना चाहिये।

लक्षण : गायमें इस रोगका सबसे बड़ा लक्षण गर्भपात है। गर्भपात चाहे जब हो सकता है पर प्रायः ६ ठे से ८ वें महीनेमें होता है। कभी यह देरसे होता है और कभी इतनी जल्दी कि, बाहर निकला भ्रूण दिखाता भी नहीं।

जब भ्रूणकला ग्रसित हो और तब भी बच्चा ठीक समय पर पैदा हो जाय तो रोग पुरैनमें हुए परिवर्तनोंसे अथवा बाहर निकले पदार्थोंकी अणुवीक्षण-परीक्षासे पहचाना जाता है। ऐसी हालतमें पुरैन साधारणतः बाहर नहीं निकलती।

शुरू महीनोंके गर्भपातके बछरू मरे मिलते हैं। बादके गर्भपातमें वह जीते निकल सकते हैं। पर वह प्रायः दो तीन दिनमें नवजातके रक्तदोषसे मर जाते हैं। (१४०१)। ग्रसित गायके प्रसवका जीवित बच्चा कभी कभी जीता रह सकता है।

रोगका दौरा : यदि गर्भपात सकुशल हो जाय या परीक्षासे गायमें जीवाणु पाये जायँ फिर भी स्वाभाविक प्रसव हो तो गाय साधारण तौर पर चगी हो जाती है और फिर गाभिन होती है। दुबारा गाभिन होने पर उसे स्वाभाविक प्रसव या

गर्भपात हो सकता है। यह क्रम तीसरी या चौथी बारतक चल सकता है। पर वह ऐसे भी बच्चे पैदा कर सकती है जो जीते रहें।

यदि पुरैन रह जाय या तुरत और आसानीसे नहीं निकलती है तो भले ही वह ब्रुसेलोसिसके कारण न हो पर इससे पशु बाँझ हो जाता है। कभी कभी ऋतुकी गड़बड़ी हो जाती है।

जब किसी ठट्ठमें पहली बार छूत लगती है तब गर्भपात लंबे अरसेके बाद होता है। इसके बाद जल्दी जल्दी होने लगता है। पहले कुछ ही पशु ग्रसित होते हैं और जब इनका गर्भपात होता है तब ठट्ठमें तेजीसे छूत फैलने लगती है।

जिस ठट्ठमें बाहरसे खरीद कर पशुओंकी कमी पूरी नहीं की जाती यहरोग धीरे धीरे मिट जाता है। क्योंकि, एक या अनेक गर्भपातके बाद पशुओंको क्षमता हो जाती है। तब ये आगे होनेवाले आक्रमणोंका प्रतिरोध करते हैं। पर अनियंत्रित ठट्ठमें नयी आयी कलोरको छूत लग सकती है और वह रोग बनाये रखती है। अपनी संतानसे ही ठट्ठकी पूर्ति करनेपर भी समय समय पर गर्भपात हो सकता है। क्योंकि, जबतक क्षमता प्राप्त नहीं होती कलोरोंका गर्भ गिरता है। स्वाभाविक रीतिसे रोगके उन्मूलनकी रीति यह है कि, कुछ समय तक ठट्ठमें नयी गाय और बछिया नहीं मिलायी जायँ। जब ठट्ठ रोगरहित हो जाय नयी गाय और बछियाँ उसमें शामिल की जा सकती हैं।

निदान : रोगका निदान "संश्लेष परीक्षा" (एग्लुटिनेशन टेस्ट-agglutination test) से किया जाता है। पशुका रक्त लेकर संश्लेष या एग्लुटिनेशन परीक्षासे ब्रुसेलकी जाँच की जाती है। यदि इस जीवाणुका जरायुमें डेरा हो तो उसकी वृद्धि नहीं रोकी जा सकती और इसी कारण भ्रूणकी मृत्यु भी नहीं रोकी जाती।

यदि छूत लगनेपर भी पूरे महीनेमें किसी गायने पहली बार प्रसव किया या गर्भ गिराया तो पहला ध्यान पुरैन पर देना चाहिये। क्योंकि ऐसी अवस्थामें पुरैन प्रायः नहीं निकलती। भीतर रही पुरैन तुरत निकाल देनी चाहिये और जरायुको गरम तथा जीवाणुशून्य पानीमें नोनके ०·९ सैकड़ा घोलसे धोना चाहिये। जब तक साफ पानी नहीं निकले धोते रहना चाहिये। यह उपचार नित्य और फिर पीछे २ या ३ दिन पर तब तक करना चाहिये जब तक कि, दूषित पदार्थका निकलना रुक न जाय। इसमें प्रायः दो सप्ताह लगते हैं। गर्भपातके

बाद छुतहे पदार्थसे जरायु जबतक मुक्त न हो जाय तबतक गायको फलने न देना चाहिये। इसलिये गरम होने पर भी उसे कम से कम दो महीने तक फलने नही देना चाहिये।

यदि जरायुमें पूदाह हो तो उसका उपचार करना चाहिये। उसमें पुंजीभूत सड़े पदार्थ निकाल कर नलीसे बार बार धोना चाहिये।

निरोध : शुद्ध ठट्ठमें छूत रोकनेके लिये उसमें बराबर अपनी संतान ही दाखिल करनी चाहिये। यदि यह संभव न हो तो नये खरीदे पशु को अलग रख खरीदनेके कमसे कम ३ सप्ताह बाद उनकी संश्लेप-परीक्षा करनी चाहिये।

यदि किसी शुद्ध ठट्ठमें अचानक गर्भपात हो जाय या पुरैन नहीं गिरे तो जब तक कोई और कारण सिद्ध न हो उसे छुतहा गर्भपात समझना चाहिये। उस पशुको पृथक् कर गोशाला और जमीनको पूरी तरह छूतरहित करना चाहिये। भ्रूण और कलाओंको परीक्षाके बाद जला देना चाहिये।

यह रोग देहमें प्रतिपिंड बनाता है। इसलिये छूतके अन्य रोगोंकी तरह क्षमता पैदा करनेके लिये टीका लगाया जा सकता है। इसकी जाँच व्यापक मात्रामें की गयी है। पर अब इस रोगके टीकेके विरुद्ध कहा जाता है। इसके फलप्रद होनेमें तो संदेह है ही। पर एक बार शुरू करनेसे इसे हर ६ महीने पर लगाना होता है। इसकी सलाह नही दी जाती है।

ग्रसित ठट्ठमें छूत फैलना रोकनेके लिये स्वास्थ्यकर उपाय ही एक मात्र सफल उपाय है। गोशाला पूरी तरह छूत रहित कर दी जाय। ग्रसित गायके प्रसवके लिये कम खर्चकी अल्प-कालिक छावनी अलग बना दी जाय। प्रसवकाल और उसके कुछ सप्ताह बाद तक गाय छुतही रहती है। इस निराली (पृथक्) छावनीमें प्रसव होना चाहिये। जिस गायमें गर्भपात या असमय प्रसवके लक्षण दिखायी पड़ें उसे यहाँ हटा देना चाहिये। प्रसव या गर्भपातके बाद गायकी पूरी सफाई हो और उसका छूतनाश किया जाय। जरायुसे निकला सभी दूषित पदार्थ गाड़ अथवा जला दिया जाय। फर्श पर हलकी फूस बिछा कर जला देनी चाहिये। छावनी जला दी जा सकती है।

प्रसवके बाद देखना चाहिये कि, पुरैन निकल आयी या भीतर है। यदि भीतर ही हो तो जैसा बताया जा चुका है करो। जब तक जरा भी स्राव होता रहे गायको

इसी छावनीमें रखो। जब वह पूरी तरह ठीक हो जाय तब ठट्ठमें वापस लायी जा सकती है।

हर हालतमें योनिको अनुत्तेजक घोल जैसे कि नीमकी पत्तीके पानीसे धोओ।

अन्य गायोंके प्रसवके लिये एक अलग छावनी होनी चाहिये। जहाँ सब पशु रहते हैं उसी गोहालमें प्रसव नहीं होना चाहिये। ब्रूसेल जीवाणुकी जाँचके लिये सम्भव हो तो हर वर्ष ठट्ठकी परीक्षा होनी चाहिये। परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्रके बिना भी हो सकती है। ग्रसित और अग्रसित गायोंको अलग कर देना यदि सम्भव हो तो बुद्धिमानी होगी। उसी गोहालको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। इस तरह अग्रसित पशुओंके पक्षकी बलवृद्धि होगी और ग्रसितपक्ष निर्मूल हो जायगा। शर्त यही है कि, केवल परीक्षित सतान ही रखी जाय। परीक्षाके लिये १३६२ पैरा देखो।

१३६६. Tick Fever : लाल पेशाब।

पर्याय :— टिक फीभर, बोभाइन पिरोप्लाज्मोसिस, रेड वाटर, ब्लैक वाटर। **हिन्दी**—जर्द बुखार, लाल पेशाब। **बंगाली**—रक्तमूत्र। **गुजराती**—मूतर-मा-लोही।

लाल पेशाव गरम देशोंका रोग है। यह रक्तमें एक तरह की छूत (पीरोप्लाज्मा बेबेसिया बिगेमिना-piroplasma Babasia Bigem na) लगनेसे होता है जो एक तरहकी किलनीके (बूफिलस boophilus) के काटनेसे उसमें पहुँचती है।

इस परोपजीवीके कारण रक्तमें बहुत विकार होता है जिससे बुखार आ जाता है। पेशाबका रंग लाल हो जाता है। यद्यपि इस ज्वरमें सदा लाल रगकी पेशाब नहीं होती फिर भी इस रंगके ही कारण इसका यह नाम पड़ा है।

यह रोग भारतमें सर्वत्र है।

अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रक्तके यह परोपजीवी नासपातीकी तरह गोल होते हैं जिनका साइटोप्लाज्म (cytoplasm) किसी भी नीले रंगसे नीला हो जाता है। नासपातीकी आकृतिके परोपजीवी प्रायः जोड़ेमें देखे जाते हैं। दोनोंके नुकीले भाग आमने सामने रहते हैं।

प्रयोगके लिये छुतहे रक्तका टीका लगाकर रोग पैदा किया जा सकता है। आराम होनेके बाद एक वर्ष तक वह पशु इसका वाहक रहता है। पीरोप्लाज्म रक्तमें रहता है पर रोगके कारण जो क्षमता हो गयी है इसके कारण वह बढ़ नहीं सकता।

इस किलनीका जीवनचक्र : बूफिलस किलनीका अंडा घासमें सेया जाता है और फूटता है। ६ पैरवाला अर्भक (ढोले) घाससे निकल ढोरकी देह पर आता और उसका खून चूसता है। अपनी विकासकी यह अवस्था वह ढोरके शरीर पर पूरी करता है। कई दिनके बाद अर्भक भूरे से श्वेत रंगका हो जाता है और ५ से १२ दिनमें अपना चोला फिर बदलता है। इसके ८ दिन बाद वह ८ पैरवाला तरुण अवस्थामें आता है। ५ से १२ दिनमें अपनी खाल छोड़ कर यह प्रौढ़ बन जाता है।

नर अडाकार भूरे रंगकी किलनी बनता है जो प्रायः १/१० इंच लम्बी होती है। माताका गर्भधारण करनेके बाद आकार बहुत बड़ा हो जाता है। गर्भधारण करनेके चार दिन बाद यह भरपेट खून पीकर पशुशरीरसे धरती पर टपक पड़ती है जहाँ वह २,००० से ४,००० तक अंडे देती है। वायुमंडलके तापमानके अनुसार अर्भक अवस्थासे अंडा देने तक प्रायः ३ सप्ताह लगते हैं। यदि मादा किलनीने पीरोप्लाज्माकी छूतवाला रक्त पिया हो तो अर्भकमें पीरोप्लाज्मा हो जाता है। और इस तरह विकसित किलनी छुतही किलनी होती है। यह जब किसी पशु को काटती है तब उसके रक्तमें पीरोप्लाज्मा डाल देती है। इसलिये यह रोग वहीं होता है जहाँ छुतहे ढोर हों और किलनी भी मौजूद हो। झाड़ीदार और नम स्थानमें ही छूत हुआ करती है। छुतहे स्थानके ढोर १० या १२ वर्ष तक या जन्म भर अपनी देहमें पीरोप्लाज्म वहन करते हैं। इसलिये बिना छूतवाले स्थानोंमें यदि छुतहे पशु न हों और किलनी हों तो छुतहे स्थानके पशु विपदके कारण हो सकते हैं।

ग्रहणशीलता : तरुण बछरू बहुत ग्रहणशील होते हैं। इसलिये यदि किसी ठट्ठमें छूत और किलनी दोनों हो तो जन्मके बाद बछरूको छूत लग जाती है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि, छूत लगनेके बाद बछरूको हल्का बुखार हो जाता है। हर हालतमें बुखार नहीं भी हो सकता है। बछरू मरते नहीं हैं। छूत लगनेके बाद उन्हें क्षमता हो जाती है पर प्रायः यह छूतके वाहन हो जाते हैं।

लक्षण : पीरोप्लाज्म और वाहक क्षमता-प्राप्त पशुकी, माता या खुरपका जैसी बीमारीके बाद, देह टूट जा सकती है। तब इस पशुको यह रोग हो जाता है। रक्तके जीवाणु बढ़ने लगते हैं और उग्ररूपमें रोग प्रगट होता है।

रोग उग्र या जीर्ण रूपमें हो सकता है। उग्र रोगका लक्षण १०६ से १०७ डिग्री फा० का तेज बुखार है। प्रारम्भिक अवस्थामें कब्ज होता है। इसके बाद अतिसार या पेचिश और मूतका लाल रंग। मूत रंगीन होता है। वह खूनीसे लेकर काले रंग तकका हो सकता है। उस गायको रक्ताल्पता हो जाती है और पांडु रोग दिखाई दे सकता है। अतिसारमें आँव और खूनके थक्के हो सकते हैं। दूध घट जाता है। कभी कभी दूधका रंग पीला हो जाता है। साधारण तौर पर गाभिन गायका गर्भ गिर जाता है।

बादकी अवस्थामें पिछले पैर कमजोर हो जाते हैं और पशु लंगड़ा कर घसीट घसीट कर काँपता चलता है। पेशियाँ फड़कती हैं। दोनों बगलें पिचक जाती हैं। चमड़ा सूखा और रुखड़ा हो जाता है। आँख बहने लगती है। श्लैष्मिक कला पहले सूखी और रुखड़ी हो जाती है फिर पीली। नाड़ी तेज हो जाती है, थोड़ी मेहनतसे १२० से १६० की चाल हो जाती है।

रक्त असाधारण तौर पर चमकीले लाल रंगका अधिक पनीला हो जाता है। थक्का बनने पर रक्तरसमें लाली देखी जाती है। रक्त गणना करने पर रक्त-कणिकायें घट कर प्रति सी० सी० १५ लाख हो जाती हैं और इनके बीच बीच परोपजीवी हो जाते हैं जिनकी संख्या रोगकी गंभीरताके हिसाबसे होती है।

प्रतिकूल परिस्थितिमें रोगी इतना शिथिल हो जाता है कि, वह खड़ा नहीं रह सकता और बराबर बैठा रहता है। साँस लेना कठिन हो जाता है। पशु कष्टसे कराहता है। आँसू और लार बहती रहती है। पेशियोंकी फड़कन बराबर बढ़ती जाती है। तापमान तेजीसे घटकर ९८ डिग्री फा० हो जाता है और पशु मर जाता है। हल्के आक्रमणके लक्षण इतने कड़े नहीं होते। तापमान अचानक नहीं घटता, क्रमशः घटता है। भूख और बल धीरे धीरे बढ़ते हैं। रक्त-कणिकायें भी बढ़ती हैं। चङ्गा होनेमें महीनों लगते हैं।

कभी कभी उग्र आक्रमणके बाद जीर्णरूप हो जाता है या कभी कभी सुस्थ पशुमें अज्ञातरूपसे ऐसा हो जा सकता है। तापमान प्रायः १०४ डिग्री हो जाता है और साधारण तौर पर १०५ से १०६ डिग्री फा० के भीतर रहता है। रक्तकी कमी और

दुबलापन धीरे धीरे होता है। मूतका रंग नहीं बदलता और न उसमें हेमोग्लोबिन होता है। रोगका दौरा कई सप्ताहका होता है। चङ्गा होनेमें कुछ सप्ताह और अधिक या महीनों लग सकते हैं। जरासा तापमान बढ़ने से रोग दुहरा जा सकता है।

उग्रव्याधिमें मृत्यु प्रायः हो जाती है। गरमीके महीनोंमें मृत्युसंख्या सबसे जादे होती है। जीर्ण व्याधिमें यदि उपद्रव न हों तो शायद ही मृत्यु होती है।

छोटे बच्चोंपर हुए आक्रमण ध्यान खींचे बिना गुजर जा सकते हैं। ९ महीनेसे कम उमरके बच्चोंका रोग सिर्फ कुछ दिनका होता है। १ से २ वर्षकी उम्रके पशुओंकी मृत्युसंख्या २५ सैकड़ा हो सकती है। एक आक्रमणसे आराम हो जानेके बाद ढोर प्रायः क्षमता प्राप्त कर लेते हैं।

निदान : मूतमें हेमोग्लोबिन (लाल रंग), तापमान बढ़ना और पांडुता सही निदानमें सहायक होती हैं। यदि मूत लाल न हो, केवल तापमान बढ़े, पर ठट्ठके अन्य पशुओंमें इसके लक्षण हों तो इसे लाल पेशाब ही मानना चाहिये। किलनीकी खोज करनेसे निदानमें सहायता मिलती है। अणुवीक्षण परीक्षासे रक्तमें परोपजीवी पाया जाय तो शुद्ध निदान हो सकता है।

गलघोंटू और गिल्टी दोनोंके अनेक लक्षण लाल पेशाबके समान हैं। पर उन रोगोंमें व्याधि तेजीसे बढ़ती है और रक्तकी कमी नहीं होती। मूत लाल नहीं होता। सूजन रहती है।

शवपरीक्षामें अणुवीक्षण यंत्रके बिना भी गिल्टीका काला खून 'लाल-पेशाब'के लाल रक्तका भेद बतावेगा।

चिकित्सा : चिकित्सा सम्भव है और यदि जल्दी ही शुरू कर दी जाय तो आराम हो जानेकी आशा बहुत रहती है। पर आराम होने का यह मतलब नहीं कि, रक्तके परोपजीवी नष्ट हो गये। पशुमें यह बने रह सकते हैं और प्रायः रहते भी हैं। ट्राइपेन ब्लू, बेंजीडाइन वर्ग (Benzedine series) का नीला रंग है। यह इसकी विशेष औषधि है। उस ब्लूके घोलकी सूई शिरामें दी जाती है। तापमान क्षणिक बढ़ता है परन्तु रोग कुछ घंटोंमें काबूमें आ जाता है। पेशाब साफ हो जाती है और परोपजीवी या तो गायब हो जाते हैं अथवा उनकी संख्या घट जाती है।

देहकी तौलके प्रति २०० रत्तल पर १½ से ३ ग्रेन ट्राइपेन ब्लूकी शिरामें सूई लगाने से अच्छा फल मिला है। सूई सावधानीसे लगानी चाहिये। क्योंकि, यदि त्वचामें ब्लू चला जाय तो पीब पैदा होती है और वह सूख (मर) भी जा सकती है। यदि कोई सुधार न हो तो इसे ६ या २४ घंटे पर फिर लगाना चाहिये। ट्राइपन ब्लू १ से ५ सैकड़े शक्तिके नॉर्मल सेलाइनमें घुल जाता है। सूई लगानेसे तन्तुका रङ्ग भूरा नीला हो जाता है। यदि जरूरत हो तो सूई दुबारा लगाई जा सकती है। ब्लू से हाथ रङ्ग सकता है। थोड़ेसे कैलशियम क्लोराइड और हाइड्रो-सल्फाइटसे दाग मिट जाता है। अब तो ट्राइपाफ्लेविन काममें आता है। यह ट्राइपेन

क ख

चित्र १६४. बूफिलस एनुलेटस।
क—नर; ख—मादा।

ब्लूसे भी अच्छा परिणामकारी है। ट्राइपाफ्लेविनकी मात्रा १५ ग्रेन सयानोंके लिये है और तरुणोंके लिये ५० सी० सी० नॉरमल सैलाइनमें ७ ग्रेन शिरामें देनी चाहिये।

ट्राइपाफ्लेविन पर प्रकाशका असर होता है। जिस पशुको यह दिया गया हो उसे धूपमें नहीं निकालना चाहिये और तीव्र प्रकाशसे उसे कई दिनों तक बचाना चाहिये।

ट्राइपाफ्लेविन या ट्राइपेन ब्लूके साथ अतिसार और रक्ताल्पताकी चिकित्सा लक्षणोंके अनुसार होती रहनी चाहिये।

जब हेमोग्लोबिनके क्षयसे पशु बहुत कमजोर हो जाय और उसे रक्ताल्पता हो तो शिरामें नॉरमल सैलाइनकी सूई देनी चाहिये। कब्जियतमें मैगसल्फ या सोडासल्फका

जुलाब देना चाहिये और अतिसारमें अफीम। रक्ताल्पतावाले पशुको मंडके साथ नित्य १ से २ ड्राम आयरन सल्फेट (हीराकस) देना चाहिये।

क्षमता : सहज छूतके इलाकेमें क्षमताकरणकी कोई जरूरत नही। क्योंकि, बछरुओंको बहुत बचपनमें रोग लग जाता है। इस तरह उनमें क्षमता आ जाती है। बारहमासी रोगके इलाकेसे ग्रसित पशु जब स्वच्छ इलाकोंमें आते हैं तब कठिनाई होती है। यहाँ ये दूसरोंको छन लगाते हैं जिसका परिणाम भीषण होता है। इसी तरह यदि स्वच्छ भागके पशु बारहमासी भागमें जाते हैं तो वह रोगके शिकार बनते हैं और मर जाते हैं। इसका इलाज यही है कि, बछरुओंको ही क्षमता प्रदान करनेका प्रयत्न होना चाहिये। इसके लिये ग्रसित या वाहक पशुके कुछ सी० सी० (डिफाइब्रिनेटेड-फाइब्रिनरहित) रक्तकी सूई लगा दी जाय। यदि ग्रसित प्रदेशमें सयाने बछरू लाना हो तो ऊपरकी विधिसे उनको सूई लगा क्षमता प्रदान कर देनी चाहिये। यदि प्रतिक्रिया सीमासे बाहर होने लगे तो ट्राइपाफ्लेविन या ट्राइपेन ब्लूकी सूईसे उसे काबूमें लाना चाहिये।

१३६७. Surra : सड़ा।

पर्याय :—सड़ा, ट्राइपेनोसोमिएसिस। **हिंदी**—सड़ा, तिनसाला, जहरबाद।

खास तरहके मियादी और पारीके बुखारका नाम सड़ा है। ट्राइपेनोसोम इभान्सी नामक परोपजीवीके कारण रक्तकी छूतसे यह होता है। घातक रक्ताल्पता और छीजन इसका लक्षण है।

यह रोग मुख्यतः घोड़े और ऊँटका है। कभी कभी कुत्ते पर भी आक्रमण हो जाता है। गाय भैंसको भी छूत लगती है। यद्यपि इनमें रोगके लक्षण हल्के ही होते हैं पर ये मुख्यरूपसे बाहनका काम करते हैं। गाय भैंस पर जोरका आक्रमण होने पर आसानीसे उनको आराम किया जा सकता है। पर घोड़े और ऊँटका रोग प्रायः घातक होता है।

यह मौसमी रोग है। इसकी छूत दो तरहकी मक्खियाँ (टेबेनस और स्टोमोक्सिस) फैलाती हैं। ये ग्रसित पशुको काटती हैं। अपनी सूँड़में उसका ग्रसित रक्त ले जाती हैं और जब दूसरे सुस्थ पशुको काटती हैं तब उसमें उसे डाल देती हैं। इसके अन्य बाहन भी हैं। यह रोग बरसातमें खूब होता है। उस

मौसममें नम जमीनमें ये मक्खियाँ बहुत अंडा देती हैं। ग्रसित प्रदेशोंमें सड़ाके इलाके होते हैं और मौसम भी होते हैं। यह परोपजीवी ट्राइपेनोसोम वंशका है। कई ट्राइपेनोसोम हैं जो कई रोग पैदा करते हैं।

सड़ा : ट्राइपेनोसोम इभान्सीके कारण होता है।

नगाना : सभी पशुओंको खासकर घोड़े और ऊँटको ग्रसता है। ट्सेट्सी (Tsetse) मक्खियाँ ट्राइपेनोसोम ब्रूसी (Brucei) को फैलाती हैं जिससे यह रोग पैदा होता है।

पित्तका रोग (गायका) : आफ्रिकामें ट्राइपनसोम थिलेरी (trypanosome theileri) के कारण होता है।

चित्र १५. ८. टैबेनस बोभिनस।
नर ; ख—मा...
है।
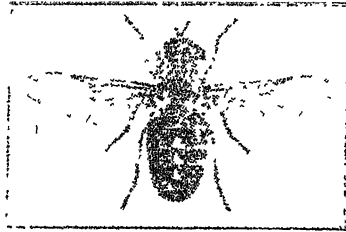
निद्रारोग (आदमीव... ...सस (trypanosome gambiense) के का... है। ट्राइपाफ्लेवि... बड़ा परो...

ट्राइपनसोम इभान्सी से... ०० सी० सी० नों इसके... यह गतिमान है। यदि रक्त लेनेके बाद तुरत परीक्षा की... ...सकते हैं। यह फाड़ता चीरता चलता है। आकारमें यह रक्त... ...र होता है ६,४ गुणा बड़ा होता है। यह रक्त-कणिकाओंको सीधे तौर पर न तो ... सकता है और न सोख सकता है। पर कणिकाओंका पदार्थ आँसमोसिस (परिस्रवण और संमिश्रण) की क्रियासे इसके भीतर चला जाता है जिससे इसका पोषण होता है। इस तरह रक्त कमजोर हो जाता है जिससे रक्ताल्पता और छीजन होती है। वह रक्त जीवन-पोषणके लायक नहीं रहता। इसकी वंशवृद्धि विभाजन क्रियासे होती है। इसलिये जहाँ इसे वृद्धिका बेरोक मौका मिलता है वहाँ यह बहुत बुराई करता है।

लक्षण : पशुको ज्वर हो जाता है। सुस्ती रहती है। बाल खड़े हो जाते हैं और आंख बहती है। कुछ दिनोंके बाद इन परोपजीवियोंकी वृद्धि कम जाती है तब रोगी कुछ सुधरता है। यह कुछ दिनों या सप्ताहके बाद फिर होना है। इसके बाद आक्रमण पर आक्रमण होते हैं। पशु दुबला हो जाता है। छीजन और शोथ होती हैं। अंतमें पशु मर जाता है। घोड़े और ऊँटको छूत लगने पर ये लक्षण होते हैं। गाय भैंसकी बीमारी बहुत कम भयंकर होती है। ज्वर नहीं रहने पर रक्तप्रवाहसे परोपजीवी गायब हो जाते हैं और ज्वर होने पर फिर आ जाते हैं। मालूम होता है कि, ढोरमें एकसम अवस्था होती है। इस समय ये परोपजीवी की वृद्धि नहीं कर सकते। भारतमें गाय भैंसे छुतहे रक्तका भंडार हैं। खास मौसमोंमें मक्खियाँ दूसरे पशुओंको छूत लगानेमें यह रक्त काममें लातीं हैं।

समय समय पर भारतमें भी यह रोग तीव्रतासे ढोरमें फूट पड़ता है। ऐसी हालतमें मृत्युसंख्या ५० से ६० सैकड़ा हो जाती है। रोग तेजी से बढ़ता है और कई बार बुखार लगने पर रोगी मर जाता है। लक्षण प्रकाश. होनेका समय ४ से ८ दिन है।

बुखारके समय रक्तकी अणुवीक्षण परीक्षासे रोगका निश्चित निदान हो सकता है। गाय भैंसका रोग सरलतासे रोका और आराम किया जा सकता है।

चिकित्सा : इसमें एमेटिक टारटारकी सूई शिरामें लगायी जाती है। प्रति १०० रत्तल शरीर तौलके लिये इसके ३ सैकड़ा घोलकी ५ सी० सी० इसकी मात्रा है। यदि बीमारी दुहरा जाय तो दूसरी मात्रा देनी चाहिये। इसके साथ नित्य दो बार आरसेनियस एसिड स्वल्पारम्भ करके १५ ग्रेन तक खिलानेसे जादे लाभ होता है। घोड़े और ऊँटमें टारटार जादे लाभका नहीं है। जरमनीका बना नागनोल (Naganol) या बेयर २०५ (Bayer 205) ऐसी हालतमें लाभप्रद हैं।

निरोध : ठट्ठके कई पशुओंको यदि पारीका बुखार और दुबलापन हो तो सड़ाके आक्रमणकी आशंका करनी चाहिये। ग्रसित पशुओंको कहीं दूर हटा देना चाहिये। जिससे कि, उन्हें काटनेवाली मक्खियाँ आकर सुस्थ पशुओंको छूत न लगावें। संभव हो तो संदिग्ध पशुओंके रक्तको अणुवीक्षण परीक्षा की जाय। यदि रोगका संदेह सिद्ध हो जाय तो टारटार चिकित्सा शुरू कर दी जाय। छूतके संदेह मात्रपर रक्तपरीक्षा किये बिना भी टारटार दिया जा सकता है।

१३६८. Tetanus : धनुष्टंकार।

पर्याय :—टिटेनस, लोकजॉ। **बंगाली**—धनुष्टंकार।

यह छूतवाला उग्र रोग है। क्षतोंकी राह छूत लगती है जिसकी नाड़ी केन्द्रोंपर प्रतिक्रिया होती है। इस कारण पेशियां खिचती हैं और आक्षेप (spasms) होता है। पशुशरीरमें अवायुजीवी धनुष्टंकारी जीवाणु (बैसिलस टिटानी : क्लौस्ट्रिडियम टिटानी) के घुसनेसे यह रोग होता है। यह एक से दूसरे को फैलनेवाला मकामक रोग नहीं है। यह इक्का दुक्का हुआ करता है।

धनुष्टंकारी जीवाणुके बीज (स्पोर्स) होते हैं। यह स्वयं और इनके बीज दुनियांमें तमाम व्याप्त हैं। धूल, धरती, पानी, खाद, नाली, फर्श और सुस्थ पशुके महास्रोतमें भी ये पाये जाते हैं। जब यह क्षतमें पहुँचते हैं तो धनुष्टकार पैदा करते हैं। ये क्षतमें ही डेरा डालते हैं जहाँ वह एक विष तैयार करते हैं जिससे यह रोग होता है। विषका खिँचाव नाड़ी-पदार्थोंकी तरफ है और वह अपना कार्य नाड़ीसंस्थानके द्वारा ही करता है। क्षतसे विष स्थानीय नाड़ीमें जाता है तब उसकी प्रतिक्रिया केन्द्रीय नाड़ी-संस्थानमें होती है। कठिन रोगोंमें विष रक्तमें होकर मस्तिष्कमें जा सकता है और नाड़ीके छोरोंसे सुषुम्नामें। सूखी हालतमें रेणु (स्पोर्स) वर्षों जीता रह सकता है। सड़नेवाली चीजोंमें हफ्तों रह सकता है। उबालनेसे यह मर जाता है।

छूतग्रस्त पशुओंका रक्त और तंतु छुतहे नहीं होते। छूतग्रस्त क्षतके पदार्थ छुतहे होते हैं।

छूतवाले जीवाणु धरतीमें होते हैं। खोंच, क्षत, कील चुभनेसे हुआ क्षत या तंतुओंके नष्ट होनेसे हुआ क्षत छूत लगनेके लिये बहुत अनुकूल है। पैरके क्षत जिनका संसर्ग मिट्टी या गोबरसे हो सकता है उनमें छूत लगनेकी संभावना जादे होती है। बछरू या शिशुओंकी नारमें छूत बहुत लग सकती है। मुँहकी कलाके क्षतसे छूत लग सकती है जो नहीं भी देखा जा सकता है। जीवाणुसे दूषित कड़ी चीजोंके खानेसे हुए क्षतसे प्रायः ढोरको छूत लग जाती है। पुरैन नहीं गिरनेसे भी धनुष्टंकार हो सकता है।

लक्षण प्रकट होनेका काल भिन्न भिन्न है। तरुण पशुओंमें यह इतना कम कि २४ घंटा भी हो सकता है। पर गायमें अधिकांश २ से १५ दिन।

लक्षण : रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी पेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। इसका लक्षण धीमी चाल, रुक रुक कर चबाना, और धीरे से निगलना है। जोड़ आसानीसे नहीं लचते। अकड़न सारी देहमें तेजीसे फैलती और खास लक्षण प्रगट होते हैं। सिर अजीव तरहसे तन जाता है और पैर छितरा जाते हैं। पशु कठिनतासे चल सकता है। मुड़ना कठिन होता है। देह अकड़ जाती है। कान खड़े हो जाते हैं। आँखें स्थिर हो जाती और पुतलियाँ फैल जाती हैं। नथुने फैल जाते हैं। पेशियोंमें चमक (खिंचाव) होता है। जबड़े जकड़ जाते हैं। गलकी पेशियों के खिंचावके कारण थूक नहीं निगला जा सकता। इससे लार मुँहसे लटकती और टपकती रहती है। पेट सिकुड़ जाता है जिससे पाखाना पेशाब
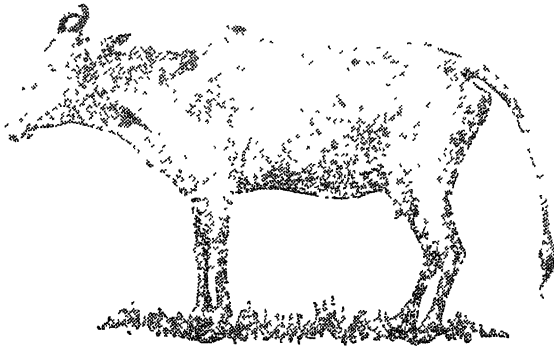
चित्र १६६. धनुष्टंकार।
गायकी पेशियोंकी साधारण अकड़न।

रुक जाती है। पूँछ अकड़ जाती है और हिल नहीं सकती। यह एक ओर खिँच जाती और कुछ उठ जाती है।

पेशियाँ लकड़ीकी तरह कड़ी हो जाती हैं और इतनी उभड़ आती हैं कि साफ मालूम होती हैं। जरासे भी स्पर्शसे बहुत उत्तेजना होती है और चमक (आक्षेप) उठती है। जरासी रोशनी या आवाज और हिलनेकी कोशिशसे ऐसी चमक होती है कि पशु लकड़ीके कुन्देकी तरह धड़ामसे गिर पड़ता है। इससे उसे चोट लग सकती है। आक्षेपकी चमक बीचबीचमें रुक कर फिर होती है। चमकके साथ बहुत पसीना चलता है। साँस लेना कठिन होता है और पूरी तरह नहीं ले सकता।

इससे नीलिया (साइनोसिस) हो जाती है। तापमान जरासा चढ़ता है। पर बराबरकी चमक या ऐंठन उसे तेज कर देती है। मृत्युके पहले चमक बराबर लगातार होती रहती है और ताप १०५ से १०७ डिग्री फा० तक चढ़ सकता है। स्ट्रिकनीनके जहरमें ऐसे ही लक्षण होते हैं। जलातंक, गर्दनतोड़ (मेनिनजाइटिस) और गर्दनकी वातव्याधिमें कुछ इसी तरहकी अकड़न होती है। गायोंको प्रायः प्रसवके बाद विशेषकरके पुरेन नहीं गिरनेपर धनुष्टंकार होता है।

दौर : छूत लगनेके बाद तेजीसे मानलो ६ दिनमें रोग प्रगट हो तो क्या होगा यह कहना अधिकांशमें ठीक नहीं होता। साधारण तौर पर रोगी मर जाता है। जब रोग प्रकट होनेमें अधिक समय लगता है तब रोग मन्दगतिसे बढ़ता है। तब कुछ उम्मीद होती है। यदि रोगी दूसरे सप्ताह भर जीता रह गया और कोई उपद्रव भी नहीं हुआ तो चंगा होनेकी उम्मीद की जा सकती है।

गायका यह रोग घोड़ेसे कम तीव्र होता है। गायकी मृत्युसंख्या ७० सैकड़ा है पर घोड़ेकी ७५ से ८५ सैकड़ा तक।

चिकित्सा : अँटी-टिटेनस सिरम सच पूछो तो पशुओंको लाभ नहीं पहुँचाता। बहुत जादे मात्रा देनी होती है जिसका खर्च बहुत जादे होता है। फिर भी बढ़ी हुई बीमारीमें कोई संतोषप्रद फल नहीं होता। यदि रोगने केन्द्रिय नाड़ी-संस्थान पर एक बार क़ब्ज़ा किया तो सिरम बिष दूर नहीं कर सकता। वह केवल आगेका फैलना रोक सकता है। सिरम की ५० से १०० सी० सी० या अधिक की सूई शिरामें लगानेसे प्रारम्भिक अवस्थामें सिरम कुछ उपकार कर सकता है।

केवल शामक (पैलिएटिभ) चिकित्सा ही विहित है। खिलाने या औषधि पिलानेके लिये जहाँतक संभव हो पशुको कम से कम दिक किया जाय। उसे शान्त पड़ा रहने दिया जाय। जबतक वह निगल सकता है उसे मंड या दूध आदि दिया जाय। ताकत बनाये रखनी है। पीनेके लिये पासमें ठंडा पानी रख देना चाहिये। पानी या खानेकी नाद सिरकी ऊँचाई के बराबर रखनी चाहिये।

यदि कोई क्षत मिले तो कोथघ्न उपचारके साथ उसकी पट्टी की जाय। एनिमाके द्वारा पेट साफ करनेकी कोशिश करो। कारबोलिक एसिडका इलाज कुछ फायदेका बताया जाता है।

कारबोलिक एसिड	...	१ ड्राम।
गरम पानी	...	२½ आउन्स, ५ सैकड़ा घोल बनाओ।

ठंढा होने पर अंतस्त्वक्-सूई गरदन या कंधेमें प्रति दूसरे घंटे, पहले ३२ घंटों तक लगाते रहो। इसके बाद जरा देरसे। २४ घंटेमें ३६ ड्राम तक सूई लगायी जा सकती है। मालूम होता इस रोगमें कारबोलिक एसिडके लिये विशेष सहनशीलता हो जाती है। कारबोलिक एसिड और शिरामें ल्यूगल सोल्युसनकी सूई फेर बदल कर लगायी जा सकती है।

गुदामार्गसे नित्य १ से २ आउन्स क्लोरल हाइड्रेट दिया जा सकता है। ३ से ४½ ग्रेन मोरफीन अंतस्त्वक्में दी जा सकती है। सुषुम्नामें नोभोकेनके १ सैकड़ा घोलकी ५० सी० सी० लगानेसे सुधार और आराम होते पाया गया है।

मैगनीशियम सल्फेटकी अंतस्त्वक्-सूई बतायी जाती है। मैग० सल्फ० के ३० सैकड़ा घोलकी ५० सी० सी० या ५० सी० सी० पानीमें ½ आउन्स मैग० सल्फकी सूईसे अच्छे फलकी रिपोर्ट मैसन देते हैं।

१०० सी० सी० कैलशियम क्लोराइडकी शिराकी सूई बार बार देनेके बाद साल-भरसनकी सूई शिरामें लगानेसे आराम होना संभव है। यह रिपोर्ट है। सोडियम बाईकारबोनेटके ८ सैकड़ा घोलकी ५०० से १५०० सी० सी० की सूई शिरामें लगानेसे २० में से १७ घोड़ोंके आराम होनेकी रिपोर्ट है।

१३६६. Rabies : कुकुर-विष।

कुकुर-विष उग्र संक्रामक और बहुत जादे छुतहा रोग है। इसमें मानसिक और नाड़ीकी गड़बड़ी होती है। नाड़ियाँ उत्तेजित हो जाती हैं इस कारण पक्षाघात होता है।

यह रोग खासकर दाँत काटनेसे पशुसे पशु और आदमीको होता है। जो पशु अपने दाँतोंसे आक्रमणात्मक हथियारका काम लेते हैं और जिन दूसरोंको काटते हैं वे इसके शिकार हैं।

इसके जीवाणु पराणुवीक्षणीय (ultra-microscopic) हैं। छूत शुरूमें एक स्थान पर लगती है। उसमेंसे विष पैदा होता है जो केन्द्रीय नाड़ी-संस्थानको ग्रसता है। छूतग्रस्त होनेके बाद लाला-ग्रन्थिमें रोगाणु हो जाते हैं। उसमेंसे वह थूकमें आते हैं।

कुतियासे कुत्तेमें लड़नेकी प्रवृत्ति अधिक होती है। इसलिये कुतियोंसे अधिक कुत्ते इसके रोगी होते हैं। उनमें यह ७ : १ होता है। हरेक दंश (काटना) परिणामकारी नहीं होता। दंशनके बाद लगभग २० सैकड़ा छूतग्रस्त होते हैं। गीला रखने पर थूकमें रोगाणु ११ दिन तक जीता है। पानीमें वह २० से ३० दिन सक्रिय रहता है। मस्तिष्क-पदार्थमें दो सप्ताह या अधिक भी जी सकता है। ताप इसे मार डालता है।

दाहक कोथघ्न रोगाणुको आसानीसे नष्ट कर देता है। खनिज अम्ल, चूनेका पानी, रसकपूर (कोरोसिभ सबलिमेट) खास तौर पर उपयोगी हैं। कहा जाता है कि, चूनेका पानी रोगाणुको ३ मिनटमें मार देता है। पाँच सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक एसिड या सैलिसिलिक एसिड और १० सैकड़ा तूतियेका घोल रोगाणुको ५ मिनटमें मार देता है।

रोगके प्रच्छन्नकालमें बहुत भिन्नता रहती है। प्रच्छन्नावस्था के बाद जितनी जल्दी लक्षण प्रगट हों प्राणका संकट उतना ही जादे है। कुत्तोंमें यह काल १५ से ६० दिनका होता है। पर यह ६ महीनेके बाद भी विकसित हो सकता है। आदमी और पशुमें रोग प्रकट होनेका यह काल १४ से ५० दिनका है। कुत्तोंमें यह काल असाधारण तौर पर ५ से ६ महीना या २५ महीना तक भी लंबा हो सकता है।

यदि दाँत काफी नहीं चुभे, केवल चमड़ा ही चिर जाय तो रक्त निकलनेसे रोगाणु बह जा सकते हैं। इस तरह पशु छूतसे बच सकता है। इसी तरह कपड़ेसे ढके अंगपर या बालसे भरे पशुको काटनेसे कुछ परिणाम नहीं भी हो सकता है। थूक कपड़े पर ही रह सकता है। इसलिये काटनेसे छूत नहीं लगेगी। गहरे और विदीर्ण क्षतसे तंतुओंपर रोगाणुके जमनेका जादा मौका रहता है। शाखाओंकी अपेक्षा मुँह और सिरका दंशन अधिक हानिकर होता है। मूषक और शशकसे कुत्ते बिल्लियोंमें रोगाणु आ सकते हैं यदि ये शशक-मूषकवर्गको काटें। जलातंकसे चंगा हो जानेवाले पशु स्थायी क्षमता भोगते हैं। सयानोंकी अपेक्षा तरुण पशुओंमें यह रोग तेजीसे बढ़ता है। काटे हुए लगभग ७० सैकड़ा पशुओंमें यह रोग १५ से ४५ दिनके अन्दर प्रकट होता है। लगभग १० सैकड़ामें ४६ से ६० दिनके अन्दर। बाकीमें अबेर सबेर यह प्रकट या विकसित होता है।

कुत्तेमें लक्षण : यह भीषण या "मूक जलातंक" के रूपमें प्रगट होता है।

कुत्ता भीषण होनेके पहले अतिस्नेही हो जाता है, अपने मालिकका हाथ और मुँह चाटता है। इसके बाद उसमें उत्तेजना और उदासीनता या अवसाद प्रगट होता है। वह दुखी और चंचल हो जाता है, अँधेरेमें दीनतासे पड़ा रहता है। बुलाने पर अनिच्छासे आता है। कभी कभी कुत्ता व्याकुल हो जाता है। अपना विश्रामस्थल बहुधा बदलता या आकुल हो घूमता है। और फिर अकारण भूँकता और हवामें मुँहसे काटता है। अकारण चौंक उठना और मक्खियाँ हबकता सा मालूम होता है।

उत्तेजना बढ़ जाती है। काटनेकी प्रवृत्ति होती है। जरासी बाहरी उत्तेजना से डर या चौंक उठता है। कुछ कुत्ते काटी जगह चाटते, काटते, कुदेरते या रगड़ते हैं। कभी कभी यह इतना जादे होता है कि, अपना मांस नोचकर हड्डी निकाल देते हैं।

खाना छोड़ देते हैं और अभक्ष्य वस्तुओंके लिये जैसे कि, चमड़ा, कपड़ा अपना गू तक खानेकी असाधारण भूख हो जाती है। निगलना कठिन हो जाता है। गलकी पेशियोंका आंशिक पक्षाघात पानी पीना कठिन कर देता है। कुत्ता बहुधा पानी चाहता है। मुश्किलसे थोड़ा पानी पी पाता है। इस अवस्थामें लार चलने लगती है। पेशाब करनेकी असफल चेष्टा बहुत करता है। अतिसार शुरू हो सकता है। कामोत्तेजना अत्यधिक बढ़ जाती है और रोगी अपनी कामेन्द्रियोंको सूँघता और चाटता है। आँखे चमक उठती हैं और दृष्टि चिन्तातुर हो जाती है।

दूसरी अवस्था कहीं अधिक उत्पाती होती है। यह $\frac{1}{2}$ से ३ दिनमें शुरू हो सकती है। भ्रम बढ़ जाता है। कुत्ता जमीन चाटता, कुछ मिले उसे काटकर फाड़ डालता और निगल जाता है। बन्द कर देना पसन्द नहीं करता। वह छूटकर घूमनेकी कोशिश करता है। यदि छूट जाय तो अकारण ही दूसरे कुत्तोंको काट लेगा। लड़ाईमें छूतग्रस्त कुत्ता नहीं गुर्राता और न गुर्रा सकता है। वह खासकर सिरपर काटनेकी कोशिश करता है। भेड़ और गाय पर आक्रमण करता है पर कम। मनुष्योंपर साधारणतः आक्रमण नहीं करता। पागल कुत्तोंको जबतक उकसाया या डराया न जाय वह आदमी से बचते हैं। काटनेके दौरेके बाद कुत्ता क्षतोंसे भरा लौटकर आ सकता है और घरमें छिपा रहता है।

बाँधने पर वह गुस्सेके मारे बहुत उछलता कूदता है। यदि वहाँ कोई लोहे आदि की बड़ी चीज हुई तो उसे इतने झोंकेसे काँटता है कि दांत टूट सकते हैं।

पागल कौन चीज क्या और कैसी है नहीं समझता। वह दहकते अङ्गारेपर झपटकर उसे काट सकता है या लाल जलते हुए लोहेको काट सकता है। क्रोधके बाद सुस्ती आती है। पशु थक जाता है, खड़ा होता तथा गिर गिर पड़ता है। वह चक्कर काटने लगता है। आक्षेपके चिन्ह प्रगट होते हैं।

पक्षाघात होता है। कंठकी पेशियोंमें लकवा मारने (पक्षाघात) के कारण भूकनेका स्वर कठोर हो जाता है। वह खास तरहसे रोने लगता है जो पागल कुत्तेका खास लक्षण है। निगलना कठिन हो जाता है। पानी घोंटना बहुत कठिन हो जाता है। क्योंकि, मुँहकी पेशियोंकी प्रतिसंक्रमित उत्तेजना पीनेकी चेष्टा या पानी देखकर ही होने लगती है। यही जलातङ्क है। लार बढ़ जाती है।

साधारण तौर पर ३-४ दिनके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है। पक्षाघात अधिकाधिक स्पष्ट और स्थायी हो जाता है। मुँह खुला रहता है, जीभ सूखी और बदरङ्ग हो जाती है और बाहर निकली रहती है। मुँहसे फेन निकलता है। साधारण तौर पर पिछला भाग पक्षाघातके कारण बेकाम हो जाता है। यह छीजनकी अंतिम अवस्था है। इसके बाद रोगी मर जाता है।

ढोरमें भी यही लक्षण बहुत कुछ होते हैं। दोनों पशुओंकी देहकी गढ़तमें जो भेद है उसके अनुसार कुछ कुछ भेद होते हैं। पागल गायमें बेचैनी हो सकती है। उत्तेजना और उद्धतता भी हो सकती है। वे एक जगह सिर उठाये खड़ी रह सकती हैं। ऊपरी ओठ खिचा रह सकता है। वह अपने खुर और सींगसे धरती कोड़ सकती हैं। आवेश इतना अधिक होता है कि, इसमें उनके सींग टूट सकते हैं। वे गरदन तानकर चारों तरफ देखतीं और दूसरे पशुओं, खासकर कुत्तोंपर टूटना चाहती हैं। आवेशका दौरा कुछ लंबे समय तक रहता है। इसके बाद लंबेसे लंबे समय तक सुस्ती रहती है। काटी जगह को वे चाटती, काटती या रगड़ती हैं। उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि, मांस भी नोंच सकती हैं। भूखका अभाव, रौंथ रुकना, कब्ज और अतिसार, पेशीसमूहका आक्षेप ये कुछ विशेष लक्षण हैं। कामोत्तेजना भी होती है। थकावट बढ़ जाती है और रोगी पशु ३ से ६ दिनमें मर जाता है।

इस रोगके "मूक" रूपमें उत्तेजना नहीं होती। न तो काटनेकी शक्ति ही होती है और न प्रवृत्ति ही। आसपास निरीक्षण करनेकी असाधारण इच्छा होती है। निगलनेकी कठिनाई, कब्ज, और पिछले भागकी कमजोरी होती है। मुँहसे

लार टपकती है। पानी नहीं घोंटा जा सकता। घोंटनेके प्रयासमें वह नाकसे छलक आता है। पहले सप्ताहके अंतमें मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा : काटनेसे हुए क्षतको अच्छी तरह साफकर धोना चाहिये और जितना वह सके उतना खून बहने देना चाहिये। खूनके साथ रोगाणु धुल जाते हैं। इसलिये अधिक रक्त-स्रावसे रक्षा होती है। धोनेके तुरत बाद तंतुओंमें बैठे रोगाणुको अधिक मात्रामें नीबूके रससे मारनेका प्रयत्न करो। इसमें पट्टी भिगाकर क्षतके ऊपर धरो। थोड़ी देरके बाद तेज नाइट्रिक, कारबोलिक या हाइड्रोक्लोरिक जो भी तेजाब मिले उससे क्षतको जलाओ। नीबूके रसका उपचार किसी हालतमें छोड़ा न जाय।

मनुष्य या पशुके लिये इसके बादका उपाय ऐसे निकटतम अस्पतालोंमें भेज देना है जहाँ इस रोगकी "एन्टि रेबिक" सूई लगती है। छूतग्रस्त पशुकी सूखी सुषुम्नाके अवद्रव की सूई लगानेकी विधि पासचरने चलायी थी। यह रोधक क्षमता पैदा करती थी, निवारक नहीं। क्षमता २ वर्ष ठहरती है।

कसौली (भारत) के पासचर इंस्टिट्यूटके पहले डाइरेक्टर सर डेविड सेम्पीने निवारक चिकित्सा चलायी। इस रोगके स्थिर रोगाणु (fixed virus) की छूतसे मरे खरगोशके मस्तिष्कसे अवद्रव तैयार किया जाता है। रोगाणुको कई बार खरगोशमें डालने निकालनेसे वह समरूप हो जाता है और तब वह स्थिर रोगाणु कहलाता है। नमकके साधारण घोलमें मरे खरगोशके मस्तिष्कके अवद्रवमें कारबोलिक एसिड मिलाया जाता है जिससे कि, ०·५ सैकड़ा कारबोलिक एसिडयुक्त १ सैकड़ा मस्तिष्क अवद्रव हो जाय। रोगाणु कारबोलिक एसिडसे मर जाता है। प्रति दिन ५ सी० सी० की एक सूई १४ दिन इस चिकित्सामें दी जाती है। आजकल ४ ही सूईवाली भैक्सीन भी तैयार की गयी है। ढोरको १४ दिन १०, १० सी० सी० अंतस्त्वकमें सूई दी जाती है। भारतमें, कलकत्ता, बंबई, कुन्नूर, शिलौंग और कसौलीमें पासचर इंस्टिट्यूट हैं। इनके अतिरिक्त अनेक जिलोंके सदर अस्पतालोंको चिकित्साके लिये इन संस्थाओंसे भैक्सीन भेजी जाती है। सबसे निकटके केन्द्रमें काटे पशुकी चिकित्सा करानी चाहिये।

१४००. White Scour : सफेद दस्त।

पर्याय :— ह्वाइट स्कावर, सेप्टिसेमिया नेओनेटोरम, सेप्टिक एफेक्सनस आफ दि न्यू बोर्न, नेभिल इल, जयेन्ट इल।

नवजात बछरू जीवाणुओंके सहज शिकार हैं। वह कोथग्रस्त हो जाते हैं जिसके कारण एकसे अधिक व्याधिकारी जीवाणु हो सकते हैं। विभिन्न लक्षण पैदा करनेवाले सही सही जीवाणु या जीवाणुसंघका अबतक पता नहीं चला है।

सफेद दस्त : नवजात बछरुओंको होनेवाला जीवाणुजनित संक्रामक रोग यह है। साधारण तौर पर यह जन्मके तीन सप्ताहके भीतर होता है। कठिन अतिसार, सुस्ती और दुबलापन इसके लक्षण हैं। रोग तेजीसे बढ़ता है—लक्षण प्रगट होनेके ३ से १० दिनके भीतर साधारणतः बछरू मर जाते हैं।

कारण : कुछ अधिकारी ऐसा मानते हैं कि, यह रोग कुछ प्रकारके जीवाणु (बैक्टीरियम कोली) के कारण होता है। जीवाणु मुँह की राह बछरूमें जाते हैं। दूसरे मानते हैं कि, यह सयाने पशुओंमें रक्तदोष पैदा करनेवाले जीवाणु (पैस्ट्यूरेला) के कारण होता है और यह नार (नाभि) की राह घुसता है। यह देखा जाता है कि, गर्भपातवाली गायके बछरू यदि अकोथीय अवस्थामें रखे जायँ तब भी सफेद दस्त हो जाता है। इसलिये यह रोग ई० कोली, पैस्ट्यूरेला और ब्रूसेला एबोर्टीके कारण होता है, ऐसा मानते हैं। सच पूछो तो इनमें से कोई या सभी मिल कर यह रोग पैदा करते हैं।

यदि किसी बछरूका सहज रक्षकतंत्र किसी कारण नष्ट हो जाता है तब आँतमें रहनेवाले अनेक जीवाणुओंको आँतोंकी दीवाल पर चोट करनेका मौका मिलता है और वे विकारजनक बन जाते हैं। वे ऐसे विकार पैदा करते हैं जिनसे कठिन अतिसार हो जाता है।

ऐसी जीवाणुजनित चोटोंका कारण साधारणतः अस्वास्थ्यकर अवस्थामें वत्स-पालन है। यद्यपि यह जानी हुई बात है कि, छूत जन्मसे ही हो सकती है। सुस्थ जननीके बच्चोंके छूतग्रस्त होने और दूसरोंमें छूत फैलाने का कारण केवल गर्भपात ही नहीं है। पक्की स्वास्थ्यकर व्यवस्थासे बच्चोंके जीवाणुजनित ऐसे रोग बहुत कुछ रुक सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

अंधेरे, गन्दे और जिसमें हवा ठीक तरह नहीं आ सकती ऐसे वत्सालय काममें नहीं लाये जायँ। प्रायः ऐसा होता है कि, बछरू अपने थान पर बहुत

देर तक गोबर पर ही खड़े रहते हैं। ऐसा नहीं होने पावे। गन्दे और गोबरमिले थन पीनेसे भी बच्चोंको जीवाणुजन्य रोग हो सकते हैं। कम जगहमें बहुत जादे बछरुओंका रखना भी छूतका एक कारण हो सकता है। एक बाड़ेमें थोड़े बछरू रखनेसे ही सफाई रह सकती है। संकुलता मत होने दो और हरेक बछरूको स्वयं अपना आहार लेने दो। जहाँ जन्मते ही जननीसे छुड़ा कर बच्चोंको दूध या दुद्धी पर कृत्रिम ढंग से पालते हैं वहाँ गन्दे बरतन और दूषित दूधके कारण छूत लगना सहज है।

पेउसी (colostrum) से बछरुओंको जीवाणु निरोधक शक्ति मिलती है। जिन बछरुओंको पहले सप्ताहमें पूरी पेउसी न मिली हो उनमें छूत की ग्रहणशीलता आसानीसे आ जाती है। इसलिये इसका ध्यान रखना चाहिये कि उन्हें यथेष्ट पेउसी मिल जाय। यदि जननी के मर जाने या रोगके कारण बच्चोंको पेउसी नहीं मिल सके तो उन्हें छूतसे बचाना एक समस्या होती है। उसी समय व्यायी गायोंकी पेउसी मिल सके तो देना चाहिये। इससे उनकी रक्षा होती है। पेउसीके अभावसे प्रारंभिक सुरक्षाकी कमी पूरी करना बहुत कठिन है। इसलिये दुर्भाग्यवश जो बछरू माँकी पेउसीसे बञ्चित रहे हैं स्वास्थ्यजनक नियमसे उनके पालन और भोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

लक्षण : जन्मके कुछ घंटे बाद ही अतिसार शुरू हो सकता है। ऐसी हालतमें यह समझा जाता है कि, या तो गर्भपातवाले जीवाणु कोखमें पहुँच गये हैं अथवा प्रसवके समय बच्चेके मुँहसे जननीके मलका संसर्ग हो गया है। इसीसे ये जीवाणु बच्चेमें उसके मुँहकी राह गये होंगे। कारण चाहे जो हो जन्मते ही छूत लगने पर २४ से ४८ घंटेके भीतर बहुत जल्दी मौत हो जाती है। इस हालतमें अतिसार उग्र होता है। मल बहुत और हरे या पीले रंगका होता है। यह बछरूकी पूँछ और जाँघोंसे लिस जाता है। मलसे निकले पदार्थोंके कारण छाले भी निकल सकते हैं। कभी कभी दस्त बदबूदार और फेनदार भी हो सकता है। इसमें बछरूको बहुत श्रम हो सकता है। वह कष्टसे कराह भी सकता है। वह दूध नहीं पीता। आँखें धँस जाती हैं और उनमें दुख झलकता है। पेट सट जाता है। कमर टेढ़ी हो जाती है। चमड़ा कड़ा हो जाता है। उसकी लचक मिट जाती है। ताप पहले चढ़ता है पर जब थकावट और कमजोरी बढ़ती है वह

साधारणसे भी नीचे उतर जाता है। बछरू धरती पर पसरकर मर जाता है। कभी मरनेके पहले आक्षेप भी हो सकते हैं।

चिकित्सा : यह ऐसा रोग नहीं जिसकी चिकित्सा हो सके। इससे बचना चाहिये। जहाँ एक बार जीवाणुके पंजेमें पशु आया और कुछ गंभीर लक्षण प्रगट हुए, तब कुछ किया नहीं जा सकता।

अबतक कहे उपायके अतिरिक्त जन्मसे ही धूप और साफ हवा मिलनेका प्रबन्ध करना चाहिये। यह देखा गया है कि, जिस ठट्ठमें बछरू अपनी माँके साथ धूपका उपभोग कर सकते हैं वहाँ यह रोग नहींके बराबर होता है। पर जहाँ बछरू माँसे अलग कर दिये जाते हैं और कटोरेसे दूध पीते हैं या जहाँ वत्सालय अँधेरे और गन्दे हैं, वहाँ यह रोग बहुत होता है।

छूतग्रस्त बछरूको अलग कर देना चाहिये नहीं तो अन्य बछरू भी छूतग्रस्त हो जाते हैं और आफत आ जाती है। एकके बीमार पड़नेपर कई दिन तक अन्य नव-जात बछरुओंका तापमान लेना चाहिये। जिन्हें बुखार मालूम पड़े उन्हें हटा देना चाहिये।

पेट साफ करनेके लिये १ से २ ड्राम प्रति मात्रा रेंड़ीके तेलका अवद्रव देना ठीक होता है।

आँतोंकी अम्लता रोकने और श्लैष्मिक कला पर आवरण करनेके लिये कारबोनेट भी फायदेके हो सकते हैं।

सोडा बाइकारबोनेट	...	१ ड्राम।
बिसमथ कारबोनेट	...	१ ड्राम।
हेक्सामिन	...	१ ड्राम।

मंडमें मिलाकर नित्य ३,४ मात्रा देनी चाहिये। यह याद रखनेकी बात है कि, दवायें जादे उपयोगी नहीं हैं। रोगका निरोध होना चाहिये। माँको पूरी मात्रामें भिटामिन और बछरूको यथेष्ट पेउसी देना इस रोगके निरोधके उपाय हैं। स्कॉटलैन्डमें जनवरीसे अप्रैल तक, इस समय ब्यानेवाली गायोंको प्रसवके (एक) महीनेमें, गाजर और हरा चारा रोज दिया जाता है। नवजात दो सप्ताह तक अपनी जननीकी पेउसी पाते हैं। इसके अतिरिक्त खूब सघनीकृत भिटामिन "ए" से बनी चीजोंकी कुछ बूँदें ९ दिनों तक पेउसीके साथ दी जाती हैं।

१४०१. Navel Ill : नवजातका रक्तदोष ।

पर्याय :—नेभेल इल, सेप्टिसिमिया ऑफ दि न्यू बोर्न, जयेन्ट इल, पोलीअर्थ्राइटिस ।

यह नवजातका रोग है । इसमें नाभि और कई जोड़ों पर फोड़े निकल आते हैं । नाभिके घावसे जीवाणुके घुसनेसे यह होता है । सफेद दस्त की तरह इस रोगके भी अनेक जीवाणु हैं । इनमेंसे कुछ स्ट्रैप्टोकोक्सी, स्टाफिलोकोक्सी, पासिट्यूरेला, कोलन बैसीली और नेक्रोसिस बैसिलस हैं ।

जन्मके तुरत बाद नार काटनेका घाव सूखने और भरनेमें देर लगती है । यदि सावधानी नहीं रक्खी जाय तो छूत लगनेका डर रहता है । जीवाणुसे बचावके लिये नित्य इस पर टिंकचर आयडिन लगानेके लिये कहा जाता है । यदि धनुष्टंकारवाला जीवाणु प्रवेश करता है तो धनुष्टंकार होनेसे बछरू मर जाता है । ऊपर कहे जीवाणुओंमेंसे कोई जब प्रवेश करता है तब सड़न होती है और क्षतकी राह जीवाणु देहमें घुसता है जिससे देहमें और भी फोड़े निकलते हैं, खासकर संधियोंपर ।

लक्षण : ६ महीने तक यह रोग कभी हो सकता है । पर अधिकांशमें प्रसवके ५,६ दिनके भीतर ही लक्षण प्रगट होते हैं । नवजात बछरू सुस्त रहता है और उसे जननी भी नहीं रुचती । ताप स्वाभाविक की अपेक्षा २ से ४ डिग्री फा० तक बढ़ जाता है । थन नहीं पीता और जल्दी जल्दी साँस लेता है । नाभि गीली और खूनसे लाल मालूम होती है । उसमेंसे पानी चलता है अथवा फोड़े निकलनेके कारण नाभि सूखी, गरम और सूजी भी मालूम हो सकती है । एक या दो दिनमें जोड़ोंमें सूजन दिखाई पड़ सकती है । ये सूजन फोड़े हो जाते हैं जो बादमें फूटते हैं और उनमेंसे पानी, खून और पीब निकलती हैं । बछरूकी दशा खराब हो जाती और कमजोर होकर वह मर जाता है । कुछ चंगे भी हो जाते हैं । पर वह शायद ही सुस्थ और गठीले पशु बनते हैं । ५० से ६० सैकड़ा मृत्यु होती है ।

सफेद दस्तकी तरह इस रोगका निरोध करनेके लिये जीवाणुकी छूतसे सावधान रहना चाहिये । नारको कसकर बाँधना और उसपर टिंकचर आयडिन लगाना चाहिये । मातायें प्रायः इसे चाटकर अलग कर देती हैं । जब जब वह अलग हो जाय तब तब फिर बाँधना चाहिये । पहली बार तेज टिंकचर आयडिन लगाना

चाहिये। उसके बाद हल्का टिंकचर आयडिन नाभि और उसके आसपास चमड़े पर रोज लगाना चाहिये। फूटे फोड़े की पीब होशियारीसे पोंछकर उसे छूत रहित करके पट्टी बाँधनी चाहिये।

बहुयोजी स्ट्रैप्टोकोक्सी-नाशक सिरमका टीका यदि जन्मके २४ से ४८ घंटेके भीतर लगाया जाय तो ग्रहणशील ठट्ठके बछरूके हितमें यह निरोधक उपाय होगा।

१४०२. Calf Diphtheria : वत्स-रोहिणी।

पर्याय :—काफ डिप्थीरिया, बैसीलरी नेक्रोसिस।

नेक्रोसिस बैसिलसके कारण गलकी श्लैष्मिक कला सूखनेका नाम वत्सरोहिणी है। इससे निमोनियाँ और साधारण कौथ होता है और मृत्यु हो जाती है।

यह रोग छोटे और बड़े दोनों तरहके बछरुओंको होता है। इसकी छूत फैल सकती है। यह एक तरहके जीवाणुके (नेक्रो बैसीलस या बैसीलस नेक्रोफोरस) कारण होता है। यह जीवाणु क्षीण और पतले होते हैं। यह एक लंबी श्रृंखलामें रहते हैं। इन्हें कारबोल-फुकसिनसे रंजित किया जा सकता है। निर्वात प्रणालीसे इनकी कृष्टि हो सकती है। ये प्रकृतिमें सर्वत्र फैले हैं और मलमें भी हैं। इसलिये गोशालाके कचड़ेमें या गोड़थारमें भी हैं। इससे वह ग्रहणशील पशुको ग्रसते हैं।

छूत लगे चारे, पानी, खाने पीनेसे छूत लगती है। ग्रसित पशुके थूकके साथ पीनेके पानीमें मृत तन्तु जा सकते हैं। यदि पानीकी नाद सबके लिये एक है तो अन्य बछरू भी ग्रस्त हो सकते हैं। यह रोग साधारण तौर पर तीन दिनके दूधपीते बच्चोंको ग्रसता है।

लक्षण : लक्षण प्रकाशका काल ५ दिन है। इसके बाद ग्रसित बछरू थकासा मालूम होता है। भूख घट जाती है। ताप १०४—१०५ डिग्री फा० तक चढ़ जाता है। इसके बाद जल्दी ही एक या दोनों गालोंमें दर्दके साथ सूजन होती है। उँगली डालकर जाँचनेसे उस जगह कुछ रुखड़ी चीज का जमा होना मालूम होता है। मुँह खोलने पर तालु और जीभ पर पीली या भूरी परत दिखाई पड़ती है। जीभमें सूजन भी रहती है। नाकसे पीला स्राव निकलता है। गलदेशमें भी सूजन रहती है। पीना कठिन हो जाता है। बछरू दुबलाने लगता है। खाँसी शुरू हो सकती है जिससे कंठ और फेफड़ेका ग्रस्त होना सूचित होता है। आँतके ग्रसित

होने पर अतिसार हो सकता है। साधारण तौर पर रोगी ४–५ दिनमें मर जाता है। पर कई सप्ताह तक भी लटपटा सकता है।

निदान : जीभ और गालपरकी मोटी परतें और नाकका स्राव निदानकारी है।

चिकित्सा : मुँहमें जमी चीजें और खुंट साफ कर ल्यूगोलका सोल्यूसन लगाना चाहिये। पोटाश क्लोरेट और परमैंगनेटके घोलसे धोना भी लाभदायक है। सैलीसिलिक एसिड और पानीका मिला हुआ लेप मुँहमें लगाया जा सकता है। सैलीसिलिक एसिड और पोटाश क्लोरेट १ से २ ड्रामकी मात्रामें खिलाया भी जा सकता है। ग्लिसरीन मिलाकर पपीतेके दूधका १ से ३ सैकड़ा बारबार गलेमें बहुधा लगाया जा सकता है। इससे जीवाणु और कफ साफ हो जाते हैं। ग्रसित पशु अलग हटा दिया जाय कि छूत फैलने न पावे।

१४०३. Coccidiosis : खूनी दस्त।

पर्याय :—कोक्सीडिओसिस, रेड डिसेन्ट्री ऑफ कैटल।

आँव और खूनवाला अतिसार यह है। कोक्सीडिया जीवाणुके कारण यह होता है।

भारतमें हरेक ढोरकी आँतमें यह सूक्ष्म परोपजीवी जीवाणु होता है। अणुवीक्षण यंत्रसे आँवमें यह देखा जा सकता है। यह गोल और अन्डाकार होता है। रक्तकणिकाओंसे यह ४ या ५ गुना बड़ा होता है। विभिन्न पशुओंको विभिन्न कुलके कोक्सीडिया ग्रसित करते हैं। ढोरको ग्रसनेवाले "ईमेरिया जुरनाई" (Eimeria Zurnii) हैं। कोक्सीडियाका जीवन जटिल होता है। यह आँतकी झिल्ली (कला) पर आक्रमण करते और यौनिक तथा अयौनिक जीवन (योनि) पार करते हैं। छूत फैलानेके लिये गर्भिणी जीवाणु पशु देहके बाहर आ जाती और गीली धरतीमें बँटकर रेणु और रेणुज हो जाते हैं। यह डिम्ब है। पशु चारेके साथ इसे खा जाते हैं और तब पशु-देहके भीतर चक्र शुरू होता है। वहाँ इनकी निस्सीम वृद्धि होती है।

भारतके ढोर जन्मके बाद तुरत इस परोपजीवीसे ग्रस्त होते हैं। वह जन्मभर छूत पाले रहते हैं। जब छूत सबमें रहती है तब इसे छूतका रोग माननेका कोई मतलब नहीं। पर यह हानिप्रद है इसलिये सावधान रहना होता है। शक्तिकी क्षीणता या अन्य रोगोंके कारण आँतकी गड़बड़ी होने पर कोक्सीडियाको खूब बढ़ने और आँतकी झिल्ली विक्षत करनेका मौका मिलता है। यह रोग २ वर्षसे कम उमरके तरुण पशुओंमें होता है पर प्रायः बड़ी उमरके पशुओंमें भी पाया जाता है।

लक्षण : रोगका आरम्भ अतिसारसे होता है। और दूसरा कोई लक्षण पहले नहीं होता। कई दिन साधारण अतिसार रहनेके बाद मल पनीला, गहरा हरा, और बहुत दुर्गन्धित हो जाता है। मल अपने आप निकल आता है। कभी कभी कूँखना होता है। मलपर खूनके छोटे छोटे थक्के होते हैं। पनीले दस्तमें बहुतसी लसीली चीजें (slime) मिली रहती हैं। अणुवीक्षणसे देखनेपर इस लसीली चीजमें कोक्सीडिया पाया जाता है। पशु सुस्त हो जाता है। भूखकी कमी और छीजन होती है। रौंथ अनियमित होती है। कभी अतिसारके पहले बहुत खूनके थक्के निकलते हैं।

प्रायः दस दिनमें या तो पशु आराम हो जाता है अथवा रोग बिगड़ने लगता है और मृत्यु हो सकती है। रोगका रूप अनुग्र या जीर्ण हो जा सकता है। रोगमुक्त होनेके बाद कमजोरी दूर होनेमें लम्बा समय लगता है।

भारतमें इस रोगका स्वयं बहुत महत्व नहीं है। पर माता जैसे कई रोगसे पीड़ित पशुकी मृत्युका यह सहायक कारण होता है। कुछ तेज जुलाब पेटमें जलन पैदा करते हैं, जिससे कोक्सीडिया सक्रिय हो जाता है। माताके आक्रमणके समय यह सक्रियता अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। माताकी बीमारीमें कोक्सीडियाकी वंशवृद्धि रोकनेकी पेटकी शक्ति घट जाती है। तब वह झिल्लियोंसे चिपटते और उन्हें नष्ट करते हैं। मातासे पशु आराम हो रहा है और माता का अतिसार बन्द हो चुका इसके बाद भी खूनका दस्त फिरसे होता और इससे पशुको मरते देखा गया है।

चिकित्सा : कोक्सीडियाको मारनेवाली कोई खास दवाका पता नहीं है। इसकी चिकित्सामें कषाय और छूतनाशक के रूपमें शामक दिया जाता है। कषाय, आवरणके कोषकी रक्षा कर सकते हैं। कषाय छूतनाश भी करते हैं और बड़ी आँतमें जाकर रेणुजों (sporozoites) को भी मार सकते हैं।

बिसमथ सबनाइट्रेट ··· १½ आउन्स

२५० ग्रेन लकड़ीके कोयले (औषधीय) के साथ मिलाकर रोज जीभ पर छिड़को।

कथ (खैर) ··· २ से ३ गोटी नित्य पानीके साथ।

थाइमल (अजवायनका सत्त) ··· १५ ग्रेन नित्य।

कुछ दिनोंतक केवल ताजा और गरम दूध ही बछरूको पिलानेसे कोक्सीडिया जल्दी दूर हो जाता है।

अध्याय ४०

परोपजीवी कृमिजन्य रोग

१४०४. पेटकी कृमियोंके रोग (Helminthiasis)

ढोरके पेट, यकृत, आँत आदिमें कई प्रकारके कृमि कीट होते हैं, जिनसे प्रतिवर्ष अपार हानि होती है। ये रोग साधारण तौर पर एकाएक मारी नहीं फैलाते। हानि बारहों महीने होती रहती है। यह रोग छिपी मार करता है। यद्यपि इसके कारण अचानक अनेक पशु नहीं मरते पर इससे हुई कमजोरीके कारण अन्य उपकारणोंसे अनेक प्राणहानि होती है। वृद्धि या विकाशमें बाधा, छीजन और रक्ताल्पता इसके मुख्य लक्षण हैं। तरुण पशु भीषण-रूपसे ग्रसित होते हैं। पर सयानोंके तंतु कृमियोंकी दुष्टता एक हद तक काबूमें रखते हैं।

पशु कच्चे आहार खाते हैं। इसलिये ये रोग उनमें मनुष्योंसे जादे होते हैं। भोजन पकानेमें कृमियोंके अंडे नष्ट हो जाते हैं। पर जो पशु चराये जाते हैं या सूखा चारा पाते हैं उनकी देहमें कृमियोंके अंडे या अर्भक चले जाते हैं। दूषित जल पीनेसे भी ढोरके पेटमें अंडे चले जाते हैं। उनमेंसे कुछ जैसे कि, अंकुशा (हुक वर्म) त्वचामें धँस अपनी पसन्दके अवयवमें रहती और उत्पात मचाती है।

कृमियाँ श्लैष्मिक कलामें घुस वहाँ जलन पैदा करती हैं। अंकुशवाली कृमियाँ प्रायः तन्तुओंमें गहरे धँसती हैं। वह आँतोंकी दीवालमें छेद कर उदरावरण-प्रदाह

(peritonitis) पैदा कर सकती हैं। उनमें बड़ी कृमियाँ एकत्रित होकर गोल गाँठे बन जा सकती हैं जिससे अंत्रावरोध होता है। कभी कभी वह पित्तकी नलीमें पहुँच उसे बन्द कर देती हैं जिससे पेटमें दर्द और कभी मृत्यु भी हो जाती है।

पशुके अंत्रमें शरीर-पोषणके निमित्त तैयार किया हुआ पोषक पदार्थ वे चूस लेती हैं। इससे पशुको दुष्पोषण, रक्तात्पता और दुबलापन होता है। वे पशु-शरीरमें विष छोड़ते हैं जिससे सारी देहमें विष व्याप्त होता और कठिन रक्तात्पता भी होती है। अनेक कृमियोंके कारण झिल्लियोंमें खरोंटें हो जाती हैं जिससे जीवाणुकी छूत लगनेका रास्ता साफ होता है।

परोपजीवी कृमियोंका जीवनचरित्र जटिल होता है। उनके जीवनका कुछ भाग पशुदेहके भीतर बीतता है। सयानी कृमि प्रायः पशुदेहके भीतर रहते समय ही अंडा देती है। अंडे मलके साथ बाहर निकल आते हैं। यदि वह फेफड़ेमें हुए तो कफके साथ निकलते हैं। इस तरह अंडे धरती पर आ जाते हैं। नमी, गर्मी और छायाकी अनुकूल अवस्थामें उनके अंडे पुष्ट होकर फूटते हैं और उनसे निकले भ्रूण, अर्भककी दो या अधिक अवस्थाएँ धरती पर ही बिताते हैं। इसके बाद वह घासकी पत्तियोंपर चढ़ अपनेको दृढ़ आवरणसे ढक लेते हैं। इस अवस्थामें वह बहुत कुछ मौसम आदिके बाहरी आघातसे बच जाते हैं। अंडेसे निकलनेके लगभग १० दिनके बाद इस अवस्थामें वह वर्षभर या अधिक भी रह सकते हैं जब तक कि, कोई पशु चरता हुआ उन्हें भी निगल जाय। इसके बाद उनमें नयी जीवनी क्रिया शुरू होकर उनका नया रूप होता है।

कुछ कृमियोंको घोंघा या मछली आदि अन्य जंतुओंमें दो या अधिक अवस्थाएँ तय करनी होती हैं। तब वह पशुके शरीरमें जाने योग्य होती हैं। जैसे कि, यकृत-कृमि (liver fluke) के भ्रूण कुछ जातिके घोंघेमें चले जाते हैं और उनमेंसे बेंगचूर या बेंगची (tadpole) जैसी आकृतिमें निकल पानीमें तैरते हैं। उन्हें जब कोई घासकी पत्ती मिलती तब उनमें चिपक जाते हैं और पूँछें झड़ जाती हैं। तब कोई चरता पशु उन्हें घासके साथ पेटमें पहुँचा देता है अथवा सूखी घास काटकर जब पशुको खिलायी जाती है तब वह उसके साथ पशुके पेटमें जाते हैं। यहाँ क्रमसे उनकी कई अवस्थायें होती हैं। इसके बाद प्रजनन शक्ति-सम्पन्न सयाने जीव बन जाते हैं।

अंकुशा जैसे कुछ कृमियोंके अंडे मलके साथ बाहर निकल आते हैं। धरती पर आनेके बाद अनुकूल परिस्थितिमें वह पुष्ट होकर फूटते हैं और उनमें से अर्भक निकल कर पशुके पैरपर रेंगकर चढ़ते और चमड़ेमें घुस जाते हैं। वहाँसे देहके विभिन्न भागोंमें घूमते हुये अपनी पसन्दके अंगमें पहुँचते हैं। अंकुशा ग्रहणी पसन्द करती है। पशुकी अंकुशा इस मामलेमें मनुष्यके इस परोपजीवीके ऐसी है। वह चमड़ेमें होकर इसी तरह आँतमें पहुँचती है। विभिन्न परोपजीवियोंका जीवन-चक्र पूरा करनेका विभिन्न रास्ता है। इनमेंसे कुछका वर्णन आगे किया जायगा।

पशुपालक इन परोपजीवियोंके जीवन-चक्र और कार्यप्रणालीके बारेमें जानें। जिससे कि जहाँतक हो सके वह इनकी छूतसे अपने पशुओंको बचानेका उपाय कर सकें। साधारण तौर पर सयाने पशुओंकी देहमें इन परोपजीवियोंकी छूत रहती है पर दलित अवस्थामें। उनके गोबरके साथ उनके अंडे बाहर होते हैं। गोचरमें ये अंडे भरे रहते हैं। ऊँची और सूखी जमीन पर कड़ी धूपमें वह जल्दी नष्ट हो जा सकते हैं। पर भीगी धरतीमें गरम मौसममें वह पुष्ट होकर फूट पड़ते हैं।

जितनीं कृमियाँ देहमें प्रवेश कर सकीं हैं उसीके अनुसार उत्पात होता है। यदि पेटमें उनकी बड़ी संख्या पहुँच जाय तो उससे बड़ी नुकसानी होती है। कुछके पास हानि पहुँचानेके साधन पहले से ही होते हैं। खासकर बड़ी और अंकुश वाली कृमियोंके पास। छोटी जैसी कि, अंकुशा यदि बड़ी संख्यामें हो तो नित्य बहुत खूनकी हानि करती और उसी मात्रामें विष पैदा करती है।

स्वच्छ पानी पिलाना, जिस जलाशयमें पशु पानी पीते हों उनके घोंघे आदि साफ कर देना, जिस गोचर या चारेमें जादे छूत मानी जाती हो उससे बचना ये रोगोंसे बचने या कम करनेके कुछ उपाय हैं।

ऐसे कृमिघ्न या विष पाये गये हैं। पर ये दवायें तो विष हैं इसलिये इनका उपयोग सावधानीसे करना चाहिये। जो वस्तु परोपजीवीको मार सकती है वह मेजबान पशुके ततुकी क्षति कर सकती या उसको विषाक्त कर सकती है। कृमियोंसे छुटकारा पानेका कोई सुगम उपाय नहीं है। सबसे अच्छा उपाय सावधान रहना और इनकी वृद्धि और रहन सहन की मोटी मोटी बातें जानकर जहाँतक हो सके जोखिमसे बचना है।

हर वर्गके परोपजीवियोंको मारनेके लिये जो साधारण कृमिघ्न पाये गये हैं वह ये हैं :—तूतिया, कमला या कबोला, तमाकूकी बुकनी। ये सहज प्राप्य और

बहुत सस्ती चीजें हैं। यहाँ यह कहना जरूरी है कि, छूत लगने पर दवा करनेकी अपेक्षा कृमियोंसे बचने पर जादे जोर देना अच्छा है।

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चके आदेशसे पंजाब भेटेरिनरी कॉलेजमें कुछ कृमियोंपर भिन्न भिन्न दवाओंके असरकी जाँच की गयी। इसका परिणाम श्रीकरमचन्दने लिखा है। (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, सितम्बर १९३९, पृ० २८७)

पंजाबमें नहरोंके बढ़नेसे परोपजीवीजनित रोग काफी जादे होने लगे हैं। बच्चे कम पैदा होने लगे, दूध घट गया, और रोग प्रतिरोध-शक्ति दिन दिन घटी है। कृमिग्रस्त पशु सुस्थ पशुकी तरह कठिन परिश्रम नहीं कर सके।

२४ बछरू और २४ भेड़ोंको तारकृमि (वायर वर्म या हेमोङ्कस कोन्टरकस) और गाँठकृमि (नोडुलर वर्म या इसोफैगोस्टोमम) के अर्भकोंसे छूत लगायी गयी। इनपर प्रयोग करनेके लिये औषधियाँ चुनी गयीं। यह पाया गया कि,, छूत लगानेके प्रायः २० दिन बाद खास कर भेड़ोंके मलमें निकले अंडोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। भेड़का जबड़ा जकड़ गया और कमर टेढ़ी हो गयी। कुछ पशुओंकी आँखे खराब होने लगीं और दो महीनेमें अन्धापन होने लगा। इन कृमियोंके कारण कुछ बछरू और अधिकांश भेड़ें मर गयीं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि, इसमें असाधारण कुछ नहीं है। गाँठ-कृमि छोटी और गोल कृमि है। खून चूसनेकी इसकी सामर्थ्य बढ़ी चढ़ी है। यदि ये आँतोंमें बड़ी संख्यामें रहें तो पशु बहुत दिन नहीं जी सकता। वह रक्ताल्पतासे मर जाता है।

इन छूतग्रस्त पशुओंपर नीचे लिखी औषधियोंकी क्रिया देखनेका प्रयोग हुआ था :—

(क) **एक औषधि :** १. बूटी फ्रोन्डोसाकी बुकनी, २. तूतिया, ३. कबीला, ४. खरबूजेका बीज, ५. अकंटक थूहर (spineless cactus), ६. तारपीनका तेल, ७. भरनोमियाँ एन्थलमिंटिका।

(ख) **मिश्र औषधि :** १. बूटीके साथ कबीला, २. बूटीके साथ एम्बेलिया, ३. कबीलाके साथ तूतिया, ४. सोडियम आर्सनाइटके साथ तूतिया, ५. फेरस सल्फेटके साथ मुसब्बर, ६. पोटाशियम एन्टीमोनी टारटरेटके साथ फेरस सल्फेट।

इन सबमें कबीलाके साथ तूतियाका योग सबसे बढ़िया सिद्ध हुआ। तूतिया कृमिघ्न तो है ही और पश्चात-आशय (चतुर्थ पाकस्थली) में सीधा चला जा सकता है और अपने साथ कबीलाको भी ले जा सकता है। इसलिये इन दोनों औषधियोंके योग

दुष्ट परोपजीवियोंपर सीधा वार करते हैं। यदि ये पहले और बहुत से पदार्थोंके साथ प्रथम पाकस्थली या पेटमें गये होते तो इनका लाभ कम हो जाता। कबीला कृमिघ्न तो है ही विरेचक भी है। इसलिये मरी और मूर्छित कृमियोंके साथ तूतियासे मरीको भी निकाल देती है। दोनों ही सस्ती हैं। प्रयोगसे सिद्ध हुआ है कि यह योग ९० सैकड़ा लाभप्रद है।

लेखमें बछरू और भेड़ोंको दी गयी मात्राकी चर्चा नहीं है। पर साधारण मात्रायें नीचे लिखी हैं :—

१. तूतिया—पशुके आकारके अनुसार १ सैकड़ा घोल ३ से १० आउन्स प्रति मात्रा।

२. कबीला—५०० रत्तल तौलके पशुको मंडके साथ ½ आउन्स।

चिकित्सा करनेका सर्वोत्तम उपाय पशुको ३६ घंटेका उपवास कराना है। तब जुलाब (विरेचक) के रूपमें एक मात्रा मुसब्बर पहले दो। इसके बाद कृमिघ्न दो और फिर एक मात्रा विरेचन दो। कबीला देने पर यह विरेचन देना अनावश्यक है।

तमाकूके पत्तेकी बुकनीका १ सैकड़ा अर्क ३ से १० आउन्सकी मात्रामें ढोरके लिये सस्ती और भरोसेकी कृमिघ्न दवा है।

दूसरी दवायें जैसे कारबन टेट्राक्लोराइड या चेनापोडियमके तेल का असर जहरीला होता है। इसलिये यह काममें नहीं लाया जाय। मुसब्बरके बदले हर्र बड़ी अच्छी चीज है। यह मुसब्बरकी तरह मरोड़े भी नहीं लाती। विरेचनके लिये हर्रकी बुकनी एक बार आठ आउन्स दी जा सकती है। हर्र स्वयं भी कृमिघ्न है। हर्र, तूतिया, कबीला और तमाकू की सहायतासे लगभग सभी तरहकी कृमियाँ बेखटके भगायी जा सकती हैं। पशुके आकार और हालतके अनुसार बुद्धिपूर्वक मात्रा स्थिर करनी चाहिये।

१४०५. ढोरोंको आक्रमण करनेवाली कृमियाँ

ढोर और अन्य पशु तथा मनुष्योंमें होनेवाली कृमियाँ तीन वर्गोंमें बाँटी जाती हैं :

(१) पट्टिका या टुकड़ोंवाली या फीता-कृमि (टेप वर्मस् या सेस्टोड्स्)।
(२) चिपटा या यकृत-कृमि (फ्लैट वर्मस्, लिभर फ्ल्यूक्स या ट्रेमाटोड्स्)।
(३) केंचुवा (राउन्ड वर्मस् या नेमाटोड्स्), इनमेंसे कुछ जादे प्रसिद्ध हैं।

१४०६. पट्टिका या फीता-कृमि (Tape Worms)

सयानी पट्टिका मामूली तौर पर केवल आँतोंमें ही पायी जाती है। इसकी रचना एक सिर और बहुतसे जुड़े टुकड़ोंकी एक साँकलसी होती है। सिरमें एक या दो चुसनियाँ होती हैं। इन्हींके द्वारा यह चिपकती हैं। किसीमें चुसनीके अलावा अंकुशभी होते हैं। इस कृमिके शरीरमें वास्तवमें दो भाग होते हैं।
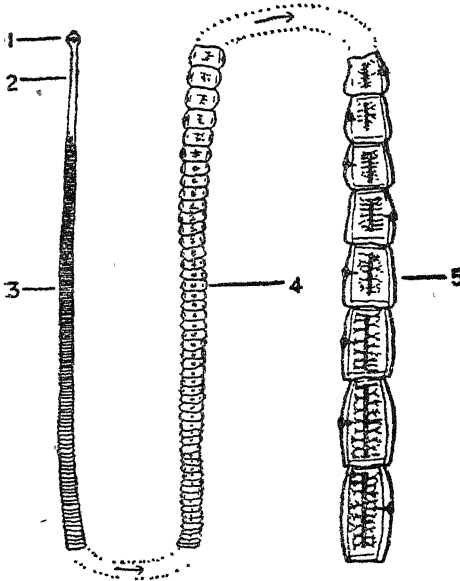
चित्र १६७.
पट्टिका या फीता कृमि।
1—सिर, 2—वर्धन भाग, 3—अप्रौढ़ टुकड़े, 4—प्रौढ़ टुकड़े, 5—डिम्बीय टुकड़े।

(क) चुसनी सहित सिर और किसी किसी को अंकुश, तथा (ख) पिछला या वर्धनशील भाग। इसमें नये टुकड़ोंकी कलियाँ बराबर निकलती रहती हैं।

हरेक टुकड़ेमें नर और मादाकी पूरी जननेन्द्रियाँ और गर्भाशय होता है। सिरके पास, पर वर्धनशील भागके ठीक ऊपर के टुकड़ोंमें ये इन्द्रियाँ बिकसित

नहीं रहतीं इसलिये उन्हें 'अप्रौढ़' टुकड़े कहते हैं। इनके नीचे कृमिके बिचले भागके आधेमें 'प्रौढ़' टुकड़े होते हैं इसके बाद डिम्बीय भाग होता है, जिसमें अंड रहते हैं। पर अप्रौढ़, प्रौढ़ और डिम्बीय भागकी कोई स्पष्ट सीमा नहीं है। वृद्धि की अवस्थामें एक वर्ग दूसरेमें निमग्न होता रहता है। इन कृमियोंको सिर और जननेन्द्रियाँ होती हैं पर आँतें नहीं होतीं।

पशु शरीरके बाहर केवल सिरोभाग ही होता है। यह अर्भक अवस्थामें एक झिल्लीदार थैलीके भीतर धरती या घास पर पड़ा रहता है। पशु इसे खा लेता है। आँतोंमें घुसने पर झिल्लीदार थैली गल जाती है, और वह सिर आँतकी दीवालमें चिपक जाता है और पोषकद्रव्य चूसना शुरू करता है। यह बढ़ने लगता है और इसमेंसे टुकड़ोंकी कलियाँ फूटने लगती हैं। लंबाई सिरसे शुरू होती है इसलिये जो पहला टुकड़ा था वह दूसरा फिर तीसरा और तब अंतिम बन जाता है। डिम्बीय भागमें जननेन्द्रियाँ जब अपना काम कर चुकती हैं तब वे निष्प्राण हो जाती हैं और तब वह भाग पेशियोंकी दीवालमात्र रह जाता है जिसमें जरायुकी थैलीके भीतर अंडे भरे रहते हैं। इस अवस्थामें टुकड़ा फटता है। जिससे आँतोंमें अंडे फैल जाते हैं। तब कृमिशरीरसे टुकड़ा झड़ जाता है अंडे और टुकड़े मलके साथ बाहर आ जाते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि, एक नहीं दश बीस टुकड़े एक साथ बाहर निकलते हैं।

साधारण तौर पर अंडोंमें कोषोंकी एक गोली होती है। बहुतसी जातियोंकी पट्टियों या फीता-कृमियोंके अंडे निगले जानेके लिये तैयार रहते हैं। ढोर, भेड़ या अन्य पशु चरते समय इन अंडोंको निगल जाते हैं। आँतोंमें जाकर भ्रूण अंडोंसे निकलते हैं। भ्रूण आँतकी श्लैष्मिक कलामें छेदकर किसी लसीका या रक्त वाहिनीमें पहुँचता है। तब वह शरीरखातमें ले जाया जाता है, वहाँ उसके अंकुश झड़ जाते हैं और उसका रूप बदल जाता है। इसे थैली (सीस्ट) अवस्था कहते हैं। इस अवस्थामें वह पेशियोंमें रहता है। जिस मांसमें यह थैली हो, उसे जब कोई कुत्ता या सूअर खा जाता है तब जिस थैलीमें अर्भक अवस्थाका सिर भाग होता है उसमें से अर्भक निकलता है। यह श्लैष्मिक कलामें छेद कर घुस जाता है। तब इससे सयाना परोपजीवी तैयार होता है।

पर पट्टियों या फीताकृमियोंकी प्रजोत्पत्ति हर हालतमें इसी तरह नहीं होती। मनुष्य और कुत्तेको होनेवाली पट्टी ठीक ऊपर वर्णित की तरह है। आदमी या

चित्र १६८. पट्टिकाका जीवनचक्र।

मनुष्यमें सयानी कृमि।

मनुष्यके मलमें अंडे।
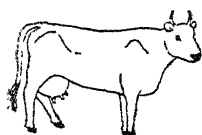
गायने उन अन्डोंको खाया।

वह अंडे गायके मांसमें थैलीके रूपमें हो जाते हैं।

थैलीकृमिपूर्ण गायका मांस काफी सिझाये बिना खानेसे आदमीके पेटमें उससे सयानी पट्टिका बन जाती है।

(साउथवेल और कृशनरके अनुसार)

कुत्तेकी आँतसे निकले अंडे घासके साथ गाय खा जाती है। अंडोंसे थैली बन जाती है और गायकी मृत्युतक उसकी पेशियोंमें रहती है। मृत्युके बाद थैली सहित मांस जब कुत्ता खाता है तब उसमेंसे अर्भक या ढोले निकलते हैं जो पट्टिका बन जाते हैं। जिस पशुके मांसमें थैली हो उसे काटकर पूरी तरह सिझाये बिना यदि आदमी खाय तो थैली जीवित अवस्थामें आदमीकी देहमें पहुँच जाती है जो बादमें उसकी आँतमें पट्टिका बन जाती है।

पर यह अभी ठीक नहीं मालूम हुआ है कि, ढोरको छूत कैसे लगती है। ऊपरके चित्रमें थैलीभरा मांस खानेसे आदमी, कुत्ता या अन्य मांसभोजी पशुओंको छूत कैसे लगती है दिखाया गया है। गाय या भेड़ थैली भरा मांस खायगी यह सभव नही। ढोर और भेड़को कई तरहकी पट्टियाँ जैसे **चूसिका (मोनिजिया)** की छूत लगती है।

ऐसा समझा जाता है कि, पशुओंके मलसे निकले अंडे आँतमें पहुँच जाते हैं, वहाँ उनसे सीधे सयानी पट्टिका बन जाती है अथवा ढोरके शरीरमें पहले उनकी थैली बनती है और यह थैली अर्भक में परिणत हो जाती है।

१४०७. पट्टिका या फीता-कृमि

(क) चूसिका (moniegia)

चूसिका एनोप्लोसेफालिडी (anoplocephalidae) वंशकी है। इस पट्टिकाके सिरमें केवल चुसनियाँ होती हैं अंकुश नहीं होता। टुकड़े लंबेसे जादे

चित्र १६९.
चूसिकाका सिर।
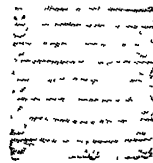
चित्र १७०.
चूसिका : प्रौढ़ टुकड़ा।

चौड़े होते हैं। साधारण तौर पर प्रत्येक टुकड़ेमें दोनों जननेन्द्रियोंका जोड़ा होता है।

सभी चूसिका पट्टिका बड़ी और मांसल होती हैं। वह बहुधा कई गज लंबी और लगभग तीन चौथाई इंच चौड़ी होती हैं।

चूसिका पट्टिकाका जीवन ७० दिनसे वर्ष भर समझा जाता है।

पशुओंकी पट्टिका उतनी भयंकर नहीं है इसलिये उनका महत्व अधिक नहीं है।

१४०८. चिपटी या यकृत-कृमि (Flat Worms)

ये कृमियाँ साधारण तौर पर पत्राकार या दंडाकर होती हैं। सयानीके एकही शरीरमें दोनों लिंग होते हैं। ये उभयलिंगी हैं। इन्हें आँत होती है पर गुदा नहीं। सयानी कृमियोंको चुसनियाँ होती हैं। इन्हींके सहारे वह किसीके शरीरसे चिपकती हैं। इनमेंसे कुछके अर्भकोंका पूर्ण विकास घोंघेमें होता है। रीढ़वाले पशुमें रह प्रौढ़ होनेके पहले कुछके अर्भक अन्य जीवोंमें विकासकी कुछ अवस्था बिताते हैं। अन्डे प्रायः टोपीदार होते हैं। ये प्रायः भूरे, पीले होते हैं। पुष्ट होने पर इनमेंसे अर्भक निकल पानीमें आ जाते हैं। किसी किसीके जैसे कि, पित्तिया (फैस्सिओला) के अन्डेमें फलाया हुआ अविभाजित डिम्ब होता है। तैरनेवाला अर्भक अनुकूल परिस्थिति होने पर पीछे विकसित होता है।

१४०९. चिपटी या यकृत-कृमि
(क) पित्तिया (Fasciola Hepatica)

दुनियाँभरके ढोर और दूसरे शाकभुकोंकी पित्तनलीमें सयानी पित्तिया कृमि रहती हैं। इनके कारण यकृत सड़ता है। यह कठिन रोग है, इससे बहुत हानि होती है।

कृमियाँ चिपटी और भूरी होती हैं। १$\frac{1}{8}$ इंच लंबी और लगभग $\frac{3}{8}$ इंच चौड़ी होती हैं। ये कृमियाँ पित्तनलीमें रह अंडे देती हैं जो आँतोंमें चले आते और मलके साथ बाहर निकलते हैं। पानीमें अनुकूल स्थितिमें एक या दो महीनेमें इनसे अर्भक निकलते हैं। ये बहुत दिनोंतक तन्द्रा अवस्थामें रह सकते हैं। पानपत्ती (miracidium-अर्भक) कुछ देर तैरती और फिर किसी घोंघेमें घुस जाती

है, उसीमें कई अवस्थामें पार कर निकल आती है और थैली बन घासकी पत्तीसे चिपकती है। जब शाकभुकके पेटमें पहुँचती है तब थैलीका आवरण पच जाता है और अर्भक निकल कर आँत और आँतकी उदर-कलाके खातसे होकर सीधे यकृतमें पहुँचता है। यह पित्तनलिकामें लगभग ९ महीने रहता है।

पित्तनलीमें इसके रहनेके कारण वह फैल जाती हैं और विकृत होती है और अतमें नलीमें फाइब्रोसिस होता है। पित्तका प्रवाह रोक कर यह कामला या पांडु रोग पैदा करता है। तरुण पशुओंकी उदरकला पार करते समय यह उदर्याप्रदाह (पेरिटोनाइटिस) रोग पैदा कर सकता है।
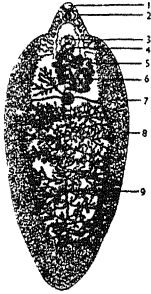
चित्र १७१. पित्तिया।

चित्र १७२.
पित्तियाके अन्डे।

चित्र १७३.
घोंघा।

ग्रसित पशुके लक्षण बढ़ती कमजोरी, दुबलापन और तज्जनित कब्जियत है। अणुवीक्षण परीक्षामें अंडे मिलें तो निदान पक्का हो जाता है।

पित्तियाके और प्रकार भी हैं। पर उनका जीवन-क्रम और छूत फैलानेका ढंग साधारण तौर पर समान है। इनकी छूत यों रोकी जा सकती है :—

(१) नहर, पोखर आदि जलाशयोंमें मलका नहीं जाने देना,

(२) पानीमें तूतिया डालकर या अन्य उपायोंसे घोंघे मार डालना। पानीके ऊपर तूतियाके घोलकी फुहार छोड़ना जिससे कि २० रत्तल तूतिया १ एकड़में छा जाय, यह भी एक उपाय है। पर इसे काममें लाना असंभव है।

चित्र १७४. पित्तियाका जीवनचक्र।

मेड़की पित्तिया।

मलमें निकला अन्डा।

अन्डेसे निकली पानपत्ती (अर्भक)।

घोंघेमें पानपत्ती रेणु-थैली बनती है।

रेणु-थैली घोंघेमें अनेक सलाइयाँ (rediae) पैदा करती है।

पुत्री सलाई अनेक छुतही तुरइयाँ (cercariae) घोंघेमें पैदा करती हैं।

तुरई घोंघेसे निकल घासकी पत्तीमें थैली बन चिपकती है और उसीके साथ ढोरके पेटमें जाती है।

(साउथवेल और कृश्नरके अनुसार)

छूत लगनेके बाद यदि पशु एक वर्ष जीता रहे तो पित्तियाकी सहज मृत्यु हो जाती है। शिरामें एन्टीमनी टारटरेटकी सूई लगानेसे कुछ पित्तियोंमें फायदा होता है। इसे बार बार देना होता है।

१४१०. चिपटी या यकृत-कृमि

(ख) नकपितिया : (Schistosoma)

नैसल ग्रेनुलोमा या नैसल स्किस्टोसोमोसिस।

यह रोग नकपितियाके कारण होता है जो चिपटी वर्गका परोपजीवी है। इसके स्त्री पुरुष अलग अलग होते हैं। स्त्री साधारण तौर पर पुरुष शरीरके किसी दरार (groove) में रहती है। अंडे पानीमें पुष्ट होते हैं। और घोंघेसे पार होने पर ये दँताली पूछके साथ अर्भक या ढोलेके विकाशकी चरम अवस्था पर पहुँच जाते हैं।

अर्भक घोंघेसे निकल पानीमें तैरते रहते हैं। ऐसा पानी पीनेसे छूत लगती है। पशुके जिस अंगका चमड़ा पानीके संसर्गमें आता है उसमें ये चिपक जाते हैं। यहाँ आकर उनकी पूँछ झड़ जाती है और वह भीतर रक्तस्रोतमें घुस जाते हैं। यहाँसे वे प्रतिहारिणी महा-शिरामें जाते हैं और विकसित होकर सयाने परोपजीवी हो जाते हैं। यह समझा जाता है कि, ये परोपजीवी बहुत हानि नहीं करते। हानि उनके अंडे करते हैं। अंडे रक्तस्रोतमें घूमते रहते हैं और अपने तेज काँटेसे छेदकर बाहर निकल जाते हैं। इससे जलन और घाव होते हैं।

ढोरकी नाकमें नकपितियाके अंडे नाककी झिल्लीकी शिराओंमें रहते हैं। वहाँ उनके कारण दानेदार व्रण निकलते हैं। नाकसे रेंट चलती है और नाक बन्द हो जाती है।

पुरः कपालस्थित खात और नाकमें अर्बुदाकार बड़े बड़े पिंड हो जाते हैं। वह इतने बड़े हो सकते हैं कि, साँस रुके। वह गलेकी ओर अगल बगल भी पसरते हैं जिससे आँखके कोये फूल जाते हैं।

चिकित्सा : टारटर एमेटिक या सोडियम एन्टिमनी टारटरेटके घोलकी शिरामें सूई इसकी चिकित्सा है। पिछली दवा कम विषैली है।

शिरामें ३ सैकड़ा घोलकी सूई एक बारमें २५ से ४० सैकड़ा दी जाती है। सप्ताहमें ५ से १० सूई या सप्ताहमें दो देनी होती हैं।

चित्र १७५. नकपितियाका जीवनचक्र।

ढोरकी नकपितिया ।

मलमें अन्डे।
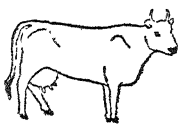
अन्डेसे निकल पानपत्ती पानीमें जाती है ।

पानपत्ती घोंघेमें रेणु-थैली बनती है ।

पुत्री रेणु-थैली घोंघेमें तुरइयाँ बनाती है ।

तुरइयाँ घोंघेसे निकल पानीमें चली जाती हैं ।

तुरइयाँ ढोरके चमड़ेमें ढुक जाती और वहाॅ प्रत्येक सयानी कृमि बनती हैं ।

(साउथवेल और कुशनरके अनुसार)

१४११. केंचुवा कृमि (Round Worms)

(क) लताकार कृमि (Ascarides)

लताकार : यह कृमि मनुष्यों और विशेषकर बालकोंमें होनेवाली केंचुवाकी तरह है। यह जादातर तरुण पशुओंमें होती है। दो से तीन महीनेकी उमरवाले बछरुओंको जादे होती है। केंचुवा अपेक्षाकृत बड़ी, चिकनी, लंबी कृमि है। इसका सिर छोटा और ओठ चिकने या दाँतदार होते हैं। अंडेमें डिम्ब होता है। डिम्ब विभाजित होकर कुछ सप्ताहमें अर्भक बन जाता है। अर्भकयुक्त अंडा मलके साथ निकलता है। गायके गोबरमें निकले अंडेसे दूषित थन पीनेसे बछरूको छूत लग सकती है।

लताकार केंचुवाके कारण दुबलापन, अतिसार और कब्ज होता है। सब अंडे मिलकर गोलीसे बन जा सकते हैं। इससे आवद्धता पैदा हो सकती है। मलकी अणुवीक्षण परीक्षासे इसके विचित्र अंडोंका पता चलता है।

इस कृमिके लिये हर्रका विरेचन अच्छा है। तूतिया और कबीला देना भी लाभदायक है। एमेटिक टारटर भी फायदा करता है।

टारटर एमेटिक	...	६० ग्रेन।
पानी	...	४ आउन्स।

घोलो। हर ३ या ४ घंटे पर बछरूको दो ड्राम दूधके साथ दो। जबतक सब केंचुवे निकल न जायँ देते रहो। इसके बाद हर्रकी जुलाब दो।
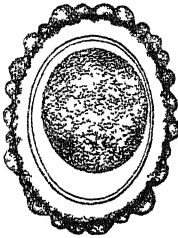
चित्र १७६. लताकार कृमि।

चित्र १७७. लताकार कृमिका अन्डा।

१४१२. केंचुवा कृमि

(ख) छोटे केंचुवे (Strongyles or Small Round Worms)

छोटे केंचुवे बहुत छोटी सूई की तरह होते हैं। कभी कभी ये इतने छोटे होते हैं कि, मुश्किलसे देखे जाते हैं और कभी कभी बड़े। कभी कभी आँतमें
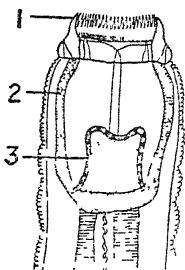
चित्र १७८. छोटे केंचुवे।

1—पत्र मकुट,
2—गालकी झिल्ली,
3—दाँत।

इसके कारण बड़ी जलन होती है। इनके कारण अनपच, छीजन, अतिसार और रक्ताल्पता भी होती है। तरुण पशुओंको यह कृमि बहुत होती है, जिससे वे थोड़े दिनमें ही प्रायः मर भी जाते हैं। भेड़ बकरीकी अपेक्षा ढोर इसके कम ग्रहणशील हैं।

१४१३. छोटे केंचुवे

(क) अंकुशा (Ancylostomes or Hook-worms)

यह मनुष्योंको होनेवाली अंकुशा की तरह है। यह लगभग तीन चौथाई इंच लंबी होती है। यह ग्रहणीमें अंकुशके सहारे चिपकती और रक्त चूसकर
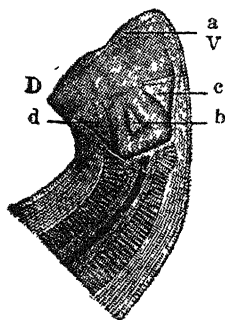
चित्र १७९. अंकुशाका मुँह (वर्धित)।

D—पीठ, V—पेट,
a—मुँहका किनारा,
b—पीठकी ओरका नुकीला दाँत,
c और d—बगलके दाँतके जोड़े।

रक्ताल्पता पैदा करती है। ये अंडे वहाँ छोड़ती है जो मलके साथ बाहर आते हैं। अणुवीक्षण यंत्रमें देखनेमें अंडे विशेष तरहके मालूम होते हैं। जिसमें अंडे हों ऐसा

चित्र १८०. अंकुशाका अन्डा।

चारा पानी खाने पीनेसे छूत लगती है। कुछका कहना है कि, चमड़ेकी राह अर्भक छूत लगाता है। इनके कारण पाचनकी गड़बड़ी और रक्ताल्पता होती है।
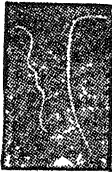
चित्र १८१.

अंकुशाका वास्तविक आकार।

दाहिना—मादा ; बायाँ—नर।

ये अर्भक या अंडे **ऐङ्क्लोस्टोमके** नामसे प्रसिद्ध हैं। और इनकी खास कृमिका नाम **बुनोस्टोमम** है।

१४१४. छोटे केंचुवे

(ख) गाँठ कृमि (Œsophagostomes or Nodular Worms)

ये भी छोटे केंचुवे वंशकी हैं। ये १ इंचके लगभग लंबी और आँतमें रहती हैं। ये एक जगह बहुत जमा होकर हानि पहुँचाती हैं। यह तन्तुओंमें स्वयं चेष्टित जलन पैदा करती हैं। इनके कारण रासायनिक कृमि-अर्बुद (गाँठे) बनते हैं। इनके कारण श्लैष्मिक झिल्लीका प्रदाह होता है। कभी कभी ये आँतकी दीवाल छेदकर निकल जाते हैं जिससे उदर्याप्रदाह होता है। उचित कृमिघ्न खोजनेके पंजाबी प्रयोगमें बछरुओंको कृत्रिम उपायसे छूत लगाकर

गाँठकृमिसे युक्त किया गया था। अन्डेकी पहचान हो सकती है। इस तरह रोगका निदान होता है। (१४०४)

चित्र १८२. गाँठ कृमिके अन्डे।

१४१५. छोटे केंचुवे

(ग) फुसफुसा कृमि (Lung Worm)

यह भी छोटे केंचुवे के वंशकी कृमि है जो ऊपरी स्वास-मार्गपर आक्रमण करती है जिससे बछरुओंको काश या ब्रोंको-निमोनियाँके लक्षण प्रगट होते हैं। यह सब लम्बी, पतली और चिकनी सूता-कृमि हैं। साधारण तौर पर यह अन्डज हैं। इनकी माता इनसे आक्रान्त पशुकी देहमें भ्रूणयुक्त अन्डे देती है। खाँसीके कफके साथ यह उस पशुके शरीरसे बाहर होती हैं। कफ प्राय: निगल लिया जाता है। इस तरह ये आँतोंमें पहुँच जाती हैं। मलके साथ बाहर निकलनेपर इनमें परिवर्तन होता है और यह एक खोलीमें बन्द हो जाती हैं। तब मुँहकी राह पशु-शरीरमें प्रवेश करती और प्रौढ़ होती हैं।

चित्र १८३. फुसफुसा कृमि और उसका अन्डा।

दलदलवाले और विशेषकर बाढ़में डूबनेवाले गोचर इनसे संकुल रहते हैं। गोशालाका इनसे संकुलित होना भी सम्भव है। अपने विकासके लिये इनके कुछ प्रकार किसी मध्यवर्ती मेजबान जैसे कि, धरतीके केंचुवेमें घुस जाते हैं। तब केंचुवायुक्त चारेके साथ वे पशुके पेटमें पहुँचते हैं।

लक्षणका प्रारम्भ खाँसीसे होता है। जो धीरे धीरे बहुत

होने लगती है। खाँसनेमें पीड़ा होती और जीभ निकल पड़ती है, जिसपर कफमें कृमियाँ देखी जा सकती हैं। रोग धीरे धीरे बढ़ता है और अन्तमें दुबलापन और अतिसार होता है।

अधिक उमरके पशु प्रतिरोधी होते हैं। साधारण कृमिघ्नोंसे चिकित्सा की जाती है। उनके साथ किसी अन्य तेलमें मिलाकर तारपीनका तेल दिया जाता है।

तारपीनका तेल }
मूंगफलीका तेल } सम भाग

लस्साके साथ अवद्रव बनाओ। बछरूको यह तेल-मिश्रण एक बारमें आध आउन्स दो।
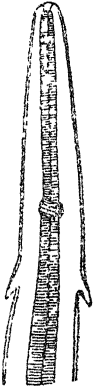
चित्र १८४.
तारकृमिका सिर।

१४१६. छोटे केंचुवे

(घ) तार-कृमि

(Contortus Hæmonchus or Wire Worm)

यह छोटे केंचुवे तारकृमि कहे जाते हैं। यह कृमि खून चूसनेवाली है। यह अचानक बहुत हो सकती है जिससे बछरू मर सकता है। पैरा १४०४ में कहे पंजाबीप्रयोगमें बछरू और भेड़ोंमें यह कृमि भी डाली गयी थी।

अध्याय ४१

मुँहके रोग

१४१७. मुँहआना (निनावाँ) : मुखविवर प्रदाह (Stomatitis)

मुँह कई कारणोंसे आता है। जैसे कि, बहुत रुखड़ा चारा या सूँगवाले बीज चबानेसे। इस रोगमें जीभ और श्लैष्मिक कलामें क्षत होता है। कभी कभी चारे और सूँगवाले बीजके टुकड़े जीभमें या उसके तलेकी झिल्लीमें चुभ कर टूट जाते हैं। उससे जलन होती है। इससे हुए क्षतमें जीवाणु जाकर **कठजिभिया (काष्ठ-जिह्वा)** जैसे रोग पैदा कर सकते हैं। (१३६४)

छूतकी कई बीमारियाँ हैं जिनके कारण जीवाणु महास्रोतमें तो हनिकारक नहीं हैं पर क्षतमें जाकर उत्पात मचाते हैं। जीभ और मुँहकी झिल्लीके क्षतसे इनके उत्पातका अवसर रहता है।

क्षत और छाले गरम मंड या अन्य गरम खाना खाने या गरम पानीके साथ दवा देने अथवा दवामें जलानेवाला कोई रासायनिक पदार्थ हो तो उससे हो जाते हैं। कुछ पौधोंके विषसे भी मुँहमें प्रदाह हो सकता है। यदि चारेके साथ रोएँदार इल्ली (भूआँ पिल्लू) खा लिया जाय तो उससे भी मुँहमें प्रदाह हो जाता है। क्योंकि, उनके रोएँ छिदनेसे और उनकी देहके रासायनिक पदार्थसे जलन पैदा होती है।

मुँहके प्रदाह, कई बुखार, पेटके रोग और खुरपका तथा माता जैसे छूतवाले रोगोंके सूचक हो सकते हैं।

लक्षण : मुँह आने पर सूखा और हरा चारा खिलानेमें कठिनाई हो सकती है। मुँहमें लाल चकत्ते हो जाते हैं और एक मोटी श्लैष्मिक पर्त छा जाती है। मुँहकी झिल्ली सूज सकती है। जीभ सूज सकती है और उसपर दाँतके दाग दिखायी पड़ सकते हैं। क्षत और प्रदाहके कारण छोटे छोटे व्रण हो जा सकते हैं।

थूक बहुत निकलता है जो बहुधा सड़ जाता है और उसमें बदबू आती है।

मुँहका छाला : यह मुँहकी ऊपरी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह है। इसमें छाले निकल आते हैं जिनमें साफ द्रव भरा रहता है।

मसूरसे लेकर मटरके बराबर छाले कठिन तालूपर और ओठोंके भीतर निकलते हैं। कई दिनमें ये फूट जाते हैं जिनके क्षत जल्दी ही भर जाते हैं। कभी कभी तालू और भिल्ली पर दाने निकल आते हैं छाले नहीं निकलते। इस तरहके रोगका नाम **मुखगह्वर-प्रदाह** (स्यूडोएफ्थॉस स्टोमैटाइटिस-Pseudoaphthous stomatitis) है।

चिकित्सा : इन रोगों (**ब्यूकल कैटार** और **स्टोमैटाइटिस**) का कारण खोज उन्हें हटाना होता है। आहार हल्का, सुपच, भिटामिनयुक्त होना चाहिये, जैसे कि हरा रसीला चारा, दलिया, मंड या लपसी।

कोई विजातीय पिंड हो तो छोटे चिमटेसे निकाल देना चाहिये। और यदि बेढंगे दाँतोंके कारण प्रदाह होता हो तो दाँतकी रेतीसे उसे ठीक कर देना चाहिये। यदि दाँत दोषपूर्ण हों तो उन्हें उखाड़ देना चाहिये।

मुँह किसी कोथघ्नसे बराबर धोया जाय :

(१)	नमक	...	१ आउन्स
	पानी	...	४ रत्तल।
(२)	थाइमल	...	१० ग्रेन
	बोरेक्स या सोहागा	...	१ ड्राम
	पानी	...	१ रत्तल।

यदि धोना कठिन हो तो यह घोल फाहेसे अच्छी तरह लगाओ।

जीर्ण प्रदाहमें क्षतोंपर सिलभर नाइट्रेटका एक सैकड़ा घोल लगाना फायदा करता है।

१४१८. दूधपीतों (स्तनन्ध्यों) का मुँह आना

यह दूधपीते बछरू और मेमनोंका रोग है। यह छूतका रोग है। श्लैष्मिक कला पर क्षतके चकत्ते होते हैं। इस पर पहले उजले रंगकी पर्त छा जाती है। इसके बाद भूरी या पिलोहीँ। इन्हें साफ कर देने पर व्रण दिखायी देने लगते हैं।

लक्षण : प्रारम्भमें लार चलती और सूजन होती है और श्लैष्मिक कलापर लाली छा जाती है। इसके बाद ओठ, जीभके नीचे, जीभकी नोक और पार्श्व पर पर्दा जम जाता है। ओठोंकी कोरपर छोटे छाले निकलते हैं जो तुरत सूख जाते हैं और उनपर पपड़ी जम जाती है। थन पीनेकी रुचि नहीं रहती, भूख घट जाती और फिर दुबलापन होता है।

बलिष्ठ सुस्थ बछरूका कष्ट एक सप्ताहके बाद शमन हो जाता है। पर कमजोर बछरूके क्षत बढ़ते रहते हैं जिनपर नये पर्दे जमते हैं और इसके बाद बड़े व्रण दिखाई देते हैं। इस अवस्थासे कई तरह की छूत लगनी शुरू होती है जिससे बछरू बहुत बड़ी संख्यामें मरते हैं।

सुस्थ दूधपीते या स्तनन्धय अलग कर दिये जाँय और वत्सालय छूतरहित किया जाय।

चिकित्सा : निनावें की तरह मुँह बराबर कोथघ्नोंसे धोया जाय। इसके अलावे व्रणोंपर :—

सुहागेका लावा	... १ ड्राम
मधु ...	... जितना मिलानेसे पतला लेप बन सके।

यह लेप या पेन्ट दिनमें तीन बार लगाया जाय। लेप लगानेके पहले हलके टिंकचर आयडिनका फाहा लगाना अच्छा होगा।

१४१९. लाला-स्राव : थूक आना (Salivation)

(Ptylism = अतिशय लाला-स्राव)

जब मुँह या गलेमें प्रदाह होता है तो मुँहमें थूक आता है। कई औषधियाँ जसे आयडिन, पारा और पिलोकारपिन (pilocarpin) के उपयोगसे अधिक थूक आ सकता है। थूक फेनकी तरह बहता है अथवा लारकी तरह चूता है।

चिकित्सा : मूल कारणका पता लगाकर चिकित्सा करो।

१४२०. गलसुआ : कर्णमूल-प्रदाह (Mumps or Parotitis)

गलसुआ मनुष्यकी तरह ढोरमें मुख्य छूतके रूपमें नहीं होता। साधारण तौरपर कर्णमूलिक (पैरोटिक) ग्रन्थिके क्षतके कारण होता है। कठजिभियाके कारण

गौणरूपमें यह हो सकता है। पर ऐसा भी देखा गया है कि, बालकोंको गलसुआ होने पर साथ ही साथ ढोरमें यह मारीकी तरह फैलता है।

लक्षण : निचले जबड़ेके पास कर्णमूलिक ग्रन्थिकी जगह पर सूजन होती है। सूजनमें पीड़ा होती है और सावधानीसे चबाना होता है। कभी कभी सूजन पक जाती है। रोगका दौरा हल्का होता है। पकने पर भी फोड़ा फूटने और पीब बहनेसे रोग शान्त हो जाता है और घाव जल्दी भर जाता है।

चिकित्सा : १ या २ सैकड़ा कारबोलिक एसिडके घोलसे शीतोपचार (ठडीपट्टी-cold compress) करना चाहिये। लेप के लिये आयडिनका मलहम भी उपयोगी है। फोड़ा निकलने पर सेंकना और चीर-फाड़ भी बताया गया है। जीर्ण रोगमें आयडिनकी सूई शिरामें लगानी चाहिये। पोटाशियम आयोडाइड खिलाना चाहिये।

१४२१. अन्नवह या अन्नप्रणालीका अवरोध
(Obstruction of the Œsophagus)

इस रोगमें आहारके घने पिंडसे अन्नवह या महास्रोतका प्रायः अवरोध हो जाता है। कभी कभी विजातीय पिंडोसे भी हो जाता है। कभी कभी रोमन्थाशयसे रोमन्थके लिये उगली आहार-सामग्री अन्नप्रणालीमें अटक सकती है।

लक्षण : निगलने और डकार लेनेका बराबर प्रयत्न रहता है। निगलनेके प्रयासमें पशु अपनी गरदन अगल बगल घुमाता, तानता और झुकाता है। वह अपना मुँह खोल जीभ बाहर निकालता और बहुतसी लार टपकाता है। प्रायः वह खाता पीता नहीं। पर पीनेकी कुछ कोशिश करनेपर उगल देता है।

प्रायः ऐसा होता है कि, अटकाव अन्नवहके सुदूर छोर पर होता है। उसे आगे ठेलनेके लिये पशु और खाता है। इस तरह अन्नवह नालीकी पूरी लंबाईमें भोजन पदार्थ भर जाता है। आंशिक अवरोध होने पर थोड़ी मात्रामें ही भोजन पानी धीरे धीरे खाया पीया जा सकता है और वह पूराका पूरा भीतर चला जा सकता है। उगलाता नहीं है।

जब कोई विजातीय पिंड अटकता है तब अटकनेकी जगह पर हुई सूजनसे पहचाना जा सकता है।

अवरोधके बाद पेटमें बनी हवा जब बाहर नहीं निकलती तब पेट फूलता है।

(१४२३) पेट फूलने पर अवरोध हटानेके लिये पशु और खाना निगलनेकी कोशिश करे तो अधूरा अवरोध पूरा हो जाता है।

दौरा : यदि किसी बाहरी पिंडके कारण अवरोध है तो बारबार डकारनेसे वह बाहर निकल सकता है अथवा निगलनेसे पेटमें पहुँच सकता है। तब पशुको हल्का लगता है। यदि वह चीज छोटी और चिकनी हुई तो उसके बाहर निकलने या निगले जानेकी पूरी संभावना रहती है पर बहुत बड़ी होने या कसकर अटकनेके कारण वह न तो बाहर होती या आगे सरकती है और पूरा अवरोध है तो पेट फूलनेसे पशु मर जाता है। क्योंकि इस हालतमें महाप्राचीरा या मध्य प्राचीरा हृदय और फेफड़ोंको दबाती है जिससे दम घुटने लगती है या रक्त संचार बन्द होता है। कुछ घंटोंमें मृत्यु हो जाती है। कभी कभी क्लोम नलिका या श्वासनलिका इतनी दबती है कि दम घुटता है।

यदि अवरोध होनेके कई घंटे बाद मृत्यु इतनी जल्दी नहीं हुई तो अन्न प्रणाली सड़ना शुरू होती है जिससे पीब और छेद हो जाते हैं और अंतमें मृत्यु।

आहारका कौर जब अटकता है तब कुछ देरके बाद वह थूकसे मुलायम हो जा सकता है। और तब उपाय किये बिना अपने आप ऊपर या नीचे सरक जा सकता है। पर यदि वह कड़ा या सूखा हुआ हो तो थूक सोखनेमें समय लगेगा। इससे प्रणाली फैल सकती या छेद हो जा सकते हैं। इसका परिणाम घातक होगा। छोटी नुकीली चीजें आसपासके नरम भागोंमें छेदकर उनमें घुस सकती हैं और बादमें कष्ट नहीं भी दे सकती हैं।

चिकित्सा : यदि गलेके पासही अवरोध हुआ तो वह हाथ डालकर निकाला जा सकता है। पशुका मुँह खोलकर जीभ बाहर खींचकर पकड़ो। हो सके तो लंबे हत्थेवाली दाँतदार चिमटे या गोल वस्तु पकड़नेके लिये छल्लेदार गहुआ काममें लाओ। कोई मोड़ा हुआ तार अटकी चीजके उस ओर तक पैठाकर खींचनेसे भी उसे बाहर निकाल सकते हैं। निकालनेके लिये, वस्तु और स्थितिके अनुकूल उपाय करना होता है। जिस तरह रस्सीके फंदेसे बोतलसे काग निकालते हैं उस तरह भी किया जा सकता है। उस स्थानको तेल या अच्छा हो, लस्सेसे चिकनाया जा सकता है।

अन्तिम उपायके तौर पर वमन करानेके लिये सूई भी दी जा सकती है। इस कामके लिये अटकावकी जगहके पास स्ट्रिकनीनकी सूई दी जा सकती है। इससे

प्रबल पेशी-संकोचके साथ वमन भी हो सकती है जिसके कारण अटकी चीज बाहर हो जाय।

यदि पेट फूलना शुरु हो जाय तो, अन्य उपाय अजमानेके लिये समय मिले इसलिये, रोमन्थाशयमें व्रीहिमुख यंत्र (trocar) से छेदा जा सकता है। इसकी प्रक्रिया पेट फूलना या वायुरोध प्रकरणमें आगे बतायी गयी है (१४२३)। यह भी हो सकता है कि, पेटमें रुकी हवा निकालनेके उद्योगमें अवरोध भी हट जाय।

अध्याय ४२

पेट और आँतोंके रोग

१४२२. वमन : कै (Emesis)

मुँह और नाकसे पेटकी चीजोंके निकलनेका नाम वमन है। यह वमनके प्रतिसंक्रमकेन्द्रकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उत्तेजनाके कारण होती है।

पशुओंको आहारकी वस्तु, दाहक औषधियों या वामककी क्रियाओं, पेटकी कृमियों या आमाशयव्रणके कारण पेटकी जलन से वमन होती है।

कुत्ते बिल्लियाँ गरदन तान कर जरा झुका, बड़ी सुगमतासे कै कर लेती हैं, पर ढोर को कठिन प्रयास करना पड़ता है। वमनके पहले कुछ अग्रसूचक लक्षण जैसे कि, मतली, बेचैनी, खाली निगलना, डकार आदि होते हैं। पशु लेटता और बेचैनीसे खड़ा होता है। काँपता और लम्बी साँस लेता या कराहता है। फिर प्रयत्न करके रोमन्थाशयकी द्रव या कुचली वस्तु मुँहसे निकालता है। इसके लिये उदरकी पेशियोंका संकोच होता है।

चिकित्सा : बहुधा कै द्वारा रोमन्थाशयके अवांछनीय पदार्थोंसे मुक्ति मिलती है। इसलिये इसे होने देना और इसमें मदत करना चाहिये। जब बहुत जादे वमन हो और उसके रोकनेकी जरूरत हो तो नीचे लिखी दवा काममें लायी जा सकती है :—

(१) कपूर १½ ड्राम मंडके साथ।

(२) क्लोरल हाइड्रेट १ आउन्स मंडके साथ।

१४२३. पेट फूलना : वायुरोध (Tympanites)

वायु बढ़नेके कारण रोमन्थाशय और जालाशयके फूलनेसे दारुण रूपसे पेट फूलना है।

कारण : बहुधा सहज संधानीय (fermentable) हरा चारा, विशेषकर फलीदार, खानेसे यह होता है। चारेके पौधे ओस या मेहसे भीगे रहें तो हानिकारक हो सकते हैं। इसलिये सबेरेके समय चरनेसे यह रोग बहुत हुआ करता है। भीगे फलीदार चारे या रसीली घास चरनेके बाद पानी पीनेसे भी यह होता है। मुर्झाये या गरमाये हरे चारेसे भी पेट फूल सकता है। कुछ ऐसे पशु हैं जिन्हें यह आसानीसे हो जाता है। सहज संधानीय चारा बहुत खाने या अन्य कारण से अन्नवहके अवरोधसे भी वायुरोध हो जाता है।

बहुधा दाल, भात या रोटी खिलानेसे भी यह हो जाया करता है। ये चीजें ढोरको थोड़ी मात्रामें फायदेके साथ खिलायी जा सकती हैं। पर यदि चारेके साथ मिलाये बिना ये चीजें खिलायी जाती हैं तो स्टार्चवाले भोजन या दालसे वायुरोध होता है। भोजके बाद बचा खाना पशुओंको खिलानेसे भयंकर घटनायें हो जाती हैं। प्रायः ऐसा होता है कि, कोई भूखा पशु बनी रसोई यदि पा लेता है तो ठूँस ठूँस कर खाता है जिसका नतीजा घातक होता है। पशुपालक सावधान रहें कि, ऐसी घटनायें न हों।

वायु या गैस तेजीसे बनती है इसलिये रोमन्थाशय और जालाशय फैल जाते हैं और रोमन्थाशयके अवरोधकी तरह लक्षण प्रगट होते हैं।

जब वायु या गैस भर जाती है तब फूलना शुरू होता है। वायु जितनी जादे होगी दबाव उतना ही जादे होगा। रोमन्थाशयकी प्राचीर इतनी कड़ी हो सकती है कि, दबाव कठिन होता है।

लक्षण : पशु निश्चल खड़ा रहता है, कमर टेढ़ी कर लेता है और सिर घुमाकर पेटकी ओर देखता है। वाम-पार्श्व पिछली रीढ़के समतल हो जाता या उससे भी ऊँचा उठ सकता है। डकार और कै हो सकती है।

साँसका कष्ट, नीलिया, नाड़ी क्षीण, और कान तथा शाखायें शीतल हो जाती हैं। पशु चिंतित मालूम होता है। यदि दबावसे छुटकारा नहीं किया गया तो वह गिर पड़ता और आक्षेप होकर मर जाता है।

पशु गोचरमें है उसी समय या लौटने पर तुरत वायुरोध हो सकता है। वह मरा पाया जा सकता है। फूलना जब तेजीसे बढ़ता है तब उधर ध्यान जानेके कुछ मिनट बाद ही वह मर सकता है। जब वायु धीरे धीरे बढ़ती है तब डकार या कै से उसे आराम मिल सकता है। उसके बाद वह चगा हो जाता है।

चिकित्सा : रोग बहुत उग्ररूपमें हो और जब पशुको तनाव और पीड़ा बहुत हो, साँस लेना कठिन हो तो इसका इलाज तुरत करना चाहिये और रोमन्थाशयमें छेद कर हवा निकाल पशुका प्राण बचाना चाहिये।

रोमन्थाशयका छेदन : बाँऐं पार्श्वमें शेषान्त्रकके बाहरी कोणसे अंतिम पसली तक एक रेखा खींचो। इस लकीर पर बीचमें एक जगह चुनो जो पसलीसे दो इंच दूर हो। दहनी कुहनीकी ओर ब्रीहिमुखसे छेदो। इसके बाद उसे निकाल लो। नली (Canula) उसीमें रहने दो। वायु और कुछ खायी वस्तु उसमेंसे निकलेगी। नलीको इसी तरह घंटे भरके लगभग रहने दो। उसे बाँध रक्खो कि, निकल न जाय।

जहाँ ब्रीहिमुख नली न मिले वहाँ तेज छुरीसे इतना बड़ा छेद करो कि, उसमें बाँसकी नली समा सके। इस नलीका बाहरी व्यास आध इंच या इसीके लगभग हो। बाहरी छोर पर एक खाँचा बनाकर उसमें सुतली बाँध देहमें इस तरह बाँधो कि, वह निकल न सके। काममें लानेके पहले सुतली और बाँसकी नली आयडिनके घोलमें डुबा लो। कोथकी ओरसे सावधान रहो। यदि कोई कोथघ्न पासमें न हो तो जो उपाय हो सके करो। छुरी आगमें भुलसा लो तब भोंको। क्रिया बड़ी सरल है। नली निकालनेके बाद घाव अपने आप पुर जाता है। यदि घाव बड़ा हुआ जैसे कि, एक इंचसे जादे तो चमड़ेको सीकर उसपर पट्टी बाँधो।

मामूली रोगमें पशुको ढलुही हालतमें रक्खो। अगले पैर पिछलेसे ऊँची जगह पर रहें। पिछले पैरोंके लिये एक या डेढ़ फूट धरती कोड़ दी जाय और अगले पैर ऊपर रहें। इतनेसे काम चल जाता है। इस आसनमें अन्नवहके मुँहसे हवा निकल जानेका जादे मौका रहता है। पशुको इसी हालतमें रख कर पेट और बगलमें जोरसे मालिश करो। दोनों तरफसे दो आदमी यह करें। बछरू जैसे छोटे पशु

इस आसन पर अधिक सरलतासे रखे जा सकते हैं। ऊपर और नीचेकी ओर पाँचसे दस मिनट तक मालिश की जाय। थोड़ी देर ठहरकर दुबारा मालिश हो। गाभिन गायकी दाहिनी तरफ मालिश न हो। पुआलके जूनेसे जोरसे रगड़ा जाय। यहाँ मालिशका अर्थ गूँथना (आँटेकी तरह), भोंकना और दबाना है। इस क्रियाके साथ डकार और कै करानेकी कोशिश करनी चाहिये। आदमीके मुँह और गलेमें पंख तथा उँगली डालकर जैसे कै करायी जाती है उसी तरह किसी मुलायम फुनगीसे तालू या गलेमें गुदगुदाना चाहिये।

मुँहसे दवा पिलानेका कोई अर्थ नहीं।

पेट पचकने पर कुछ दिनोंतक परहेजी चारा देना चाहिये।

आकस्मिक घटना पर उपयोगके लिये पशुपालक त्रीहिमुख नली (trocar canulas) रखें तो अच्छा हो।

१४२४. पेटमें विजातीय पिंड

कुछ गायें जो कुछ मिले वह खा लिया करती हैं, इस कारण रोमन्थाशय और जालाशयमें विजातीय पिंड पहुँच जाते हैं। इनमें से कुछ पिड रोमन्थाशयमें टिक जाते हैं। यदि इनमें नौक नहीं हुई तो कष्ट नहीं देते। छुरीके फलक जैसी भारी और धारदार चीजें श्लैष्मिक कलामें चुभती हैं जिससे घाव हो जाता है। वह भर सकता है और उस चीजको वहाँ चुभाये रख सकता है। अन्य चीजें जालाशयमें पहुँच उत्पात मचा सकती हैं। सूई जैसी कुछ चीजें महाप्राचीरा, हृदय या फेफड़ोंमें चुभ घातक क्षत कर सकती हैं। इसके बाद निमोनियाँ, हृदय या कपाटिकाकी गड़बड़ी मचा सकती है जिससे मृत्यु हो सकती है।

कोई हल्की वस्तु आमाशयमें पहुँच उसके प्रवेश या वहिर्द्वारका अवरोध कर सकती है। कुछ बछरुओंकी चाटनेकी आदत होती है। गाय भी ऐसा करती है। टूटे केश पेटमें छोटी गोलीके रूपमें पहुँच जमा होते और गोला बनने लगते हैं।

ये विजातीय पिंड एक या कई पेटोंके कार्यमें बाधा दे सकते हैं जिससे अपच और अवरोध भी हो सकता है। रोमन्थाशयमें बालू जमकर संग्रहणी (अग्निमान्द्य) हो सकती है। नुकीली चीजें चक्कर काटती चमड़ा होकर पार हो सकती हैं जिससे वहाँ पर सूजन और पीब हो जाती है अथवा वह कहीं हिफाजतके साथ टिक जातीं और नुकसान नहीं करतीं। पर यदि वह उत्पात मचाना शुरू करें तो उनका

इलाज कठिन है। तब चीरफाड़ करना जरूरी हो जाता है। कोई खास दामी पशु न हुआ तो बड़े चीर फाड़का सवाल भी नहीं उठता।

इस बातकी कोशिश होनी चाहिये कि, ऐसी चीजोंके पास ढोर पहुँच नहीं सकें। बाल चाटना रोकना चाहिये।

१४२५. आमाशय और आँतोंका प्रदाह
(Gastric & Intestinal Catarrh)

पूर्वाशय या चौथे पेटमें सूजन आहारकी भूलसे हुआ करती है। अनुपयुक्त या बहुत गरम आहार भी आमशयकी सूजन कर सकता है।

लक्षण : भूख घट जाती है। कभी कभी पशुमें तरह तरहकी चीजें जैसे गोड़थार या घृणित अथवा अपचनीय वस्तु चाटनेकी रुचि हो जाती है। इस विचित्रतामें कमीवेशी हो सकती है। पशु बहुत कमजोर दिखायी पड़ता है और कमरको कमानकी तरह करके खड़ा होता है जैसे कि दर्द हो। रौंथ कम और अनियमित होती है। कभी कभी डकारके साथ दुर्गन्ध हवा निकलती है। बायाँ पार्श्व कड़ा हो जाता है। पूर्वाशय (abomasum) भागमें नरमपन हो सकता है। साधारण तौर पर कुछ कब्ज रहता है।

चिकित्सा : आहार-चिकित्सा होनी चाहिये। पहले दो दिन तक खानेको कुछ नही देना, केवल पानी पिलाना चाहिये। इसके बाद ताजा, हरा, उपयुक्त चारा जरासे नोन और खलीके साथ थोड़ा थोड़ा देना चाहिये।

लंबी बीमारीमें मैग० सल्फ० की एक मात्रा देकर पेट साफ कर देना चाहिये। सयाने पशुको एक रत्तल दो मात्राओंमें देना चाहिये। खट्टे फल जैसे कि इमली और नीबूसे साधारणतः सुधार होता है।

आँतको शोथसे अन्तमें अतिसार होता है जिसमें दुर्गन्ध मल निकलता है। ऐसी हालतमें रेंड़ीके तेलके अवद्रवका (१ से २ रत्तल तेल दो मात्राओंमें) विरेचन बताया जाता है। नित्य ½ ड्राम अजबाइनके सत्तसे छूतनाश करना अच्छा होता है।

विरेचनके बाद ८ आउन्स कोयलेकी बुकनी पानीके साथ देनेसे आँत साफ होती है। इसी कामके लिये केओलिन भी दी जा सकती है। लंबी बीमारीमें

विरेचनके बीच बीच पेटकी वस्ति (lavage) बतायी गयी है। गुदामें गुनगुना पानी चढ़ाना भी लाभदायक है।

जब वस्ति, रेंड़ीके तेलके विरेचन, अजवाइनके सत्तसे छूतनाश और कोयले या केओलिनसे सफाई के बाद भी बीमारी लंबी होती रहे तो कषाय या संकोचक देना जरूरी हो सकता है। जैसे कि, खलीकी बुकनीके साथ १ ड्राम अफीमकी एक मात्रा कत्था या अर्जुनकी छालकी बुकनी बिसमथ कारबोनेट के साथ और अलसीके लस्से जैसे स्निग्धकारक उपशामक (demulcents) पदार्थके साथ दिया जा सकता है।

बछरूको चूनेका पानी लाभप्रद हो सकता है। (१४०३)

१४२६. आँतका शूल (Intestinal colic)

यह रोग उग्र अंत्रशोथ या प्रदाहसे संबंधित है। शूल अचानक होता है और कभी कभी कठिन भी। इसके बाद अतिसार होने लगता है तब पशु आराम हो जाता है। शूलमें आँतोंका संकोच होता है। पेट सेंकनेसे आराम मिलता है। गरम पानीमें पट्टी भिगाकर पेट पर रक्खी जा सकती है। गरम पानी से बोरोंको भिगा कर रोगी पशुके बदनको चारों ओर से ढककर गरम पैक (warm pack) देना चाहिये। उस समय गरम पैकके ऊपर से गरम सूखा कम्बल ओढ़ा देना चाहिये। यह पैक हर दस मिनट पर बदला जाय। कठिन दर्दमें २½ से ४ ग्रेन की मात्रामें मौर्फिनकी सूई अन्तस्त्वक् में दी जाय। कभी कभी १ आउन्स तारपीनके तेलमें बराबर भाग स्निग्ध या अनुत्तेजक वनस्पति तेल मिलाकर देना और उसके बाद मैग० सल्फ० (१ रत्तल) जैसा सरल विरेचन देना अच्छा होता है।

१४२७. आँतका जीर्ण प्रदाह (Chronic Intestinal Catarrh)

जीर्ण प्रदाहका लक्षण सुस्ती और क्रमिक दुबलापन है। कब्जके बाद अतिसारका क्रम रहता है जिसमें मलमें आँव, पीब और कभी रक्त मिला रहता है।

आँतके उग्र प्रदाह में जो चिकित्सा होती है वह बतायी गयी है। जैसे कि, विरेचन, कषाय और स्निग्धकारक ओषधि। इन रोगोंमें उत्पातका कारण कभी कभी आँतोंको कृमिका होना है। कृमियाँ साफ करनी होती हैं। इसके लिये अध्याय ४० में कृमिरोग देखिये।

अध्याय ४३

यकृतके रोग

१४२८. कामला : पांडु (Jaundice : Icterus)

कामला कई ऐसे रोगोंका लक्षण है जिनमें पित्तका रङ्ग रक्तमें और कुछ तन्तुओंमें जमा होता तथा कुछ पेशाबमें निकल जाता है।

देहकी श्लैष्मिक कलायें कामलामें पीली हो जाती हैं। आँख, नाक, मुँह सभी पीले हो जाते हैं। बिना रङ्गवाली त्वचामें भी पीला रङ्ग हो जाता है।

यकृत पित्त बनाता है और पित्त-प्रणालीके द्वारा आँतोंमें डालता है। यह स्रोत किसी चीज से अवरुद्ध हो जाता है तब बना पित्त सीधे रक्तमें आता और उत्पात मचाता है। या यह यकृतकी क्रियाकी गड़बड़ीसे हो सकता है। ऐसी हालतमें यकृत-कोषोंमें बने पित्तको पित्तप्रणालीमें जानेकी राह नहीं मिलती। पित्ताश्मरीके कारण यकृतसे आँतमें पित्त जाना रुक जाता है अथवा प्रणालीकी श्लैष्मिक कलाके अस्तरकी सूजनसे भी रुकता है। पित्तिया-कृमि भी अवरोध कर सकती है। पित्त प्रणालीमें केंचुवा-कृमि भी राह रोक सकती है। प्रणालीके मुँह पर थैली या अर्बुद (cysts or tumours) भी प्रवाह रोक सकते हैं। आँतमें सूखे मलके टुकड़ेसे भी स्रोतमें बाधा हो सकती है। सौत्रिक वृद्धि (सिरोसिस-cirrhosis) सौत्रिक सूखन (नेक्रोसिस-necrosis) और अनेक दूसरी विकृतियों के कारण यकृत ठीक ठीक क्रिया नहीं भी कर सकती है। पाचनकी गड़बड़ी और लाल पेशाब (पिरोप्लास्मोसिस) जैसे रोगोंका असर यकृत पर पड़ सकता है और उसके कारण पित्त पित्तप्रणालीमें बहनेके बदले ग्रन्थियों द्वारा आचूषित हो सकता है।

कामला दारुण अथवा जीर्ण दोनों ही हो सकता है। दारुण अवस्थामें झिल्लियाँ अचानक विवर्ण हो जाती हैं। ताप चढ़ जाता है। पशु सुस्त हो जाता है। कमजोरी स्पष्ट मालूम होती है। मुँहसे बदबू निकलती है। ऐसी दशामें तुरत कुछ करनेकी जरूरत है। नहीं तो मृत्यु हो सकती है।

जीर्ण अवस्थामें कामला धीरे धीरे बढ़ता है। झिल्लियोंपर पीलापन हो जाता है। सबसे पहले आँखका कोया पीला होता है। जीभकी नोक खासकर जीभकी पीठ पीली या चंपई रङ्गकी हो जाती है और जरा दबानेसे खास तौर पर दिखायी पड़ती है। मलका साधारण रङ्ग पित्तके कारण होता है और इसके अभावमें वह मटमैला या पंकके समान हो जाता है। इसमें पाचनकी भीषण गड़बड़ी होती है। पित्त केवल पाचनमें ही सहकारी नहीं है आँतोंमें सड़ाँद रोकनेमें विषनाशक भी है। पित्तके अभावमें विष पैदा होते हैं। इस कारण आलस, चलने फिरनेकी अनिच्छा, चमक (आक्षेप), उत्तेजना और साँसकष्ट होते हैं। बहुधा कब्ज भी होती है।

जीर्ण अवस्था होनेसे पेट पर सूजन होती है। रोगी मृतप्राय हो जाता है। विषका प्रभाव नाड़ी संस्थान पर पहुँचता है, इसके बाद मृत्यु होती है।

चिकित्सा : कारणका पता लगाकर हो सके तो दूर किया जाय। यदि परोपजीवियों के कारण हो तो उन्हें कृमिघ्नों और विरेचनसे मार भगाना चाहिये। यदि अर्बुदोंके कारण गड़बड़ी है तो चीर फाड़ कराना चाहिये लेकिन रोगीकी यह अवस्था निराशाजनक है। आँतोंकी अवरोधक चीजें तुरत हटायी जा सकती हैं। यदि यकृतके कोषोंकी क्रियामें दोष हो तो उसे सचेष्ट करनेवाली औषधियाँ जैसे केलोमेल, सोडियम सल्फेट या मैग० सल्फ० देनी चाहिये। आहार विचारके साथ दिया जाय। प्रोटीन और स्नेह-पदार्थके कारण यकृतको अधिक श्रम करना होता है। इसलिये जिस आहारमें ये जादे हों नहीं दिया जाय। मुसब्बर पित्तनिस्सारक है। यह दिया जा सकता है। सयाने पशुओंके लिये ८ आउन्स या अधिक मात्रामें नित्य मैग० सल्फ० देना बहुत भरोसेका हो सकता है। या पहले एक दिनमें ४ ग्रेन की मात्रामें कैलोमेल ६ से ८ बार देनेके बाद दूसरे दिन मैग० सल्फ एकबार देना भी भरोसेका हो सकता है।

१४२६. पित्ताश्मरी : पथरी (Gall Stones)

पित्ताश्मरीका जैसा लक्षण है वैसा मिलना कठिन है। ढोरकी पित्तप्रणालीमें कुछ टुकड़े जमा हो जाते हैं। पित्तप्रणालीके शोथके कारण प्रायः पित्ताश्मरी बनती है। यह आँतसे पित्तनलीमें जीवाणुकी छूत बढ़ने, या पित्तिया जैसे परोपजीवी या

पित्तनालीमें विजातीय पिंडके कारण होता है। छूतके रोग साधारण तौर पर पित्तप्रणाली को छूतग्रस्त कर देते हैं।

अश्मरी अधिकतर पित्तनलीकी अपेक्षा पित्तकोषमें होती है।

लक्षण : पित्तकोषमें पित्ताश्मरियाँ कोई असुविधा या पाचनकी गड़बड़ी किये बिना बड़ी संख्यामें हो सकती हैं। जब कोई अश्मरी उतर पित्तनलिकाका मुँह बन्द कर देती है जिससे चमक (आक्षेप) के साथ पेशियोंका संकोच होता है तो केवल उसी समय मन्द (मृदु) से लेकर दारुण प्रकारका शूल (colic-कॉलिक) होता है। नलिकाके बन्द होनेसे इसके अतिरिक्त, कामला भी हो सकती है। यकृत कभी कभी बड़ी और चेतनाशील (आशुक्षुब्ध) हो जाती है।

चिकित्सा : पित्त-नलीकी पेशीको फैलाना होता है। इसके लिये नारकोटिक अर्थात् निद्राकारी दवा देनी चाहिये। सयाने पशुमें मॉर्फिन २½ से ४ ग्रेन की सूई अन्तस्त्वक् में दी जा सकती है।

रेंडीके तेल जैसे सरल विरेचनसे अश्मरी निकलनेमें मदद करनी चाहिये। रोग जब होता है तब लगातार मैग० सल्फ० देना चाहिये।

अध्याय ४४

उदर्याकलाके रोग

१४३०. जलोदर (Ascites)

देहके एक या अधिक भागोंमें पानी जमा हो जाता है। जब चमड़ेके नीचे पानी जमा होता है तब **शोथ** (इडीमा-oedema) कहा जाता है। जब तमाम फैला रहता है तब इसे **सार्वदैहिक शोथ** (ऐनेसेर्का-anasarca) कहते हैं। जब पेटमें पानी जमता है तब उसका नाम **जलोदर** (एसाइटिस-ascites) होता है।

जलोदर एक या कई रोगग्रस्त स्थितियोंका सूचक है। **जलोदरमें** पेटमें पानी अधिक जमा होता है जो बढ़ती सूजनके साथ पाचन, पोषण, हृदय, और

साँसकी क्रियामें गड़बड़ी पैदा करता है। पानी जमा होनेका कारण हृदयका ठीकसे काम नहीं करना भी हो सकता है या कदाचित् स्थानविशेषमें रक्तके स्वभाविक प्रवाहमें रुकावट होनेसे भी पानी जमा हो जाया करता है। यदि पशुको जोरसे कृमियाँ हों या उसे खूनीदस्त या क्षयकी बीमारी हो तो जलोदर हो सकता है।

जलोदर धीरे धीरे बढ़ता है। जैसे जैसे पानी जमा होता है उसके लिये स्थान बनानेके लिये पेटकी दीवाल फैलती है। पेट धीरे धीरे जादे से जादे थलथल हो जाता है। गाय ऐसी देख पड़ सकती है मानो गाभिन हो। पर दबानेसे सूजनके घटने फैलनेसे असलियत मालूम हो जाती है। एक तरफ जोरसे थपथपानेसे उसकी लहर दूसरी तरफ दौड़ जाती है। इकट्ठा पानी जब महाप्राचीराको दबाता है तब साँस लेनेमें कठिनाई होती है। पशुकी दशा बिगड़ने लगती है। मेरु-दड निकल आता है।

ताड़नसे मन्दताका पता चलता है। खड़े और बैठे पशुकी मन्दताका परिसर अलग अलग होता है। रह रहकर स्पर्शन करनेसे छपाकेकी आवाज सुनाई पड़ सकती है।

जलोदरमें गड़बड़ीके कारण पता लगाना चिकित्सामें सहायक होता है। यदि वह यकृतके काम नहीं करनेसे है तो साथ साथ कामला भी होगी और स्पर्श तथा ताड़नसे यकृत बढ़ा हुआ मालूम होगा। यदि वह हृदयके रोगोंके कारण है तो हृदयमें खड़ खड़ ध्वनि सुनायी पड़ेगी। मूत्रकृच्छ्रता होगी, और ऐसी हालतमें नीलिया हो सकती है।

चिकित्सा : ब्रीहिमुखसे छेद-नली डालकर पानी निकालनेसे तरुण पशुओंमें अवस्था शीघ्र सुधर सकती है। इतना पानी निकाला जाय कि, फूलन पचक कर चाहे समतल पर हो जाय। एकबार बहुत पानी नहीं निकालना चाहिये। ब्रीहि-मुख-नली डालनेके पहले कोथघ्न उपाय कर लेना चाहिये।

लेटे पशुपर यह शल्य-प्रयोग हो सकता है। नली निकालनेके बाद पशुको पलट देना चाहिये जिससे कि उसका पेट सटके। चमड़ेमें एक या दो टाँका भर देना चाहिये कि पानी निकलना बन्द हो जाय। इसके बाद दाब कर पट्टी बाँधनी चाहिये। छूतरहित ब्रीहिमुख और नली लगानेके पहले उस जगह चमड़ेको मूड़कर टिंकचर आयडिन लगाना अच्छा होता है।

कम कड़ी बीमारीमें खानेमें नमक नहीं देने और सूखा चारा देनेसे सुधार होता

है। पुनर्नवा (सूखी ९ आउन्स या २½ रत्तल हरी) मूत्रल (मूत्रवर्धक) है। देनी चाहिये। मैग० सल्फ० नियमसे बारबार देना चाहिये। मल ढीला रक्खा जाय। कैलशियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम मात्रामें लाभकारी पाया गया है।

जब जादे पानी जमा हो जाय तो एक या दो सप्ताह पर कई बार छेदन कर पानी निकाल देना जरूरी है। हर बार कुल पानीका एक हिस्सा ही निकाला जाय।

१४३१. उदर्या-प्रदाह (Peritonitis)

उदर्याकला उदर और वस्ति-खातको भीतरसे ढकती है। इसके प्रदाहका नाम **उदर्याप्रदाह** है। प्रदाह दारुण या जीर्ण हो सकता है। आँतमें जानेवाले किसी न किसी जीवाणुकी छूतसे यह साधारण तौर पर होता है। आँतको भेदकर वह उदर्यामें पहुँच प्रदाह करते हैं। पास्च्यूरेला, स्ट्रैप्टोकोक्सी, स्टैफिलोकोक्सी, कोली बैसिली, क्षय जैसे पूयोत्पादक जीवाणु इसके जिम्मेदार हो सकते हैं।

ढोरकी सींग या सूअरके दाँतकी पेटमें लगे घावसे भी उदर्याप्रदाह हो सकता है। पेटमें गये विजातीय पिंडसे भी यह कला फट सकती है। जरायुसे निकले कोथीय पदार्थ भी उत्पात मचा सकते हैं। आमाशय, आँत और मूत्राशयके क्षतसे भी उदर्याप्रदाह हो सकता है। उदरका कोई अवयव जैसे यकृत, प्लीहा, पौरुषग्रन्थि, वृषण जीवाणुग्रस्त हो जाय और उसमें पीब पड़ जाय तो भी उदर्याप्रदाह हो जाता है। इसलिये बधिया करनेमें कोई भूल हो जाने पर पीब हो जाय तो भी यह रोग हो सकता है। गलघोंट्र जैसे सार्वदैहिक छूत पैदा करनेवाले रोगोंके कारण भी उदर्याप्रदाह होता है।

उदर्याके पास पड़ोसके अवयवमें मृदु प्रदाह बार बार होने पर उनका लगाव उससे होता है जिससे लगावकी जगहपर जीर्ण उदर्या-प्रदाह हो सकता है। ठंढ लगने, निर्बलता, पेटपर जोरकी चोट भी उदर्याप्रदाहके उपकारण हो सकते हैं।

लक्षण : उग्र उदर्याप्रदाहमें पेड़ूका दर्द सबसे बड़ा लक्षण है। उदर्याकलामें विषवारक और जीवाणुनाशक शक्ति बहुत है। इतनेपर भी यदि उदर्या ग्रस्त होती है तो बहुत क्षति करती है। पशुके कराहने, रँभाने, दाँतपीसने, चारों तरफ देखने और पूछ डुलाने से उसके कष्टका पता चलता है। पशु झपटना पसंद नहीं करता, कमानकी तरह कमर करके खड़ा रहता है। सिर और गरदन झुकी रहती है।

बड़े पशुकी गुदाकी परीक्षा करनेसे उदर्याकलाकी दशाका पता चल सकता है। यदि वह फट गयी है तो आहारके कण मिल सकते हैं।

आँखोंसे आँसू और कीच बहती है और नाकसे रेंट और पानी।

छिद्रकारी उदर्याप्रदाह : इसमें पशु अचानक पेटके बल लेट जाता है। शाखायें ठंढी रहती हैं, नाड़ी इतनी मन्द होती है कि, माल्रम भी नहीं होती। पसीना खूब चलता है और पेट चढ़ जाता है। ताप चढ़ता है।

जीर्ण उदर्याप्रदाह : इसमें समय समय पर बुखार होता है, पाचनकी गड़बड़ी और अतिसार होता है। भारवाही बैलको जरासा बुखार होता है और धोखे धोखेमें यह हो जाता है। पेटका आयतन बहुत बड़ा हो जाता है। पशुकी दशा बिगड़ जाती है और पेट मुलायम माल्रम होता है। यह दशा सप्ताहों या महीनों रह सकती है। रोग और उभड़ने पर ताप उतर जाता है और रोगी कुछ दिनोंमें मर जाता है।

उग्र उदर्याप्रदाह : यह इतनी जल्दी होता है कि, रोगी उसी दिन मर सकता है। खासकर जब प्रसूतीय छूतमें कोथीय विष प्रगट होने पर यह होता है। पर साधारणतः लक्षण धीरे धीरे विकसित होते और ४ से १४ दिनमें घातक अंत होता है।

उग्र उदर्या प्रदाह भयंकर रोग है। विशेषकर आमाशय या आँतमें छिद्र हो जाने पर। जीर्ण रोग या उस स्थानपर कुछ सटनेसे, खासकर बाहरी चोट या घावसे, जब यह रोग होता है तब उसके अच्छे हो जानेकी बात कही जा सकती है।

बाहरी चोट या घावसे उदर्याप्रदाह रोकनेके लिये चोटकी कोथघ्न चिकित्सा करनी चाहिये। पर भीतरी पूयके रोग लगभग निराशाजनक हैं। समय पर चीरफाड़ किये बिना प्राण नहीं बचाया जा सकता।

उदर्याकी आचूषक शक्ति घटानेके लिये कपूरकी (तेलमें १ आउन्स) अंतर-उदर्या (intra-peritonial) सूई लगाओ। दर्द घटानेके लिये शीतोपचार (ठंढी पट्टी) उपयोगी पाया गया है। अंत्रकी गति रोकनेके लिये सयानी गायको १ ड्रामकी मात्रामें अफीम फायदा करती है।

यदि कब्ज हो तो रेंड़ीका तेल दो। यदि पानी जमा हो गया हो तो कोथघ्न करके छेदन किया जा सकता है। जीर्ण उदर्याप्रदाहमें तेजीसे रगड़ने, शीतोपचार

करने और १ से २ ड्रामकी मात्राओंमें पोटाश आयोडाइड रोज खिलानेसे आचूषणमें मदद मिलती है।

अध्याय ४५

नाकके रोग

१४३२. सर्दी : जुखाम (Nasal Catarrh : Coryza)

दारुण रूपमें सर्दी ठंढ लगने या ठंढ और नम मौसम के असरसे और एकाएक आबहवा के परिवर्तनसे साधारण तौर पर होती है। कभी कभी धूल और धुआँ साँसमें जानेसे भी होती है।

साधारण तौर पर उग्र सर्दीसे जीर्ण सर्दी नहीं होती। कंठ, गल या क्लोमके प्रदाह अथवा फेफड़ेके क्षय रोग या फुसफुसा कृमिके उपद्रवोंके कारण नाकके पड़ोसी अवयवोंके ग्रसित होने पर जीर्ण सर्दी होती है।

उग्र सर्दीमें लसीला पानी नाकसे बहता है। यह पीछे बहुत हो जाता है। अंतमें यह गाढ़ा होकर बहना बन्द हो जाता है। श्लैष्मिक झिल्ली सूजती और लाल हो जाती है। पलकोंका लाल होना और उनकी श्लैष्मिक कलाकी सूजन इसके साधारण उपद्रव हैं। जीर्ण सर्दीमें स्राव होता और रुकता है और फिर अचानक होता है, तब स्रावका परिमाण अधिक होता है, विशेषकर सिर झुकानेसे।

श्लैष्मिक कला सूज जाती है। घाव या व्रण हो सकते हैं। अधिक दिनकी जीर्ण सर्दीका पासके अवयवोंमें फैलनेका झुकाव होता है। कभी कभी ढोरको हल्की छूतके रूपमें सर्दी होती है। तब भूख घट जाती है। आलस और ताप बढ़ता है। रोगी दो तीन दिनमें आराम हो जाता है।

चिकित्सा : उग्र और जीर्ण सर्दीमें कषाय और छूतघ्न घोलसे नाक धोओ। इसके लिये पानीमें फिटकिरी, बोरिक एसिड या सुहागेका एक सैकड़ा घोल तैयार

करो। प्रति रत्तल घोलमें ५ ग्रेन अजवाइन सत्त मिलानेसे जादे लाभ होता है। मूँगफलीके तेलमें एक सैकड़ा अजवाइन सत्त मिलाकर फुहारा करनेसे, खासकर जीर्ण रोगमें, लाभ होता है।

१४३३. पीनस : नाकड़ा (Croupous Rhinitis)

नाककी श्लैष्मिक कलाके गहरे प्रदाहको **पीनस या नाकड़ा** कहते हैं। इसमें अनेक उपकलायें बनती हैं। इसका कारण अधिकांशमें जीवाणुकी छूत है। माता और कठिन प्रदाह-ज्वरके बाद यह उपद्रवके रूपमें होता है।

लक्षण : उग्र सर्दीके लक्षणोंके समान ही इसके भी लक्षण हैं पर अधिक कठिन। इसमें सूजी श्लैष्मिक झिल्ली पर उपकलाकी भूरी या पीली और मोटी तह पड़ जाती है। रेंट गाढ़ी, पीली और चिपकनी होती है जिसमें उपकलाके अंश रहते हैं।

चिकित्सा : चिकित्सा सर्दीकी तरह ही है। १ या २ सैकड़ा सोडा बाईकार्ब के घोल से धोनेसे उपकलायें गल जाती हैं।

अध्याय ४६

कंठ, क्लोम और फेफड़ेके रोग

१४३४. कंठप्रदाह

(Laryngeal Catarrh : Laryngitis : Angina)

ठंड लगने या धूलसे प्रायः कंठप्रदाह होता है। लगातार बहुत दिनोंकी खाँसीसे भी यह हो सकता है। कंठमें क्षत होनेसे भी यह हो सकता है। सर्दी, गलप्रदाह, और काश या निमोनियाँ किसी ओरसे भी प्रदाह बढ़ने पर यह अनुवर्ती रूपमें या इन रोगोंके स्रावकी जलनसे भी हो सकता है। जिन पशुओंकी प्रतिरोध-शक्ति कम है उनमें इसकी ग्रहणशीलता अधिक है।

उग्र आक्रमणमें झिल्लीकी तहें और स्वर-तन्त्रिकाएँ (vocal cords) बहुत ग्रसित होती हैं। सूजती और लाल हो जाती हैं। कफ जमा होता है और कभी कभी स्वरयंत्र पर छोटी छोटी लाल चित्तियाँ हो जाती हैं। वहाँ ऊपरी घाव हो सकता है। जीर्ण रोगमें झिल्ली सूज जाती है और उस पर दाने निकल आते हैं।

लक्षण : सूखी और हल्की खाँसी बराबर होती है। यह पीछे गीली और जादे लम्बी हो जाती है। थोड़ी भी जलन या उत्तेजना होनेसे खाँसीका दौरा होने लगता है। बहुधा नाक बहती और लसीका-ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं। कंठपरका भार बचानेके प्रयासमें प्रायः खाँसी होती है। सूजन या शोथ होनेपर साँसमें कठिनाई होती है। ताप थोड़ा चढ़ता है। यदि किसी अन्य छुतहे रोगके साथ यह हो तो ताप जादे भी हो सकता है। जीर्ण रोगके लक्षण भी ये ही हैं, केवल कष्ट कम होता है। कभी कभी खाँसीमें धड़ाकेकी आवाज होती है।

चिकित्सा : पशुको आराम, हल्का आहार देना चाहिये। धूल-धक्कड़से साफ हवामें और हो सके तो खुलेमें रखना चाहिये। अगर खाँसी जादे हो तो सूँघनी (inhalations) देनेसे लाभ होता है। अजवाइन सत्त का घोल (एक रत्तलमें ५ ग्रेन) फुहारे से कठमें देना चाहिये। सर्दीकी तरह ही कोथघ्न तथा अन्य प्रकारसे धोना चाहिये। जीर्ण कठप्रदाहमें एक सैकड़ा सिलभर नाइट्रेटका घोल कंठमें लगानेसे तकलीफ मिटती है। तेलमें २ सैकड़ा अजवाइन सत्त मिलाकर लगाना चाहिये।

खाँसीवाले (croupous) कंठ-प्रदाहमें, कंठ, क्लोम और गल पर सौत्रिक उपकलामय तह जमा हो जाती है। लक्षण कंठप्रदाहकी तरह ही हैं। पर इसके साथ अधिकतर साँस-कष्ट सीटी या घरघराहट की आवाजें होती हैं। ४-५ दिनके बाद खाँसते खाँसते सौत्रिक तहें बाहर निकल जाती हैं और तब हालत सुधर जाती है। चिकित्सा कंठप्रदाहकी तरह है। यदि खराब उपकलायें सरलतासे बाहर नहीं निकलें तो नीचे लिखे वामक देकर निकाली जायँ। जैसे २ आउन्स पानीमें २ से ७ ग्रेन तूतिया या २ से ४ ग्रेन टारटर एमेटिकका घोल। गरम सेंक या बफारेसे भी आराम मिलता है।

१४३५. काश (Bronchitis : Bronchial Catarrh)

क्लोम-नलीमें विभिन्न गहराई तक गया हुआ प्रदाह यह है। उग्र रोगमें यह बड़ी क्लोम नलिकाओंमें ही होता है। पर जीर्ण रोगमें साधारण तौर पर छोटी नलिकाओंमें ही अधिक प्रदाह होता है। पूरे क्लोम-वृक्षमें भी यह हो सकता है।

उग्र प्रदाह नाकमें शुरू होकर कंठ और गलमें होकर क्लोम-शाखाओंमें जा सकता है जिससे काश होता है। ठंढसे, धूल या अन्य जलन पैदा करनेवाली चीजोंके सुड़कनेसे सीधे भी काश हो सकता है। या शीतला, खुरपका या सांघातिक सर्दीके बुखार जैसे छुतहे रोगोंके कारण भी हो सकता है। बहुत दिनोंकी साँसकी लगातार गड़बड़ी या फेफड़ेमें रक्तसंवहनकी गड़बड़ीकी वजहसे साधारण तौर पर काश होता है। फेफड़ेमें फुसफुसा-कृमि होनेके कारण भी यह होता है। जीर्ण निमोनियाँ या हृदय अथवा फेफड़ेकी जीर्ण बीमारीसे भी जीर्ण काश हो जाता है।

बहुत छोटे या बूढ़े कमजोर पशु खास तौर पर ग्रहणशील हैं।

बड़ी क्लोम-शाखाओंके उग्र प्रदाहमें जल्दी जल्दी सूखी कष्टकारी खाँसी होती है। स्रावकी वृद्धिके साथ यह ढीली हो जाती है। पीछे स्राव गाढ़ा और कड़ा होता है तब तेज घरघराहट सुनाई पड़ती है। जब स्राव तरल या पतला हो जाता है तब ध्वनि मन्द हो जाती है। जब बड़ी नलियाँ ग्रसित होती हैं तब ध्वनियाँ मोटी और मन्द होती हैं, पर जब छोटी नलियाँ ग्रसित होती हैं तब वह गंभीर और तार (तेज) होती हैं। ग्रसित भाग गहरेमें हुआ तो मन्द स्वर निकलते हैं। कभी कभी तार स्वर पशुके पास खड़े होनेसे ही बिना श्रवण-परीक्षाके सुनाई पड़ते हैं। अनेक रोगियोंकी नाक बहती है। रोगके प्रारंभमें ताप १०४ डिग्री फा० चढ़ जाता है, पर उग्र रोगमें दूसरे या तीसरे दिन उतर जाता है। जीर्ण रोगमें पहले बड़ी नलिकायें ग्रसित होती हैं तब छोटी। बहुधा साँसका कष्ट होता है जो बढ़ जाता है।

प्रारंभिक प्रदाह हल्का रोग है। पर जब छोटी नलिकायें ग्रसित होती हैं तब ताप चढ़ता है और दारुण साँसकष्ट होता है। यह असाध्य लक्षण है।

चिकित्सा : कंठ-प्रदाहकी तरह ही होती है। पशुको आराम मिलना चाहिये। वह अच्छी तरह हवादार घरमें रखा जाय। चारा सरलतासे पचनेवाला और धूलसे मुक्त हो। पानी पूरा दिया जाय। पेट साफ रखा जाय।

कड़ा और गाढ़ा स्राव नरम करनेकी कोशिश हो। इसके लिये स्निग्धकारक लस्सा, कफ-निस्सारक और आक्षेप-निवारक दवायें दी जायँ।

वासक दारुण और जीर्ण दोनों काशके लिये बहुत अच्छा है। पत्तेकी बुकनीमें गुड़ मिलाकर अवलेह जीभके नीचे या दांत पर रक्खा जाय।

बासककी सूखी पत्तीकी बुकनी २ आउन्स प्रति मात्रा दिनमें तीन बार दी जाय। अमोनियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम प्रति मात्रा और पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम कड़े स्राव और कफको ढीला करनेके लिये दिये जायँ।

जैसे कि कंठप्रदाहमें बताया गया है अधिक स्राव और खाँसीके कारण कठिन साँसकष्ट होनेपर वामक देना उपयोगी है।

कोथघ्न सुड़कनेसे भी आराम मिलता है। जब कठिन साँसकष्ट न हो तो हर हालतमें छाती पर गरम सेंक या भफारा दो। गुड़ मिलाकर १ ड्राम कर्पूरका अवलेह स्फूर्तिके लिये खानेको दो।

१४३६. ढोरके छूतका काश

(Infectious Bronchitis : Cattle Influenza)

ढोरको इन्फ्लूएञ्जा आदमी या अधिकतर घोड़ेके इन्फ्लूएञ्जाके बाद हो सकता है। बहुधा स्ट्रेप्टोकोक्सी या पास्च्यूरेला या पूयोत्पादक जीवाणु इस गौण छूतके कारण हैं। कोई कोई इन गौण जीवाणुओंको इस रोगका मुख्य कारण मानते हैं। दूषित चारा और पानी खाने पीने और नाककी चूअनसे भी स्वाभाविक छूत लगती है।

२ से १० दिनकी प्रच्छन्न अवस्थाके बाद यह रोग प्रगट होता है। ताप १०४ से १०६ डिग्री फा० चढ़ता है। भूख कम लगती और दूध घट जाता है। नाकसे पहले पानी फिर रेंट बहती है। आँखें भी ग्रस्त होती हैं। पलकोंमें कीच और सूजन हो सकती हैं। लार बहती, सिर तना रहता, सांसमें कठिनाई और कष्टकी खाँसी होती है। काशकी तरह फेफड़ेकी घरघराहट (rales and ronchii) सुनी जाती है। नाड़ीकी गति प्रति मिनट ७० से ८० और १०० भी हो जाती है। पशु निर्बल हो जाता है। कभी कभी अतिसार होता है। साधारण रोग ८ से १४ दिनमें आराम हो जाता है पर कठिनमें ३ से ४ हफ्ते लग जाते हैं और इसके बाद भी खाँसी बनी रहती है।

चिकित्सा : काशकी तरह हो। कठिन रोग में मौर्फिनकी सूई ¼ ग्रेनसे २ ग्रेन तक दी जाय। दवासे बढ़कर सुश्रुषाका महत्व है। उबालकर शोधे (स्टेरिलाइज्ड) दूधकी अंतस्त्वक्‌-सूई ४० से ६० सी० सी० देनेसे अच्छा लाभ होता है। दूध १० से १५ मिनट उबालकर कपड़ेसे छान लेना चाहिये। पशुको गरम और आराम से हवादार जगहमें रखना चाहिये। कब्ज होनेपर सरल विरेचनसे पेट साफ करना चाहिये।

१४३७. निमोनियाँ (Pneumonia)

फेफड़ेके प्रदाहका नाम निमोनियाँ है। फेफड़ेके इस रोगके कई रूप और नाम हैं। केवल कुछ यहाँ दिये जाते हैं।

क्रूपस या लोबर निमोनियाँ : इस रोगमें फेफड़े संकुल हो (भर) जाते हैं और रक्त-वाहिनियोंमें बहुत तनाव होता है। अल्पकालिक संकुलताके बाद फेफड़े यकृत-तंतुके टुकड़ेसे लाल हो जाते हैं। वह फेफड़े जैसे नहीं रहते। इस अवस्थामें फेफड़ेके वायुकोषोंमें रक्तरस भर जाता है जिससे ग्रसित भागमें वायुके द्वारा रक्तशोधनका कार्य नहीं हो पाता। सबसे छोटी क्लोम-कान्डिकाओंमें भी यह द्रव भर जाता है। इस स्रावका रूप ठोस फाइब्रीन (तन्तुमय पदार्थ) की तरह होता है और इसीसे इसका नाम 'क्रूपस' पड़ा है। २ दिनके बाद फेफड़ेके रुँधे भागका रूप बदलता है। वह लालसे भूरा हो जाता है। घनीभूत पदार्थ कुछ नरम होता है पर ग्रसित भाग यकृतसा ही बना रहता है। इस अवस्थामें श्वेत रक्तकणिकायें प्रवेश कर रुँधे फेफड़ेकी सफाई का प्रयास करती हैं। इसके कुछ बाद "निर्गलन" (रिजोल्यूशन) शुरू होता है। जमा हुआ स्राव धीरे धीरे तरल और आचूषित होता है। जैसे जैसे आचूषण होता है फेफड़ेके तंतु अपना नियत कार्य शुरू करते हैं। अर्थात्‌ निवृत्ति (आराम) अवस्था आती है। बिगड़े रोगमें तरल हुआ पदार्थ आचूषित होनेके बदले पूय हो जाता है जिससे फोड़ा या गैंगरीन हो सकता है।

क्रूपस निमोनियाँसे फेफड़ेमें चकत्ते हो सकते हैं जो एक या दोनों फेफड़ोंको पूरा ढक सकते हैं। जब फेफड़ा ठोस हो जाता है तब काम नहीं करता। इसलिये ग्रसित भाग जितना ही जादे हो कष्ट और भयंकरता उतनी ही जादे होती है।

जब रोग फैलता है तब कोई विशेष जीवाणु इसका कारण हो सकता है। पर जो जीवाणु साधारण तौर पर निश्चेष्ट रहते हैं उन्हें कमजोरी, ठंढ लगने या किसी दूसरी छूतसे बड़ा मौका हाथ लगता है।

आरम्भमें केवल ताप चढ़ता है। धीरे धीरे साँस लेनेमें अधिकाधिक कठिनाई होती है और श्वासकृच्छ्र हो जा सकता है। साँस झटकेसे ली जाती है। गरदन तन जाती है और नथुने फूल उठते हैं। छातीकी बगल उठती मालूम हो सकती है। खाँसी होती है, पर ध्यान खींचने लायक नहीं, और न उसमें काशकी तरह कष्ट होता है। नाक कुछ बहती है। जब फेफड़ेमें गैंगरीन होती है तब नाकसे लाल रंगका स्राव होता है। गैंगरीन बढ़नेपर स्रावसे सड़ाँदकी बदबू आती है। निमोनियाँमें ढोर ग्रसित भागके बल लेटना चाहता है क्योंकि दबावसे आराम मिलता है। आदमीकी निमोनियाँमें एक संकट-काल आता है जो बहुत स्पष्ट है। पर ढोरमें कोई प्रबल या स्पष्ट परिवर्तन नहीं होता। साध्य रोगोंमें ५ वें से ८ वें दिनके भीतर सुधारके परिवर्तन होते हैं। साँसमें सुधार होता है। भूख लौटती है और चेहरेपर साधारण सुधार मालूम होता है। नाकका स्राव बढ़ता और पतला होता है। नाड़ी अच्छी हो जाती है। यह ७ से १० दिनतक बढ़िया होती रहती है। बुरी हालतमें स्राव दुर्गन्धयुक्त होता है, भूखमें कोई सुधार नहीं और तापमान साधारण या उससे नीचे उतर आता है।

रोग शुरू होने पर ३ या ४ दिनके बाद ताड़न-स्वर मन्द या अस्पष्ट होने लगता है। बादके दो तीन दिनमें पूरी तरह मन्द हो जाता है। स्वरका परिवर्तन कुहनीके पीछेसे उरःपंजर के बीच या ऊपरी तीसरी पर्शुका तक मालूम किया जा सकता है। मन्दता ३ से ५ दिनतक बदलती नहीं। इसके बाद मन्दता मिटती और दुन्दुभीस्वर होता है, जो बदलकर साधारण या स्वाभाविक हो जाता है। रोगकी अवस्थाके अनुसार साँसमें भी परिवर्तन होते हैं। पहले फेफड़ेमें पटपट आवाजें (crepitations) होती हैं इसके बाद शीघ्र क्लोमशाखा से काशकी तरह साँस चलती है। याकृतिक अवस्थाके समय ये मिट जाती हैं पर निर्गलनके साथ फिर शुरू होती हैं।

निदान : अचानक तेज बुखार जो कई दिन बना रहता है फिर धीरे धीरे उतरता है। श्रवण और ताड़नके शब्दोंमें परिवर्त्तन, नाकके स्राव और प्रायः दो

सप्ताहमें रोगका आराम हो जाना ये इस रोगके लक्षण हैं। इसका और ब्रोंको-निमोनियाँका भेद जाना जा सकता है। उसमें क्लोमशाखाका प्रदाह रहता और रोग धीरे धीरे बढ़ता है। ढोरोंके संक्रामक प्लूरो-निमोनियाँ और इसमें भेद मानना चाहिये। वह कई सप्ताह ठहरता है।

चिकित्सा : रोगीको आराम दो और जहाँतक हो अच्छी स्वास्थ्यप्रद दशामें रक्खो। रात दिन स्वच्छंद हवा मिलती रहे पर वर्षा ओर ठंढसे हिफाजत हो। रगड़कर मालिश करनेसे फायदा होता है। चारा थोड़ा दिया जाय। कुछ हरी घास और कंदवाले पौधे। स्पष्ट लक्षणवाले रोगमें दवाकी जरूरत नहीं। यदि बुखार खूब तेज हो तो ठंढे पानीसे स्पंज करना, ठंढे पानीका फुहार देना या गुदामें ठंढापानी चढ़ाना होता है कि बुखार उतरे। निमोनियाँकी गैंगरीनमें एक बारमें ५० सी० सी० २ सैकड़ा कारबोलिक घोल फुहारे (atomiser) की सहायतासे सुड़कने से लाभ होता है। ध्यान रहे कि निमोनियांके रोगी को दवा 'जोरसे न पिलायी' जाय।

आदमीकी निमोनियाँमें सल्फापाइरीडिन अर्थात् एम० बी० ६९३ आश्चर्य दिखा रही है। समझा जाता है कि, पशुओंमें भी यह ऐसी ही गुणकारी होगी। जहाँ हो सके यह दी जाय। इसकी सूई भी दी जा सकती है और यही ज़ादे अच्छा है। प्रतिउत्तेजक की मालिश करनी चाहिये।

१४३८. ब्रोंको-निमोनियाँ (Broncho-pneumonia)

ब्रोंको-निमोनियाँ क्रूपस निमोनियाँसे कई बातोंमें भिन्न है। इस रोगमें प्रदाह सारे फेफड़ोंमें फैला रहता है। क्रूपसका असर एक या अधिक बड़े खंडोंमें सीमित होता है पर इसमें कुछ छोटे खंड इधर कुछ उधर आक्रान्त होते हैं। पहले ग्रसित चकत्ते देखनेमें नीलापन लिये लाल होते हैं जिनका झुकाव पीला होनेकी ओर होता है। इसमें क्रूपसकी तरह फाइब्रीनका जमाव नहीं होता। आराम होनेकी हालतमें मेद या चर्बी की विकृति, तरलीकरण और आचूषणके द्वारा फेफड़ेके कोषोंमेंका घना जमाव खतम हो जाता है। प्रतिकूल अवस्थामें इनमें विकृत परिवर्तन और फोड़े हो सकते हैं। अथवा ग्रसित भाग एक तरहके केसीन या छेना पदार्थसे लगभग ठोस बन जाता है। जिस मनुष्यकी ऐसी अवस्था बीती हो उसके फेफड़ेमें पहलेसे वर्तमान क्षयकी छूतके स्थान पर क्षय (यक्ष्मा) शुरू हो

सकता है। ढोरकी भी यह हालत हो सकती है। काशके बाद बहुधा ब्रोंको-निमोनियाँ हो जाता है। भले ही पहले काश नगण्य रहा हो। अन्य अवस्थाओंमें ब्रोंको-निमोनियाके साथ काश होता है। जब यह होता है तब प्रदाह क्लोमकी उपशाखाओंमें वायुकोषों की ओर बढ़ता है। या फेफड़ेमें की क्लोमशाखाएँ, प्रदाह-जनित पदार्थोंसे रुद्ध हो सकती हैं। जिससे फेफड़ेका वह भाग काश नहीं कर पाता और तब प्रदाह वहां पहुँचता है। क्षय या इन्फ्लुएञ्जासे हुई फेफड़ेकी गड़बड़ीमें ब्रोंको-निमोनियाके कारण और उपद्रव हो सकते हैं।

विभिन्न जीवाणुओंकी छूत, जलनवाली वस्तुओंका साँसमें जाना या किसी चुभनेवाली चीजसे फेफड़ेमें प्रत्यक्ष क्षत होनेसे ब्रोंको-निमोनियाँ हो सकता है। ठंड, सर्द हवा, या निर्बलता भी कारण हो सकती है। बात यह है कि जब फेफड़ेकी प्रतिरोध-शक्ति क्षीण हो जाती है तब उसमें सदा रहनेवाले अपनी घातमें चौकस जीवाणुओंके कारण यह रोग हो सकता है।

लक्षण : इसका प्रारम्भ काशके लक्षणोंसे होता है और बहुत बार तो काशके लक्षणकी अतिशयता ही सचमुच होती है। तापमान १०३ से १०५ डिग्री फा० चढ़ जाता है। कठिन रोगमें यह और ऊँचा जा सकता है। साँसके साथ प्रायः हल्की गीली खाँसी होती है। साँसकी कठिनाई शुरू होती है। नाकसे गाढ़ी रेंट निकलती है। ऐसा मालूम होता है कि, पशु बहुत बीमार है। पर क्रूपस निमोनियाँमें जैसी तकलीफ होती है वैसी नहीं मालूम होती।

भूख नहीं रहती। दूध घट या रुक जाता है। रौंथ रुक जाती है। रोगी गरदन तानकर शायद मुँहसे सांस भरता खड़ा रहता है। खाँसी बहुत होती और कष्टदायक भी, और निर्गलन-अवस्थामें या उसके पहले आक्षेपके साथ हो सकती है जिससे पशु क्लान्त हो जाता है। निर्गलन-अवस्थामें नाकसे प्रचुर स्राव होता है, अंतमें थक्के निकल सकते हैं। यह जमा हुआ रक्त-रस है जिसने क्लोम-नलियोंको रूँध रक्खा था। इन थक्कोंकी आकृति नलीमें जमनेके कारण साँचेमें ढली जैसी होती है। निर्गलन से ये ढीले पड़ते हैं और छड़ोंके छोटे छोटे टुकड़ेकी तरह बाहर निकलते हैं।

रोग साधारण तौर पर दो तीन सप्ताहमें निवृत्त हो जाता है। पर यह अनिश्चित लंबे समय तक लगा रह सकता है और बहुधा जीर्ण इन्टरस्टिशल (interstitial) निमोनियाँ हो जा सकता है।

चिकित्सा : चिकित्सा क्रूपस निमोनियाँकी तरह है। अच्छी सुश्रुषा और पूरी हवा जरूरी है। पर उसे वर्षा और ठंढसे बचाया जाय। गुड़में मोदक या अवलेह बनाकर दवा दी जा सकती है कि पशु उसे लेमनजूसकी तरह चूसे। पिलानेकी कोशिश न हो। क्योंकि, बलात पिलानेसे तरल पदार्थ क्लोम होकर दूसरी ओर चला जाता है। लक्षण जैसे ही प्रगट हों उनसे छुटकारा पानेकी कोशिश हो। कंठ और फेफड़ेके प्रदाहके उपशमनके लिये दवाका भाफ (inhalations) देना और छातीकी मालिश लाभदायक है। थोड़ी थोड़ी देर पर थोड़ा थोड़ा चारा दो। रोग निवृत्तिके बाद कमजोरी दूर करनेके लिये अधिक दिनों तक विश्राम चाहिये। कमाऊ बैलों से बहुत धीरे ही काम लेना चाहिये। नहीं तो रोग लौटनेका खतरा रहता है।

कभी कभी निमोनियाँ तेजीसे बढ़ता और कुछ ही दिनोंमें फेफड़ेके बहुत बड़े भागको ढक लेता है। और कभी कभी यह गतिसे बढ़ता और २ या ३ सप्ताहसे जादा ठहर सकता है।

काश और ब्रोंको-निमोनियाँका भेद समझनेमें कठिनाई होती है। ब्रोंको-निमोनियाँ की सूचना ऊँचे तापमानसे मिलती है। इसमें स्वाभाविक रूपसे साँस नहीं चलती। पर ब्रोंको निमोनियाँमें मन्दता फेफड़ेके भिन्न भिन्न भागोंमें सीमाबद्ध रहती है।

एम० बी० ६९३ देनेसे फायदा होना चाहिये।

१४३९. क्रोनिक फाइब्रस इंटरस्टिशल निमोनियाँ (Pulmonary Círrhosis)

इस रोगमें फुसफुसके तंतु ही केवल ग्रसित होते हैं। क्लोमशाखाओं और रक्त वाहनियोंकी दीवालके चारों तरफ मूलकण युक्त सौत्रिक तंतु बढ़ने लगते हैं। ये इतना बढ़ते हैं कि वायुकोष बन्द और विनष्ट हो जायँ। फेफड़ा पहले बढ़ना और फिर सिकुड़ने लगता है। इसकी बनावट घनी और ठोस हो जाती है। पर अग्रसित भाग हवासे असाधारण फूल उठते हैं अर्थात् जिन अग्रसित भागोंमें स्वभावतः हवा नहीं होती, हवा और गैससे फूल उठते हैं। क्लोमशाखाएँ फैल जातीं। उरस्याकला मोटी हो जाती है। जब ह्रास और बढ़ता है तब फुसफुस-पदार्थ टूट जाता है और उसमें खात बनते हैं। पशुओं के फेफड़ेनें ये परिवर्तन

अधिकतर परोपजीवी अर्भकों या एकोनोकोक्स जीवाणुकी थैली (echinococcus cysts) के कारण होते हैं।

लक्षण : आरम्भमें दम घुटनेकी सी तकलीफ होती है। कठिन या देर तक काम करनेमें असमर्थता होती है।

हल्की और पीड़ा भरी खांसी होती है। प्रायः वह भूलसे दमा मान ली जाती है। जीर्ण काशका उपद्रव हो सकता है। इस दशामें खांसी बहुत और सूखी होती है। यदि पशुको विश्राम मिले तो ताप नहीं चढ़ता। प्रायः इस रोगके रोगी पशु विश्राम के अभाव या क्लान्तिसे मर जाते हैं।

चिकित्सा : जो कुछ हो सकता है सुश्रुषा और विश्राम से। औषधि कुछ नहीं है। परोपजीवियोंके मारनेकी कोशिश करनी चाहिये। यदि थैली (cysts-सीस्ट) के कारण रोग है तो उसका (थैलीका) बढ़ना चिकित्सासे नहीं रुक सकता। सल्फा पाइरीडीन या एम० बी० ६९३ भीतरी कोथ निवारण के लिये दो।

१४४०. पार्श्वशूल (Pleurisy)

उरस्याकला या फेफड़ेको आवृत करनेवाली रसयुक्त झिल्ली और उरः खातके भीतरी अस्तरके प्रदाह का नाम पार्श्वशूल या प्लूरिसी है। कभी कभी क्षयके कारण पार्श्वशूल होता है और कभी इसका उल्टा भी। अर्थात् इसके कारण फुसफुसका क्षय होता है।

पहले झिल्लीका प्रदाह होता है जो बढ़कर फेफड़ेके तन्तु और छातीकी दीवालमें पहुँचता है। दूसरी अवस्थामें उरस्याके ऊपर फाइब्रीन निकलती है। यह पतली और सरलतासे साफ हो जानेवाली झिल्ली हो सकती है या काफी मोटी और चिमड़ी। साधारण अवस्थामें उरस्याकी दोनों परतोंके बीच एक चिकनी चीज होती है जिससे उनमें घर्षण कम होता है। ये दोनों परतें जगह जगह मध्यवर्ती फाइब्रीन के द्वारा सट जाती हैं। फाइब्रीन की तहें उरस्या की दोनों परतों के बीच फैली रहती हैं। इन वृद्धियोंके कारण साँसके समय फेफड़ेके काममें बाधा होती है।

कुछ दिनों तक फाइब्रीन जमा होनेके बाद दूसरी घटना यह होती है कि उरस्याकी दरीमें एक द्रव भरता है। यह द्रव प्रायः गँदला, पिलोहाँ फाइब्रीनयुक्त होता है। जिसमें कभी कभी ठोस फाइब्रीनके कतरेभी होते हैं। जो पहले महाप्राचीराकी तरह पृथक करनेवाली दीवालकी तह थी अब पानीकी थैली बन

जाती है। सयाने पशुमें यह पानी कई गैलन हो सकता है। उर और उदर दरीमें दूसरे अवयवोंको बाधा दिये बिना इतना पानी रहनेकी जगह नहीं है। उरस्याका थैला फूलकर अन्य अवयवोंको उनकी जगहसे ठेलता है। फेफड़े और हृदय दब जाते हैं और यकृतभी इसी तरह ठिलता है।

अनुकूल रोगोंमें यही समय स्वाभाविक अवस्था लौटानेकी चेष्टाका होता है। द्रव धीरे धीरे आचूषित होता और संलग्नता छूट जाती है जिससे उरस्या फिर अपनी साधारण कामवाली अवस्थामें आ जाती है और रोग शेष हो जाता है।

यदि आचूषण जल्दी न हो और द्रव उरस्यामें बहुत दिन रह जाय जिससे फेफड़ों पर बहुत दिनोंतक लगातार चाप बना रहे तो पानी निकल जानेके बाद भी फेफड़े फिर फैल नहीं सकते।

इसका असर यह होता है कि, फेफड़ेका ग्रसित भाग सदाके लिये बेकाम हो जाता है। फेफड़के दबे या सिकुड़े रहनेसे छातीकी दीवाल दबकर विकृत और टेढ़ी हो जाती है। इसलिये साँस लेनेके समय ग्रसित भाग फूलता पटकता नहीं है।

उरस्या कलाकी थैलीमें अनाचूषित द्रव रह जाय तो उसमें पीब हो जाती है और वह गैससे फूल जा सकती है। इस तरह गैस या वायु जो वहाँ पैदा होती है वह थैलीके द्रव पर दबाव डालती है। अधिक दबावसे वह थैली फट सकती है। पर पशुओंमें वह बहुत कम होता है।

एक तरहके पार्श्वशूलमें पानी नहीं जमता। इसे सूखा पार्श्वशूल कहते हैं।

कारण : उरस्याकलामें जो जीवाणु घुस जाते हैं उनके कारण पार्श्वशूल होता है। ये छातीकी दीवालसे, क्षतोंसे, या पड़ोसके अवयवोंके प्रदाहसे या रक्तवहोंसे भी इस जगह आ सकते हैं।

उदरमें विजातीय पिंडोंके (१४२४) बारेमें कहा जा चुका है कि, ये पासके अवयवोंमें क्षत कर सकते हैं। नुकीली चीजें रोमन्थाशयमें छेदकर उरस्याकलामें क्षत कर सकती हैं। इससे भी पार्श्वशूल हो सकता है। कभी क्षय (यक्ष्मा) के कारण भी पार्श्वशूल होता है। ऐसी दशामें ढोरमें इसका सूखा रूपही होता है। इन्फ्लुएंजा या कठजिभियासे उरस्या जीवाणुग्रस्त हो सकती है जिससे पार्श्वशूल हो जाता है। बाहर से भोंके गये क्षतसे भी यह हो सकता है।

लक्षण : उग्र पार्श्वशूलमें प्रायः तीव्र वेदना होती है। पशु सुस्त और बेचैन हो जाता है। ताप चढ़ता है और रोगकी तीव्रताके अनुसार १०३ से १०७

डिग्री फा० हो सकता है। साँसका तरीका बदल जाता है। उरकी दीवाल कम फूलती है। पार्श्व और उदरकी पेशियोंको साँसकी क्रियाके लिये श्रम करना होता है। फेफड़े पूरी तरह फैल नहीं सकते इसलिये साँस थोड़ी और तेज चलती है। पेटसे साँस लेना पार्श्वशूलका लक्षण कहा जा सकता है। छाती दबानेसे दर्द होता है जिससे पशु चीख सकता है। करवट फेरनेसे भी दर्द हो सकता है। क्योंकि मुड़नेसे दबाव पड़ता है। हल्की सूखी खाँसी हो सकती है। पानी जमा होनेसे खाँसी चली जाती है पर साँसकी कठिनाई बढ़ती है।

प्रायः ताड़नसे पानीकी सतह जानी जा सकती है। यदि उरःफलकसे कशेरु-कंटक तक खिंची लकीर पर द्रव एक तिहाईसे ऊँचा उठे तो यह खतरनाक है।

पार्श्वशूलको सदा कठिन रोग मानना चाहिये। उग्र पीड़ाकी अवस्थामें पशु दो दिनके भीतर मर सकता है। तीनसे चार सप्ताहमें निवृत्ति हो सकती है। जब रोग अनुकूल होने लगता है तब साँसमें सुधार होता, बुरे लक्षण धीरे धीरे खतम होते हैं और पशु खाना चाहता है।

जीर्ण पार्श्वशूल सूखा भी हो सकता है, चाहे इसमें पानी भी जमा हो सकता है। उग्र आक्रमणके बाद जीर्ण अवस्था आ सकती है अथवा रोग धीरे धीरे बढ़ उग्र रूप ले सकता है। सूखे जीर्ण प्रकारका निदान कठिन है। साँसकी कठिनाई या जरा श्रमसे थकान कुछ आभास देते हैं। खड़े होने, लेटने और झपाटेसे मुड़नेमें कठिनाई होती है। यदि जीर्ण प्रकारमें जल जमा हो तो लक्षण उग्रकी तरह होते हैं, केवल पीड़ा उतनी उग्र नहीं होती।

चिकित्सा : छातीके दर्दमें प्रतिउत्तेजककी मालिशसे आराम मिलता है। ऐंटीफ्लोजिस्टीन जैसी दवाओंका प्रलेप लाभदायक होता है। इन दवाओंमें ग्लिसरीन और गीली चीनी मिट्टी या शुद्ध गीली मिट्टीके साथ कुछ गंधतेल भी रहते हैं। प्रारंभिक अवस्थामें जब उरस्यामें घर्षण होता है तो ठंढे पानीका उपचार लाभ कर सकता है। बादकी अवस्थामें सेंकना उपयोगी है। जमे द्रवका आचूषण बढ़ाने और सुगम करनेके लिये कपूर-तेल मालिश करना लाभकारी है। यदि छाती नरम हो और खाँसी कष्टकारी हो तो अफीम या धतूरा जैसी शामक औषधि दी जाय। अफीमकी मौर्फिनके रूपमें $\frac{1}{4}$ से २ ग्रेनकी मात्रामें अंतस्त्वक् सूई भी दी जा सकती है।

थियोसेनामाइन या एम० बी० ६९३ जैसी दवायें दी जायँ। दस्तावर दवा देना जरूरी है जिससे पाखाना साफ होता रहे।

अध्याय ४७

हृद्‌यके रोग

हृदय कड़ा श्रम करनेवाला अवयव है। भ्रूणमें जब यह बनता है उस समयसे लेकर मरण तक काम करता रहता है। यह विश्राम जानता ही नहीं। इसका विश्राम मृत्यु है। रक्तसंचारके जितना बड़ा काम इसे रुके बिना रात दिन करना होता है। उस हिसाबसे हृदयके रोग थोड़े ही हैं। रोग जितने थोड़े हैं, उनका पता लगाना और चिकित्सा करना उतना ही कठिन है। यह ठीक है कि, रोगके बढ़ने पर मामूली पशुपालक भी कह सकता है कि पशुके हृदयमें कुछ गड़बड़ी है। पर हृदय-रोगकी गंभीरताका निर्णय करना अनेक दिनोंके अनुभवके व्यावहारिक ज्ञानसे हो सकता है। हृदय-रोगकी चिकित्सा सदा विशेष और कठिन विषय रही है।

कुछ साधारण हृदय-रोगोंके बारेमें नीचे लिखा जाता है।

हृदय एक थैलीमें रहता है जिसे हृत्कोष (पेरीकार्डियम) कहते हैं। हृदयके मांसल ढाँचेको हृत्पिंड (मायोकार्डियम) और उसके भीतरी अस्तरको हृदयाभ्यंतर कला (एन्डोकार्डियम) कहा जाता है। इन तीनों भागोंमें प्रदाह हो सकता है, जिसे हृत्कोष-प्रदाह, हृत्पिंड-प्रदाह और हृद्‌याभ्यंतर-प्रदाह, ग्रसित भागोंके अनुसार, कहा जाता है। हृदयकी कपाटिकाओंके रोग भी हो सकते हैं। हृदयके दोनों भागोंमें चार कपाटिकायें हैं। इनके रोगोंको कपाटिका रोग (भेलभ्युलर डिजीज) कहते हैं। वह संकुचित हो सकते हैं चाहे अयोग्य।

पूरे हृदयमें 'अतिवृद्धि' (हाइपरट्रोफी) हो सकती है। इस रोगमें हृदयकी दीवाल मोटी अथवा फैली हो सकती है। फैली दीवालमें खात बड़ा हो जाता है। हृदयके मांसलतन्तु विकृत हो सकते हैं जिससे हृदयका कार्य मन्द हो जाता है। इसे "हृदयकी विकृति" कहते हैं।

ऊपरकी रचना संबन्धी विकृति हुए बिना भी हृदय ठीक तरहसे काम नहीं कर सकता जिससे "क्रियागत रोग" हो जाते हैं।

प्रायः जीवित अवस्थामें हृदयमें कोई गड़बड़ी नहीं मालूम होती पर शवपरीक्षासे एक या अनेक दोषोंका पता चलता है। इसका कारण यह है कि, हृदय को क्षतिपूर्तिकी अद्भुत सामर्थ्य है। यदि हृदयके एक भागमें निर्बलता या दोष है तो उसकी पूर्तिके लिये वह अधिक श्रमसे कार्य करता है। तब हृदय "क्षतिपूर-हृदय" कहा जाता है। क्षतिपूर्ति होनेपर रोगी हृदयका कामभी साधारणवत् होता है। पर किसी तरह यह नहीं हो पाता तो रोगका प्रभाव दिखायी पड़ता है।

हृदयके इस क्षतिपूरक कार्यसे अतिवृद्धि या विकलांगता होती है। हृदयका रक्तसंचारी संस्थान साधारण तौर पर जितना कार्य करने देता है यदि पशुसे उससे जादे कार्य लिया जाय तो लादे गये कार्यको पूरा करनेके लिये हृदयका आकार फैल या बढ़ जाता हैं अर्थात् अतिवर्द्धित हो जाता है और बढ़े हृत्पिंडसे, एक व्यक्तिके लिये जितना करना साधारणतः असंभव था, संभव हो जाता है। इसी तरह मनुष्यको 'कसरती हृदय' होता है। कसरती लोग असाधारण शारीरिक कलाबाजी किया करते हैं। इस अतिरिक्त कार्यको पूरा करनेके लिये हृदयका आकार बड़ा हो जाता है और वह अतिवर्द्धित या विकलांग हो जाना है। जिन पशुओंसे अतिरिक्त कठिन श्रम लिया जाता है उन्हें यही होना है। पर इसका बुरा फल भोगना ही होता है। उमर बढ़ने और पेशियोंकी शक्ति घटनेपर पशु वह काम नहीं कर सकता जो कृत्रिम सामर्थ्यसे करता था। पशु फिर कम काम करने लगे तो उसके वर्द्धित हृदयके बढ़े आकारका कुछ प्रयोजन नहीं रहता। इसलिये उस पर चर्बी छा जाती है जिससे वह साधारण हृदयसे भी बुरा हो जाता है। क्योंकि, उसे निष्क्रय रखनेसे छीजन या विकृति हो जाती है।

ज्वरवाले सभी रोगोंकी, विशेषकर जिनमें जीवाणुका आक्रमण होता है, प्रतिक्रिया हृदयपर होती है। इन्फ्लुएँजा, निमोनियाँ, प्लूरिसी, क्षय, कौथीय ज्वर सभी हृदय पर अतिरिक्त श्रमभार लादते हैं। छातीमेंके, हृदय छोड़, अन्य अवयवोंके विकारका भी उसपर असर होता है। निकटवर्ती होनेके कारण उदरविकार भी हृदय या हृत्कोषको ग्रस सकते हैं। आसपासमें अर्बुद होनेसे उनके चापसे भी हृद्विकार हो सकते हैं। चाप सीधे हृदय या धमनियाँ और लसीका-ग्रन्थियोंपर हो सकता है।

हृदयके रोगोंका पता साधारण श्रमसे भी दम फूलने और धड़कनमें अनियमिततासे चलता है। हृदयकी क्रियाके दोषसे हृदयके आश्रित अंग और पेटका भी शोथ होता है। कई बार जीभका गँदलापन आँख और मसूड़े परकी झिल्लियोंमें रक्त-संकुलता भी होती है। ये कुछ साधारण लक्षण हैं।

१४४१. हृत्कोषप्रदाह (Pericarditis)

हृत्कोषके प्रदाहका नाम हृत्कोषप्रदाह है। ढोरको यह किसी क्षतके कारण हो जाता है। पर हृदयदेशके रोग हृत्कोषमें फैल उसका प्रदाह कर सकते हैं। पार्श्वशूल, निमोनियाँ, क्षय, कोथीय ज्वर सभीके कारण हृत्कोषमें प्रदाह हो सकता है। ढोरमें जालाशयको छेदकर बाहर निकले हुए विजातीय पिंडसे क्षतभी सफल कारण है। क्योंकि जालाशय हृदयके सबसे पास है। ढोरमें एक विकृत इच्छा चाहे जो खानेकी होती है। इनका विचार 'पेटमें विजातीय पिंड' के कारण उदर-विकारमें हो चुका है। पशुकी खायी सूई, पिन आदि जालाशयको छेद हृदयमें क्षत कर सकती है जिससे यह रोग हो जाता है।

हृत्कोष एक दूसरेसे सटी दो परतोंका बना थैला है जिसमें हृदय रहता है। उग्र हृत्कोष प्रदाहमें इसकी दोनों सतह पर फाइब्रीनकी परत जम जाती है। यदि हृदयमें सूई जैसी चीज चुभ जाती है तो उसकी थैली रक्तरसीय पदार्थसे भर जाती है। यह बहुत कुछ सड़नेवाला पदार्थ है। यह हो सकता है कि, हृदयमें प्रवेश करनेवाला विजातीय पिंड उसकी पेशियोंसे पूरी तरह घिर जाता या वह पिंड टूटे जिससे हृत्कोषमें क्षत हो जाय।

लक्षण : क्षतकृत हृत्कोषप्रदाह १ से ६ सप्ताह रहता है। जालाशय पर दबानेसे नरम मालूम होता है। छिछली साँस चलती है जिसमें दर्द होता है। धड़कन बढ़ जाती है। हृत्कोषका घर्षण स्वर सुनाई पड़ता है जो अधिक द्रव जमा होनेपर मिट जा सकता है। पीड़ायुक्त क्षीण खाँसी पायी जा सकती है।

छूत जनित क्षतरहित हृत्कोषप्रदाहका आमतौरसे घातक अंत होता है। क्षतकृत रोग कई तरहका होता है। कभी कभी लक्षण दब जा सकते हैं और कभी आधी दबी हालतमें बने रहते हैं।

चिकित्सा : आहार नियमन करके साधारण स्वास्थ्य बनाये रखना चाहिये। हरा चारा या सूखी घास और चोकर दिये जायँ। ग्रसित भागपर पाट या रुई

ठंढे पानीमें भिगाकर शीतोपचार किया जाय। आरंभिक अवस्थामें सैलीसिलेट देनेसे लाभ हो सकता है। प्रति दिन दो या तीन बार सोडियम सैलीसिलेट ४ ड्रामकी मात्रामें दिया जाय।

आचूषण बढ़ानेके लिये हर्रकी ८ आउन्स सूखी बुकनी दो बार, मुसब्बर १½ आउन्स या मैग० सल्फ० १ रत्तल की मात्रामें विरेचक के लिये दिये जायँ।

१४४२. हृत्पिंडप्रदाह (Myocarditis)

गलघोंटू जैसे रोगोंके कारण पेशियोंका प्रदाह और विकृतिको हृत्पिंडप्रदाह कहते हैं। सांघातिक खुरपकामें यह हो सकता है। इसमें हृदय-दौर्बल्यके लक्षण होते हैं। नाड़ी क्षीण और चंचल हो जाती है। नीलिया हो सकती है। ये सभी लक्षण प्रतिगामी हो सकते हैं। कठिन रोगमें नाड़ी सौत्रिक या अति क्षीण हो जाती है और रुक रुक कर चलती है। हृदयके पक्षाघातसे मृत्यु हो सकती है। प्रारंभिक छूतके ऊपर रोग का दौरा निर्भर करता है। यह साधारण तौर पर घातक है।

चिकित्सा साधारण सुश्रुषा-पद्धतिसे करनी चाहिये। चलना फिरना एक दम मना है। आहार पोषक हो। अर्जुनके उपयोगसे हृदयकी पेशियोंको बल देना चाहिये। संकट टालनेके लिये ⅛ ग्रेन स्ट्रिकनीनकी अंतस्त्वक् सूई दो।

१४४३. कपाटिका-रोग (Valvular disease)

हृदयके अधिकतर रोग इस वर्गके हैं। कपाटिकाएँ रक्त निकलने या भरनेमें अवरोधक हो सकती हैं। या कपाटिकाओंमें ही छिद्र हो सकते हैं। इन दोनों कारणोंसे हृदयकी कार्यकारिता घट जाती है। पर काम पूरा करनेके लिये ग्रसित भागका आकार बढ़ जाता है। वह इसलिये कि, एक तरफ अवरोध या छिद्रसे जो हानि होती है वह बढ़ी हुई थैलीके अतिरिक्त आयतन और शक्तिसे पूरी हो जाय। जबतक साधारण परिमाणमें संचार होता रहता है और भिन्न भिन्न अवयवोंके कार्यमें कोई बाधा नहीं होती तो कपाटिका-दोषकी पूर्ति होती कही जाती है। पर किसी किसी कपाटिका-रोगमें कोई अंग ठीक तरह काम नहीं कर सकते, स्वाभाविक प्रयाससे काम करनेकी तो बात ही क्या, विश्रामकी दशामें भी उनकी कार्यकारितामें बाधा

पहुँचती है। ऐसी हालतमें हृदयके किसी भागकी अति वृद्धि होते हुए भी कपाटिकाके दोष या त्रुटिकी अपूर्ति प्रकट होती है।

जब जरूरतसे कम रक्तका संचार मस्तिष्कमें होता है तब उनींदापन होता है। वाम हृदयकी अलिन्द-निलय कपाटिकाकी असमर्थताके (द्विपत्र कपाटिकाकी असमर्थता) कारण वाम अलिन्दमें रक्त फिर लौट आता है जो फेफड़ेसे आते रक्त-प्रवाहको रोकता है इस कारण फेफड़ेमें निष्क्रिय रक्त संकुलता होती है।

भिन्न भिन्न दोषोंका निदान केवल सतर्क परीक्षणसे हो सकता है। इसके लिये निपुणता आवश्यक है। हृदयकी विभिन्न ध्वनियाँ अपनी रामकहानी अनुभवी कानोंमें कहती हैं। तब दोषोंका पता चल सकता है। यह कठिन कार्य है। किसी निपुणसे इसकी व्यावहारिक शिक्षा लेनी होती है।

यदि किसी कारण हृदयमें गड़बड़ी हो तो पशुको विश्राम देना बुद्धिमानी है। यदि रोग साध्य हुआ तो विश्रामसे छूट जा सकता है। क्षतिपूरक अवस्था लानेके लिये कभी कभी हृदयकी पुष्टई लाभप्रद होती है।

१४४४. हृदयके क्रियागत रोग

(१) हृत्कंप : धड़कन : हौलदिल (Palpitation)

हृत्कपमें हृदय जल्दी जल्दी जोरसे धड़कता है। इसका कारण कोई नाड़ी-दोष (nervous errors) हो सकता है। धड़कन कुछ सेकेन्ड, मिनट, घंटा या दिन-तक होकर शान्त हो जाती है। आक्रमणकालमें हृदयकी धड़कन बढ़ जाती है और कभी कभी कुछ गज दूरसे भी सुनी जा सकती है। नाड़ी निर्बल रहती है और मन्याशिरा फैल जाती और फड़कती है। पशु बहुत चिन्तित सा मालूम होता है। काँपता है। पसीना होता है। आक्रमण शमन होने पर सभी लक्षण मिट जाते हैं।

यदि नाड़ीकी उत्तेजना कुछ देर बनी रहे तो मौर्फिन या अफीम जैसी उपशामक दवा कठिन रोगमें दी जाय। कम कठिन रोगोंमें क्लोरल हाइड्रेट या पोटाश ब्रोमाइड दिया जा सकता है।

१४४५. (२) हृद्मन्दता (Brady Cardia)

इसमें हृदय बहुत मन्दगतिसे कार्य करता है। इसके कारण पशुको कोई कष्ट नहीं होता। कभी कभी किसी कड़ी बीमारीमें हृदयकी क्रियामें बाधा होती है।

और तब उस बीमारीके बाद यह अवस्था होती है जिससे ऐसी हालतोंमें साधारण दशा कुछ देरके बाद पलटती है, यद्यपि हृदयमंदताके समय पशु बहुत सुस्त और उनींदा हो सकता है।

१४४६. हृदयकी धड़कनकी अनियमितता

यह पशुओंको बहुत होती है। पाचनके विकार या प्राणदा नाड़ी पर प्रतिक्रियाकारी विषके आचूषणसे अल्पकालिक अनियमितता हो सकती है। हृदयकी पेशियोंके रोग (हृत्पिंड-प्रदाह इत्यादि) भी इसके कारण हो सकते हैं।

रोगोंके कारण हुई अनियमितता आरंभिक रोगके मिटते ही गायब हो जाती है: पशुके स्वास्थ्य और सामर्थ्यमें बाधा दिये बिना यह अस्थायी या स्थायी रूपमें बनी रह सकती है। पर यदि हृदय कठिनरूपसे अभिभूत हुआ तो अवस्था गंभीर हो सकती है। अतिरिक्त विकासीय या विस्तारी अनियममें जल्दी जल्दी दो या कई धड़कनें होती हैं जिनके बाद देर तक कुछ नहीं होतीं। शरीरश्रमसे यह अनियम बढ़ जाता है। **अर्जुन** जैसी हार्दिक पुष्टई से यह कमसे कम तत्कालके लिये मिट जाती है।

जिन पशुओंको यह हो उनसे सावधानीसे काम लिया जाय।

१४४७. हृदय दौर्बल्य (Cardiac asthenia)

इस रोगमें हृदयपेशियोंकी शक्ति घट जाती है। जब असाधारण श्रमसे यह दशा होती है तब उसे "**सापेक्ष हृदय दौर्बल्य**" कहते हैं और जब जीवनकी साधारण दशामें होता है तब उसे "**निरपेक्ष हृदय दौर्बल्य**" कहते हैं। निरपेक्ष हृदय दौर्बल्य पशु विश्राम करता हो तब भी या हल्के श्रमसे हो सकता है।

जब बहुत कमजोर या मोटे पशुसे या लंबे विश्रामके बाद किसी पशुसे तेज दौड़ने या बोझ खींचनेका अनभ्यस्त श्रम लिया जाता है तब **उग्र हृदय दौर्बल्य** हो सकता है। तब शिरायें अलिन्दमें अधिक रक्त ठेलती हैं पर देहकी पेशियोंके प्रबल संकोचसे धमनीका प्रतिरोध बढ़ जाता है। इससे हृदयकी दुर्बलता होती है। क्योंकि, धमनीके बड़े प्रतिरोधके कारण हृदय उसमें सब रक्त ठेलनेमें समर्थ नहीं भी हो सकता है।

छुतहे रोग, हृदयकी पेशियोंके रोग या विषके प्रभावसे निरपेक्ष-हृदय-दौर्बल्य होता है।

लंबी मेहनतसे हफ्तों या महीनोंमें धीरे धीरे जीर्ण हृदय-दौर्बल्य होता है। यह साधारण तौर पर कपाटिका• (१४४३) हृत्पिंड (१४४२) और हृदयके रोग या हृदयकी ही पेशियोंका रक्त लौटानेवाली हार्दिकी शिराओंके ग्रस्त होनेसे होता है।

अतिरिक्त श्रमसे सुस्थ हृदय भी अयोग्य हो जा सकता है। क्योंकि, हृदयको धमनीके प्रबल प्रतिरोधके विरुद्ध शिराओंका अतिरिक्त रक्त शुद्ध कर बाहर भेजना होता है। जब प्रतिरोध और भी बढ़ जाता है तब हृदयके बाहर भेजे जानेवाले रक्तका परिमाण कम होने लगता है। अतमें धमनीके प्रतिरोधके चाप और हृदयकी पेशियोंके चापका संतुलन हो जाता है। तब हृदयसे रक्त एकदम बाहर नहीं निकलता और हृदय भरा रहता है। सभी निरपेक्ष हृदय-दौर्बल्यमें पूरे विश्राममें भी यह कुछ कुछ होता है। आये रक्तसे बाहर निकाले जानेवाले रक्तका परिमाण कम रहता है। अर्थात् अचलस्थिति (stasis) पैदा होती है।

हृदयके जीर्ण रोगोंमें उक्त स्थितिमें शोथ और जलोदर हो जाता है जो सारी देहमें फैल सकता है। त्रुटिपूर्ण रक्तसंचारसे सिरमें चक्कर और मूर्छा हो सकती है। फौप्फुसी रक्तश्रोत (pulmonary circulation) में बाधा (stasis) होने पर साँसकी गड़बड़ी और कफमें रक्त निकलता है। इसका प्रभाव सभी अंगोंपर हर तरह होता है। आमाशयकी क्रियामें बाधा पहुँच सकती है। यकृत, अग्न्याशय और वृक्कोंपर भी प्रभाव पड़ सकता है। कभी यकृत बढ़ जाता है, फेफड़ेमें शोथ होता है और मूत्रस्राव कम हो जाता है अर्थात् मूत्र कम बनता है।

धड़कन बढ़ जाती है और हृत्कंप होने लगता है और हृदय साधारणतः फैल जाता है।

चिकित्सा : हर प्रकारके हृदय-दौर्बल्यमें पूरे विश्रामके साथ पुष्टिकर आहार और सुन्दर सुश्रुषा जरूरी है। यदि पाचनकी कोई गड़बड़ी है तो लक्षणके अनुसार चिकित्सा हो। कब्ज होने पर रेंड़ीका तेल और मैग० सल्फ० दो, कि मल नरम रहे।

अनेक बार अर्जुनके छालका चूर्ण दिनमें तीन चार बार दो दो आउन्स देनेसे पेशी-संकोचमें स्फूर्ति, कंपमें कमी, और रक्तसंचार बढ़ता है। खिलानेपर

दवाका प्रभाव देरमें होता है। चटपट प्रभावके लिये अंतस्त्वक् में या शिरामें दवाकी सूई देनी चाहिये। स्ट्रोफेनथीन देनेमें कठिनाई है, क्योंकि उसकी अधिक मात्रा पड़ जानेका डर सदा रहता है जिससे मृत्यु हो सकती है। यह जोखिम नहीं उठाना चाहिये। डिजीटैलीनमें भी यही दोष है। डिजीटेलिस खिलाना भी नहीं चाहिये। क्योंकि, रोमन्थाशयमें इसके ग्लूकोसाइड तत्व संधान प्रक्रियाके समय नष्ट हो जा सकते हैं। अर्जुनका क्या होता है इसका अभीतक पता नहीं चला है। इससे कोई नुकसान नहीं होता और विशेपकर मनुष्योंमें यह बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इसलिये इसका प्रयोग होना चाहिये।

पेशी-दौर्वल्यजनित हृदय-दौर्वल्यमें १ से २ ड्रामकी मात्रामें कर्पूर, तेलमें घोलकर उसकी सूई अन्तस्त्वक्में दो।

अध्याय ४८

वृक्कके रोग

१४४८. वृक्क-प्रदाह (Nephritis : Bright's Disease)

यह वृक्कका विष या छूतका रोग है। इसमें पूरा वृक्क या केवल उसकी उत्सिकायें (glomerules) और नलिकायें (tubules) ही ग्रसित हो सकती हैं। प्रदाह चकत्तोंमें हो सकता है या पूरेहीमें। यद्यपि बाहरी चोटसे प्रदाह कमही होता है, फिरभी यदि पशु कुचल जाय या सींगकी चोट खा जाय तो यह हो सकता है। पारद या तारपीन जैसे उत्तापकों की विष-क्रियाके कारण यह हो सकता है। पर सबसे प्रवल कारण माता और गलघोंटू जैसे भयंकर रोग होते हैं।

ठंढ, ठंढी हवा अथवा लू लगनेसे वृक्ककी सजीवता घट जाती है। इसलिये वह जीवाणुओंका शिकार आसानीसे हो जाता है जिससे प्रदाह होता है। फँफूड़ा लगा या बिगड़ा चारा प्रायः वृक्कोंमें खराबी लाता है। इनूफ्लूएंजा और संक्रामक निमोनियाँ कभी कभी उत्पात मचाते हैं।

लक्षण : पेशाबमें अलबुमीन (अंडलाल) होती है जो इसकी साधारण परीक्षा विधिसे देखी जा सकती है। पेशाब घट जाती है। अणुबीक्षणसे देखने पर तलछटमें वहिकःलाके कोष (epithelial cells), खराब निःक्षेप (casts) और श्वेत रक्तकण दिखाई पड़ सकते हैं। इसके साथ कभी कभी वृक्कमें नरमी भी रहती है। पशु कमानकी तरह कमर झुका खड़ा रहता है और बेमनसे चलता है। प्रायः बुखार भी होता है। पेशाब लाल हो जाती है।

कठिन रोगोंमें कई दिनों तक पेशाब नहीं भी हो सकती है। पशुको कभी कभी बहुत पसीना निकलता है।

चिकित्सा : गरम जगहमें विश्राम दिया जाय। श्रम नहीं लिया जाय। नाइट्रोजनरहित आहार जैसे मंड, चोकरकी सानी आदि दी जाय। दिनमें कईबार प्रति मात्रा आधा आउन्स सोडा बाइकार्ब पानीके साथ दिया जा सकता है। दो रत्तल हरी या चार आउन्स सूखी **पुनर्नवा** नित्य दी जाय। यह मूत्रल है।

हल्का दस्तावर दिया जाय जिससे पाखाना होता रहे। कमरमें दर्द हो तो उसपर गरम कंबल डाल दो। कंबल गरम पानीमें भिगा निचोड़ो और इसे क़मरपर लपेट दो और इसके ऊपर सूखा कंबल डालकर ढके रहो। इस उपचारको उष्णार्द्र लपेट (हॉट वेट पैक) कहते हैं।

कठिन रोगोंमें जब पेशाब बनती ही नहीं तो उसका अंत घातक होता है। उचित सुश्रुषासे हल्के रोग आराम हो जाते हैं।

उग्र व्याधि अधिक दिन टिके तो प्रायः जीर्ण हो जाती है। पशुको खिलाने और उससे काम लेनेमें सावधानी रखनेसे वह कुछ दिनों तक उपयोगी बना रह सकता है। पर बुरी तरह बिगड़ा वृक्क सुधर नहीं सकता। लक्षणोंके अनुसार केवल उपशामक ही दिये जायँ। प्रोटीड आहार वर्जित हो। पर रोग तेजीसे बढ़ सकता है और चार पाँच दिनमें मृत्यु हो सकती है।

१४४६. वृक्कमें जीवाणुकी छूत : उत्सिका प्रदाह (Pyelonephritis)

जीवाणुजन्य उत्सिका-प्रदाह ढोरके भयंकर रोगोंमें एक है। यह मुख्यरूपसे प्रसवके बाद गायोंको होता है। पुंगव (बैल) और बछरू बहुत कम ग्रस्त होते हैं।

प्रसवके बाद जीवाणुकी छूत योनिकी राह घुसती है। कभी गर्भयुक्त जरायुके चापसे पेशाब रुकनेके कारण पशुमें जीवाणुकी छूतकी तैयारी हो जाती है।

जीवाणु वस्तिकाके कलापुटकोंमें प्रदाह पैदा करता है। तब प्रदाह आसपासके तंतुओंमें फैलता है। धीरे धीरे मूत्र-तंत्रका निचला भाग ग्रस्त हो जाता है। कभी प्रदाहकी ऊर्ध्वगामी गति होती है और वह नीचेसे ही वृक्कको ग्रसता है।

वृक्कका कलापुटक मोटा हो जाता है। वृक्कतंतु रक्तरससे ओतप्रोत हो जाते हैं। पूय बनती है और गवीनी या मूत्र मोटा हो जाता है।

साधारण तौर पर मुतास या पेशाब करनेकी इच्छा बढ़ जाती है। पेशावमें जोर लगाना होता है जिसमें दर्द होता है। वृक्कदेशमें नरमी होती है। गाढ़ा दूषित सपूय स्राव होता है जो भग और पूँछके नीचे लिश जाता है। भगमें प्रदाहयुक्त ललाई और सूजन हो सकती है। बाहरी घाव हो सकता है। साधारण तौर पर पेशाब गँदली होती है जिसमें अलवुमीन या सफेदी बहुत रहती है। रोग बढ़नेसे यूरेमिया होती है अर्थात् पेशाब रुक जानेके कारण रक्त विपाक्त हो जाता है जिससे पशु क्लान्त हो मर जाता है। यूरेमियाको वृक्क-सन्यास या मूत्रावरोध जनित रक्त की विषमय अवस्था कहते हैं।

कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। शुरूमें भग और उसके भीतर कोथघ्न पानीसे धोना चाहिये। यूरोट्रोपिन १½ ड्रामकी मात्रामें दी जाय। यह रोग आराम बहुत कम होता है। एम० बी० ६९३ जीवाणुके प्रतिकारके लिये दी जाय।

अध्याय ४९

रक्तके रोग

१४५०. रक्ताल्पता और रक्तस्राव (Anæmia and Bleeding)

रक्ताल्पता एक रोगी अवस्था है। इसमें रक्तके हेमोग्लोबिन कम हो जाते हैं। साधारण रक्ताल्पता कई कारणोंसे होती है।

१. **स्रावीय रक्ताल्पता** (Bleeding anæmia) : बहुत जल्दी बहुत परिमाणमें रक्त निकलनेसे उग्र रक्ताल्पता हो सकती है। इस तरह अधिक खून बहने, नकसीर, क्षत, बड़ी रक्तवहाओंका फटना, यकृतका फटना, डिम्बकोष या जरायु से या क्षयमें फेफड़ेसे रक्तस्राव हो तो उग्र स्रावीय रक्ताल्पता हो सकती है।

२. **रंजनीय रक्ताल्पता** (Haemolytic anæmia) : हेमोग्लोबिन (रक्तके लाल रंग) की हानि और रक्तद्रवमें उसके नहीं मिलने से यह होती है। यह विषैले पदार्थोंके कारण हो सकती है। कई वर्गके बोड़ा साँपोंके (Viper) डसने पर हेमोग्लोबिन नष्ट होनेसे मृत्यु हो जाती है।

३. **पोषणीय रक्ताल्पता** (Nutritional anæmia) : पूरा आहार नहीं मिलने अथवा ऐसा पदार्थ खिलानेसे, जिसमें रक्तकी रचना करनेवाले कुछ आवश्यक उपादानोंकी कमी हो, यह होता है। यह कमी प्रोटीड, कार्बोहाइड्रेट, स्नेह, की हो सकती है अथवा लोहा और ताँबा जैसे तत्वोंके नमक या भिटामिनकी। यह आहारके हानिप्रद घटकोंके कारण भी हो सकती है। जमा किये चारेमें फफूँदे या विष हो जानेसे भी पोषणीय रक्ताल्पता हो सकती है।

४. **परोपजीवी रक्ताल्पता** (Parasitic anæmia) : पेट, आँत या फेफड़ेकी कृमियाँ या यकृतीक पितियाके कारण यह हो सकती है। रक्तके परोपजीवी जैसे पीरोप्लाज्म या ट्राइपेनोसोम, फाइलेरिया आदिके कारण भी इस वर्गकी रक्ताल्पता हो सकती है। ये कारण तरह तरह से रक्तको प्रभावित करते हैं। कृमियाँ रक्त चूस कर कमी पैदा कर सकती हैं और विषैले पदार्थ पैदा कर सकती हैं जिससे रक्तके सहज निर्माणमें बाधा होती है। परोपजीवी रक्त नष्ट कर सकते या उसका सार चूस सकते हैं।

परिणाम : बहुत रक्त बहनेसे साँस या रक्तसंचार का काम बन्द हो सकता है। काम बन्द होनेका कारण रक्तचापका मन्द पड़ना और रक्तकणकी कमीसे ऑक्सीजनका अभाव है।

जब रक्तस्राव प्रत्यक्ष रूपसे घातक न हो तो रक्तकी हानि प्रकृति पूरी करती है। तन्तुओंसे द्रव लेकर रक्तका द्रव बढ़ाया जाता है। लाल रक्तकण तेजीसे बनते हैं। और तात्कालिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिये लाल रक्तकणमें की जो थोड़ी रंजक वस्तु (हेमोग्लोबिन) होती है वह रक्तमें डाल दी जाती है। इन सबसे प्रकृति संकटसे पार पानेका उद्योग करती है।

रजनीय रक्ताल्पतामें अनेक रक्तकण नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उसमें भी ऐसी ही क्रिया होती है। पर रक्तकणकी पुनः प्राप्ति अधिक तीव्रगतिसे होती है। क्योंकि, रक्तके कणोंके निर्माणके लिये आवश्यक उपकरण स्रावीय की तरह सबके सब नष्ट नहीं होते।

रक्ताल्पताका देह पर यह परिणाम होता है कि, रक्त संचारण-संस्थानकी ऑक्सीजन आचूषणकी और कारबन-डाइऑक्साइड-निष्कासनकी शक्ति घट जाती है। इन दोनोंके कारण क्षतिपूर्तिके लिये नाड़ीकी गति (pulse rate) और साँसकी लंबाई बढ़ जाती है। इसी कारण पेशियोंके श्रमसे टूटे तन्तुओंकी सफाई रक्त पूरी तरह नहीं कर सकता। इसलिये विष-पदार्थ पेशियोंमें जमा हो जाते हैं और अस्वाभाविक थकान पैदा करते हैं।

जब किसी पशुकी अतिशय रक्त बहनेसे मृत्यु होती है तो उसके सभी अवयव विशेषकर फेफड़े अेक दम पीले पड़ जाते हैं। उनमें जरा भी रक्त नहीं रहता। हृदय और बड़ी धमनियाँ खाली हो जाती हैं और उनमें जहाँ तहाँ थोड़ा सा जमा खून ही रहता है। जीर्ण रक्ताल्पतामें अवयवोंमें पूरा खून रहता तो है पर वह पीला और पनीला होता हैं और बहुत कम थक्का होता है। कठिन जीर्ण रक्ताल्पतामें मुख्य अंगोको शोथ सदा होती है।

लक्षण : उग्र रक्त-स्रावमें, रक्ताल्पता बड़ी तेजीसे बढ़ती और खूनकी हानिके अनुपातमें दुर्बलता, चक्कर, पसीना और चालमें डगमगाहट होती हैं। श्लैष्मिक कला पीली हो जाती है। नाड़ी तेज, छोटी और कठोर हो जाती है फिर पीछे नरम हो जाती और उसका तनाव कम हो जाता है। साँसमें कठिनाई होती है और शाखायें ठंढी हो जाती हैं। और उनकी पेशियोंमें आक्षेप होता है अर्थात् उनकी नसें खिंचती हैं। बराबर खूनकी कमीसे पशु बेहोश हो जाता है और आक्षेपके साथ मर जाता है।

जीर्ण रक्ताल्पतामें पीलापन होता है जो खासकर पलक और आँखके कोटरमें दिखायी पड़ता है। सुस्ती और अनमनापन होता है और ज्यों ज्यों रोग बढ़ता है यह भी बढ़ता है। थोड़ी मेहनतसे भी नाड़ी तेज हो जाती है। भूख नहीं लगती, साँस तेज चलती है। रक्ताल्पताके बढ़नेसे पेट छाती और गले पर शोथ होता है। इसके बाद मृत्यु आती है।

रक्तकी अणुवीक्षण परीक्षा और गिनतीसे रक्ताल्पताकी अवस्था और प्रकारके बारेमें बहुत बातें मालूम हो सकती हैं।

रक्तस्रावांतर उग्र रक्ताल्पता उतनी भयंकर नहीं है, यदि सतर्कता रखी जाय। यदि अधिक रक्त नहीं बहा है तो उचित सुश्रुषा और आहारसे स्वाभाविक अवस्था फिर लौट सकती है। यह माना जाता है कि, बाहरी स्रावसे यदि ५० सैकड़ा या अधिक रक्त निकल जाय तो अवस्था घातक होती है। गायको देहकी तौलका प्रायः $\frac{1}{13}$ रक्त होता है जो लगभग ७'७ सैकड़ा है। अच्छी तरह खायी पीयी ५०० रत्तल गायमें यह लगभग ४ गैलनके बराबर होता है इससे इसका अंदाज लग सकता है कि गायको मृत्यु-मुखमें ठेलनेके लिये कितना खून बहा। अंतस्रावी रक्ताल्पता धीरे धीरे होती है। इसलिये उसमें ८० सैकड़ा रक्त बह जाने पर भी पशु जीता रह सकता है। यदि शोथ या लाल-रक्तकण बनानेकी अस्थिमज्जाकी शक्ति-क्षीणताने बढ़कर उपद्रव नहीं किये तो **जीर्ण रक्ताल्पता** साध्य है।

रक्तस्रावकी चिकित्सा : हर संभव उपायसे रक्तस्राव रोका जाय। यदि वह बाहरी है तो समय खोये बिना उचित स्थान पर बंधन लगाया जाय। रक्तकी थक्का बननेकी शक्ति, दूध जैसे अलबुमिनयुक्त द्रवोंकी सूई क्षत स्थानपर लगाकर, बढ़ायी जा सकती है। थक्का बनना बढ़ानेके लिये $\frac{1}{2}$ आउन्स कैलशियम ग्लूकोनेट मुँह या गुदासे दिया जाय। फिटकिरी और तारपीन जैसी रक्तस्रावरोधक दवाएँ पिलायी जायँ।

यदि बहुत द्रव बह गया हो तो उसकी तात्कालिक पूर्ति करना आवश्यक है। इसके लिये नॉरमल सैलाइनकी अंतश्शिरा सूई दी जाय। इसमें एक पाइन्ट जलमें ९० ग्रेन नमक रहता है और इसमें ७ सैकड़ा (एक पाइन्टमें ६१२ ग्रेन) बबूलका गोंद मिलाना चाहिये, जिससे कि, सैलाइनमें कोलायड ओसमोटिक (Colloid Osmotic) चाप हो जाय जैसा कि रक्तमें होता है। इस कामके लिये सैलाइनके साथ बबूलका लसा या लेई बनाओ और फिर उसे पानी मिलाकर धीरे धीरे पतला करो कि थक्का न रहे। फिर दुहरे कपड़ेसे छान कर उबालो और ठंढा कर काममें लाओ। ५ से ७ पाइन्ट सैलाइन चढ़ानेसे तात्कालिक आवश्यकता पूरी हो सकती है और यदि ७० सैकड़ा भी रक्त बह गया हो तो जान बचायी जा सकती है। फाइब्रीन निकाला गरम खून ८० सी० सी० पशु-देहके विभिन्न भागोंमें बार बार अंतस्त्वक् सूईके द्वारा दिया जा सकता है। यह कुल ३ रत्तल तक दिया जा सकता है। हर सूई या इन्जेकशनके बाद मालिश करके द्रव फैला दिया जाय। —(हुटीरा)

रक्तस्रावके धक्केसे बचनेके बाद स्वादिष्ट पुष्टिकर भोजन, दाना, सूखी घास, मंड आदि दी जानी चाहिये। दूध देना अच्छा है। खाना थोड़ी मात्रामें बार बार दिया जाय।

रक्ताल्पताकी चिकित्सा : निरेन्द्रिय लवणके रूपमें लोहा, जैसे फेरस सल्फेट २ ड्रामकी मात्रामें दिया जाय। थोड़ासा कौपर एसीटेट या लैकटेट लाभदायक है। दहीमें ताँबा डालो। जब दहीके लैकटिक एसिडसे ताँबा घुलता है तब वह नीला हो जाता है। यह दिया जा सकता है। दो ग्रेनकी मात्रामें आर्सेनियस एसिड या संखिया रक्तकण बननेमें बड़ा सहायक होता है।

अध्याय ५०

मस्तिष्कके रोग

१४५१. मस्तिष्काघात (Concussion of the brain)

गिरने, टकराने, ठोकर मारेजाने या कुचले जानेसे यदि पशुके सिरमें जोरकी चोट लगे तो भले ही खोपड़ी न फूटे पर मस्तिष्क घायल हो सकता है।

पशु तुरत बेहोश हो जाता है। और उसकी सभी पेशियाँ ढीली हो जाती हैं। आघातका असर कुछ देरके बाद दूर हो जा सकता है और तब पशु उठ खड़ा हो इस तरह चल फिर सकता है मानो कुछ हुआ ही नहीं। यह जरासी चोटसे हो सकता है। पर कड़ा धक्का या आघात लगने पर पशुको होश आ जाय तब भी खड़ा होनेमें असमर्थ हो सकता है और गति-नियमनकी शक्ति खो सकता है। अच्छी सुश्रुषासे कुछ समयके बाद ये दोष दूर हो सकते हैं और वह आराम हो जा सकता है। पर बहुत कठिन आघातसे होश नहीं होता और यदि हो भी जाय तो आक्षेपके दौरे आते हैं जिससे मृत्यु हो जाती है अथवा कुछ पेशियोंका स्थायी पक्षाघात हो जाता है। मस्तिष्ककी चोटका एक लक्षण वमन है। यह ऊपरकी सभी अवस्थाओंमें हो सकती है।

चिकित्सा : पूरा विश्राम दिया जाय। अंतस्त्वक् सूई से कुछ स्फूर्ति-दायक दवायें दी जायँ। यदि कोई घाव हों तो उनकी मरहम-पट्टी हो और यदि हड्डी टूटी हो तो उसका उपाय हो। जहाँतक हो छेड़छाड़ न की जाय।

१४५२. मस्तिष्ककी संकुलता : मस्तिष्कका रक्ताधिक्य

(Congestion of the brain : Hyperæmia of the brain)

संकुलता सक्रिय या निष्क्रिय हो सकती है। रक्तस्रोतमें जीवाणु-क्रिया, रासायनिक क्रिया, विष, या परोपजीवियोंके द्वारा अनेक कारणोंसे सक्रिय संकुलता हो सकती है।

निष्क्रिय संकुलताका कारण मस्तिष्कसे शिराके रक्तके बहिःप्रवाहका अवरोध हो सकता है। सिर या गर्दनमें कसी रस्सी या सिर और गर्दन की शिराओं पर किसी तरह के दबावसे यह हो सकता है।

सक्रिय संकुलतामें आँखे चमकीली हो जाती हैं और पुतली फैल जाती है। सिर जादा गरम मालूम होता है। नाड़ी तेज हो जाती है और उसी तरह साँस भी। पशु बेचैन और क्रोधी हो जाता है। निष्क्रिय संकुलतामें थकान और नीलिया हो जाती हैं। नाड़ी हल्की और तेज हो जाती है।

निदान : भेदसूचक निदानसे सभी छुतहे रोग, और मस्तिष्कके लक्षण उभाड़नेवाली मस्तिष्ककी प्रदाही अवस्था छोड़ देनी चाहिये। मस्तिष्कके लक्षण पैदा करनेवाले कुछ अंत्रविकार भी छोड़ दिये जायँ।

चिकित्सा : आवश्यक हो तो शिरा-छेदन करके रक्त निकालना चाहिये जिससे संकुलता मिटे। सिर पर ठंडक और देह पर गर्मी देनी चाहिये जिससे मस्तिष्कसे रक्त बह जाय। सरल विरेचन दिये जायँ। निष्क्रिय संकुलतामें शिरापर कहाँ दबाव है यह खोज उसे हटाना चाहिये। निष्क्रिय संकुलता हृदयके दोष या दौर्वल्यसे भी हो सकती है। इसलिये हृदयमें स्फूर्ति देनेकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। $\frac{1}{8}$ ग्रेनकी मात्रामें स्ट्रिकनीन और कपूर मिश्रित तेलकी सूई दी जाय। कपूर-तेल की मात्रा :—

कपूर	...	५ ड्राम
तेल	...	३ आउन्स

$\frac{1}{2}$ से १ आउन्स प्रति सूई।

१४५३. लू लगना (Sun stroke : Heat stroke)

इस रोगका सरोकार अत्यधिक ताप और कड़ी मेहनतसे है। खेतमें कमानेवाले बैलों या रेलगाड़ीके डब्बोंमें, जहाँ भीड़ और ऊँचा ताप दोनो हैं, भरे पशुओंको यह रोग हो सकता है।

लक्षण : थकान, सुस्ती, मरियल चाल और लड़खड़ाना इसके लक्षण होते हैं। पसीना हो सकता है। साँस तेज चलती है जिसमें श्रम होता है। तापमान बहुत ऊँचा चढ़ता है—१०७ से ११२ डिग्री फा० या उससे भी जादे। कँपकँपी होती है इसके बाद आक्षेप और सर्वांगीन अवसन्नता और अंतमें मृत्यु।

चिकित्सा : पशुको ठंडी जगहमें हटा देना चाहिये। सिर और देहपर शीतल जल छोड़ना या शीतल स्पंज करना चाहिये। सिरका शीतोपचार (कोल्ड कम्प्रेस) हो।

रौंथ समाप्त होनेके पहले बैलोंसे काम लेनेपर उन्हें इसकी ग्रहणशीलता हो जाती है। यह नहीं करना चाहिये, खासकर अधिक तापमें काम करना हो तो। दोपहरको जब गर्मी बहुत जादे हो तो विश्राम और कई बार पीनेको पानी देना चाहिये।

१४५४. गर्दन-तोड़ (Meningitis)

मस्तिष्क और सुषुम्नाकांडकी आवरणी कलाके प्रदाहका नाम गर्दन-तोड़ है। मस्तिष्क-पदार्थ भी प्रदाहित और ग्रसित हो सकता है। पर इन प्रदाहोंके लक्षण एक दूसरेसे इतने सम्बन्धित हैं कि, जीवाणुकी क्रियासे ग्रसित मस्तिष्कावरणी और मस्तिष्क पदार्थके प्रदाहोंके भेद और नामका विचार हम अलगअलग नहीं करेंगे। वह हमारे कामका भी नहीं है।

गर्दनतोड़ जीवाणुकी क्रिया और दूरके अंगोंमें निमोनियाँ या क्षय आदिकी छूतके कारण होता है। पूयकारी जीवाणुकी छूत भी एक कारण होती है जैसे कि, क्षयरोगके जीवाणुकी। खुरकी ठोकर या सींगकी चोटसे खोपड़ी फटनेपर उसमें पूयकारी जीवाणु सीधे पहुँच कर गर्दनतोड़के कारण हो सकते हैं।

छूतवाले जीवाणुओंके उत्तापक प्रभावसे मस्तिष्कको संकुलता हो सकती है, जिससे रक्तरस जमा होकर मस्तिष्क-पदार्थ पर दबाव डालता है। ये प्रदाह और खोपड़ीके

अंदरके दबाव नाड़ीकोषों (nervc cells) के साधारण काममें वाधा देते हैं। इससे मस्तिष्कके विकार प्रगट होते हैं।

लक्षण : पहला लक्षण बेचैनी और उत्तेजना है। पशु एकाएक चंचल हो जाता है। सिर धुनता है, पूँछ डुलाता और इस बगलसे उस बगल और उस बगलसे इस बगल झुकते झुकते जमीन पर गिर पड़ता है। तब अचेतनता जादे होती है। आदतके मुताबिक वह पुकार नहीं सुनता। थोड़ी देरमें ऊँघ बढ़ती है। खोपड़ीमें कभी कभी स्पर्शचेतना अधिक हो जाती। आँखकी पेशियां फड़कती हैं। गरदन अकड़ जाती है। बुखार बना रहता है। भूख मिट जाती है।

अचेतनता, आँखका चढ़ना, पुतलीका संकोच और गरदनकी अकड़न ये निदानके जबर्दस्त मुद्दे हैं। खोपड़ीकी नाड़ियोंमें पक्षाघात होता है। पशुमें उग्र गर्दनतोड़ आधसे दो दिन तक ठहर सकता है। इसका क्षयरोगजन्य रूप साधारण तौर पर अप्रबल होता है। पर इसमें भी मस्तिष्क-विकार एकाएक पैदा हो जा सकते हैं।

कमर पर छेदनसे मस्तिष्कसुषुम्नीय द्रव निकाल अणुवीक्षण-परीक्षा करनेसे ठीक ठीक निदानमें सहायता मिलती है।

गरदन तोड़के सभी रूप जीवनके लिये सांघातिक हैं। यदि सभी लक्षण उपस्थित हों और नहीं कमें तथा पाँच दिन या जादे भी रहें तो आराम होनेकी संभावना बहुत कम रहती है।

चिकित्सा : सिर या सारी देहपर ५ से १० मिनट पानी की धार छोड़ना लाभप्रद है। पोटाशियम आयोडाइड २ से ३ ड्राम पुनराचूषण बढ़ाने के लिये दे सकते हैं। गरदन और जाँघ पर मालिशका तेल मलना चाहिये। मनुष्यको गरदनतोड़ होने पर कटि-छेदन कर अतिरिक्त द्रव बहा मस्तिष्कका चाप कम किया जाता है। पशुमें यह क्रिया इतनी सफल नहीं होती। जिसे अभ्यास हो वह इसे अजमा सकता है। एम० बी० ६९३ मनुष्यके गरदनतोड़में अनमोल सिद्ध हुई है। ढोरके गरदनतोड़में भी इसे उतना ही गुणद सिद्ध होना चाहिये। अंतस्त्वक्-सूईके लायक एम० बी० ६९३ को तर्जीह देनी चाहिये। छटपटी जादे हो तो क्लोरल हाइड्रेटकी अंतश्शिरासूई दी जाय। यह १०० सी० सी० तुरतके उबाले पानीमें १० ग्रेन रहे और गुनगुनी हालतमें सूई पड़े।

पाखाना कराते रहना चाहिये क्योंकि यह रोग होते ही वह प्रायः नहीं होता। बस्ति (एनेमा), मैग० सल्फ० या रेड़ीके तेलका व्यवहार हो। अचेत पशुको मुँहसे

कुछ नहीं दिया जाय। पशुको खुला छोड़ना चाहिये। बंधनसे उत्तेजना अधिक होती है। किसी घेरेमें छप्परके नीचे या छायामें रखना सबसे अच्छा होगा।

पशुके रोगमुक्त होनेके बाद हफ्तों उसकी सुश्रुषा सावधानीसे की जाय तब उसे काम दिया जाय। गरदननोड़ (मेनिन्जाइटिस) छूतका रोग है। इसलिये रोगी पशुको सुस्थोंसे अलग कर देना और उसके तमाम स्राव आदि जला देना चाहिये कि, रोग फैलने न पावे।

१४५५. दुग्धज्वर : प्रसवकालीन मृदु पक्षाघात : चूर्णाल्पता
(Milk Fever : Parturient Paresis : Parturient Hypocalcaemia)

गाय और बकरियोंका यह एक विचित्र रोग है। उसमें प्रसवके तुरत बाद आंशिक या पूरी अचेतता, पिछले भागका और कभी कभी और भागोंका भी अर्धांग (पक्षाघात) हो जाता है। यह रोग वास्तवमें ज्वर नहीं है क्योंकि, ज्वरके लक्षण नहीं होते। प्रसवकाल या उसके पहले भी यह होता है।

अधिकांशमें प्रसवके ८ घटेके भीतर ही गाय पर इसका आक्रमण हो जाता है। कुछ ग्रहणशील गायोंको दुधार अवस्थामें किसी समय या बिसुकने पर भी यह रोग हो जाता है। उत्तेजना, बेअंदाज मेहनत और थकानका भी कुछ हाथ इस रोगके बुलानेमें होता है। रेलसे भेजी जानेवाली सद्यः प्रसूत गायें इसकी ग्रहणशील हो जाती हैं। सबसे जादे ग्रहणशील उमर ५ से १० वर्षके भीतर है। बछिया (कलोर) और दूसरे ब्यानकी गायें कम ग्रहणशील हैं।

यह मानी और जानी बात है कि, खूब पोषक आहार पानेवाली बहुत दुधार गायें जादे ग्रहणशील हैं। खूब अच्छी खुराक पानेवाली प्रसित गायोंके आहारमें पोषणकी कोई कमी नहीं रहती। अनुपातके अनुसार भिटामिन और खनिजवाला समतुल चारा भरपेट खानेवाली गाय इस रोगका शिकार हो जाती है।

प्रसवके बाद कमसे कम चार सप्ताह तक दुग्ध-ज्वर नहीं भी हो सकता है। देरसे होनेवाले रोग प्रायः हल्के होते हैं।

प्रसवके बाद थन पूरी तरह खाली करना इसका एक सहायक कारण मालूम होता है। ग्रहणशील गायको हर प्रसवके बाद यह रोग होनेकी संभावना रहती है।

कारण : यद्यपि स्पष्टरूपसे पूरी तरह कारणका निर्णय नहीं हो सका है फिर भी यह सिद्ध हो चुका है कि, इस समय रक्तमें कैलशियमकी कमी मुख्य कारण है। यह चूर्णाल्पता या कैलशियमकी कमी है। पर यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है कि प्रसवकालमें सुपोषित गायको क्यों चूर्णाल्पता हो जाती है। यह कहा गया है कि अन्य कारण भी जरूर हैं। उनमें एक परिचुल्लिका-ग्रन्थिके काममें गड़बड़ी है। यह प्रसिद्ध है कि, चूनेके प्रसादपाकका नियंत्रण करनेमें यह ग्रन्थि महत्वकी है। यद्यपि परिचुल्लिकाके कार्यमें युक्तिकृत (कृत्रिम) बाधा देनेसे प्रसव कालका **मृदु पक्षाघात** अर्थात् पेशीका आंशिक पक्षाघात नहीं हो सका, फिर भी इसी तरहके किसी प्रभावकी क्रिया जरूर होती है। तीनसे चार गैलन दूध बननेके लिये रक्तमें चूनेकी कमीके कारण इस रोगमें यह होता है ऐसा कहा नहीं जा सकता। यदि ऐसी बात होती तो बहुत दूध देनेवाली गायोंको हर समय यह रोग हो सकता पर ऐसा नहीं होता। न तो सभी दुधार और न ग्रहणशीलोंको दुधार समयमें यह रोग होता है।

लक्षण : पशु पहले तरह तरहका उच्छृंखल आचरण करता है। उसकी गतिविधि बराबर रंभित (रंभाती) और उत्तेजित रहती है। कभी पेशियोंकी, विशेषकर सिर और गर्दनकी पेशियोंकी फड़कन हो सकती है। थोड़ी देरमें पेशियोंकी दुर्बलता देखी जा सकती है। पिछले पैर स्थिर नहीं रहते। मृदु पक्षाघात आरम्भ होता है और गाय गिर पड़ती है। वह खड़े होनेके लिये छटपटा सकती है। पर असफल होने पर शान्त हो जाती है। थोड़ी देरके बाद वह चेतनता पूरी तरह खो देती है और इस तरह पड़ रहती है मानो गहरी नींदमें हो। बाहरी उत्तेजना का उस पर प्रभाव नहीं होता। नेत्रकी स्वच्छ मन्डलीय प्रतिसंक्रमित क्रिया और नहीं होती। कभी कभी आँखें बन्द रहती हैं। पुतलियाँ फैल जाती हैं। लार बहने लगती है। साँस गहरी चलती है। नाड़ी की गति तेज होकर ७०, ९०, १२० या और जादे भी हो जाती है। पहले ताप चढ़ता है पीछे ९५ डिग्री फा० के लगभग उतर आता है। यह अवस्था कुछ घंटोंमें ही हो जा सकती है। यह लगभग एक दिन तक ऐसी ही चलती है। साध्य रोग रहा तो गायको फिर चेतना लौट आती है और धीरे धीरे अपने सभी अंगोंपर नियंत्रण करना शुरू कर देती है। और खड़ी हो जाती है। निर्बलता कुछ समय तक एक दिनसे हफ्ते भर ठहर सकती है। रोगकी पुनरावृत्ति भी हो सकती है। पर बहुत कम होती है।

असाध्य रोगमें पशु साँस बन्द होनेसे अचेतावस्थामें ही मर जाते हैं। गिरनेके समय उनके सिरमें चोट लगनेसे मस्तिष्काघात हो सकता है। असावधान परिचारक दवा पिलानेकी कोशिशमें उसे साँसकी नलीमें डाल दे सकते हैं जिससे निमोनियाँके कारण पशु मर सकता है।

चिकित्सा : गिरने के समय चोट बचायी जाय। गायको गोहालमें पूरी जगह देनी चाहिये, जिससे कि उसकी सँभाल की जा सके। गायको पुआलके तकियोंके सहारे लिटाना चाहिये। यदि उसे करवट लेटने दिया गया तो पेट फूलना ध्रुब है। इससे महाप्राचीरा और उरःपंजरके अवयवों पर दबाव पड़नेके कारण दम घुटनेसे प्राणका संकट हो सकता है। आज एकही सफल औषधि इसकी है जो ग्रेगकी चलायी हुई है। वह कैलशियम ग्लूकोनेट और बोरिक एसिडकी अन्तस्त्वक् सूई है। कैलशियम ग्लूकोनेट प्रति १०० रत्तल देहकी तौलके लिये १½ ड्राम दी जाती है। पाँच सौ रत्तलके पशुके लिये :

कैलशियम ग्लूकोनेट	...	१ आउन्स
बोरिक एसिड	...	१½ ड्राम
पानी	...	६ से ७ आउन्स।
		(प्रायः २०० सी० सी०)

यह मिश्रण कुछ मिनट तक उबाला जाता है कि, पूरी तरह घुलमिल जाय। कैलशियम ग्लूकोनेटकी अन्तश्शिरा सूई से जादूकी तरह फायदा होता है। पर इसका खतरा भी खास है जिससे किसी किसी हालतमें मृत्यु भी हो सकती है। इसलिये अन्तस्त्वक् मार्ग ही चुनना चाहिये। जब यात्रा आदिमें जल्दबाजीकी जरूरत हो तो कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेटसे वह काम हो सकता है। पर अंतस्त्वक् सूई पर भरोसा करना निरापद है।

चूर्णाल्पताका (हाइपोकैलशीमिया) निश्चय होनेके पूर्व यह चाल थी कि, थनको हवासे फुला देते थे। थनमें चूचीकी राह साफ हवा भरी जाती थी। किसी रबरकी नलीमें एक भोथरी सूई लगायी जाती थी। इस नलीको हवाके पंपसे जोड़ते थे जिसमें रूईका छन्ना (फिल्टर) लगा रहता था। इस तरह यंत्र तैयार होता था। छन्ना धातुके डन्डेकी तरह होता है जिसमें हवाके आनेजानेके द्वार पर एक नली रहती है। डन्डा दो खंडोंका होता है। इसके भीतर दो छलनी चकत्तियोंके बीच

शोधित रुई भरी रहती है। पंप, नली, और सूई सभी को उपयोगके पहले शुद्ध (स्टेरिलाइज्ड) कर लेना चाहिये। भोथरी सूई की जगह दूधकी हंस-नली (साइफन ट्यूब) से काम अधिक अच्छा होता है।

इस चिकित्सामें चूचीकी राह थनमें पंपसे हवा भरते हैं। जब एक भाग पूरी तरह फैल जाता है तब दूसरे भागमें भरते हैं। इसी तरह थनके चारों भागोंमें हवा भरी जाती है। यदि किसी चूचीमें छेद न हो अथवा थनके किसी भागमें स्तनप्रदाह हो तो उस चूची या भागको छोड़ देना चाहिये। हवा भरनेके बाद गाय स्वच्छन्द छोड़ दी जाय। चूची बाँध कर हवाका निकलना रोकनेकी जरूरत नही। यह नहीं किया जाय। यदि थन पचक कर पहलेकी तरह हो जाय और गायको होश नहीं आवे तो दुबारा हवा भरी जाय।

इस विधिका आधार अभी अनुभवही मालूम होता है। इसका आविष्कार थनमें पोटाशियम आयोडाइडकी सूई की सफलतासे हुआ। इसका अद्भुत प्रभाव पड़ा। कुछ अनुमानों या कल्पनाओंके आधारपर यह किया गया था जिसकी चर्चामें हमें नहीं पड़ना है। इसके बाद यह देखा गया कि थनमें किसी द्रवकी सूई लगानेसे आराम हो जाता है। इसके बाद हवा भरनेकी विधि आयी जो अभी हाल तक प्रचलित थी। पर अब यह पता चला है कि, उपयुक्त कैलशियम लवण (कैलशियम साल्ट) देनेसे वही परिणाम होता है। और इसीलिये कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेटकी सूई अब उत्कृष्ट विधि हो गयी है। यह देखा गया कि, हवा भरनेसे रक्तका चूना या कैलशियम बढ़ता है। थनका कैलशियम लवण फिरसे रक्तमें आचूषित हो गया। प्रसवके समय पेउसीकी रचनाके लिये थनमें बहुत कैलशियम रहता है। हवा भरनेसे वह रक्तमें लौट जाता है। इसके बाद सीधे तौर पर कैलशियम देनेकी विधि चली। इसके लिये अंतस्त्वक्-राहको तर्जीह दी गयी।

इन्हीं युक्तियों के आधार पर यह कहा जाता है कि, प्रसवके बाद तुरत दुहकर थन खाली नहीं किया जाय। एक बारमें थोड़ा ही जैसे कि, १ या २ रत्तल दुहा जाय। पक्षाघात-वाली गायसे धीरे धीरे थोड़ी पेउसी दुही जाय। बछरूको थोड़ी पेउसी और अन्य गायोंका अतिरिक्त दूध देकर पाला जाय।

किसी समय दुग्ध-ज्वर भंयकर रोग था। मृत्युसंख्या ७५ सैकड़ा या उससे जादे थी। अब मृत्यु परिमाण नगण्य है और पशुपालक यह जानते हैं कि क्या करना चाहिये। यह यूरोप और अमेरिकाके अधिक दुधार गायोंके बारेमें है।

भारतमें हम अधिक दुधार बनानेको लालायित हैं। यद्यपि आज यह रोग बहुत नहीं है, पर तौभी गायकी दूध देनेकी शक्ति बढ़ानेके उद्योगी पशुपालक यह जान लें कि दुग्ध-ज्वर और प्रसवकालका मृदु पक्षाघात यदि गायको हो जाय तो उसे कैसे बचावें।

१४५६. धनुषी (Tetany)

धनुषी एक अवस्था है जिसमें स्थान विशेषकी पेशियोंका संकोच धनुष्टंकारकी तरह कुछ पशुओंमें होता है। पेशियोंकी असमर्थताका यह एक अल्पकालिक उत्पात है जो सरलतासे बीत जाता है। कभी कभी यह बहुत कठिनभी हो जा सकता है।

विषके प्रभाव या प्रसादपाककी किसी खास गड़बड़ीसे धनुषी होती है। मनुष्योंमें बालकोंको यह कृमिके कारण हो सकती है। पशु-जगतमें भी यही होता है। दोनों अगले पैर या दोनों पिछले पैरकी पेशियोंकी फड़कन या आक्षेपके रूपमें स्थानीय धनुषी हो सकती है जिससे पशुको विशेष आसनमें होना पड़ता है। कभी कभी पेशीसंकोच सार्वत्रिक हो जाता है। पैर, धड़ और गर्दनकी फड़कन हो सकती है, जिससे पशु अकड़कर गिर सकता है और पैर फैलाकर लेट जाता है। गरदन अकड़ी रहती है और पेशियोंमें अंठन होती है।

इसकी स्थिति कुछ क्षणोंकी होती या फड़कन या आक्षेपका दौरा कई दिनों तक हो सकता है। पर साधारण तौरपर अल्पकालिक आक्रमण होते हैं। एक के बाद दूसरा आक्रमण होता है और इस तरह आक्रमणोंके क्रमसे कष्ट लगातार बना रहता है। लंबे आक्रमणकी एक कठिनाई यह है कि, इसमें बीच बीचमें साँस कुछ देरको रुक जाती है। जब यह बार बार होने लगता है तब अंत घातक होता है।

चिकित्सा : विषके मूल कारणका पता लगाना चाहिये कि, पाचन-संस्थान, **कृमिरोग** या प्रसादपाककी गड़बड़ी से तो नहीं है। कारण दूर करना चाहिये। मौर्फिन या ब्रोमाइडके रूपमें कोई उप-शामक देना उपयोगी है। प्रसवके मृदु पक्षाघातमें दिया जानेवाला कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेट देनेसे लाभ होता है। फड़कनोंके अंतरकालमें अल्कलाइन कारबोनेट दिया जाय। यदि फक्क या मृदुस्थि रोगके कारण धनुषी हो तो कैलशियम और फॉस्फोरस उपयुक्त मात्रामें देनेसे तुरत आराम होता है।

अध्याय ५१

चर्म रोग

१४५७. पित्ती (Urticaria : Nettle Rash)

चमड़े पर अचानक गोल चपटे चकत्ते निकल आते हैं। चमड़ेमें उरकुसी (केंवाछ, बड़ऊदा) लगनेकी जलनसे यह रोग हो सकता है। पेटकी गड़बड़ी एक कारण हो सकती है। किसी विशेष आहारसे भी पित्ती हो सकती है।

लक्षण : पित्ती बड़ी तेजीसे निकलती और फैलती है। पहले छोटी चकत्तियाँ निकलती हैं। रोग व्यापक हो तो भिन्न भिन्न चकत्तियाँ मिलकर उभड़ चकत्ते बन जाती हैं। कभी कभी उनके बीचमें दब जाता है जिससे उनकी आकृति अँगूठी की तरह हो जाती है। साधारण तौर पर खुजली (खुजाहट, कुलकुली) नहीं मचती। पर किसी रासायनिक उत्तापकके कारण हुई पित्तीमें कठिन खुजाहट हो सकती है। चकत्ते नथुने भग या गुदा जैसे मृदु भागोंमें भी हो सकते हैं। चकत्ते यदि अधिक विस्तृत भागमें हों तो बेचैनी होती है। कंठकी सूजन से साँसमें रुकावट और कष्ट हो सकता है।

चिकित्सा : साधारण तौर पर पित्ती कुछ घंटेसे लेकर कुछ दिन ठहरती है और जिस तेजीसे उछलती उसी तेजी से गायब भी हो जाती है। ठंढे पानीसे मलकर चमड़ेकी जलन मिटानेके सिवा और दूसरे इलाजकी कोई जरूरत नहीं। सरल विरेचन देना अच्छा होता है। क्योंकि, यदि पेटकी गड़बड़ी या किसी दूसरे मन्द विषके कारण यह हुई है तो उससे छुटकारा मिल जाता है। दुधार गायोंका दूध अचानक रुक जाता है। ऐसी दशामें थनकी मालिश हो और उसे पूरी तरह खाली कर दिया जाय।

सिरमसे पित्ती : क्षमताकारी या निर्मुक्तकारी सिरमसे कभी बिष पैदा हो जाता है जिससे पित्ती उछलती है। माता, विसर्प, निमोनियाँ आदि की क्षमताकारी

सूई लगानेके बाद ऐसा होते देखा जाता है। ढोरको साधारण तौर पर ऐसी छूत बहुत लगती है।

यह प्रायः पशुकी प्रकृतिके अनुसार होता है। किसी किसी पशुमें प्रोटीनकी सूईके लिये विशेष प्रकारकी चेतना होती है। इसका कारण अतिग्राहकता (anaphylaxis) हो सकती है। जब सिरमकी सूई लगायी जाती है तब वह प्रोटीनके लिये एक विशिष्ट प्रतिपिंड तैयार करता है। इन प्रतिपिंडोंकी रचनाके लिये निर्दिष्ट समय है। यदि उसी प्रोटीनकी दूसरी सूई दी गयी तो उसे प्रतिपिंड बड़ी तेजीसे तोड़ डालते हैं। इससे विष हो जा सकता है। मनुष्यमें यह रचना क्षमता-ह्रासक काल १२ से १४ दिनका होता है। कुछ लोगोंके मतसे सयाने ढोरमें यह कहीं जादे लंबा होता है।

सिरम रोगसे पित्ती अतस्त्वक सूईके ३—४ घंटे बाद उछलती है और अंतश्शिरा-सूईके कुछ ही मिनट बाद। ढोरकी सारी देह पर पित्ती उछरती है। निर्बलता, साँसमें कठिनाई, फेफड़ेका शोथ और बहुधा ज्वर होता है। प्रतिक्रिया होनेपर लगभग आठ महीनेके लिये ढोरमें उस सिरम की चेतना नहीं रहती।

मृत्यु नहींके बराबर होती है। लक्षण कुछ घंटे या दिनभर में मिट जाते हैं। अतिग्राहकता रोकी या हल्की की जा सकती है यदि चाही मात्रामें सिरमकी सूई लगानेके कुछ पहले उसकी एक सूई अल्प मात्रामें लगा दी जाय। १ सी० सी० प्रारंभिक मात्राकी सूई देनेके ५ घंटे बाद पूरी मात्रा देनेसे अनेक बार अतिग्राहकता नहीं हुई है। दूसरोंने पूरी मात्रा देनेके २४ घंटे पहले $\frac{1}{2}$ सी० सी० सिरमकी सूई देकर वैसा ही अच्छा परिणाम पाया है। कुछ समयके रक्खे सिरमसे अतिग्राहकता होनेकी कम संभावना रहती है। श्रम अतिग्राहकता द्वार खोल देता है इसलिये सूई देनेके पहले या पीछे तुरत पशुसे काम नहीं लिया जाय। कोई कोई नॉरमल सैलाइनमें कैलशियम क्लोराइडकी सूई अतिग्राहकता रोकनेके लिये लगाते हैं। इसे पूरक स्थिरीकरण (कंप्लीमेन्ट फिक्सेसन) कहा जाता है।

१४५८. छाजन : उकौथ (Eczema)

यह एक चर्मरोग है जिसमें ऊपरी तह चोइयाँ या पपड़ीकी तरह और फटी फटी हो जाती है। रोग प्रायः एकाएक प्रगट होता और जीर्ण हो जाता है। चमड़े पर जरासी सूजन और ललाई होती है और उस पर छाले, दाने या फुंसियाँ निकल

आती हैं। चमड़ेसे पानी निकलता और उसके सूखे छिलके जम जाते हैं यह छाजनकी विशेषता है। उसमें खुजलाहट होती है।

त्वचा गंदी रखनेसे छाजन (एक्जीमा-खाज) हो सकती है। ऐसी हालतमें जिस भागको पशु स्वयं साफ नहीं कर पाता उसमें यह होती है। चमड़े पर गीलापन या गंदगी होना छाजनके लिये बहुत अनुकूल है। रगड़ या छिलनेसे भी यह हो सकती है। त्वचा पर पारा या आयडिन लगाना, टार (अलकतरा), कारबोलिक एसिड और आयडोफौर्म जैसे उत्तापकका खाना भी इस रोगकी दृष्टिसे हानिकारक हैं।

कभी कभी इस रोगका सबन्ध पेटकी गड़बड़ीसे होता है। वृक्कके रोगोंमें मूत्रजनित पदार्थोंके विसर्ग (त्याग) से भी यह हो सकती है। भयंकर (गजचर्म-Mange) खुजली जैसे अन्य चर्म रोगोंसे भी यह हो सकती है। जीवाणु जो त्वचापर साधारण तौरसे रहते हैं वह रोगकारी छीजन पैदा कर सकते हैं।

प्रायः त्वचाके कोषोंकी एक खास परिवर्त्तित अवस्थामें त्वचा पर छाजनका प्रदाह हो सकता है।

छाजनमें त्वचा छालेदार, रुखड़ी और भीगी हो जाती है। वहिस्त्वक् मोटी होकर फटती और चोइयाँदार पपड़ीला हो जाती है। उसके पानीमें प्रोटीन पदार्थ होते हैं। प्रोटीनकी इस तरह कमीसे दुबलापन या क्लान्तता हो सकती है।

ढोरोंमें छाजन होनेका कारण प्रायः असावधानी और मैली त्वचा होता है। खुजानेके कारण निरंतरकी खरोंटसे फोड़ा हो सकता है। छाजन होनेके पहले बहुधा बाल झड़ते हैं। दशा धीरे धीरे खराब होती है।

चिकित्सा : पपड़ियाँ साफ कर दी जायँ और खुजाहट मिटानेके लिये वेदनाशून्यक दवाएँ लगाओ। साबुन और पानी नहीं लगाये जायँ। तेल लगाया जाय। सफाईके लिये ५ सैकड़ा कारबोलिक तेल काममें लाया जाय। पट्टी बाँधनेके लिये ५ सैकड़ा कारबोलिक या १ से ३ सैकड़ा सैलीसिलिक एसिडके मिश्रित तेलमें भिगा कर रुईका व्यवहार हो। पशुको इस तरह बाँधकर रक्खा जाय कि वह पट्टी नहीं गड़बड़ावे।

छालेदार छाजनमें बोरिक पाउडर १० सैकड़ा जैसे सूखे कोथघ्न चूर्ण बुरके जायँ या कारबोलिक तेल ५ सैकड़ा, चाहे सैलीसिलिक तेल ५ सैकड़ा फाहेसे लगाया जाय। बुरकनेके चूर्णोंका आधार स्टार्च बनाया जाय। इसमें बोरिक एसिड या जिंक ऑक्साइड (सफेदा या यशद-भस्म) ५ सैकड़ा मिलाया जाय। जब बहुत जादे पानी

चले तो रूई पर चूर्णकी मोटी परत लगाकर पट्टी बाँधो। सैलीसिलिक एसिडका सूखा चूर्ण, बोरिक एसिड समभाग मिलाकर बुरकनेके काममें लाया जा सकता है।

इन कोथघ्नोंका मरहम बनाकर भी लगाया जा सकता है। इनसे खुजली भी मिटती है। कठिन रोगोंमें पिकरिक एसिडका १ सैकड़ा घोल पोतनेसे लाभ हो सकता है। सप्ताहमें दो बार २० सी० सी० जीवाणुसंशुद्ध दूधकी अंतस्त्वक्-सूई देकर कितनोंने अच्छा फल पाया है। उसी पशुके रक्तमें उसे द्रवित रखनेके लिये सोडियम साइट्रेट मिलाकर ऊपरकी तरह २० सी० सी० मात्रामें सूई दी जा सकती है। मनुष्यकी छाजनमें पपीतेका दूध और सीरे (चासनी) का घोल लगाना फायदेका सिद्ध हुआ है। पपीतेका क्रिया-शीलरस जीवाणुओंको मार त्वचाको फिर सुस्थ अवस्थामें ले आता है। पपीतेका दूध १ से ५ सैकड़ा सीरा या ग्लिसरीनमें मिला कर घोल बनता है। इसे फाहेसे लगाओ। बहुत तेज घोलसे चमड़ेमें क्षत हो सकता है जिससे घाव निकल सकते हैं। इसलिये हल्के घोलसे शुरू करना चाहिये।

१४५६. त्वक्प्रदाह (Dermatitis)

इसमें त्वचामें प्रदाह होता है और पानी निकलता है। रक्तवहाओं और रसवहाओं से ओतप्रोत त्वचाके तन्तुओंमें परिवर्तन होते हैं। रक्तसंकुलता होती है। अत्यधिक स्रावसे त्वचाका गीला रहना और स्रवित पदार्थका सड़ना इसका कारण हो सकता है। पैर या देहकी त्वचाका संसर्ग चूनेसे होने पर भी त्वक्प्रदाह हो सकता है। किलनी और जूँके उत्तापसे या छाजन जैसे त्वचाके प्रदाहके अन्य रोगोंके उपद्रवके कारण भी यह हो सकता है। जलने या भाफ लगनेसे भी त्वक्प्रदाह हो सकता है।

त्वचा लाल, सूजी और गरम हो जाती है। दर्द होता है। अन्तमें उसपर से पपड़ी गिर जाती है और सब ठीक हो जाता है। त्वचापर स्रवित पदार्थके चापसे कभी कभी छाले भी निकल आते हैं जिससे वहिस्त्वक् अलग हो जाता है। इसके बाद से पीब बन सकती है और पपड़ी पड़ सकती है जिससे खुजली मालूम होती है और पशु उस भागको रगड़ता है।

प्रारम्भिक अवस्थामें जलसे शीतोपचार करने या ठंढी गद्दीकी पट्टी बाँधनेसे लाभ होता है। १०% बोरिक मलहम उपयोगी है। यदि जलनेके कारण त्वक्प्रदाह हुआ है तो पिकरिक एसिडका संपृक्त घोल लगाना बहुत अच्छा रहता है।

इससे पीड़ा मिटती और त्वचा कोथशून्य बनी रहती है। पिकरिक एसिडमें भिगायी रुईकी मोटी तह उस भाग पर रखकर पट्टी बाँधनी चाहिये। पीब पड़ने पर उसकी छूत रोकनेके लिये आसपास कार्बोलिक एसिडके ३ सैकड़ा घोलकी अंतस्त्वक्-सूई दी जाय। त्वचामें एक एक जगह कुछ बूँदें सूई की देतेही वहाँ छोटा चकत्ता उभर आना चाहिये। इस तरह त्वचामें कई जगह सूई देनी चाहिये।

१४६०. त्वचाकी गैंगरीन

कठिन क्षत, जलना या रासायनिक उत्तापकोंके कारण त्वचा नष्ट हो या मर सकती है। त्वचाकी गैंगरीनका अर्थ उसकी मृत्यु है। शुरू से ही सावधानी रखनेसे कोथघ्नोंके द्वारा गैंगरीनका निवारण हो सकता है। पर यदि खूब गहरे तक जल गया है तो गैंगरीन प्रारम्भमें ही आ जाती है। तब सड़ाँद खूब गहरी होती हैं।

यदि त्वचा गहरे तक मर गयी है तो वहाँ पर वह काली और कठोर हो जाती है। इस भीषण क्षतके चारों तरफ प्रदाह होता है। इस भागमें पीब हो जाती है और तन्तु अलग हो निकल जाते हैं जिससे वहाँ घाव हो जाता है। गैंगरीन और सड़ाँद या पीब पैदा होने से सारी देहमें छूत फैल सकती है। गैंगरीनग्रस्त भागके मृत तन्तु अपने आप पक कर निकल जाते हैं।

चिकित्सा : सभी मृत पदार्थ चीरफाड़कर साफ कर दिये जायँ और घावमें कोथघ्न पट्टी की जाय। पशुकी सुश्रुषा सावधानीसे हो। यदि त्वचाका व्यापक भाग इस व्याधिमें फँसा हो तो पशुको एकही करवट नहीं लेटने दो। बीच बीचमें उसकी करवट बदलवादो। घावकी हिफाजत पट्टीसे करो। पर वह बहुत कसी न हो।

१४६१. कील : मुँहासा (Acne)

इस रोगका सरोकार मेदस्रावी ग्रन्थियोंसे है। इसमें अर्बुद निकलते हैं जिन्हें दबानेसे दर्द होता है।

इसका कारण पसीना और उसमें चिपकी धूल और गन्दगी है और जिनके सहायक स्टैफिलोकोकस जैसे पूयकारी जीवाणु हैं। यह घोड़े और कुत्तों को जादा

होता है। यह उनके साज और गलेके पट्टेके नीचे हुआ करता है। उनकी रगड़से हुई जलनके साथ पसीना और गन्दगीके कारण त्वचापर यह रोग होता है। यह ढोरको भी साधारण तौर पर उनकी पूँछके छोर पर होता है। पूँछका निम्न कशेरुकाविहीन दृढ़ताशून्य भाग लगभग बीस इंच तक बहुत ग्रस्त होता है। इसका कारण पूँछमें मल लिसना और उसके कारण पूयकारी छूत है। बाल झड़ जाते हैं और त्वचामें मोटे मोटे चकत्ते हो जाते हैं। दाने निकलते और बदलकर छाले हो जाते हैं। इनके फूटने पर पानी चलता है। त्वचा पपड़ियोंसे ढक जाती है और वहाँ पीब पैदा होती है। हर पपड़ीके नीचे खास तरहकी एक सफेद कील होती है जो झड़े बालकी खूंटी है। इनसे बने गड़े, अंतमें अंकुरणसे (ग्रेनुलेसन) भर जाते हैं। अंकुरणमें बहुत नन्हें लाल लाल दाने मस्सेकी तरह निकलते हैं। व्रण या घाव भी हो सकते हैं जिससे बहुत नुकसान हो सकता है। उस अंगकी विरूपता भी हो सकती है। इस रोगके परिणामस्वरूप चमड़ा मर भी सकता है।

चिकित्सा : उस भागसे सभी मृत पदार्थ और पीब साफ कर दो और वहाँ टिंकचर आयडिन लगाओ। आयडिनके ऊपर ५ सैकड़ा सैलीसिलिक मरहम भी लगाया जा सकता है। सोडा बाइकार्बके संपृक्त घोलसे रगड़कर धोना और साफ करना जादे अच्छा है।

१४६२. दाद (Ringworm : Trichophytia)

ट्राइकोफीटन नामके एक छत्रक फंगसके कारण दाद होती है। इस रोगकी विशेषता यह है कि, वह बढ़ते हुए वृत्तमें त्वचापर फैलती है। त्वचा स्रावके जल, पपड़ी और खुंटसे भर जाती है। यह संक्रामक रोग है। भीगे चमड़े पर छत्रकभरी खुंट या पपड़ी यदि रगड़ दी जाय तो यह हो जाती है। यह रोग आदमीसे तरुण पशुओंको, बिल्ली और घोड़ोंसे ढोरको, और ढोरसे भेड़-बकरियोंको हो जाता है। ग्रसित मनुष्यके खरहरा करने और ग्रसितपशुकी दूषित झूल ओढ़ानेसे यह रोग फैलता है। धूप, साफ हवा और सूखी साफ त्वचा कुछ हद तक इस छत्रककी वृद्धिमें निवारक हैं। पतली त्वचावाले तरुण पशु और काले केशवाले पशु बहुत जादे ग्रहणशील हैं।

यह छत्रक बीजाणु वहिस्त्वक् पर पनपता है। त्वचामें गहरा नहीं धँसता। पर अपनी जीवन-क्रियामें यह जो विष छोड़ता है वह त्वचामें गहरे तक धँसता है जिससे हानि होती है और वहाँ दूषित स्राव होने लगता है। छत्रकके कारण लोममूल मर जाते हैं जिससे बाल झड़ते हैं। एक दूसरे प्रकारकी दादमें बाल टूट जाते हैं जिससे खूँटी रह जाती है। इस प्रकारमें छाले निकलते हैं और पपड़ी झड़ जाती है। इसे सूखी या पपड़ीवाली दाद कहते हैं। स्राव काफी होता है जो बालमें फँस जाता है। यह दाद बढ़कर ऊँची और रुखड़ा हो जाती है।

दादके वृत्तोंके बढ़नेकी एक सीमा है। कुछ दिनके बाद उनकी वृद्धि रुकती है। इसका कारण आसपासमें प्रतिविषका पैदा होना हो सकता है। ढोरको सूखी दाद अधिक होती है। इस उभड़ी हुई दाद पर सौत्रिक पपड़ी जमती है। यह पपड़ी और नयी तहें पड़नेसे मोटी होती जाती है और चौथाई इञ्च तक मोटी हो सकती है। ये पपड़ियाँ पहले त्वचासे खूब चपकी रहती हैं और उनके नीचे खून बहता है। पर जब उस जगह पीब हो जाती है तब पपड़ी फटती है। इसे हटानेपर पीबके छेद या गड़े दिखायी देते हैं। पपड़ी हटने पर घाव भरना शुरू होता है।

साधारण तौर पर बछरुओं के चेहरे या मुखमंडल पर होठोंके नजदीक दाद होती है जो रोटीके टुकड़े से हो जाते हैं। होंठ परकी दाद चूसनेमें बाधा देती है। यह भाग कोमल होता है। खुजाहटसे बहुत तकलीफ होती है जिससे आहार, पुष्टि तथा वृद्धिमें बाधा पहुँचती है।

चिकित्सा : बाल कतरके उस स्थानको साबुन और पानीसे नरम करो। नरम साबुन २ से ४ दिन तक लगा रहने दिया जा सकता है। नरम की हुई पपड़ी नोचकर यही क्रिया तब तक दुहरायी जाय जब तक नयी स्वच्छ त्वचा न निकल आवे। इसके बाद १० सैकड़ा सैलीसिलिक एसिडका मरहम लगाओ। साफ करने और नोचनेके बाद एक दूसरी चिकित्सा यह है कि, ५ सैकड़ा चूनेका पानी पोत कर उसे २.५ सैकड़ा सोडाके घोलसे धोओ। यदि चकत्ता छोटा है तो नित्य टिंकचर आयडिन लगायी जा सकती है।

पशुओंको बाँधकर रखना चाहिये कि, वह नरम साबुन और उसके बाद लगाये मरहमको रगड़कर पोंछ न दें।

१४६३. पकनी खाज : गजचर्म : कंडु (Mange : Scabies)

यह चर्म रोग एक सूक्ष्म कीट के कारण होता है। ये कीट तीन वर्गोंके होते हैं। इनके अनुसार खाज भी तीन तरह की मानी गयी है। यह कीट ढोर तथा अन्य जानवरोंमें हो सकते है। एक खाज सारकोप्टिक (Sarcoptic) कही जाती है। यह सारकोप्टीज अर्थात् बिल बनानेवाले कीटके कारण होती है।

चित्र १८५. सारकोप्टीज कीट बढ़ाया हुआ।

दूसरी सोरोप्टिक (Psoroptic) और तीसरी कोरियोप्टिक (Chorioptic)। ढोरको ज्यादे सारकोप्टिक होती है। यह खाज तमाम देह पर होती है।

कीट बहुत सूक्ष्म कण की तरह होते हैं फिर भी नंगी आँखों भी देखे जा सकते हैं। अणुवीक्षणके सहारे, इनके बर्णन और चित्रोंसे तुलना करने पर इन्हें अलग अलग पहचाना जा सकता है। पर हमें उसकी जरूरत नहीं।

ढोरको अपने प्रतिवेशके कीटसे ही, अन्य पशुओंसे छूत लिये बिना भी खाज होती है। यह खूँटेपर खानेवाले पशुओंका रोग है।

इसमें भयंकर खुजली होती है। यह खाज साधारण तौर पर सिरसे शुरू हो गरदन पर फैलती है। कीट गरमीमें सक्रिय होते हैं। इसलिये जब पशुसे काम लिया जाता है या उसे गरमाया जाता है तब वे बड़ी जलन पैदा करते हैं। सारकोप्टीज कीट अपना पोषण तरुण उपत्वक् (epithelial) कोषोंसे लेते हैं। इन कोषोंको वह खुदाई करते समय खा जाते हैं। ये लसीका भी खाते हैं और इनके कारण जो फुड़ियाँ निकलती हैं उनका लहू भी। सोरोप्टिक कीट वहिस्त्वक् पर पपड़ियोंमें और उनके नीचे रहते हैं। अपनी तेज चुसनीसे वे त्वचाकी गहराईमेंका रक्त और लसीका पीते हैं। कोरियोप्टिक कीट वहिस्त्वक्का कंटकित स्तर खाते हैं जो इनकी बिनाश लीलाके बाद धूलके स्तरसा मालूम होता है।

ये कीट वहिस्त्वक्के आच्छादकीय कोषों या चमड़ेके छिद्रोमें एक उत्तापक पदार्थका मलत्याग करते हैं। इसीके कारण जलन और खुजली मचती है। इसके सिवा ये कीट त्वचामें सुरंग बनाते और उसमें चलते हैं जिससे उसके अंगकी तेज छेदक कूचियाँ चुभती हैं। इस कारण भी जलन और खुजली मचती है।

इनके कारण चमड़ेमें जो क्षत हो जाते हैं उनसे रस या पानी बहता है। यह छाजनके जैसा मालूम होता है। बाल झड़ने लगते हैं। क्योंकि उनकी जड़ें खायी रहती हैं। इसी बजह लोममूलके पास उपत्वक् कँटीला हो जाता है। त्वचा मोटी हो जाती है और उसमें तहें पड़ जाती हैं। यह सारकोप्टिक खाजकी अन्य विशेषता है। कोरियोप्टिक कीट सतह पर ही रहते हैं इसलिये ये त्वचा की कम हानि करते हैं। इसमें खुजली होती है पर पानी नहीं बहता। त्वचा सूखी और धूल भरी रहती है। कोरियोप्टीज कीट सन्धियोंकी तह आदि अपने रहनेके लिये पसन्द करते हैं क्योंकि, यहाँ उनको बचाव मिल जाता है।

पशुके जोरसे खुजाने, हबकने, रगड़ने या खरोंटनेसे त्वचामें क्षत हो जाते हैं। यदि व्यापक रूपसे यह रोग हुआ तो दुबलापन बढ़ने लगता है। जिससे शरीरमें विकृति होती और अंतमें पशु मर जाता है।

त्वचाके अधिक स्नेह भागोंको ये कीट छोड़ देते हैं।

ढोरमें सारकोप्टिक खाजकी पपड़ी तिहाई इंचसे जादे मोटी होती है। पपड़ीमें वहिस्त्वक्की चोईयाँ (छिलके), सूखा लहू, बाल, कीट और उनके अंडे होते हैं।

इसलिये इसकी तहें बन जाती हैं। गर्दनकी त्वचापर इंच दो इंच मोटी तहें जमती हैं। यह गरदन झुकाने या फैलानेसे मुलायम होकर मिटती नहीं।

चिकित्सा : त्वचाको सावधीके साथ साबुन और पानीसे साफ करो। कीटघ्न द्रवों या मालिशोंको लगाकर दिन तक रक्खो। जब रोग व्यापक हो तो एक एक दिन एक एक चकत्तेका उपचार किया जाय। सब देह पर दवा लग जाने तक यह दवा लगी रहे। तमाकूदेस सैकड़ा काढ़ेमें किरासन और साबुन मिलाकर बनाया अवद्रव इस रोगके उपर सर्वोत्तम कीटघ्न है। कारबोलिक एसिड या क्रेसोल भी ५% शक्तिमें साबुनवोथ अवद्रव बनाकर व्यवहार किया जा सकता है। क्रूड तेलके ५% का अवद्रव कामका हो सकता है पर इससे विष लगनेका डर रहता है।

१४६ किलनी (Ticks)

किलनियाँ, खाजकीटसे बड़ी होती हैं। ये भी उसी वर्गकी हैं। इनके दो वंश हैं। एक कठिन और कोमल। भूखी रहने पर ये चिपटी रहती हैं पर खून चूसने पर गोल होती हैं। मादा लहू चूसकर अपने मूल आकारसे कई गुना बड़ी हो जाती है।

किलनियाँ ढोरके ऊपर चलकर जाती हैं और वहाँ संगम करती हैं। फलनेके बाद मादा टपक पड़ती वह गोहालके फर्श, दरार, दीवाल या घासमें अंडे देती है। ३ से ६ हमें पुष्ट होकर इनमेंसे पिलौंहे रंगके षट्पद अर्भक निकलते हैं। जबतक इन्हें कोई उपयुक्त आश्रयदाता (होस्ट) नहीं मिलता अंडेमें बचा सामान ये खाते हैं।

सयाने होने लगभग इनमें विचित्रता होती है। कुछ तो उसी आश्रयदाता पर इस अवस्थाआते हैं जैसे कि, बुफिलस किलनी जिससे "लाल-पेशाब" होता है। इन जीवनी "लालपेशाब" में वर्णित है। अन्य प्रकारके यह कीट दो होस्टवाले हैं इनके अर्भक पहले आश्रयदाता पर चोला बदलकर तरुण अवस्था पाके फिर टपक कर चोला बदल सयाने होते और नये आश्रयदाता पर चढ़ते हैं। इसी प्रकार तीन होस्ट या आश्रयदातावाले कीट भी हैं।

किलनी रोग पैदा करनेके अलावे बड़ी क्षति भी करती है। होस्टकी खोजमें कुछ किलनी घासकी पत्तियों या झाड़ी आदिकी पत्तियों पर चिपक रहती हैं। उधर

१४६५. जूँ (Lice)

जूँ खून चूसनेवाली परोपजीवी है। मादा नाशपातीकी आकृतिके अंडे देती और उन्हें बालसे चिपका लेती है। १० से १५ दिनमें ये पुष्ट होते हैं और उनसे तरुण जूँ निकलती हैं जो तीन अवस्थाएँ बिताकर सयानी या बड़ी होती हैं। सयानी होते ही ये संगम करती हैं और मादाएँ १ दिनके बाद अंडे देना शुरू करती हैं। ये एक मास से अधिक कालतक बिना आहारके रह सकती हैं। काटने वाली जूँ चूसनेवालीके समान ही होती हैं। ये परोपजीवी मुख्यरूपसे सिर गरदन और पैरों पर मिलती हैं।

जूँके कारण बड़ी खुजली होती है। खुजलीके कारण पशु घबड़ा जाता है। उस जगह पर हवकने या रगड़नेकी बराबर कोशिश करता है। जिस जगह ये चमड़े पर पड़ गयी हैं वहाँ देखनेसे ये तुरत पहचानी जा सकती हैं।

किरासन और तारपीन लगाकर जूँ मारी जा सकती हैं। अंडे नहीं मरते। इसलिये १० दिन बाद इनकी दूसरी फसल मारनेके लिये प्रक्रिया दुहरानी होती है। इनसे पूरी तरह छुटकारा पानेके लिये तीसरी बार लगानेकी जरूरत हो सकती है।

१४६६. कुकुर-मक्खी (Warble flies : Blow flies)

कुकुर-मक्खी ढोरकी भयंकर उत्पीड़क है। इनके कारण आर्थिक हानि बहुत होती है। क्योंकि, इनके मारे ढोरकी जीवनी शक्तिका ह्रास, उनके दूधकी घटती, बाढ़में बाधा और चमड़ेमें बड़े बड़े छेदोंके कारण खराबी हो जाती है। कुकुर मक्खी उत्तरी भारतमें अधिक खराबी करती है। बलूचिस्तानमें ९० सैकड़ा बकरीके चमड़े इसके किये छेदके कारण खराब हो जाते हैं। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत और पंजाब तथा अन्य सूखे भागोंमें यह बहुत उत्पात मचाती है।

यह मक्खी आधा इंचसे कुछ बड़ी होती है। मौसममें यह ढोरका पीछा करती या उनपर रेंग कर चढ़ जाती है। और उनपर अंडे देना शुरू करती है। इसकी जिन्दगी बहुत छोटी है। पर इन्हीं कुछ दिनोंमें यह असंख्य अंडे ढोर पर देती और भीषण उत्पातका कारण बनती हे। मक्खी बालकी जड़में बहुत जल्दी जल्दी अंडे देती है। कई मिनटमें वह कई हजार अंडे दे सकती है। अडे बहुत छोटे लगभग १ इंचके बीसवें भागके बराबर होते हैं। अर्भक ३ से ६ दिनमें अंडेसे निकल

छलनी पर पट्टी, रुई, गॉज, लिन्टका कपड़ा और पट्टीके अन्य सामान रक्खो। ढक्कनसे ढाँक दो और बहुगुने को चूल्हे पर चढ़ा तेज आँचसे पानी खौलाओ।

समय समय पर पानी डालो कि भाफसे सब पानी उड़ न जाय और बर्तनमें कुछ पानी सदा बना रहे। आध घंटे तक खूब खौलाने और भफानेसे जीवाणुशुद्धि पूरी हो जाती है।

१४७७. पशुको वश करना (बाँधना)

बैलको वश करनेके लिये एक हाथके अँगूठे और तर्जनीसे उसका नथना पकड़ो और दूसरे हाथसे सींगकी नोक। जाँच या हल्के चीरफाड़के लिये इतनेसे काम चल जाता है।
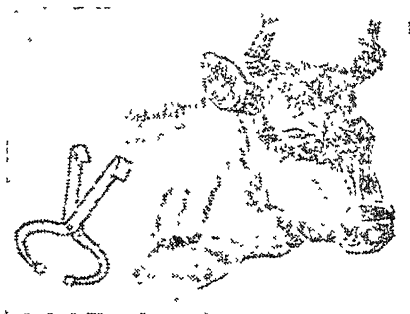
क ख

चित्र १९१. साँढ़को नकेल-यंत्रसे वश करना।
क. साँढ़का नकेल-यंत्र ; ख. सिरसे बँधा नकेल-यंत्र।

चित्रके अनुसार "**साँढ़की नकेल**" (bull holder) से काम लिया जा सकता है। और उस नकेल या होल्डरके छोरपरकी कड़ीमें रस्सी लगा सींगोंसे बाँध दिया जा सकता है। (चित्र १९१)।

गुल्फ या घुट्टीमें रस्सी बाँध परीक्षा या छोटेमोटे चीरफाड़के लिये अगला पैर जकड़ा जा सकता है।

गरदनमें रस्सी डाल उसे पिछली घुट्टी या टखने पर ले जा सकते हैं। दोनों छोर एक साथ खींचनेसे पैर उठ जाता है तब उसे दूसरे हाथसे देख सकते हैं।

दुहते समय जैसे छाना जाता है दोनों पिछले पैर छाने जा सकते हैं।
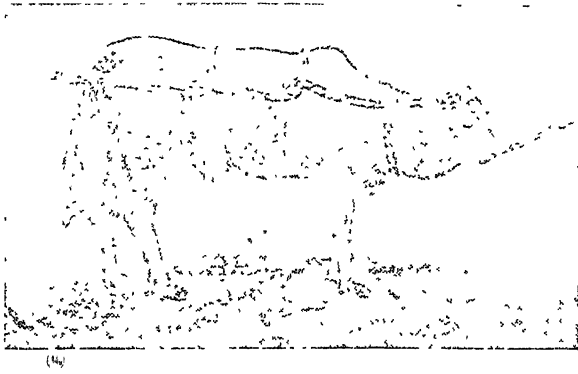
चित्र १९२. रस्सीके फंदे।
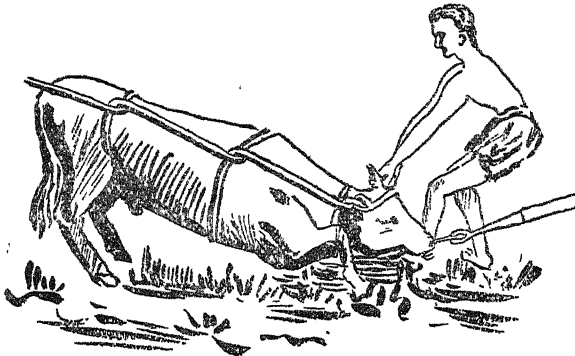
चित्र १९३. रस्सी बाँधना।

बाँधनेके बाद एकही आदमीके खीँचने और दबानेसे गाय चुपचाप बैठ जाती है।

पटकना : नाल ठोंकनेके समय जिस तरह दो आदमी एक रस्सीके सहारे पशुको पटकते हैं उस तरह भी किया जा सकता है। ऐसे आदमी हैं जो कुछ सेकेन्डमें बड़े पशुको भी पटक देते हैं। चतुराई इसमें है कि, भारी पशु पटक दिया जाय और उसे चोट भी न लगे। असावधानीसे पटकनेसे उसके पेटकी कोई हड्डी टूट सकती है। ऐसी दुर्घटनायें कभी कभी हो जाती हैं। इसलिये इससे बचनेको सावधान रहा जाय।

१. चालीस पचास फूट लम्बी रस्सी लो। उसका एक छोर सींगोंकी जड़में बाँधो। फिर कई फन्दे, एक गरदनसे नीचे, दूसरा धड़के अगले भागमें और तीसरा
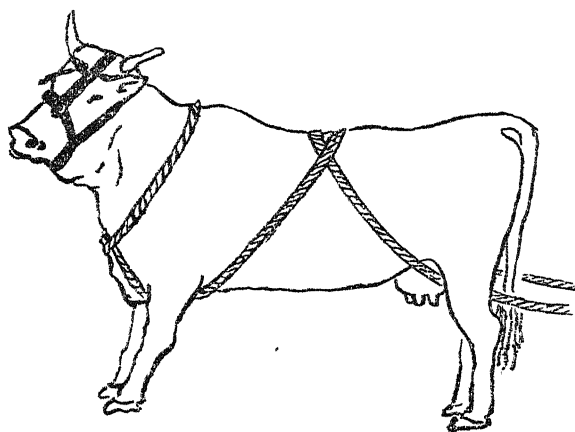
चित्र १९४. थन घायल किये बिना रस्सा लगाना।

पिछले भागमें डालो (चित्र १९२)। सभी फन्दे कसो और तब फन्देके अगले छोर पर जोरसेखींचो। पशु धीरे धीरे धरतीसे जा लगेगा (चित्र १९३)। जब पशु धरती पर आ जाय तो उसके चारों पैर एक साथ बाँधो। रस्सी सरक सकती है। इससे शिश्न या दुग्धग्रन्थिमें चोट आ सकती है। इस विधिमें यह जोखिम है।

२. चालीस पचास फूट लम्बी रस्सी लो। इसे बीचों बीच करके कन्धे पर रक्खो। झालरके सामने दोनों भागोंको एक दूसरे पर चढ़ाकर अगली टाँगोंके

बीचसे पार करो। फिर दोनों बगल और पीठ पर ले जाकर फिरसे एक दूसरे पर चढ़ा जाँघोंके बीचसे पार करो। रस्सा खीचनेसे पशु बहुत धीरे धीरे आरामसे गिरता है (चित्र १९४)।

१४७८. संज्ञाशून्यता (Anæsthesia)

शून्यता एकांगी या सार्वत्रिक हो सकती है। सार्वत्रिक शून्यताके लिये बैलको क्लोरोफॉर्म सुँघाना सबसे अच्छा है। पर जिस रोगमें क्लोरोफॉर्म सुँघाकर चीर फाड़ करना हो उसे भेटेरिनरी सरजनके लिये छोड़ देना चाहिये। हमारा सरोकार ऐसी व्याधियोंसे है जिसमें एकांगी शून्यताकी जरूरत होती है। भग, जरायु या गुदा का निकलना, आँत उतरना या प्रसवमें बच्चेका अटकना इन सबमें गहरी शून्यताकी आवश्यकता होती है। यह सुषुम्नाके निचले छोर पर वराशिका (epidural space) में शून्यक दवा की सूई देनेसे हो सकता है। इसे एपिड्यूरल एनेस्थेशिया (epidural anæsthesia) या वराशिकाकी शून्यता कहते हैं।

१४७९. एकांगी-शून्यता (Local anæsthesia)

एकांगी शून्यता ठढकके द्वारा लायी जा सकती है। बर्फकी थैलीमें चूरी हुई **बर्फ और नमक** भर उस भाग पर रखनेसे यह हो सकती है। इससे अच्छी और गहरी शून्यता उस स्थानपर **एथिल क्लोराइड** की फुहारेसे हो सकती है। एथिल क्लोराइड फुहारेके चोंच लगी नलीमें बिकती है। इसका प्रभाव देर तक नहीं ठहरता। जहाँ कुछ मिनटमें काम पूरा करना है वहाँ इसका व्यवहार होता है। आगके संयोगसे एथिल क्लोराइडमें विस्फोट हो सकता है।

कोकेन एकांगी शून्यकोंमें सबसे भरोसे की है। कोकेन हाइड्रोक्लोराइडका १ सैकड़ा घोल बहुधा काममें अधिक लाया जाता है। इतनी शक्तिसे चाहा परिणाम निकल आता है। पर ४ सैकड़ा घोल साधारण तौर पर अधिक भरोसेके लिये काममें लाया जाता है।

कोकेन हाइड्रोक्लोर	...	१½ ग्रेन
मरकरी परक्लोराइड	...	·०३ ग्रेन
पानी ...	...	२½ ड्राम

सूक्ष्मतम मात्रामें मरकरी परक्लोराइड मिलानेसे घोल टिकाऊ होता है। जब तव इसकी अन्तस्त्वक् सूई दी जाती है। इसका असर तन्तुओं और त्वचा दोनों पर होता है। चीरेकी रेखाके बराबर बराबर प्रायः १½ इंच पर सूई देना प्रचलित विधि है। एक भाग कारबोलिक एसिड और ४ भाग कपूरका मिश्रण त्वचापर मलनेसे सूईका चुभना मालूम नहीं होता। बैलको ३ ग्रेनसे जादे कोकेन एक बारमें नहीं दी जाय। साधारण तौर पर १½ ग्रेन काफी होना चाहिये। अधिक मात्रामें कोकेन विष है। साथ ही साथ एड्रेनेलीनकी सूई लगानेसे कोकेनका विषपना या विषाक्तता घट जाती है और उसकी क्रिया जल्दी होने लगती है।

क्लोरल हाइड्रेट : तन्द्रा लानेके लिये मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट देना बहुत उपयोगी है। यह गुदासे भी दिया जा सकता है।

क्लोरल हाइड्रेट उत्तापक है इसलिये माँड़में मिला करके पिलाना या गुदासे देना चाहिये। मुँहसे पिलानेके बाद कुछ ठोस चारा खिलानेसे इसका असर जादा होता है। गाढ़े माँडमें १ से २ आउन्स क्लोरल हाइड्रेट मिलाकर उसे ८ से १६ आउन्स बनाओ। घोल पिलाना चाहिये या एक उदर-नली (स्टोमक ट्यूब) द्वारा पेटमें पहुँचा देना चाहिये।

इतनी मात्रासे पशु आसानीसे वशमें आ जाता है। अवयवोंके निकल आने या उतरी आँत फिर चढ़ानेके लिये एकांगी शून्यक (local anaesthetic) के साथ क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये।

१४८०. वराशिकाकी शून्यता (Epidural anaesthesia)

शून्यताकी यह विधि ढोर पर व्यापक रूपसे की जाती है। इसमें सुषुम्नाकांडके छोर पर वराशिका या सुषुम्नाकी बहिर्वृतिके अंशपर एकांगी शून्यताके घोलकी सूई दी जाती है। पिछले भाग और उदर-देशको सुन्न करनेके लिये यह शून्यक विधि विशेषकर उपयोगी है। निकली हुई गुदा, भग या जरायुको बैठानेके लिये इसे काममें ला सकते हैं। स्त्रियोंकी प्रजनन-इन्द्रियकी पूरी जाँच, जरायु धोने और कष्ट-साध्य प्रसवमें अटके बच्चेको ठीक करनेके लिये यह उपयोगी है। पुरुषमें इसके असरसे मुतान या लिंगपिधानसे शिश्न बाहर निकलता है। तब शिश्नकी परीक्षा और जरूरत हो तो चीरफाड़ की जा सकती है।

सूई या इनजेकशन देनेकी जगह पूँछमें पहले और दूसरे अनुत्रिक कशेरुकाओंके बीच है। इसका स्थान स्थिर करनेके लिये पूँछ पकड़ पीठकी हड्डीकी सीधमें रखनी चाहिये। उसे ऊपर नीचे करनेसे त्रिक और अनुत्रिक अस्थियोंके संगमका पता चल जाता है। क्योंकि इसी स्थान पर गति रुक जाती है। वह स्थान पहली अनुत्रिक कंटकके ठीक पीछे है। (देखो चित्र १९५-१९६)। पहले और दूसरे अनुत्रिक
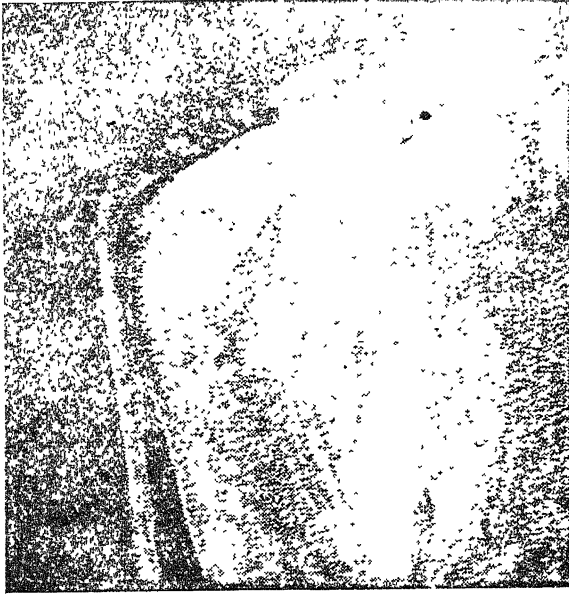
चित्र १९५. वराशिकाकी शून्यता (epidural anaesthesia)।
तीर-चिह्नित स्थान पर सूई दी जाती है।

कंटकके बीच गहरापन है। गहराईके बीचकी जगह चुननी चाहिये। सूई कशेरुके समकोणमें सीधी जाय। जरा भी चल बिचल होनेसे विधिमें गड़बड़ी होगी। सूई देनेके लिये २० सी० सी० सीरिंज (सूई देनेकी पिचकारी) चाहिये।

खड़ी या लेटी किसी स्थितिमें सूई दी जा सकती है। खड़े होनेकी हालतमें १० से २० सी० सी० १ प्रतिशत जीवाणुशुद्ध नोभोकेन-घोल, देहकी तौलके प्रति

६०० या १,००० रत्तलके लिये, सूईसे दिया जाता है। प्रसवके लिये लेटी स्थितिमें ३० से ५० सी० सी० वही घोल दिया जाय।

सूई देनेके पहले जगह मूँड़कर छूतरहित कर दी जाय। २½ से ३ इंच लंबी सूई कशेरुकाओंके बीचके गड़हेमें घुसायी जाय कि, वह सुषुम्ना प्रणाली तक पहुँचे जो कि, ¾ इंचसे १½ इंच नीचे रहती है। सूईकी नोक सुषुम्ना प्रणालीके भीतर
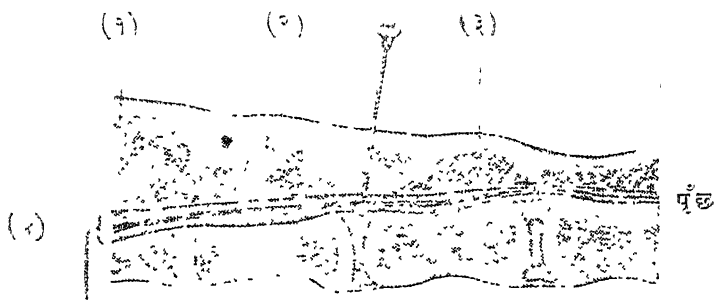
चित्र १९३. वराशिकाकी शून्यताकी सूई देनेका स्थान।
१. त्रिकास्थि-कशेरुका ; २. पहली अनुत्रिक कशेरुका ;
३. दूसरी अनुत्रिक कशेरुका ; ४. सुषुम्ना-प्रणाली।

है यह जाननेके लिये थोड़ासा द्रव छोड़ो। यदि वह द्रव जरासा दबानेसे निकले तो समझो कि, सूई ठीक जगह पर है। पर यदि जोर लगाना पड़ा तो समझो कि, वह सुषुम्ना प्रणालीमें नहीं चुभी है। सूई खींच लो और जगह या दिशा बदलो।

दवा धीरे धीरे और ठहर ठहर कर सूईसे छोड़ो। मूढ़गर्भ या कष्टसाध्य प्रसवके सभी कठिन रोगियोंकी चिकित्सामें मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट और शून्यक दवाकी सूई सुषुम्ना-प्रणालीमें देना दैनिक कार्यक्रमकी तरह अपनाओ।

१४८१. टाँका : सूचीकर्म (Suture)

घावके इलाजमें टाँका या सीयन जरूरी क्रिया है। घाव जल्दी भरनेके लिये उसकी सतह एक कर देनी चाहिये। घाव सीनेके लिये अस्त्र चिकित्साकी सूईयाँ सौफ्ट पैराफिनमें रखनी चाहिये। वह सरल या वक्र हो सकती हैं। सीनेकी साधारण सूई और अस्त्र चिकित्साकी सूईका भेद उसकी नोकमें है। अस्त्र चिकित्सा-

की सूईकी नोक तिकोनी होती है वह त्वचाको आरपार काट देती है। साधारण सूई जब त्वचा और पेशियोंसे पार की जाती है तब अपने साथ तागा नहीं ले जा सकती। क्योंकि, त्वचा और पेशियाँ उसमें बाधक होती हैं। सर्जिकल या अस्त्रचिकित्साकी सूईसे कोई जगह छिदती नहीं, कट जाती है। यदि अस्त्रचिकित्सा की सूई न मिले और जल्दी हो तो सिलाईकी साधारण सूई चिपटी करके तेज कर ली जाय। इससे सीधी सूईका तात्कालिक काम चल जायगा। टाँकेके लिये रेशमके डोरे सबसे अच्छे हैं। प्रायः सभी कामोंके लिये ०, १, ३, और ६ नम्बरके डोरे उपयुक्त हैं।
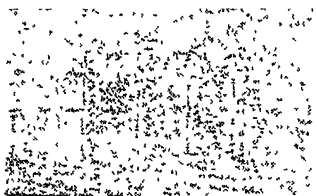
चित्र १९७. असंबद्ध टाँके।
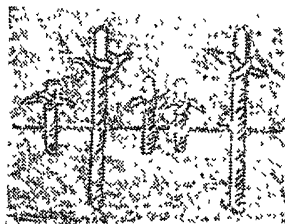
चित्र १९८. तनाव टाँके।

रेशमके धागे मजबूत और अनुत्तापक हैं। उबालकर जीवाणुशुद्ध किये जा सकते हैं। रेशम आचूषक है। इसलिये उसके साथ त्वचा परसे कोथकारी द्रव टाँकेमें जा सकते हैं। इसमें यह एक दोष है। भीतरी टाँकेमें वह अनन्तकाल तक रह सकता है। जीवाणुशुद्ध तेल या पैराफिन टाँके लगानेके बाद उसपर मल देनेसे ऊपरी टाँकेके धागेकी आचूषण-शक्ति घट सकती है।

त्वगीय टाँका : इसमें अधिक तनाव नहीं होता। इसमें घावके किनारेसे ⅛ इंच पर टाँके भरे जा सकते हैं।

असंबद्ध टाँका : टाँकेकी सबसे प्रचलित शैली असंबद्ध सीयन की है। इसमें हरेक टाँका अलग अलग होता है। दोनों किनारे मिला मरहम-पट्टी की चिमटीसे कसकर पकड़ रक्खे जाते हैं और इनमें सूई पार की जाती है। धागा काटकर उसमें बज्रगाँठ (reef knot) लगा दी जाती है। (देखो चित्र १९७)।

तनाव-टाँका : जब दोनों किनारों पर काफी तनाव होता है जिससे टाका कट जानेका डर रहता है तब यह भरा जाता है। इसमें दुहरे टाँके भरे जाते हैं। एक जोड़ी टाँके पतले रेशमसे मांसमें गहरे पार किये जाते हैं। यह तनाव मिटा देते हैं। तब पासपासमें असंवद्ध टाँके भरे आते हैं। (देखो चित्र १९८)।

नली-टाँका : कभी कभी दोनो किनारों पर रबरकी नली रक्खी जाती है। इसपर से फन्दे डालकर दुहरे सूत पार किये जाते हैं। इस उपायसे दबाव पूरे सतह पर फैल जाता है और सूत बहुत जल्दी त्वचाको काट नहीं सकता। नलीकी जगह छड़के गोल और साफ टुकड़ेसे काम लिया जा सकता है। (देखो चित्र १९९)।
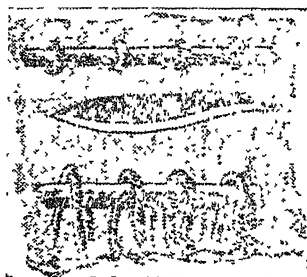
चित्र १९९. नली टाँके।

यदि पके बिना घाव पुर सकता है तो टाँके उपयुक्त होते हैं। यदि गहरे घावमें बत्ती भरनेकी जरूरत होती है तो टाँका उपयोगी है। नहीं तो टाँके का कोई उपयोग नहीं है। पेट चिरने जैसा कोई बड़ा चीरफाड़ होने पर टाँका जरूर भरा जाता है।

यदि घाव भरनेमें पीब होनेकी संभावना हो तो टँकाई करके दोनों किनारे जोड़नेसे कोई लाभ नहीं। यह घाव पूरनेकी क्रियामें मदद नहीं दे सकती। यदि धागे पर तनाव जादे हो तो यह लाभके बदले हानि अधिक करता है।

कोथीय घावमें टाँके भरना भयंकर है। क्योंकि, इससे कोथीय स्राव बह नहीं पाता। धूप और हवाके संशोधन कार्यमें रुकावट हो जाती है। अवायुजीवी जीवाणुके विकासमें सहायता मिलती है। ऐसी हालतमें टाँके भरनेसे उपद्रव बढ़ जाते हैं।

अध्याय ५६

चीरफाड़की जरूरतवाले रोग

१४८२. चर्म-रोग

काँटे : यह मुख्यरूपसे सिरपर निकलते हैं। पीठ, बगल, पेट और पैरोंपर भी निकल सकते हैं। यह रुखड़े या चिकने भी हो सकते हैं। कभी ये झड़कर फिर निकलते हैं और कभी स्थायी रूपसे रहते हैं। इनकी चिकित्सा त्वचा सहित इन्हें छील देना है। यह काम एकांगी शून्यताके उपचारके साथ किया जाता है। यदि त्वचा छोड़ केवल काँटा ही काटा जाय तो फिर नया निकल आता है।

मस्से : यह दुखदायी नहीं होते पर एक ही जगह गुच्छाका गुच्छा यह निकल आवें या ऐसी जगह पर हों जहाँ चोट सहज ही लग सकती है तो इनमें प्रदाह हो जाता है। तब इनमेंसे लहू या पीब भी बह सकती है। यदि ये जाँघोंमें निकलें तो व्रण या घाव हो जा सकते हैं और पीड़ा दे सकते हैं। यह अर्बुदोंकी श्रेणीमें हैं। इनको निकाल देना ही इनका इलाज है। यदि यह लटकते हों तो रेशमके बांध क्रमशः कसनेसे निकल जाते हैं। छुरी की सहायतासे चमड़े पर से छील कर भी इन्हें अलग किया जा सकता है। इक्रेजर यंत्र (ecraseur) से कस कर दबाने से ये चूर होकर या कट कर निकल जाते हैं।

१४८३. अस्थि-भंग (Fracture)

हड्डीका टूटना (अस्थिभंग) कई प्रकारका हो सकता है। यदि त्वचा न कटी हो तो यह **साधारण अस्थिभंग** (सिम्पल फ्रैक्चर) कहा जाता है। यदि चमड़ा भी कट गया हो तो उसे **मिश्र अस्थिभंग** (कम्पाउन्ड फ्रैक्चर) कहते हैं। मिश्र भंगमें अस्थि और मांस दोनों बाहरी जीवाणुओंके लिये खुल

जाते हैं। इसलिये इनका उपाय करना अधिक कठिन होता है। हड्डी एक ही जगह टूट सकती है या टुकड़ा टुकड़ा। ऐसी हालतमें वह **खंड या विचूर्णित** (कमीन्यूटेड) कहा जाता है। टूटी हड्डीके छोर अपनी जगह पर रह सकते हैं या एक दूसरे पर चढ़ सकते हैं। इस अवस्थाको **आरोही भंग** (राइडि फ्रैक्चर) कहते हैं। टुकड़े स्थानान्तरित हो जायँ या मुड़ जायँ तो उपद्रव होते हैं।

अस्थि भंगका जुड़ना : प्रकृति सदा भंगोंको जोड़नेका काम करती है। इसके लिये नये संयोजक तन्तु निकलते और धीरे धीरे दृढ़ होकर अस्थि बन जाते हैं।

चालन : ध्यान रहे कि, परीक्षा या पशुको हटानेके समय और खराबी न होने पावे। हटानेके पहले भली भाँति रुईकी गद्दी देकर खपची बाँधो।

टलना : साधारण तौर पर टूटी हड्डियाँ टल जाती हैं। हड्डी बैठानेके लिये वह अंग खपची बांध अटल कर दिया जाय। पशुको गिरा लेना चाहिये। उछले कूदे बिना वह गिरा दिया जाय इसके लिये उसपर मादक दवाका प्रयोग हो। इसके बाद फैलाकर, खींचकर या सहला कर हड्डी बैठा दी जाय। यह हो जाने पर खपची लगाकर अटल पट्टी बाँधी जाय। गोदन्ती भस्म (प्लास्टर ऑफ पेरिस) की मददसे पट्टी बैठा दी जाय। रुई की गद्दी देकर पट्टी बांधना जरूरी है जिससे कि कोमल तन्तुओं पर कोई क्षत न हों। बाँधनेके पहले पट्टी पानीमें डुबाकर उसे निचोड़ हवा निकाल दी जाती है। फिर उस पट्टीपर प्लास्टर ऑफ पेरिस पोत कर बाँधते हैं। यह कुछ मिनटोंमें जम जाता है। इसके साथ खपचियोंकी जरूरत नहीं। यह ध्यान रहे कि, कड़ी पट्टी सरके नहीं। यदि घुटनेके ऊपर पट्टी करनी है तो उसे किसी अटकावके सहारे बांधना चाहिये, जो पट्टीको नीचे सरकनेसे रोके।

मिश्र अस्थिभंग : अधिक खराबी होने पर पैर काटना होता है। यद्यपि बड़े पशुकी चिकित्सा कठिन काम है पर यदि तन्तु अधिक कुचले बिना अलग हो गये हैं तो ठीक हो जानेकी संभावना रहती है। घावकी संभाल और हड्डी बैठाना नियमपूर्वक करो। हड्डीके छोटे ढीले टुकड़ोंको हटाओ और उभड़े अंशोंको काट दो। तब अटल पट्टी बाँधो। क्षतके सामने एक खिड़की छोड़ दो कि, वह देखा जा सके और उसकी दवादारू हो सके।

यदि घाव पूरी तरह छूतरहित रक्खा गया तो बिना किसी उपद्रवके नष्ट तन्तु गलकर निकल जायेंगे और क्षत अंकुरित होकर आराम हो जायगा।

१४८४. सन्धि-संकट

मोच (Sprains)

किसी सन्धिकी गति जब सीमासे अधिक हो जाती है तब मोच होती है। सन्धिगत तन्तु कुचले जाते हैं या फट जाते हैं। फिसलने, गिरने, पैर ओछा पड़ने या अति अधिक श्रम या तनावसे मोच हो सकती है। बन्धनियाँ या स्नायु (लिगेमेन्ट) घायल हो सकते हैं। वह अपनी सन्धियोंसे टूट सकते हैं। और उससे भी अधिक कठिन क्षत होने पर सन्धिपरकी कंडरायें बहुत खिंच कर फट सकती हैं।

रक्तवाहिनियों से रक्त निकल आता और प्रदाहक स्रावसे तुरत सूजन हो जाती है। हल्की चोट हो तो मोच पूरी तरह आराम हो जाती है। पर बहुत कड़ी चोटमें सदाके लिये लँगड़ापन रह जाता है।

उग्र प्रदाह के लिये अकोथीय चिकित्सा होनी चाहिये। आहत संधिको सम्पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसे चलाना नहीं चाहिये। शीतल कषाय पदार्थ लगानेके बाद फिर गरम पानीसे सेंकना और मालिश करना चाहिये।

जब मोच आराम हो जाय तो जबतक दुर्बलता बनी रहे नियमित कसरत करानी चाहिये जिससे कि, संधियाँ जकड़ न जायँ।

अस्थिभ्रंश : हड्डी टलना (Dislocation)

जब दो हड्डियोंके जोड़ अपनी जगह छोड़ हट जाते हैं तब हड्डी टलना या उतरना कहा जाता है। हड्डी उतरनेका कारण चोट भी हो सकती है। पक्षाघात जैसे किसी रोगके कारण भी हड्डी उतर सकती है, या जन्मसेही उतरी हुई हो सकती है। पिछली दो हालतोंमें कुछ नहीं किया जा सकता।

हड्डी टलनेके कारण वह जगह कुछ विकृत हो जाती है। जब कठिन प्रदाह और सूजन होती है तो अस्थि भ्रंश मालूम नहीं होता। पैर छोटे या लम्बे हो जाते हैं। अस्थिभंग और भ्रंश साथ साथ हो सकते हैं। दोषका स्पष्ट निदान सावधानीसे करनेकी जरूरत है।

चिकित्सा : टली हड्डी अपने स्वाभाविक जगह पर बैठा दी जाय। दूसरा काम उसे फिर टलने नहीं देना है। यह काम छीका पट्टीसे किया जा सकता है अथवा अस्थिभंगकी तरह अटल पट्टी बाँध कर भी यह किया जा सकता है।

पट्टी खुलनेके बाद उस जोड़से हल्की कसरत करायी जाय कि, वह स्वाभाविक रूपसे काम कर सके।

१४८५. क्षत : घाव (Wound)

देहके किसी भागमें भीतर या बाहर कटने, फटने या दबनेसे उसके सिलसिलेके टूट जानेका नाम क्षत या **घाव** है। घाव हल्का हो सकता है जिसके लिये विशेष चिंताकी आवश्यकता नहीं। तेज या भोथे हथियारकी चोटसे कठिन घाव भी हो सकता है।

यदि गिरने, चोट या रगड़से त्वचाकी ऊपरी सतह ही छिल गयी हो तो उसे **रगड़** या **अवदरण** (abration) कहते हैं। यदि कोई तेज हथियार चमड़ा काटता और आगे भी धँस गया हो तो उसे **कटनेका घाव** (incised wound) कहते हैं। भोथे औजारके क्षतको **चीथन** या **छिन्न-भिन्न क्षत** (lacerated wound) कहते हैं। इसमें चमड़ेके किनारे छिन्न-भिन्न होकर फटे रहते हैं। तेज मार या दबावसे हुआ क्षत कटनेकी तरह दिखायी पड़ सकता है। पर गौरसे देखने पर चीथा या छिन्न-भिन्न चमडा झलक जाता है। एक तरहकी चीथन अर्थात् भोथे और भारी अस्त्रके आघातमें भीतर अधिक चोट रहती है पर बाहरकी ओर थोड़ासा खून निकल सकता है। **इसे भीतरमार** (contused wound) कह सकते हैं। छुरी भोंकने या कोंचनेसे **छेदन-क्षत** (punctured wound) होता है। इसमें भीतरी रचना या गहराईमेंकी धमनियों और नाड़ियों पर भी क्षत हो सकता है। ये घाव भयानक हैं।

अस्थिभंगके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह घावके बारेमें भी सही है। प्रकृति तुरत ही मरम्मतका काम शुरू कर देती है। यदि किसी सुस्थ व्यक्तिकी त्वचा जीवाणुशुद्ध करके काटी जाय और तब कोथका बचाव करके पट्टी बाँध दी जाय तो कटे हुए दोनों छोर मिल जायेंगे और मरम्मतका काम तुरत शुरू हो जायगा।

तब घाव बिना पीब हुए भर जायगा। यह प्राकृतिक विधि है। कटे हुए दोनों किनारेसे एक उजला स्राव होता है जिससे दोनों किनारे जुड़ जाते हैं। इस जगह नये तंतु दोनों तरफसे निकलते हैं और आपसमें गुथ जाते हैं और इस तरह मरम्मत होती है। इस अवस्थामें यदि घाव फिर अलग कर दिया जाय तो उजले स्रावमें नया खून दिखायी पड़ेगा। और यह भी दिखाई पड़ेगा कि मरम्मतका काम बहुत आगे बढ़ चुका है। यदि कुछ और समयके बाद उसे चीरा जाय तो जहाँ पर कटा था वहाँ केवल एक उजली लकीर दिखायी देगी। कुछ और समयके बाद यह लकीर भी गायब हो जायगी। यदि त्वचाको जीवाणुशुद्ध किये बिना केवल उसके दोनों किनारे मिला दिये जायँ तब भी घाव पीब पड़े बिना भर सकता है। इसे **"प्रथम विधिसे घाव पुरना"** (healing by first intention) कहते हैं। पर यदि पूयकारी जीवाणु उसमें पहुँच जायँ और दोनों किनारे न जुड़े तो प्रथम विधिसे घाव भरना संभव नहीं। फिर भी प्रथम विधिसे घाव भर जानेका यह मतलब नहीं कि, पूयकारी जीवाणु बिलकुल हैं ही नहीं। वह वहाँ हैं। पर उनकी संख्या कम है और क्षत्रकण (श्वेत रक्तकण) उन्हें खा जाते हैं। शुद्ध रक्त और स्वास्थ्य भी बड़े कारण हैं। शक्ति क्षीण रहे तो दोनों छोर मिला देने और अकोथीय कर देने पर भी पीब हो सकती है।

जो घाव प्रथम विधिसे नहीं पूरते वह **द्वितीय विधिसे** (by second intention) पूरते माने जाते हैं। इसकी कई श्रेणियाँ हैं। घाव पूरनेमें कुछ व्रणीकरण (ulceration) हो सकता है या प्रदाह और व्रणीकरण या पीब (suppuration) हो सकती है।

यदि दोनों छोर मिलाकर कटी जगह बन्द कर दी जाय तो उसपर केवल बोरिक एसिड छिड़क पट्टी बाँधनेकी जरूरत है। या २०% बोरिक एसिडके संपृक्त घोलमें जीवाणु शुद्ध रुई भिगा, निचोड़ उस पर बाँधी जा सकती है। रुई पट्टीके सहारे अपनी जगह पर टिकायी जा सकती है। यदि घावमें गन्दगी हो तो उसे धोना और खून चलना बन्द कर देना चाहिये। यदि घाव ऐसा हो या गहरा अथवा चौड़ा हो कि, वह जरा दबाव देनेसे जुड़ न सके तो टाँका भर देना चाहिये। भीतरी मांसभी टाँक दिया जाय जिससे कि, त्वचाके दोनों भाग जुड़ जायँ। यह करनेके बाद घावको बोरिक रुईसे ढककर पट्टी कर दी जाय। पर यदि मांस या चमड़ा इतना कट गया हो कि, टाँकेसे काम न चले तो खाली

जगहमें बत्ती भरकर पट्टी की जाय। बत्ती बोरिक लोशन (घोल) में भिगा निचोड़ काममें लायी जाय।

ऐसी हालतमें प्रदाहके स्रावको बत्ती सोख लेगी। इसलिये वह (स्राव) भीतर भीतर सड़ नहीं पायेगा। घावमें बत्ती भरनेकी उपादेयता यही है। इसके बाद ऊपरी सतहमें जरासा घाव और आसपासका प्रदाह बचता है। पतला लोहाँ स्राव होता है और बत्ती निकालने पर जगह चमकदार मालूम होती है। घावमें छोटे छोटे दाने भर जाते हैं। इन्हें अंकुर (granulations) कहा जाता है। ये धीरे धीरे घाव भर देते हैं। इस विधिसे घाव भर जाता है और कुछ सौत्रिक तन्तु बनते हैं जिनसे किनारे जुड़ जाते हैं। एक चिह्न बच रहता है।

पर यदि गहरा और बड़ा घाव होने और पट्टी करनेके पहले ही प्रदाह होनेके कारण घाव भरे नहीं तो उग्र प्रदाह होता है जो कुछ दूर तक फैला रहता है है तथा पीब बहुत बहती है। कोथघ्न बत्ती से पट्टी करनेके बाद भी घाव क्रमशः बदसे बदतर हो जा सकता है। पक जा सकता है। जिसके कारण कोथीय विष (सेप्टिक इनटॉक्सिकेसन) या क्षय ज्वर हो सकता है, या वह इतना नहीं भी बढ़े। गले हुए तन्तु अलग हो सकते हैं, पीबका परिमाण धीरे धीरे घट सकना है और घावमें लाल अंकुर भर सकते हैं। यह भरनेका लक्षण हैं। यदि कारबोलिक घोल या आयडिन जैसे कोथघ्न, पूरी तौर पर हल्के (diluted) नहीं किये गये तो, उत्तापके कारण हो सकते हैं जिससे प्रथम विधिसे घाव नहीं भरेगा या द्वितीय विधिसे घाव भरनेमें देर लगेगी। बोरिक एसिड हल्का कोथघ्न है। यह उत्तापक बिलकुल नहीं है। यदि धोने, साफ करने और पट्टी बाँधनेमें कड़ी सतर्कता रक्खी गयी तो बोरिक एसिड तुरत घाव भरती है। पर गन्दे और खुले घावमें धनुष्टंकार और दूसरे सांघातिक कोथोंका निवारण करनेके लिये आयडिन लगानी होती है। पट्टी करनेमें बहुत हल्का आयडिन-घोल जिसमें उसके रंगकी झलक मात्र हो व्यवहार किया जाय। जहाँ बोरिक और आयडिन-घोल न मिले नीम का गरम पानी खुशीसे काममें लाया जाय।

घावकी चिकित्सामें पहली बात खून रोकना है। इसके बाद आघातका प्रभाव मिटानेके लिये एकांगी शून्यता या क्लोरल हाइड्रेटके मादक प्रभावसे काम लिया जाय।

१४८६. व्रण (Ulcer)

व्रण नया या पुराना उथला या अंगभीर घाव है। इसमें तन्तुओंकी बर्बादी होती है। यह भरना नहीं चाहता है। किसी क्षतमें निरंतर उत्ताप या किसी जीवाणुके कारण उसके भरनेमें रुकावटके कारण यह हो सकता है। क्षतग्रस्त भागमें रक्तसंचारकी कमीके कारण यह हो सकता है। व्रण क्षय जैसे विशेष कारणसे भी हो सकता है। यह बहुत कुछ गोल होता है। मध्यम कोमल या कठोर, चपटा या नतोदर हो सकता है।

चिकित्सा : कारण दूर करना इसकी चिकित्सा है। वह भाग जहाँतक हो सके अचल किया जाय। यदि खींच लगनेका डर हो तो उसे निवारण किया जाय। कोथघ्न औषधमिश्रित गरम जलसे सेंक (fomentation) देनेके बाद रुई की गद्दी हल्के दबावके साथ बाँधनेसे इसके पूरनेमें सहायता मिलती है। आयडोफॉर्मसे पट्टी करना लाभकारी है।

जब कष्टका कारण मिट जाय और अंकुरण अत्यधिक हो या अस्वास्थ्यकर हो तो उस जगह पर दाहक या कषाय लगाना चाहिये, जैसे कि तूतियाका हल्का घोल। छोटे व्रणको छुरीसे चीरना उत्तम है।

बायरकी विधि (Bier's Method) यह है कि, अंगके निकटवर्ती छोर पर पट्टी बाँध ग्रस्तभागकी शिराका अवरोध कर लिया जाय। इतना कसकर बाँधा जाय कि, शिराका रक्त तो वहाँ न जाय पर धमनीका रक्त आता रहे। एक मजबूत पट्टी उस अंगके चारों तरफ लपेटी जा सकती है। बन्धन इतना कड़ा न हो कि, दर्द होने लगे। वह इतना ढीला जरूर रहे कि, उसके नीचे एक उंगली घुसाई जा सके। पट्टीके दबावके कारण उसके नीचे का भाग सूज जाना चाहिये और साधारणसे जादा गरम हो जाना चाहिये। पर यदि पट्टी बहुत कस गयी तो पशुको दर्द होता है। वह बेचैन हो जाता, पसीना निकलता और वह भाग ठंढा हो जाता है। यह नहीं होने देना चाहिये।

इस चापका समय नित्य ४ से ६ घंटे हो। जैसे जैसे घाव भरे समय कम करते जाना चाहिये। जिस भागमें बन्धन नहीं लगाया जा सकता वहाँ सिंगी या तुंबी (cupping) लगायी जा सकती है। यह एक बारमें १० मिनटसे जादे नहीं लगायी जाय।

इस विधिसे कोथीय व्रणमें उल्लेखनीय सुधार होता है। विशेष रोगके कारण हुए व्रणमें विशेष चिकित्सा हो। एक अन्य विधि यह है कि, औषध मिश्रित गरम जलके भाफ या प्रतिउत्तापनसे वहाँ रक्तसंकुल करके प्रकृतिको व्रण भरनेमें सहायता दी जाय।

१४८७. स्फोटक : फोड़ा (Abscesses)

फोड़े गरम या उग्र, ठंढे या जीर्ण हो सकते हैं। ये उथले या गहरे हो सकते हैं। ये साधारण लक्षणके हो सकते हैं।

छूत शुरू होनेके ३ से ५ दिन बाद उग्र फोड़े निकलते हैं। इनकी एक आच्छादनी दीवाल होती है जिसके भीतर पीब भरी रहती है। यदि पीब बहुत दिन तक रह जाती है तो उसका तरलांश आचूषित हो जाता है और उसका ठोससा अंश पनीर की तरह होकर थोड़े दिनके बाद सौधित (calcified) अर्थात् सख्त हो जाता है। दीवाल प्रदाहित तन्तुओंकी बनी होती है। यह धीरे धीरे नरम हो जाती है और तब फोड़ा फट जाता है। यदि खुर जैसे किसी सख्त प्रतिरोधक तन्तुके कारण पीब बह नहीं पाती तो फोड़ा कमसे कम (अल्पतम) प्रतिरोधी तन्तुकी तरफ बढ़ता है कि, उसे बह निकलनेका मौका मिले।

उथला फोड़ा प्रदाहकी सूजनके रूपमें निकलता है। सूजनका मध्य धीरे धीरे नरम हो जाता है। उँगलीसे दबानेपर वह दबता और तरंगित होता है। यदि छोड़ दिया जाय तो मध्यमें पतला हो ऊँचा हो जाता है। इसके बाद वह फूट जाता है और पीब बहती है।

फोड़ेकी चिकित्सामें उसके पकानेका उपाय किया जाता है। जब वह पक जाता है तब फोड़ेको चीरकर उसके भीतरकी चीज निकाल दी जाती है।

फोड़ा पकानेके लिये भफाना (फोमेन्टेशन) या गरम लेप (पुल्टिस) उपयोगी है। यदि आचूषण होना सम्भव हो तो भफानेसे उसमें मदद मिलती है नहीं तो पीब हो जाती है। यदि दबानेसे दबे और तरंगित मालूम हो तो समझना चाहिये कि, पीब भर गयी है।

इसके बाद फोड़ेको चीर देते हैं। चीरनेके पहले कोथघ्न उपाय कर लेना होता है। चीरा पेशीकी लम्बाईमें लगाया जाता है। पर यदि गढ़हा या

सन्धि हुई तो आड़ा (अनुप्रस्थ) यदि धमनी कट जाय तो धमनी-चिमटीसे दाब कर रक्त बहना रोकना चाहिये। श्री साइमके उत्पलपत्र यन्त्र (Syme's lancet) अर्थात् छुरिका से काम लिया जाय।

चीरनेके लिये धार ऊपर करके छुरी पकड़ो और उसकी नोक फोड़ेके उभड़े और नरम भागमें घुसाओ। छुरीकी नोक फोड़ेके भीतर दूसरे छोरपर पहुँच जायगी। अब छुरी को खींचो कि चीरेके दोनों बिन्दु मिल जायँ। फाहे से
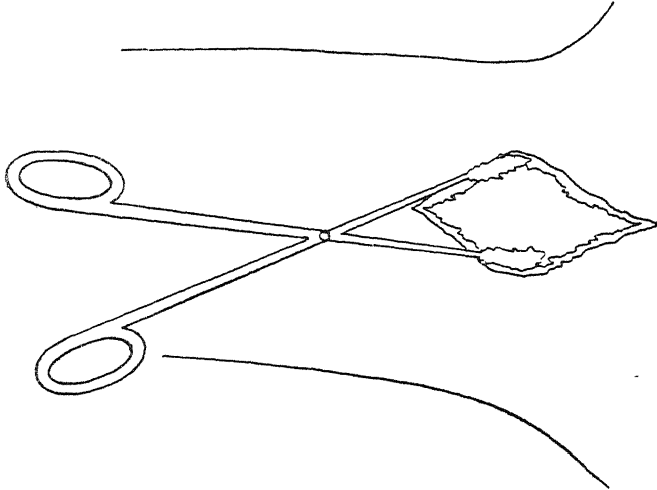
चित्र २००. चीरेको चौड़ा करनेके लिये रूई या बत्ती लगी पट्टी करनेवाली चिमटी।

पोंछ सारी पीब साफ करो। पट्टीसे एक टुकड़ा फांड़ गरम बोरिक-घोलमें डुबा कर निचोड़ो। इस तरह जीवाणुशुद्ध बत्ती फोड़ेके भीतर भरो। पट्टी बाँध घाव बन्द कर दो। नित्य घावकी पट्टी की जाय। जब वह भरने लगे तो बत्ती भरनेकी जरूरत नहीं।

ऐसी जगह जैसे कि, अङ्गोंके जोड़ जहाँ रक्तबहायें अनेक हों वहाँ चीरनेके पहले पीबके बारेमें निश्चय कर लो। चीरा त्वचाकी तहके बराबर लगाया जाय। चीरा गहरा नहीं होना चाहिये। क्योंकि, इससे भीतरी नसें कट सकती हैं।

पट्टी करनेवाली चिमटीकी नोकोंपर रुई लपेट चीरेमें उन्हें घुसा और हत्थेको फैलाकर चीरा चौड़ा किया जा सकता है।

गैंगरीन : गैंगरीन एक व्रण है। इसमें ग्रसित भाग मर जाता है। सूखी गैंगरीनमें ग्रसित भाग सफेद और पीला हो जाता है और छिटफुट बादामी रहता है। साधारण तौर पर मरनेके बाद देहका रङ्ग ढंग जैसा हो जाता इसमें वैसा ही होता है। चमड़ा ठंढा हो जाता है। वह अङ्ग काटने पर रक्तहीन दिखायी पड़ता है। रक्तके बिना ही वह विशुष्क और मृत हो जाता है। जल्दी ही त्वचा सिकुड़ती और काली पड़ जाती है। और व्रणीकरणसे इसका सरोकार सुस्थ तन्तुओंसे छूट जाता है। इसमेंसे सड़ायँध आती है। **गीली गैंगरीनमें** अङ्ग शिराके रक्तसे फूल जाता है। यह पहले प्रदाहित होता है। रक्तसंचार रुकने के ठीक पहले विचित्र तरहकी जलन मालूम होती है। धीरे धीरे अङ्ग ठंढे होने लगते और सड़ाँद शुरू होती है। हेमोग्लोबिन फैल जाती है और अङ्गका रंग लाल से बादामी और अन्तमें हरा और कालापन लिये हरा होता हैं। सड़ाँद की बुरी गन्ध आती है। त्वचा पच कर लिसलिसी हो जाती है और छूनेसे अलग हो जाती है। ग्रसित भागमें पूरी तरह या आंशिक रूपसे रक्तसंचारणका रुकना गैंगरीनका कारण है।

ग्रसित भागको काट डालना ही इसकी चिकित्सा है। गैंगरीन फैलने न पावे इसकी सावधानी रक्खो। इस अभिप्रायके लिये घावके चारों तरफ गरम पानीसे सेंको।

१४८८. गुदा या जरायुका भ्रंस (Prolapses)

गुदाका भ्रंस साधारण हो सकता है, अथवा गुदाके साथ स्थूलान्त्र भी निकल आ सकता है। गुदाके साथ स्थूलान्त्रका भीतरी भाग उलटते हुएभी बाहर आ सकता है।

पशुके शरीर का शिथिलीकरण या श्लथीकरण ही इसकी चिकित्सा है। ऐसा उपाय करना चाहिये कि पशुके अंग ढीले और शिथिल हो जायँ और तनाव तथा चाप नहीं रहे। सुषुम्नाप्रणालीमें शून्यक दवाकी सूई देकर या हल्के आक्रमणमें क्लोरल हाइड्रेड खिलाकर और साथही एकांगी शून्यक दवा लगाकर ऐसी शिथिलता पैदा

की जा सकती है। पशुको खड़ा रखा जा सकता है या उसे लिटाकर पीछे का भाग उठा रखा जा सकता है।

साधारण भ्रंसमें उसे हाथसे धीरे धीरे दाब चढ़ाया जा सकता है। पर यदि स्थूलान्त्र उसमें घुस उलट आया हो तो चतुरता के साथ उपाय करना होता है। श्लैष्मिक कलाको खींचने या ठेलने मात्रसे वह चिथ या फट जा सकती है। यदि स्थूलान्त्र उसकी तहमें घुस आता है तो उसे धीरे धीरे भीतर ठेलना होता है। यहि यह भ्रंस बहुत दिनका हो तो उसे चढ़ाना और बैठाना कठिन हो सकता है। गरमी या ठंढकका उपयोग करनेसे चढ़ानेमें मदद मिल सकती है। नहीं तो प्रवीण सरजनकी मदत लेनी होती है।

गायको प्रसवके बाद **जरायु** भ्रंस हो सकता है। यह भयंकर बात है। क्योंकि वह दर्दसे धरती पर छटपटानेमें इस कोमल अवयवको क्षत पहुँचा सकती है। पशुको क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये। अच्छा हो कि, सुषुम्ना प्रणाली की शून्यता की जाय। इससे उसका शरीर ढीला पड़ जायगा। तब वह जाँच करने देगी। यदि जरायुके निकले भागमें गँदगी लगी हो तो उसे एक गमलेमें रखो जिसमें रक्ततापकी गरमीवाला पानी है और उसे धोकर साफ करो। यदि कहीं कट गया है और टाँकेकी जरूरत है तो टाँका भर दो। तब एक जीवाणुशुद्ध तौलिया उसपर रख धीरे धीरे भगमें ठेलो। यह याद रखना चाहिये कि जरायु भंगुर होती है इसलिये सावधानीसे उसकी संभाल करो।

१४८६. अन्त्रवृद्धि : आँत उतरना (Hernia)

अन्त्रवृद्धिमें कोई भीतरी अवयव अपना स्वाभाविक स्थान छोड़ आगे को ठिल आता है। अन्त्रवृद्धि नाभिगत (umblical) या कुक्षिगत (inguinal) हो सकती हैं। अन्त्रवृद्धि जिस जगह होती है वहाँ कोमल स्थितिस्थापक सूजन होती है। गायको कभी कभी भगके एक किनारे अन्त्रवृद्धि होती है।

चिकित्सा : भ्रंसोंकी तरह आगे ठिले भागको अपनी जगह पर बैठाना होता है। इसके लिये सुषुम्नाप्रणाली की शून्यता या क्लोरल हाइड्रेटके साथ एकांगी शून्यकके प्रलेप द्वारा ढीलापन लाया जाता है। जब पूरा ढीलापन हो जाय तो उस अंगको धीरे धीरे और स्थिर (constant) दबाबके साथ भीतर ठेलो।

अन्त्रवृद्धिमें रोगीको विरेचन दो जिससे कि, मल नरम हो जाय। इससे भी आँतको अपने स्थानपर रहनेमें मदद मिलती है। कठिन रोगमें सरजनकी सहायता लो।

अध्याय ५७

कष्टसाध्य प्रसव : मूढ़गर्भ

(Difficult Labour : Dystokia)

१४६०. मूढ़गर्भ

गोपालकोंके लिये मूढ़गर्भ बड़े महत्वका विषय है। अन्य गृह-पशुओंकी अपेक्षा गायको प्रसवके समयकी यह गड़बड़ी अधिक होती है। कहा जाता है, घोड़ियोंमें एक मूढ़-गर्भके मुकाबिले गायोंमें दो होते हैं। पर इस अस्वाभाविक प्रसवके मामलेमें घोड़ीकी अपेक्षा गायको एक सुविधा है। गायका स्वभाव शांत और कफप्रधान (बलगमी) अर्थात् सुस्त है। इसलिये वह घोड़ीकी अपेक्षा मूढ़गर्भको अधिक अच्छी तरह सह सकती है। प्रसवके समय घोड़ी चंचल, उत्तेजित, अधीर और उद्दंड रहती है। इसलिये अस्वाभाविक प्रसवके समय वह अपनेको घायल कर ले, जरायु फाड़ाले, निज या बछेड़ेको ऐसा घायल करदे कि मृत्यु हो जाय यह भी संभव है। पर गाय धीर और सहिष्णु है। इसलिये चिकित्सा या सँभाल तथा उपचार करनेमें बाधा नहीं देती। इस हेतु बहुत कठिन अवस्थामें भी कुशलताके साथ चिकित्सा और उपचार करनेमें अधिकतर सफलता मिलती है। घोड़ीके अस्वाभाविक प्रसवमें उसका बछेड़ा ४ घंटेसे जादा नहीं जीता पर इसी हालतमें गायका बछरू ६ से ८ घंटे जीता रहता है।

पर अस्वाभाविक प्रसवमें हमें जो करना चाहिये वह इस धीर पशु, गायके लिये भी करनेमें हम असमर्थ हैं। शास्त्रीय उपाय, शून्यकोंके प्रयोग और हाथसे खींचने

या ठेलनेमें कुशलता और सावधानीके द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। ऐसे प्रसवके मामलेमें भेटेरिनरी सरजनकी मदद शायद ही मिलती है। यदि वह बुला भी लिया जाता है तो वह देखता है कि, अनाड़ी लोगोंने दुख मिटानेके अपने प्रयासमें गाय और उसके बच्चेकी ऐसी दुर्दशा कर दी है कि, अब कोई उपाय हो नहीं सकता।

यदि धात्रीविद्या या प्रसवकलाका साधारण ज्ञान किसीको हो तो वह कुछ अति सरल औजारोंकी सहायतासे बहुत कुछ कर सकता है। वह औजार ये हैं। रस्सियाँ, अंकुसी, दँतालीके तरहकी क्रच (बैसाखी) या पीछेकी ओर ठेलनेवाला यंत्र, कलम बनानेकी छुरी आदि। इन्हें आवश्यकताके लिये तैयार रक्खा जाय कि तुरत ही साफ और जीवाणुशुद्ध किये जा सकें।

१४६१. मूढ़गर्भोंका वर्गीकरण

मूढ़गर्भके ये कारण हो सकते हैं :—

(क) **माताके दोष**, जैसे कि संकुचित श्रोणि, जरायुकी स्थानच्युति या अन्य परिवर्तन, नारका उल्टी जगह होना आदि।

(ख) **भ्रूणके दोष**, जैसे कि अतिरिक्त आकार, कदाकृति, विकटाकृति, रोग और जुड़वाँ (यमल)।

(ग) अस्वाभाविक उदय। इसका वर्गीकरण है **अगला (अग्रवर्त्ती)**, **पिछला (पश्चाद्वर्त्ती)** और **टेढ़ा (अनुप्रस्थ)**। इन तीनों तरहसे प्रसव होनेमें भ्रूणकी भिन्न भिन्न स्थिति हो सकती है जिससे उसमें कम या जादे कठिनाई होती है।

मूढ़गर्भके भिन्न भिन्न रूप क्रमसे आगे लिखे गये हैं। यह भी बताया गया है कि, इनसे उत्पन्न परिस्थितियोंमें क्या किया जाय।

१४६२. मूढ़गर्भका निदान

पशु-चिकित्सक आनेके साथ सभी प्राप्य सूचनायें जानले। वह नीचे लिखी बातोंके बारेमें विशेषकर पूछे :—

(१) पीर या वेदना कबसे शुरू हुई?

(२) क्या गर्भोदक का थैला (वाटर बैग) फट गया है और हाँ, तो कितनी देर पहले ?

(३) क्या यह पहला प्रसव है, यदि नहीं तो क्या पहले प्रसव स्वाभाविक हुए थे ?

इसके बाद वह पशुकी परीक्षा करे। वह बाँह और पहुँचा कोथघ्न घोलमें धोले और कारबोलिक एसिड मिश्रित तेल या भैसलिन, अथवा लायसल-साबुनके घोल से पहुँचेके पृष्ठभाग और बाँहको चिकनावे। इससे दोहरा फायदा होता है। चिकित्सकके हाथकी छूतसे रक्षा होती है और वह चिकनाभी हो जाता है। हो सके तो गायकी परीक्षा खड़ी करके करनी चाहिये। निश्चल रखनेके लिये उसका सिर (सींग) मजबूतीसे पकड़ो। एक पैर उठा देना चाहिये अथवा पिछले पैर छान देना चाहिये कि वह दुलत्ती न मारे। परीक्षाके पहले गुदा और वस्ति (मूत्राशय) साफ कर लेनेसे आसानी होती है।

१४६३. (क) माताके दोष : जरायुके दोषसे मूढ़गर्भ (Uterine Dystokia)

यदि भग खाली हो तो चिकित्सक देखे कि, जरायु और इसके सम्बन्धमें तो कोई गड़बड़ी नहीं है। यह भी अन्दाज लगावे कि श्रोणि का द्वार स्वाभाविक ही है अथवा संकुचित या किसी वाह्यवृद्धिसे अवरुद्ध तो नहीं हो गया है। यदि भ्रूण मार्गमें आ चुका है तो वह पता लगावे कि, बच्चेमें तो कोई विकृति नहीं है। रुके प्रसवमें वह यह पता लगावे कि जरायु टेढ़ी तो नहीं हो गयी है या जरायुभ्रंसता (uterine hernia) तो नहीं है। जरायुभ्रंसता अंतःपरीक्षाके पहले बाहरसे भी देखी जा सकती है।

जब वह देखे कि, श्रोणिकी रचना या बछरूकी असाधारण दीर्घता अथवा बिकटाकृतिके कारण मार्ग बहुत संकीर्ण है तो सोचे कि, क्या दबा और निचोड़ कर भ्रूण निकाला जा सकता है या उसे बाहर करनेके लिये भ्रूणोच्छेदन (embryotomy) करना होगा।

यदि **जरायु टेढ़ी** (torsion of the uterus) हो गयी हो तो हाथको उसकी ग्रीवातक घुसा टेढ़ेपन या ऐंठन की दिशा जाननी चाहिये। एक या दूसरी तरफ गायकी करवट फेरकर यह टेढ़ापन सही किया जा सकता है। उस समय

हाथ जरायुकी ग्रीवामें ही रक्खा जाय और करवट सहायक लोग फिरावें। यदि किसी तरफकी करवट टेढ़ापन और बढ़ाती हो तो दूसरी करवट फिरायी जाय कि टेढ़ापन सही हो जाय। इस सरल उपायसे अनेकों बार गायकी जान बच जाती है। पर यदि टेढ़ापन ठीक नहीं हो सके तो जरायुके मुँह-बन्द थैलेमें बच्चा और माता दोनोंकी जान जाती है। जरायु टेढ़ा होना भयंकर दुर्घटना है। तो भी समय पर उचित उपाय करनेसे माता और बच्चा दोनोंके प्राण बच जाते हैं।

यदि जरायु-भ्रंस है तो तह किया हुआ एक चौड़ा कपड़ा पेट के तले में लगाकर पीठकी ओर खींचा जाय। इससे बहुधा जरायुका मुँह और भग एक सीधमें हो जाते हैं। तब स्वाभाविक प्रसव हो जाता है।

जरायुके अन्य दोषसे भी प्रसव कष्टकारी हो जाता है। जरायुकी गरदन बहुत कड़ी हो सकती है। वह प्रसव-पीड़ाके दबावसे नहीं खुलती। ऐसी हालतमें प्रकृति अधिकतर बाधा दूर करती है। प्रसव-पीड़ा दो से तीन दिनों तक रह सकती है। अन्तमें दबावसे मुँह फैलने लगता है।

पर यदि ५ या ६ घंटे लगातार जोरकी पीर (पीड़ा) हो और जरायुका मुँह न खुले तो कुछ करना जरूरी है। गायको मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये जिससे वह ढीली पड़े। १० मिनट पर गरम पानीमें डुबाया कम्बल निचोड़ कर उसकी पीठ पर ओढ़ाना चाहिये। **बेलाडोनाका (धतूरा)** हरा सत्त जरायुकी ग्रीवाके पास पोतना या जरायुके मुँहके भीतर डालना चाहिये। इससे मुँह फैलता है। क्लोरल हाइड्रेट, प्रसव-पीड़ामें स्वाभाविक तौर पर बीच बीचमें होने वाले आकुंचनको रोके बिना, कष्ट से त्राण देता है। बेलाडोना मुँहकी फड़कन (आक्षेप) रोकता और उसे फैलाता है। यदि इससे सफलता न मिले तो कोई शून्यक लगानेसे काम निकल सकता है। यदि यह भी असफल रहे तो शंक्वाकृतिमें उँगलियाँ भीतर डाली जायँ। यदि मुँह इतना बड़ा न हो कि, सभी उँगलियाँ जा सकें तो पहले एक उँगली घुसायी जाय इसके बाद दूसरी और इसी तरह सभी, अन्तमें हाथ ही घुसेड़ दिया जाय। इस काममें बहुत समय और धीरजकी आवश्यकता है। मुँह फैलानेके लिये यन्त्रोंसे भी सहायता ली जाती है। जरायु प्रसारक भीतर घुसेड़ा जाता है। इसमें बाहरसे पानी पंपसे भरते हैं जिससे वह रबरका थैला (जरायु प्रसारक) फैलता है जो अन्तमें जरायुका मुँह फैला देता है। वस्ति-द्वारा पानी चढ़ानेसे भी गायकी जरायुका मुख फैल सकता है।

१४६४. (ख) भ्रूणके दोषसे मूढ़गर्भ (Fœtal Dystokia)

अन्तर परीक्षासे यह पता चल सकता है कि, श्रोणि, प्रजनन-मार्ग और जरायुमें कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है। कठिनाई भ्रूणके कारण ही है। यह गड़बड़ी भी भ्रूणके उदयमें न होकर भ्रूण बच्चे ही में हो सकती है।

बच्चेके दोषसे मूढ़गर्भ : नार भ्रूणके किसी अंगमें लिपटी हो सकती है जिसके कारण उसकी राहमें बाधा आ पड़ी है। इस मामलेमें अधिक सावधानीसे जाँच करने पर पता चलेगा कि, गड़बड़ी है कहाँ। उपायसे यह दोष भी तुरत सुधर सकता है।

योनि-मार्गसे कहीं बड़ा बछरू होनेसे भी कठिनाई हो सकती है। इस संकटसे मुकाबला करनेके लिये राह को चिकनाना होता है। खींचने या हटानेके लिये अथवा सही करके खीचनेके लिये भ्रूण पर जोर लगाना होता है। जब सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं तो अन्तिम उपाय भ्रूणोच्छेदन (embryotomy) ही करना पड़ता है।

बछरूका सिर बहुत बड़ा हो सकता है। बछरू विकटाकार या विकृताङ्ग हो सकता है। अर्थात् उसके अंग टेढ़े मेढ़े, बड़े या उलटे पलटे हो सकते हैं। कोखमें एकसे अधिक बछरू हो सकते हैं। या दो बछरुओंके अंग आपसमें बुरी तरह गुथे हो सकते हैं। इन सभी मामलोंमें ऐसे कुशलता पूर्ण प्रयास किये जायँ जिससे कि, यान्त्रिक सहायता सहित या रहित प्रसव हो जाय।

प्रायः ऐसा होता है कि, छोटे आकारकी गाय बड़े सिरवाले साँढ़से फल जाती है। इससे कठिनाई होती है। जन्मके समय बछरूका आकार अधिकतर माँ के आकार पर निर्भर है। पर अन्योंका मत है कि, बछरूके आकार-निर्माणमें माताका ६६ सैकड़ा हाथ है। चाहे जो हो, पर साँढ़के किसी न किसी अंगकी विचित्रताका प्रभाव बछरू पर पड़ना जरूरी है। यदि जनकका सिर बहुत बड़ा हुआ तो प्रसवकालमें खतरा हो सकता है। (१०४२ : खंड १)

१४६५. (ग) अस्वाभाविक उदयसे मूढ़गर्भ
(Dystokia due to Abnormal Presentation)

स्वाभाविक तौर पर प्रसवके समय श्रोणि-छेद पर बच्चा अपनी जननीके शरीरके समानान्तर रहता है। उसका सिर श्रोणिकी ओर रहता है।

और दोनों अगले पैर बाहरकी ओर निकले रहते हैं। स्वाभाविक प्रसवमें पीरें आनेपर पुरैनके बाहर जब बच्चा होता है तब वह श्रोणिकी ओर ठिलता है। थोड़ी देरके बाद जरायु सिकुड़ने लगती है कि बच्चा बाहर निकले। तब उसके दोनों अगले पैर भगमें प्रगट होते हैं। इसके बाद थूथन निकलता है और फिर धीरे धीरे सारा प्रलंवित शरीर निकल पड़ता है।

बछरूका उदय गलत रूपमें हो सकता है। ऐसे अस्वाभाविक उदय कई प्रकारके हो सकते हैं जिनके कारण कठिनाई होती है।

श्रोणिपर बछरू आवे उस समय उसकी लंबी धुरी देहकी लंबी धुरीके समानान्तर हो सकती है। या आड़ी भी हो जा सकती है। पहली अवस्थामें उसका कोई छोर आगे हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें उदय (१) **अग्रवर्त्ती** (Anterior) हो सकता है, इसमें देहका अगला छोर श्रोणि पर पहले आता है। अथवा वह (२) **पश्चाद्वर्त्ती** (Posterior) हो सकता है, इसमें बच्चेका पिछला छोर श्रोणिकी ओर रहता है। तीसरा उदय (३) **अनुप्रस्थ** (Transverse) है जो (क) **पृष्ठीय** या पृष्ठकटीय (Dorsal) हो सकता है जिसमें पीठकी तरफका भाग अथवा (ख) **उदरीय** (Ventral) जिसमें पेटकी ओरका भाग और कुछ अंग वस्तिकी ओर रहते हैं।

१४९६. (१) अग्रवर्त्ती उदय
(क) टखने अटकना।

अग्रवर्त्ती उदयमें तना हुआ सिर और अगले पैर श्रोणिद्वारकी ओर रहते हैं।

भीतरी जाँचसे यह पता चलेगा कि, अगला भाग स्वाभाविक है और अगले पैर और सिर बाहर निकल आये हैं। पर पिछले पैर जब तनते हैं तब उनके टखनोंकी जोड़ी जो इतनी बड़ी होती है कि, भगसे सारा धड़ निकल जानेपर भी अटक जाती है, बच्चे का निकलना बिलकुल रोक देती है। इसलिये बच्चा स्वाभाविक ढंगसे नहीं निकल पाता। यह रुकावट सांघातिक सिद्ध होती है। और केवल खींचनेसे भ्रूण श्रोणिमें और जकड़ जा सकता है। ऐसी स्थितिमें बच्चेसे हाथ धोना होता है और कभी कभी माता से भी।

पहले भ्रूणको ठेलनेकी कोशिश हो और तब हाथसे टखनोंको तिरछा किया जाय। और तब उन्हें तिरछा खींचकर श्रोणिसे पार कर सकते हैं।

अन्तिम उपाय भ्रूणोच्छेदन करना होता है।

१४६७. (१) अग्रवर्ती उदय
(ख) पिछले पैर पेटके नीचे मुड़े रहें और वैसी हालतमें प्रजनन-मार्गमें घुस आवें।

यह त्रुटिपूर्ण उदय बहुत कम होता है और जब होता है तो अत्यन्त कठिन। देह कमरपरसे झुक जाती है और पिछले पैर, सिर तथा अगले पैरके साथ श्रोणिमार्गमें आगे आ फँस जाते हैं।

पहले कुछ गड़बड़ी नहीं मालूम होती। सिर भगसे निकल आता है। इसके बाद रुक जाता है। आगे बढ़ना जराभी संभव नहीं। जरायु बच्चेको ठेलनेके लिये जितना जोर लगाती है वह उतना ही अटकता है। खींचनेसे मामला और बिगड़ता है। क्योंकि, वस्तिमार्गमें इससे बच्चा और कसता जाता है।

हाथ घुसेड़कर पशुचिकित्सक एक या दोनों पिछले पैरोंको श्रोणिमें देख सकता है। पर इस तरह जकड़बन्द हो जानेपर हाथ पहुँचनाभी कठिन है। इस हालतमें खींचनेसे माता और बच्चा दोनों की जान से हाथ धोना पड़ेगा।

बच्चेको जरायुमें फिर ठेल देना चाहिये और तब एक एक कर पिछले पैरोंको भी पीछे हटाना चाहिये। इसके लिये रिपेलर (repeller) का उपयोग करना होता है। साधारण तौर पर बच्चा मर जाता है तब अनेक अवसरों पर भ्रूणोच्छेदन करना होता है।

१४६८. (१) अग्रवर्ती उदय
(ग) अगली टाँगका गरदनपर चढ़ना।

साधारण तौर पर अगली एक टाँग गरदन पर चढ़ी रहती है। दोनों रह सकती हैं पर ऐसा बहुत कम होता है। इस स्थितिमें कड़ी प्रसव पीड़ामें पैरोंसे भग छिल सकती है और गुदामें भी छेद हो सकता है। उदर्या फट सकती है।

यदि भ्रूण आगे बढ़ नहीं आया है तो हाथ घुसाकर पैर पकड़ो और उसे खींचकर सही हालतमें कर दो। यदि दोनों पैर चढ़ गये हों तो टखनोंको पकड़

उनमें रस्सी बाँधो और सिरको पीछे ठेलो। साधारण तौर पर इससे भ्रूणकी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है। तब सिरको खींचकर श्रोणिमार्गमें लाना चाहिये।
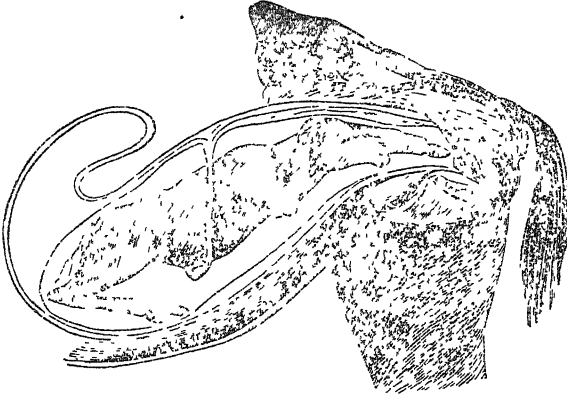
चित्र २०१. अग्रवर्ती उदय : अगली टाँगका गरदन पर चढ़ना।

१४६६. (१) अग्रवर्ती उदय
(घ) अगले पैर पूरी तरह तने न रहें।

यह अस्वाभाविकता गायमें बहुधा होती है। इसमें पैर साधारण ढंगसे सिरके साथ आगे नहीं बढ़ते। इसमें कुहनी छातीके सामने पड़ती है। इसलिये श्रोणिद्वारकी साधारण चौड़ाईसे यह जादे हो जाती है। ये वहीं अटक जाते हैं। जब नाक और खुर एक साथ निकलें तो इसे खतरेका सिगनल मानो कि, सभी मामला चौकस नहीं है। नाक पैरसे आगे भी हो सकती है।

यदि देह कस न गयी हो तो इस उदयको सुधारके लिये बच्चेका सिर जरायुमें ठेल दो। पैरमें रस्सी बाँधकर उन्हें भी सिरके साथ जाने दो। सिरको पीछे ठेले रख उस रस्सीको खींचनेसे पैर सीधे हो जाते हैं। तब प्रसव स्वाभाविक हो जाता है।

यदि बच्चा कस गया है तो बलसे ठेलकर सुधारकी कोशिश हो। यदि बछरू मर गया है और सिर काफी निकल आया है तो सिर काट कर देहको पीछे ठेलो तब पैर सीधा करके बाहर निकाल लो।
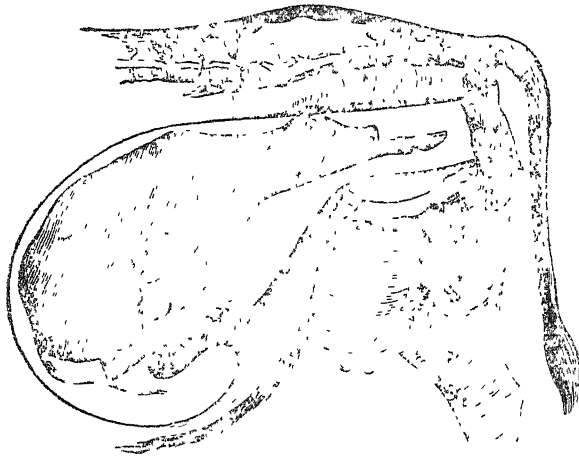
चित्र २०२. अग्रवर्ती उदय : एक अगली टाँग पूरी तरह भीतर रह गयी है।

१५००. (१) अग्रवर्ती उदय
(ङ) दोनों पैर पूरी तरह भीतर रह जायँ।

यदि सिर बाहर निकल आवे और एक या दोनों पैर साथ नहीं आवें तो स्थिति भयंकर हो जाती है। इस अवस्थामें टाँगें पूरी तरह मुड़ी रहती हैं। इससे छाती और कन्धेका व्यास इतना बड़ा हो जाता है कि बच्चेका बाहर निकल आना किसी तरह संभव नहीं। मुड़ी टाँगके लिये जो उपाय है वही किया जाय। देह पीछे ठेली जाय और टाँगोंको पकड़ रस्सी बाँध खींचा जाय। जरूरत हो तो रिपेलरसे सिरको ठिला रख दोनों टाँगें बाहर खींच ली जायँ।

यदि बच्चा जोरसे कस गया है तो भ्रूणोच्छेदन करना जरूरी है।
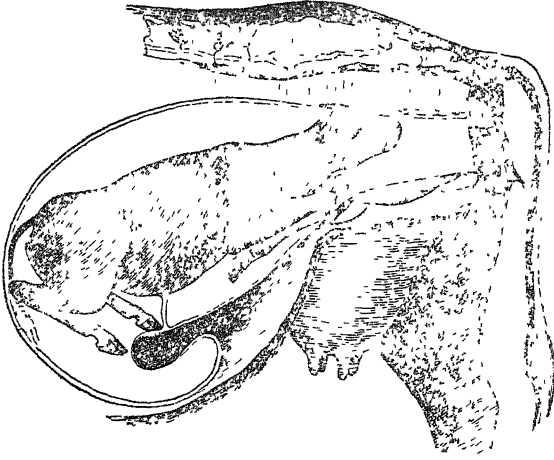
चित्र २०३. अग्रवर्ती उदय : दोनों अगले पैर घुटने पर मुड़ भीतर रह गये हैं।

१५०१. (१) अग्रवर्ती उदय
(च) सिरकी अस्वाभाविक स्थिति।

सिर अकेला ही अस्वाभाविक स्थिति में हो सकता है अथवा अगले पैरोंकी अस्वाभाविक स्थिति भी साथ साथ हो सकती है।

सिर नीचेकी ओर घूमा रहता है। ऐसी हालतमें नाक क्लोमके पास पहुँच जाती है। इसके सुधारके लिये हाथ डालकर नाक मुट्ठीसे पकड़ो और बाहरकी ओर खींचकर स्वाभाविक स्थिति पर ले आओ। यदि थोड़ा बहुत कस गया हो तो जबड़े पर फन्दा डाल बाहर खींचो और सिरको पीछे ठेलो। इस तरह सिरका झुकाव सुधर जायगा।
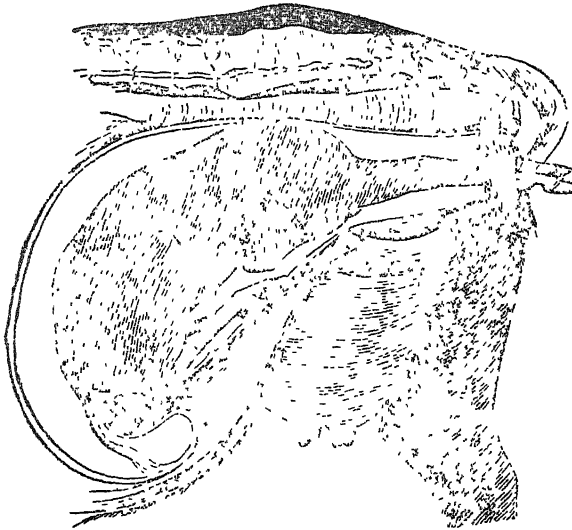
चित्र २०४. अग्रवर्ती उदय : सिरका एकदमसे नीचे झुकना।

१५०२. (१) अग्रवर्ती उदय
(छ) सिरका बगलमें घूमना।

इस तरहका टेढ़ापन सांघातिक होता है। जरायुके आकुंचन और ठेलावके चापसे प्रत्येक आकुंचन पर टेढ़ापन और बढ़ता है। सिर भीतर ही रह सकता है और पैर बाहर निकल सकते हैं। ऐसी हालतमें सिरकी स्थिति ठीक करना जरूरी है। क्योंकि, मुड़ा सिर श्रोणिसे किसी प्रकार पार नहीं हो सकता। बच्चेको पीछे ठेल जबड़ेको पकड़ या फन्देमें कस खींचो और सिरको सीधा करो।
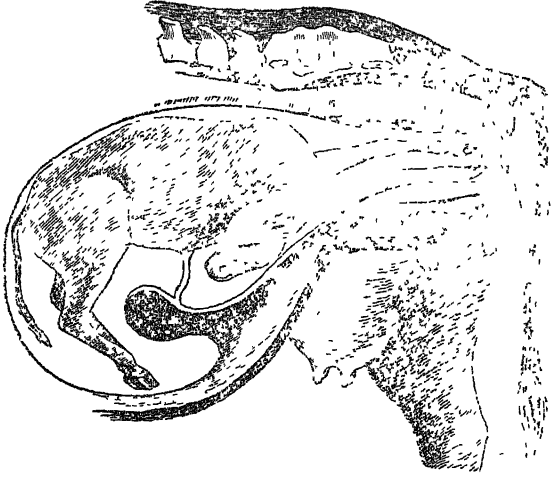
चित्र २०५. अग्रवर्ती उदय : सिर और गर्दनका भीतर रह जाना ।
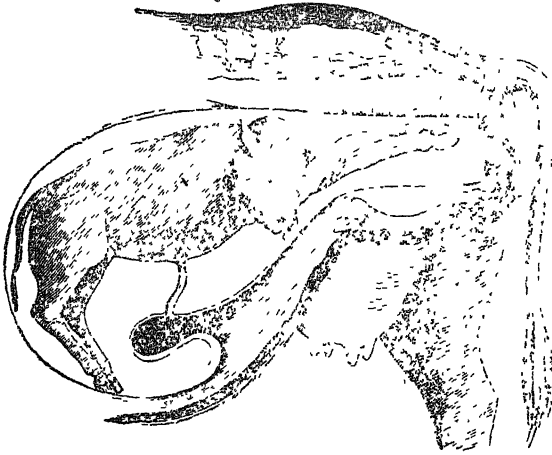
चित्र २०६. अग्रवर्ती उदय : सिरका ऊपरकी ओर बगली घुमाव ।
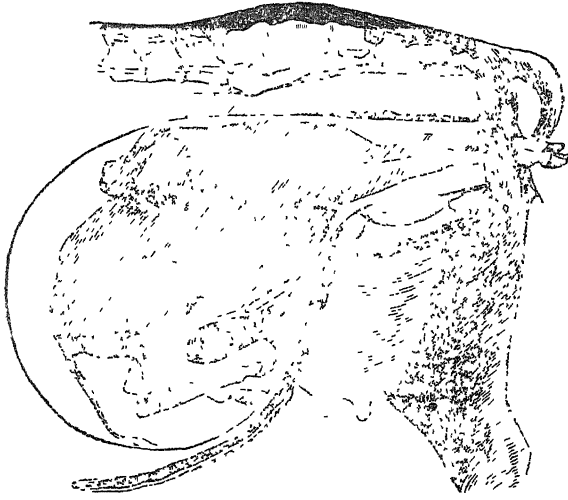
चित्र २०७. अग्रवर्ती उदय : सिरका पीछे और ऊपरकी तरफका घुमाव ।

१५०३. (२) पश्चाद्वर्ती उदय

पश्चाद्वर्ती उदयमें पहले पिछला भाग श्रोणि-मार्गकी ओर आता है । यदि दोनों पिछले पैर ठीक उसी स्थितिमें हो जायँ जिसमें स्वाभाविक ढंगसे अगले पैर हुआ करते हैं तो स्वाभाविक प्रसव हो सकता है । दोनों पिछले पैर रास्ता खोलनेवाले शंकुका काम करते हैं और इस तरह फैले मार्गमें पिछला धड़ आ जाता है । पर इस सरल स्थितिमें भी कई उलट फेर होते हैं । ऐसी हालत हो सकती है जिसमें बछरू श्रोणि मार्गमें केवल पश्चाद्वर्ती स्थितिमें ही नहीं ठिलता उल्टा भी हो जाता है । अर्थात् बछरूका पेट माताकी रीढ़ की ओर हो जाता है । यह कठिन स्थिति है । बछरूकी देहमें ऐसा घुमाव (बक्रता) हो जाता है जो श्रोणिमार्गके घुमाव (वक्रता) से उल्टा है । इससे कठिनाई होती है ।

पश्चाद्वर्ती उदयमें वह सभी अस्वाभाविकतायें हो सकती हैं जो अग्रवर्ती उदयमें हुआ करती हैं। सिर एक या दूसरी तरफ मुड़ सकता है। पैर भी मुड़ सकते हैं जिससे रुकावट होती है। बछरूको जरायुकी ओर ठेल और खींचकर इसका सुधार किया जा सकता है।

१५०४. (२) क. पश्चाद्वर्ती पिछले घुटने और चूतड़का उदय

पश्चाद्वर्ती उदयमें श्रोणिमार्गमें बछरूकी स्थिति कटिपुच्छ (lumbo-sacral) हो सकती है। इस स्थितिमें पिछले पैर पूरे फैले नहीं भी हो सकते हैं। ऐसा होनेपर पिछले घुटनेका उदय कहा जाता है। अगले पैर और सिरके बदले इसमें पिछला धड़ (पुट्ठे) और मुड़ा हुआ पिछला घुटना निकलता है और मार्गमें फँस जाता
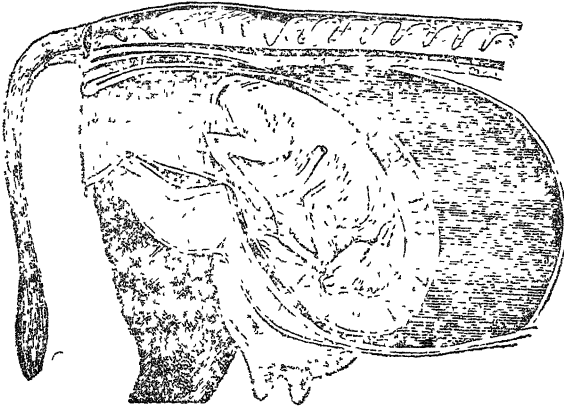
चित्र २०८. जंघा और पिछले धड़का उदय।

है। केवल खींचनेसे भग छिल और बादमें फट सकती है। यदि इसमें एकबार पिछली धड़ (पुट्ठे) फँस जाय तो उसे भीतर ठेलना भी कठिन है। माता और बच्चा दोनों मर सकते हैं। भीतर ठेलनेकी कोशिश करो और स्थिति सुधार पिछले पैरोंको सीधी हालतमें बाहर लाओ। बछरूको भीतर ठेल उसे रिपेलरकी मददसे उसी हालतमें रक्खो और पिछले घुटनेमें रस्सी बाँध पिछले पैरोंको बाहर खींचो।

चूतड़ आगे आनेकी स्थितिमें पिछला घुटना मुड़ा रहनेके बदले खुला रहता है। पिछले घुटनेके उदयकी अपेक्षा यह स्थिति अधिक भयंकर है। क्योंकि इसमें श्रोणिमें जाकर चूतड़ और पुट्ठेके अटकनेकी अधिक संभावना है। पिछले घुटनेके उदयमें जैसा होता है बहुत कुछ उसी ढंगका उपाय करना चाहिये।

१५०५. (३) अनुप्रस्थ उदय

अनुप्रस्थ उदयमें पश्चाद्वर्ती और अग्रवर्ती उदयकी तरह बछरूकी लंबाईमें उदय नहीं होता। वह आड़ा हो जाता है।

१५०६. (३) क. अनुप्रस्थ : कटि-पृष्ठ उदय

इस उदयमें भगमें कुछ प्रगट नहीं होता यद्यपि पुरैन फट चुकी रहती है। इस स्थितिमें भ्रूणकी पीठ वस्तिद्वारकी ओर रहती है और दोनों जोड़ी पैर उसकी उल्टी दिशामें। भीतरी जाँचमें केवल बछरूकी गोलसी पीठ मालूम पड़ती है। सिर और पैरके पास हाथ नहीं पहुँच सकता और न वह छुए जा सकते हैं।
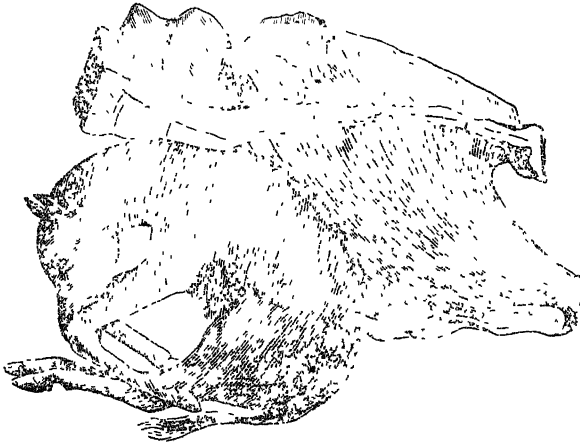
चित्र २०९. पृष्ठीय अनुप्रस्थ उदय।

ऐसे मामले बहुत कम होते हैं पर यदि तुरत ही उपाय किया जाय तो माता बच्चा दोनोंकी जान बचायी जा सकती है। इस स्थितिमें जरायुके आकुंचनका जोर

चाहे कितना ही हो भ्रूण श्रोणिमें घुस नहीं सकता। इसलिये अटक भी नहीं सकता।

भ्रूण श्रोणिमार्गके बाहर रहता है इसलिये उसे ठेलकर घुमाओ और अग्रवर्ती या पश्चाद्वर्ती जो स्थिति भी सुगम हो उसमें लाओ। मार्गको चिकना दो। पीछे अर्थात् भीतर ठेलो और साथ साथ ऐसा उपाय करो कि, चाहा भाग श्रोणिकी ओर हो जाय।

१५०७. (३) ख. अनुप्रस्थ : वक्षोदर उदय

इस स्थितिमें साधारणतः एक या सभी पैर प्रजनन-मार्गमें चले आते हैं। वह भगके बाहर निकल उसमें रुँध सकते हैं। पहले बताये उदयकी तरह इसमें भी भ्रूण श्रोणिमार्गमें नहीं रुँध सकता। अभ्यंतर परीक्षामें सिर छुआ जा सकता है। परीक्षासे देहके अन्य भागोंकी स्थितिका भी पता चल सकता है जिससे क्या करना चाहिये यह निर्णय करनेमें मदद मिल सकती है।
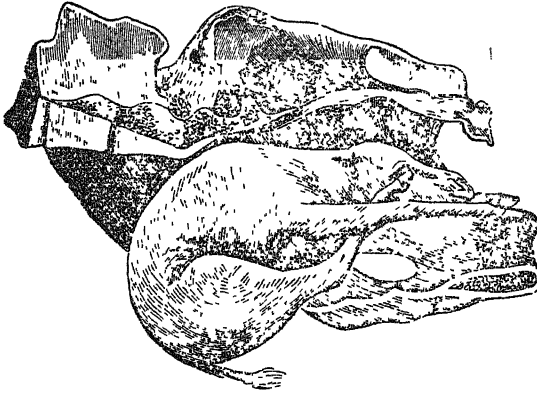
चित्र २१०. अनुप्रस्थ उदय : नाक और चारों पैर निकल रहे हैं।

अति कठिन उदयोंमें यह भी एक है। पर पूर्व वर्णितसे कम दुखदायी है। पीछे ठेल और घुमाकर और खास कर तिरछा खींचकर स्थिति बदली जा सकती है। बहुत दूर पीछे ठेलनेमें खतरा है। क्योंकि पैर जरायुकी दीवालमें लग उसे फाड़ सकते हैं।

१५०८. मूढ़गर्भ या कष्टसाध्य प्रसवमें सतर्कता और हस्तकौशल

जिस गायको बहुत देरसे पीर (प्रसव-व्यथा) हो रही हो उसे देखनेके लिये जब डाक्टर बुलाया जाता है तब बहुत संभव है कि, वह आकर यह पावे कि, माता और बच्चा दोनोंको बचा लेनेकी अवस्था बीत चुकी है। बछरू या तो मर चुका रहता है या वह इस तरह अटका रहता है कि, उसके बचानेका कोई उपाय शेष नहीं रहता। तब चिन्ताका विषय केवल माता रह जाती है। इतने पर भी अधिक कुछ करना संभव नहीं भी हो सकता है। कारण यह है कि गाँवमें जब तक भेटेरिनरी सरजन पहुँचे तब तक इतनी देर हो जाती है और लोग प्रसव करानेकी कोशिशमें इतनी गड़बड़ी कर डालते हैं कि कुछ किया नहीं जा सकता। प्रत्येक गाँव या कुछ गाँवोंके बीच एक ऐसा आदमी रहना चाहिये जो प्रसव करानेके हस्त कौशलके बारेमें कुछ जानता हो। ऐसे आदमी चाहे जो करें पर उन्हें भरोसा रहता है कि, ऐसी हालातमें जो अच्छे से अच्छा हो सकता है वही वह कर रहे हैं। और बात भी यही है। वह और अधिक नहीं जानते यह उनका दोष नहीं है। जहाँ वह कुछ कर नहीं पाते वहाँ हताश पशुपालक पासके व्यापारी केन्द्र या कसबेमें जाता है। वहाँ भेटेरिनरी सरजन मिल सकते हैं। जो आदमी प्रसव-पीड़ाके समय गायकी सेवा करनेका प्रयासी है और इसी अभिप्रायसे इस विषयका शास्त्रीय अध्ययन करता है, वह दूरके पासशुदा शहरी सरजनसे अपने कार्यक्षेत्रके गाँव और आसपासके गाँवोंमें कहीं जादे काम कर सकता है। समयका भी मूल्य बहुत है। सहायता समय पर मिले तभी काम की हो सकती है।

गाँवमें रहनेवाला धात्रीकलाविद् समय पर नहीं भी बुलाया जा सकता है। ऐसी हालतमें तबतक जो बुराई होनेकी है हो चुकती है। बच्चा टेढ़ा हो जाय तो वह श्रोणिमें कस और फँस जाता है। हाँ, अनुप्रस्थ उदयकी बात दूसरी है। इसमें श्रोणिमें भ्रूण-शरीरका कोई भाग जा ही नहीं सकता। क्योंकि अनुप्रस्थ उदयके लिये श्रोणि-छेदसे बड़ा धरातल सामने आता है। जब पुरैन फट जाय, जो प्रायः फट जाया करती है, और उसका पानी बाहर बह जाय तो संलग्न भाग सूखे और चिपचिपे मालूम होंगे।

१५०९. चिकनानेवाला द्रव

यदि पुरैन (गर्भोदक-थैली) फट गयी है, तो आभ्यान्तिरक परीक्षाके पहले भग और जहाँतक हाथ जा सके कोई चिकनानेवाला तरल द्रव लगा देना पहला काम होगा। सबसे उपयुक्त वस्तु अलसीका लस्सा है। अलसीका लस्सा अलसीको पानीमें उबालकर बनाया जाता है। पानी जेली या लप्सी की तरह हो जाता है जिसमें बीज उलझे रहते हैं। इसे कपड़ेसे छान लेते हैं। ठंढी होने पर यह जेली कामके लिये तैयार हो जाती है। एक रोगीके लिये ४ या ५ गैलन जेलीकी जरूरत हो सकती हैं। बहुत कस जानेपर भीतरमें चिकनाना संभव न भी हो। डूसकैनमें मजबूत कैथीटर लगाकर धीरे धीरे उस कैथीटरको भीतर घुसाओ और द्रव भीतर बहने दो और तब कैथीटर जरा पीछे खींच फिर घुसाओ। रबरकी नली की चाबी खुली रक्खो जिससे कि, प्रवाह जारी रहे।

लस्सा घुसानेकी इससे बढ़िया विधि यह है कि, धातुकी शोषण और प्रेरण पंप (suction and force pump) वाली पिचकारी जिसमें पानी निकलनेके लिये रबरकी नली लगी हो काममें लायी जाय। सूखेपनके अनुसार ५ गैलन तक लस्सा डालना जरूरी होता है। यह काम और तरहसे पूरा होना कठिन है।

अलसीका लस्सा नीचे लिखे अनुसार बनाया जाता है :—

अलसी	...	१ रत्तल।
पानी	...	१० रत्तल।

पन्द्रह मिनट उबाल छान लो।

१५१०. औजारोंकी जीवाणु-शुद्धि

इसके बाद आवश्यक औजार रस्सी, अँकुसी, क्रच, छुरी आदि पानीमें उबालकर जीवाणुशुद्ध करो।

रस्सियाँ नयी और मुलायम हों। बहुत बार पाटकी आधे इञ्च व्यासवाली नयी रस्सीसे काम चल सकता है। जहाँ बहुत जोरके खिंचावकी जरूरत हो वहाँ आधा इञ्च व्यासकी सनईकी रस्सी काममें लायी जाय। रस्सी मध्यम आँचपर झुलसा ली जाय जिससे कि उसके उखड़े तन्तु जल जायँ। झुलसायी रस्सी

उबालकर जीवाणुशुद्ध कर ली जाय। सदा नयी रस्सी काममें लाना निरापद है। क्योंकि, व्यवहार की हुई रस्सी को जीवाणुशुद्ध अवस्थामें रखना कठिन है। इस कामके लिये अलग अलग नापकी रस्सियोंके कई पुलिन्दे प्रसवके औजारोंके साथ रक्खो कि, जरूरत पर काम आवें।

१५११. अभ्यन्तर परीक्षा

पूरी बाँह चिकना लेनेके बाद जननेन्द्रियमें डाल भ्रूणकी स्थिति देखो। यदि भग और श्रोणि-गुहा बच्चेके किसी अंगसे पूरी तरह कस गयी हों तो तमाम चिकनई लगाकर भीतर ठेलो। दबाव धीरे धीरे और दृढ़ डाला जाय। काफी जोर लगाकर भ्रूणको जरायुकी ओर ठेलो।

रिपेलर, कूनका सरल क्रच (Kuhn's crutch) हो या बैरनका (सुधरा) प्रजनन यन्त्र (obstetric machine) जिसका वर्णन १५२० पैरामें हुआ है।

यन्त्र चाहे जो हो पर बल या दबाव क्रमिक और दृढ़ हो। दचक और अचानक दबावसे भग या जरायुमें चोट लग सकती है। भ्रूणके भीतर ठिल जानेपर मार्ग और जरायुकी ग्रीवामें पूरी तरह चिकनई लगायी जा सकती है। यदि जरायुके भीतर सूखापन है तो उसमें अलसीका लस्सा भर देना चाहिये। तब हाथ डाल भ्रूणकी स्थिति देखो और तय करो कि क्या करना है।

यदि भ्रूण इतना कस गया है कि, वह आगे पीछे किसी तरफ नहीं खिसक सकता तो उसे काट कर निकालना ही होगा।

अभ्यन्तर परीक्षाके समय भ्रूण, जरायु और मार्गकी सापेक्ष स्थिति निश्चित करना जरूरी है। बच्चा जीता है या मर गया यह जान लेना भी उतना ही जरूरी है। यह भी पता लगा लो कि, दोष कहाँ है। मातामें है या बच्चामें। यह दोष भ्रूणके बहुत बड़े आकार या विकटाकृतिके कारण हैं या अशुद्ध उदयके।

परीक्षाके फलके अनुसार इस संकटका सामना करनेका उपाय करो। अस्वाभाविक उदय होने पर नीचे लिखी एक या दूसरी विधि काममें लानी होती है :—

(१) पीछे ठेलना,

(२) घुमाना,

(३) बदलना,

(४) तानना और मोड़ना,

(५) खींचना।

ये विधियाँ और उनके अभिप्रायके बारेमें आगे लिखा जायगा।

१५१२. गायका मूढ़गर्भ

जो भी विधि काममें लायी जाय वह गायकी दशाके अनुकूल हो।

परीक्षाकालमें गायको खड़ा रखना सबसे अच्छा है। इसके लिये इतना ही यथेष्ट है कि, उसे कोई परिचित परिचारक सामने पकड़ कर खड़ी रक्खे। परीक्षा और परिचालन दोनोंके लिये खड़ा आसन सबसे अच्छा है।

गायको चित्त या करवट लिटानेकी जरूरत भी पड़ सकती है। गायको अबाधरूपसे चुपचाप इन आसनोंमें ले आना पशुचिकित्सकको सम्भव होना चाहिये।

गायको लिटानेके लिये सबसे उत्तम उपाय १४७७ पैरामें बताये ढंगसे बाँधना है।

परिचालन करने या प्रसव करानेके समय गायका पिछला भाग उठानेकी जरूरत पड़ सकती है। पिछले पैरोंके नीचे पुआल जमाकर पिछला भाग ऊँचा किया जा सकता है। चंचल गायको चुपचाप खड़ा रखनेके लिये एक आदमी उसके नथनोंमें उँगलियाँ डाल नासा-मध्य प्राचीरको पकड़े और दो आदमी दो तरफ खड़े हो गायको दबाकर थामे रहें। एक तरफ आदमीकी जगह पटरा (तख्ता) लगाया जा सकता है।

लेटी हालतमें प्रसव कराना खड़े होनेकी हालतसे जादा कठिन है। गाय कभी कभी लेटी रहती है उठती नहीं। निर्बलता और थकानके कारण ऐसा कर सकती है। पर कुछ गायें उल्टी चंडी (उल्टे स्वभावकी) होनेके कारण ही ऐसा करती हैं। कभी कभी पुचकारनेसे वह खड़ी हो जाती हैं। बाहरी कुत्तेको देख वह खड़ी हो जा सकती है। जब सब उपाय व्यर्थ हो जायँ तो उसे जैसीकी तैसी पड़ी रहने दो और इस आसनके अनुसार ही उपाय करो। इसकी जरूरत मालूम हो सकती है कि, जरायुका भार हल्का किया जाय और भ्रूण कुछ ऊपर उठाया जाय। इस कामके लिये एक मजबूत चादर पेटपरसे पारकर पीठ पर खींचो। चादरमें गाँठ बाँध उसे घिरनी पर चढ़ी रस्सीसे बाँधो।

जमीनमें दो खंभे तिरछे गाड़े जायँ कि, वह गायके पिछले धड़के ऊपर मिलें। घिरनी इसमें लटकायी जा सकती है। अथवा खंभेके ऊपर एक चिकना बाँस बाँधा जा सकता है जिस पर रस्सी सरके।

यदि गाय पैर मोड़ छातीके बल बैठे तो कभी कभी यह भी सुभीतेका आसन होता हैं। उचित उपायसे यह किया जा सकना है। और दूसरे अवसरों पर गायको चित्त लिटाना होता है। अनुप्रस्थ उदयके अनेक मामलोंमें यही आसन सुबीतेका होता है। गाय जब चित्त रहे तब उसके चारों पैर एक साथ बाँध दिये जायँ जिससे वह उलटे पलटे नहीं।

१५१३. गाय और चिकित्सक

चिकित्सक (धात्रीकलाविद्) के लिये यह काम कभी कभी थकानेवाला होता है। ऐसी हालतमें सेवा करनेवालेको बलिष्ठ होनाही चाहिये कि वह तुरत थके नहीं। उसकी बाँह काफी लम्बी होनी चाहिये जिसे वह पूरी तरह भीतर घुसेड़ बच्चेका जादेसे जादे शरीर छूकर परीक्षा कर सके। बाँह तो लम्बी हो पर उँगलियाँ छोटी और तगड़ी हों जिससे कि वह मजबूतीसे पकड़ सके। छोटी बाँह और लम्बी उँगलियोंवाला आदमी इस कामके लिये अनुपयुक्त है।

धात्रीकलामें चिकित्सकका हाथही मुख्य यन्त्र है। अन्य यन्त्र हैं पर मुख्य काम बाँह, उँगलियों, और कलाईको करना होता है। देहकी चुस्तगीके साथ अनुभव हो तो आदमी चतुर धात्रीकलाविद् बन जाता है।

चिकित्सकको अंगोंकी स्थितिके अनुसार अपना दाँयाँ या बायाँ हाथ व्यवहार करना होता है। जो आदमी दोनों हाथोंका एक समान उपयोग देर तक कर सकता है उसके लिये यह काम "एक हत्थे" आदमीकी अपेक्षा अधिक सरल है।

यदि गाय लेटी रहे तो प्रसवकराने की प्रक्रियामें दोषोंकी मार्जना करनेके लिये चिकित्सकको लेट कर भी काम करना होता है।

१५१४. सुन्न करना : शून्यकका उपयोग

चिकित्सक यह जानले कि, तरह तरहके उपाय करते समय गायको दर्द होता है। बहुधा वह देखता होगा कि, बड़ीदेरके लगातार प्रसवकष्टसे गाय थक जाती है और उठ नहीं पाती। वह कितना थक गयी है इसका अन्दाज करना चाहिये। तमाम

उपाय करनेमें कितना समय लगेगा और इससे गायको कितना कष्ट होगा यह समझना चाहिये ।

आजकल चिकित्सक लोगोंका झुकाव यन्त्रका उपयोग करनेके पहले शून्यता कर लेनेका रहता है । इसका कारण स्पष्ट है ।

कष्टसाध्य प्रसवमें गर्भोदक बराबर कम होता रहता है । हाथ घुसेड़नेसे उसे अतिरिक्त श्रम शुरू हो जाता है । अब भ्रूणकी स्थिति बदलनेमें दो शक्तियोंका प्रतिकार करना होता है । एक पेटका चाप है और दूसरी भ्रूणकी देहके निकट सरोकारसे जरायुका तनाव । थोड़ा भी हाथ लगता है तो बड़ा कष्ट हो सकता है । और इससे सुधारकी सारी चेष्टा बिगड़ जाती है । यदि चिकनईके लिये लस्सा डाला गया है तो वह साराका सारा नहीं तो उसका अधिकांश निकल जाता है । ज्यों ज्यों प्रयास करो भ्रूणके पास हाथ ले जाने और हस्तोपचार करनेका स्थान कमता जाता है । पर यदि शून्यकका उपयोग किया जाय तो पेट और जरायुकी पीड़ा बहुत कुछ मिटेगी इससे देह ढीली होगी और हस्तोपचार करनेके लिये जगह मिलेगी । धात्रीकर्ममें सुषुम्ना-शून्यक (epidural anæsthesia) के पक्षमें श्री बेनेश जोरके साथ यों लिखते हैं :

"(१) हस्तोपचार करनेमें पीड़ा या तो होती ही नहीं या बहुत कम होती है । दयाकी दृष्टिसे इसका बड़ा महत्व है ।

(२) गर्भोदककी जगह लेनेके लिये जो अलसीका लस्सा चढ़ाया जाता है, जो दूसरी स्थितिमें प्रायः निकल आता है, वह यहाँ तुरत नहीं निकलता पर भ्रूण और जरायुकी दीवालके बीच धीरे धीरे समभावसे फैल जाता है । इस कारण भ्रूण और दीवालमें काफी ढीलापन आ जाता है । इसका फल यह होता है कि, जरायुके भीतर भ्रूण फिसल सकता है ।

(३) पेटके चापके अभावमें जरायुकी दीवालके ढीली पड़नेका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि, भ्रूणकी स्थिति ठीक करनेके लिये काफी जगह निकल आती है और माताकी तरफसे जरा भी बाधा नहीं होती । जितनी जादे शून्यता होती है उसी परिमाणमें ढीलापन होता है ।

(४) जब तक शून्यता रहती है मल त्याग नहीं होता इसलिये सारी प्रसव करानेकी प्रक्रियाएँ स्वच्छतासे होती हैं और सरलतासे अकोथताका निर्वाह होता है ।

(५) लेखकका मत है कि, यदि इसका व्यवहार ठीक तरहसे किया जाय तो बिलकुल निरापद होता है ।

(६) जरायुके स्वाभाविक संकोचमें बाधा नहीं होती ।

पर इसका यह मतलब नहीं कि हर हालतमें इस तरहसे शून्यता पैदा करना नियम ही बना लिया जाय। यदि आभ्यंतरिक परीक्षासे पता चले कि, प्रसव आरामसे जल्दी ही हो जायगा तो ऐसी हालतमें इसकी जरूरत नहीं ।"—(भेटेरिनरी अब्स्टेट्रिक्स —बेनेश और राइट, पृ० ८)

ऊपरके कथनसे यह स्पष्ट है कि, पशु चिकित्सक "आरामसे जल्दी प्रसव" की उम्मीद जहाँ हो वहाँ छोड़ सिर्फ कष्टप्रसवमें ही सुषुम्ना-प्रणाली शून्यकका वह व्यवहार करे तो अच्छा। इस शून्यककी विधि १४८० पैरामें बतायी गयी है ।

अस्वाभाविक उदयमें सुधारकी विधियाँ

१५१५. (१) पीछे ठेलना (Retropulsion or Repulsion)

पशुचिकित्सक प्रायः भ्रूणको ऐसी स्थितिमें पाता है कि, और कुछ करनेके पहले वह उस स्थानको अलसीके लस्सेसे चिकनाता है। इसके बाद भ्रूणको पीछे ठेलता है और अपना हाथ घुसेड़ कर देखता है कि भ्रूणकी स्थिति क्या है। स्वाभाविक उदयमें भी यदि प्रसवमें देर हो रही हो तो चिकित्सक हाथ डालकर अगले पैर खोजे और उन्हें बाँध बाहर खींचे। भ्रूण जरायुकी ओर ठिल जाता है उसके बाद ही ऐसा करना ऐसे मामलोंमें संभव होता है । यह काम कभी बहुत सरल भी हो सकता है और यंत्रोंकी सहायताके बिना सिर्फ हाथसे किया जा सकता है। पर अधिकांश मामलोंमें देखा जायगा कि, केवल हाथसे काम नहीं हो सकता। यंत्रकी सहायता लेनी होती है ।

पीछे ठेलनेके लिये सबसे उपयुक्त खड़ा आसन है। खड़ा रहने पर भी पिछले पैर ऊँचा उठा देनेसे और सुबीता हो जाता है। क्योंकि इससे जरायु और उसके भीतरकी चीज मार्गसे दूर हट जाती है ।

सहायताके लिये कुछ सरल उपयोगी यंत्र हैं। इनके कई रूप हैं। सर्वोत्तम और सबसे अधिक उपयुक्त औजारोंमें एक कूनका क्रच (Kuhn's Crutch) है।

कूनके क्रचमें एक सुबीता यह है कि यह दुहरा काम कर सकता है। यह ठेल भी सकता है और खींच भी। इस क्रचके सिरे परकी दोनों नोकोंके छोर पर छल्ले (अंगूठी) जैसा छेद होता है। इसमें एक रस्सी पिरोयी रहती है। यह क्रच डा० कूनने फैले पिछले घुटनेको ठीक करनेके लिये बनाया था। पर दूसरे दोषोंके सुधारके लिये भी यह यन्त्र अपरिहार्य है। तसवीरमें पेचदार हत्था दिखाया गया है। यह जरूरी नहीं है। बायीं तरफ घुमानेसे हत्थेका पेच खुल जाता है। हत्थेदार एक ही टुकड़ेवाला क्रच ठीक रहता है। यह लगभग ३३ इंच लंबा होता है। इस यन्त्रकी सहायतासे ठेलने और खींचनेकी दो विरोधी शक्तियाँ एक साथ लगायी जा सकती हैं। प्रसवके अनेक मामलोंमें जो हाथसे नहीं हो सकता कूनके क्रचसेहो जाता है।

चित्र २११. कूनका क्रच।

क्लोरल हाइड्रेट जैसे निद्रक औषधका प्रभाव रहने पर भी जरायुमें आक्षेपक संकोच होता है। पर सुषुम्नाशून्यक विधिसे पूरी शून्यता निश्चय होती है। इससे संकोचन नहीं होता और जरायु ढीली रहती है। ऐसी हालतमें रिपेलर क्रचकी सहायतासे पीछेकी ठिलाई हो सकती है। ठिलाईकी कोशिश करनेके पहले प्रजनन मार्ग और जरायुको चिकनानेके महत्व पर जोर देना जरूरी है। ठेलनेके लिये भ्रूणके किसी भागमें रिपेलर लगानेके लिये उसका पाना ही केवल जरूरी नहीं है। अन्य भागोंको खींचने और घुमानेकी जरूरत हो सकती है। ठेलना, घुमाना, बदलना और खींचना वास्तवमें एकही संयुक्त विधि अर्थात् अस्वाभाविक उदय सुधारकी प्रक्रियाके भिन्न भिन्न अंग हैं।
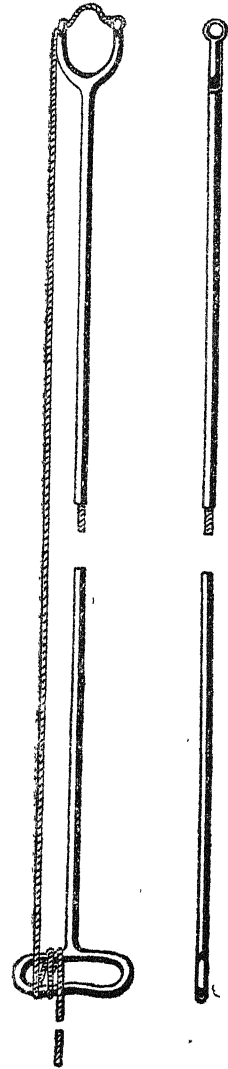
चित्र २१२. सुधारनेका उदाहरण।

क्रचसे ठेल और हाथसे खींचकर अगली टाँगके फैलानेका सुधार। (बेनेश)

१५१६. (२) घुमाना (Rotation)

बहुत बार भ्रूणको एक या दूसरी ओर घुमाना जरूरी हो जाता है। क्योंकि इससे वह ऐसी स्थितिमें हो जाता है कि बिना चोट श्रोणि और भगमें होकर निकल सके। ठेलनेके वर्णनमें जिस तरह शून्य करने और चिकनानेकी विधि बतायी गयी है उसी तरहकी सावधानी इसमेंभी करनी चाहिये। भ्रूणको ठेल देना होता है। पर यह करनेके पहले उसका कोई भाग फंदेमें पकड़ रखना होता है जिससे कि मौका पड़ने पर वह भाग खींचा जा सके। घुमानेके लिये हाथको श्रोणिके फर्श पर भ्रूणके नीचे करना चाहिये। हाथवाले भागको दाहिने या बाँयें घुमानेके लिये बाँह "लिभर" (लट्ठा) का काम करती है।

घुमानेके समय सुबीतेके लिये पेटको ऊँचा किया जा सकता है। प्रायः उसे बगलकी ओर घुमाना काफी होता है। इसके बाद खींच कर भ्रूण सही स्थितिमें किया जा सकता है। खींचनेसे उसके घुमानेमें मदद मिल सकती है।

घुमानेके लिये घुमानेकी दँताली (Torsion fork) (चित्र २१४) है। पर क्रच, घुमानेकी दँतालीका काम भी कर सकता है।
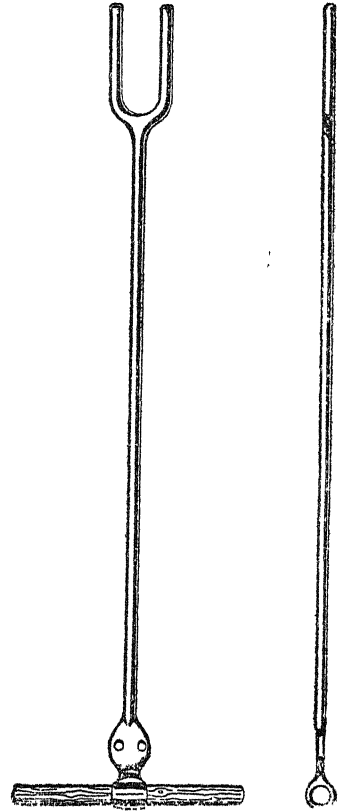
चित्र २१४. घुमानेकी दँताली।
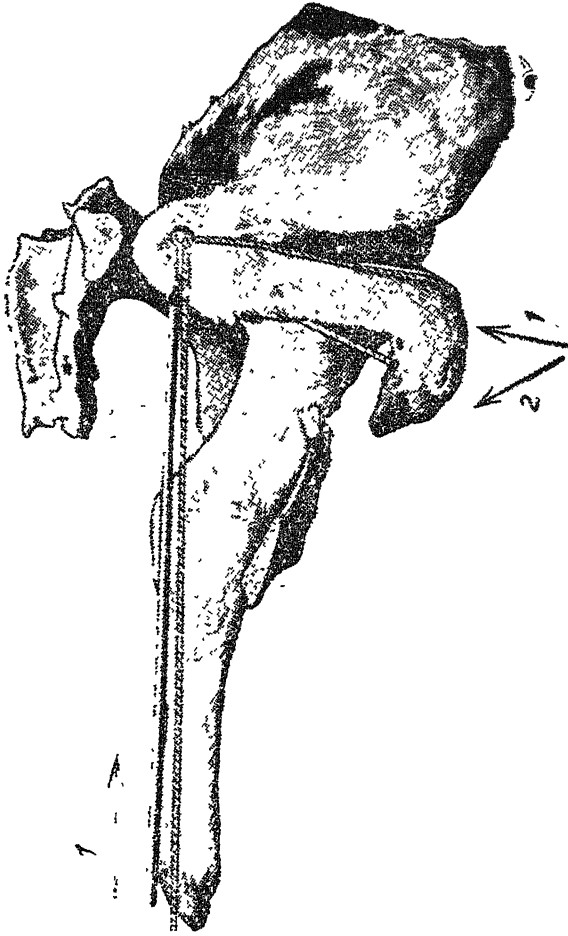
चित्र २१५. सुधारनेका उदाहरण।

घुटनेके फैलावके सुधारके लिये कब्जेसे ठेलना और रस्सी से खींचना। (बेनेश)

१५१७. (३) बदलना (Version)

उपायके द्वारा एक तरहके उदयको दूसरी तरहका करनेका नाम बदलना है। प्रसव हो जाय इसके लिये भ्रूणकी लंबी धुरी माताकी लम्बी धुरीके बराबर सीधमें होनी चाहिये, अर्थात् बछरूके उदयकी स्थिति अग्रवर्त्ती या पश्चात्वर्त्ती होनी चाहिये। अनुप्रस्थ उदयमें ऊपरके दोनों उदयोंमेंसे किसी एकमें उसे बदले बिना भ्रूण बाहर नहीं लाया जा सकता। अनुप्रस्थको अग्रवर्त्ती या पश्चात्वर्त्ती उदय बनानेको बदलना (Version) कहते हैं। यह करना कठिन काम है। किसी किसी पश्चात्वर्त्ती उदयमें भी यह बदलना जरूरी हो जाता है।

इसमें भी पहला जरूरी काम ठेलना है। भ्रूणको ठेलकर उसके किसी दूसरे भागको श्रोणि-द्वारकी ओर किया जाता है।

इसलिये बदलना दो प्रकारका हो सकता है। सिरको श्रोणिद्वारकी ओर लानेका नाम कपालिक (cephalic) बदलना है और पिछले या श्रोणिभागको आगे लानेका नाम श्रोणिक (pelvic) है। बहुत लोग श्रोणिक बदलनेको कपालिक बदलसे अच्छा मानते हैं। इस तर्जीहका कारण यह है कि, श्रोणिक बदलमें कपालिकसे कम कठिनाई है। क्योंकि श्रोणिकमें केवल दो पिछले पैरोंसे ही निबटना और ठीक राह पर लाना होता है। पर कपालिकमें दो अगले पैर और सिर तीनसे निबटना और उन्हें रास्ते पर लाना होता है।

बदलना जरायुके भीतर ही हो सकता है और सो भी जब जरायु पेटमें रहे। यदि भ्रूणका कोई भाग जरायुके बाहर निकल गया हो तो उसे पीछे ठेलना होता है। इसलिये जैसे कि और बहुत मामलोंमें जरायुके ढीलेपनकी जरूरत होती है इसमें भी है। यह काम सुषुम्नाप्रणाली की शून्यतासे हो सकता है।

१५१८. (४) तानना और मोड़ना (Extension & Flexion)

ठेलना, घुमाने, और बदलने इन तीन मुख्य उपायोंके करनेमें भ्रूणके अंगकी कुछ सहायक गतियाँ भी जरूरी हैं। जैसे कि, सिर या गरदनके एक या अनेक अंगोंका ठीक करना। झुके और मुड़े अंगोंको खींच सीधा करनेको **तानना** (extension) कहते हैं और इसके उल्टेको **मोड़ना** (flexion)।

चित्र २१६. सुधारनेका उदाहरण।

रस्सी से खींच और हाथसे ठेल मुड़ी कलाईका सुधारना। (बेनेश)

इस काममें चिकित्सककी बाँह प्रायः इतनी छोटी निकलती है कि, वह जरूरी भागों तक पहुँच पकड़ नहीं सकती। ऐसे काममें कूनके क्रचसे बहुत मदद मिलती है। प्रायः मोड़ना और तानना साथ साथ करना होता है।

१५१६. (५) खींचना (Traction)

यन्त्रोंकी सहायतासे भ्रूणको बाहर निकालनेका नाम खींचना है। यदि जरायुके संकोचमें शक्ति कम है या जरायु ढीली है तो भ्रूणको हाथके कौशल से बाहर लाना होता है। पर चिकित्सकके हाथ शायद इस कामके लिये यथेष्ट न हों। ऐसी हालतमें भ्रूणके एक या अनेक भागोंको बाँधकर खींचना होता है। पहले बताया जा चुका है कि, रस्सी बाँधनेका काम केवल खींचना ही नहीं है और भी बहुतसे काम उसके हैं। होनेवाली सभी विधियों या प्रक्रियाओंमें मदद करना रस्सीका काम है।

रस्सी साधारण रस्सीके जैसी ही हो सकती है या जालीदार या गुथे हुए फीते जैसी। यह कहा जा चुका है कि, एक बार काम लेकर रस्सी फेंक देना अच्छा होता है। रस्सी खूब चिमड़ी या लचीली हो। प्रजननकुशल चिकित्सकको विभिन्न व्यासकी ऐसी रस्सियोंके पुल्ले रखना चाहिये। औरतोंके प्रसवके लिये प्रसव चिमटियों (deleivery forceps) का जो महत्व है पशु चिकित्सकके लिये रस्सियों और अंकुसियोंका वही महत्व है। फंदेके छोर पर एक हत्था बाँध देनेसे खींचनेमें सुबीता होता है।

चित्र २१७.
खींचनेके लिये हत्था बँधा रस्सीका फन्दा।

रस्सी और फंदे अस्वाभाविक उदयके सुधार या खींचनेमें जितने उपयोगी हैं उतने ही

भ्रूणोच्छेदनमें भी। दो अंकुसियोंमें रस्सी पिरो देने पर उनसे ठीक चिमटीकी तरह ही काम लिया जा सकता है (चित्र २२०)। जीवित भ्रूणके लिये भोथी अंकुसियाँ व्यवहार की जाती हैं। सबसे उपयुक्त जगह आँखका कोटर है। चोट पहुँचाये बिना इन भोथी अंकुसियोंसे (चित्र २१८-२२१) खींचनेका काम किया जा सकता है। मरे भ्रूण और उनके टुकड़े नुकीली अंकुसियोंकी ही मददसे निकल सकते हैं। इस कामके लिये ये अपरिहार्य हैं।

चित्र २१८.
भोथी अँकुसी।

चित्र २१९. छोटी नुकीली
और गोल छोरवाली अँकुसी।
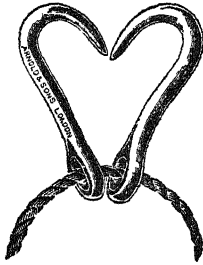
चित्र २२०.
धातृकर्मकी दुहरी अँकुसी।

चित्र २२१.
भोथी अँकुसी।

यांत्रिक खिंचावके लिये एक या दो सहायकोंके खींचनेसे काम नहीं भी चल सकता। कभी कभी किसी खम्भेमें घिरनी बाँधकर उसकी मददसे भ्रूण खींचा जाता है। इस या इसी तरहकी और विधियोंमें कठिनाई यही है कि, भले ही आगेसे एक या दो आदमी पकड़े रहें खिंचावके साथ गाय भी पीछे हटती है।

बैरनकी मशीन इस तरह बनायी गयी है कि, इससे भ्रूण तो खिंचता है पर गाय स्थिर रहती है। इस यंत्रको **बैरनका धात्रीयंत्र** (Baron's obstetric

machine) कहते हैं। इसमें घोड़ेकी हैकलसा एक भाग रहता है वह गायके पिछले भागमें पहिना दिया जाता है। हैकलमें तीन डन्डोंको खोंसनेकी जगह रहती है जिनके छोर पर एक पट्टी रहती है। इस पट्टीके बीचमें छेद रहता है जिसमें पेच कसनेके लिये चूड़ियाँ (घाट) बनी रहती हैं। इस पेचदार छेदसे एक पेचदार डन्डा पार किया जाता है जिसके छोर पर हत्था बना रहता है। इसके दूसरे छोर पर भ्रूणमें बाँधनेके लिये एक साँकल या रस्सी रहती है। इस पेचदार डन्डेके छोर पर एक खाँचा बना रहता है जिसमें एक ढीला छल्ला रहता है। यह गिरे नहीं
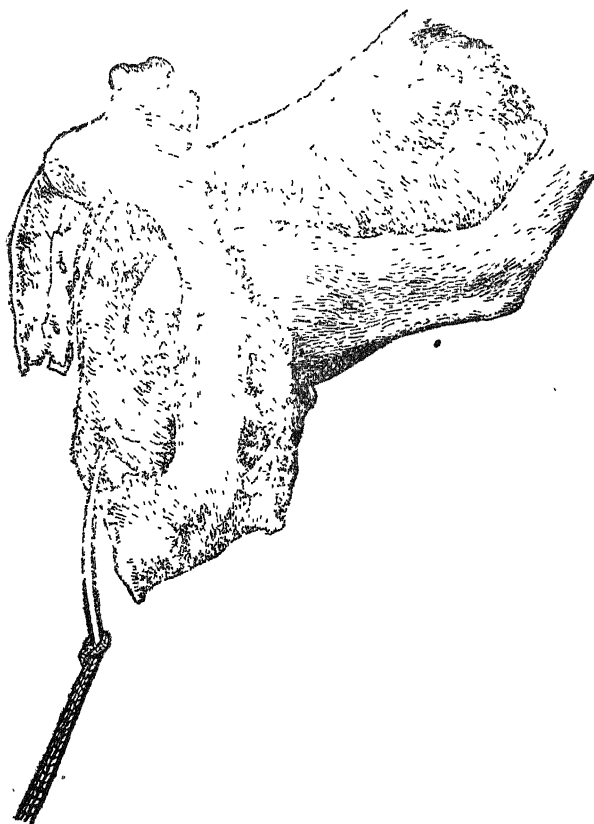
इसलिये एक कील लगा दी जाती हैं। इसलिये जब डन्डा घुमाया जाता है तब उसकी मरोड़ इस छल्लेसे आगे बढ़ साकल या रस्सी पर नहीं जाती। जब डन्डेका पेच खोला जाता है तब उससे बँधी साँकल और भ्रूण बाहरकी ओर खिंचते हैं। और इधर हैकल गायके पिछले भागको दूसरी तरफ ठेलती है।

यह यंत्र ऐसा बनाया गया है कि, खिचाव केवल भ्रूण पर पड़े। हम यह देख चुके हैं कि वस्तिमार्गमें फँसे भ्रूणको पीछे ठेलनेमें बहुत बड़ी शक्तिकी जरूरत होती है। पीछे ठेलनेमें एक आदमीसे अधिककी शक्ति नहीं लगायी जा सकती। पर खींचनेमें यह बात नहीं है। खींचनेके समय कुछ आदमी यदि गायको आगेसे पकड़ स्थिर रक्खें तो कुछ आदमी भ्रूणको रस्सीसे बाँध खींच सकते हैं। पर ठेलनेके समय यह संभव नहीं है। यह हो सकता है कि, उपयुक्त शक्ति लगा भ्रूण ठेला जाय और तब उसे काटकर माँकी जान बचायी जाय। पर यदि पूरा जोर लगाकर ठेला नहीं जा सका तो भ्रूणोच्छेदन (भ्रूण-व्यवच्छेद) नहीं हो सकेगा और तब गायका कष्टसे मरना हमें असहायकी तरह देखना होगा।

जरासे सुधारसे बैरनका यंत्र ठेलनेके काममें ठीक उसी तरह आ सकता है जैसे कि, खींचनेके काममें आता है।

१५२०. बैरनका खींचने-ठेलनेका यंत्र (सुधरा हुआ)। इच्छाके अनुसार भ्रूणको ठेलने या खींचनेके लिये।

इस सुधरे रूपमें पिछले भागकी हैकलकी तरह ही एक और हैकल (Coller) होती है। यह हैकल गाड़ीके घोड़ेके गलेमें जैसे पहनायी जाती है उसी तरह गलेमें पहना दी जाती है।

अगली और पिछली हैकल रस्सियोंसे एक साथ बाँध दी जाती हैं। इसके लिये उनमें अंकुसियाँ लगी रहती हैं। दोनों हैकलें अब संयुक्त हो जाती हैं। पिछली हैकलमें बैरनकी मशीनके सभी पुरजे हैं। भेद इतना ही होता है कि, साँकलकी जगह इसमें एक ही पट्टी और डन्डा होता है। इसके छोर पर कूनका कच लगा रहता है। इसकी जगह रस्सी और अंकुसी हो सकती है। कुछ और छोटे छोटे उलट फेर होते हैं। सुधरे यन्त्रका चित्र अगले पृष्ठ पर है।

G और H हैकल हैं। एक, गायके पिछले भाग और दूसरी गरदन पर रहती है। दोनों हैकलें अपनी अपनी जगह पर एक दूसरीसे उन परकी अंकुसियोंमें
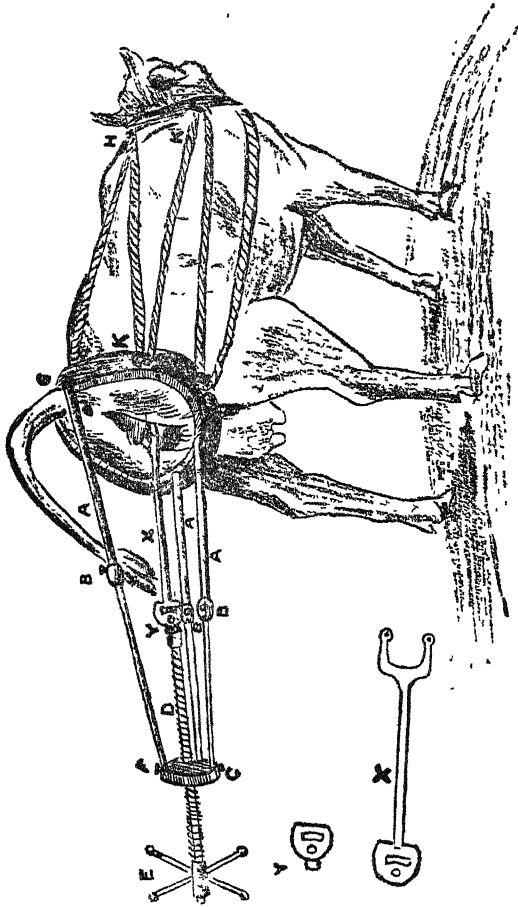
चित्र २२३. बैरनका धात्री यन्त्र (सुधरा)।

GH पिछले भाग और गलेका हैकल। KK अँकुसियाँ जिनमें रस्सियाँ पिरोयी हैं। AB डंडे हैं जो FC पट्टीमें लगे हैं। E हत्था D पेचको घुमाता है जो रिपेलर से जुड़ा हुआ है।

K K रस्सी डाल बँधी हुई हैं। रस्सीसे बाँध देने पर दोनों हैकलें-अपनी जगह पर कसी रहती हैं। यदि गाय लेटना चाहे तो उसके पेटके नीचे पुआलके पुल्ले या पुलिंदे रख देना चाहिये कि वह उसे पूरी तरह सँभाले रहें। यदि वह बैठ जाती है तो कोई हानि नहीं।

जब दोनों हैकलें अपनी जगहों पर बैठा दी यायँ तब पिछली हैकलके पुरजे उसमें जोड़े जायँ। इसमें तीन डन्डे A A A होते हैं जो कुछ दूर तक खोखले हैं कि उनमें बढ़ावके डन्डे B B B पेचसे कसे जा सकें। इनके दूसरे छोर पर पट्टी F C रहती है। F C पट्टीसे पेचदार धुरी D पार होती है जिसमें भुजा X लगी रहती है। यह रिपेलर है। लगानेका ढंग अलग दिखाया गया है। पेचदार धुरी D के छोर पर X छुट्टा छल्ला Y होकर बैठाया जा सकता है। धुरी D हत्थे E के द्वारा घुमाकर भीतर या बाहर की जा सकती है।

रिपेलर दँताली इस तरह बैठायी गयी है कि, वह भ्रूणको पकड़ सके। दँतालीमें कूनके क्रचकी तरह छल्ले हैं। यह लगावकी जगहपर दँतालीमें पिरोयी रस्सी खींचकर दृढ़ रखे जाते हैं।

जब सब पुरजे पूरी तरहसे बैठा दिये जायँ तो हत्था E घुमाकर धुरी D को भीतरकी ओर कसो और ठेलना शुरू करो।

पर यदि मशीनको खींचनेके लिये व्यवहार करना है तो रिपेलर-भुजाके बदले अंकुसियाँ लगी हुई रस्सी या भ्रूणमें लगे हुए फन्दे काममें लाओ। और धुरीको विपरीत दिशामें घुमाओ कि वह भ्रूणके पाससे पीछे हटे।

१५२१. भ्रूणोच्छेदन : भ्रूणव्यवच्छेद (Embryotomy)

जब पूरे भ्रूणका प्रसव नहीं कराया जा सकता तब यन्त्रोंकी मददसे उसके कुछ भाग काट उसका आकार छोटा करते हैं। यह भ्रूणोच्छेदन या भ्रूणव्यवच्छेद है।

देहके विभिन्न भाग काटकर निकाले जा सकते हैं। यदि माताकी देहमें कोई वैरूप्य हो या भ्रूण विकटाकृति हो, अस्वाभाविक उदय स्वाभाविक न किया जा सके अथवा अटकी देह निकाली न जा सके तो माताकी जान बचानेके लिये बच्चेका एक एक अंग काटकर निकालनेकी आवश्यकता आ पड़ती है। देखे बिना केवल एक ही हाथसे बच्चेको काट निकालना कठिन और बड़े परिश्रमका काम है। प्रसव

करानेमें देहकी कड़ी मेहनतका जिकर ५१३ पैरामें हो चुका है। भ्रूणोच्छेदन करनेमें यह और अधिक चाहिये।

चिकनानेवाला द्रव कबका बह गया रहता है। झिल्लियां चिपचिपी हो जातीं और उँगलियोंमें चिपकती हैं। भ्रूणके तन्तु शिथिल और फूलते रहते और छुरीसे छटकते हैं। व्यवच्छेद करनेके भाग व्यवच्छेदक से दूर होता है। इन सभी कारणोंसे जितना समझमें आता है उससे भी कहीं जादा यह काम कठिन है। प्रजनन-अवयव छिल जानेके कारण सूज जा सकता है तब तो हाथका घुसाना भी एक समस्या हो जाती है।
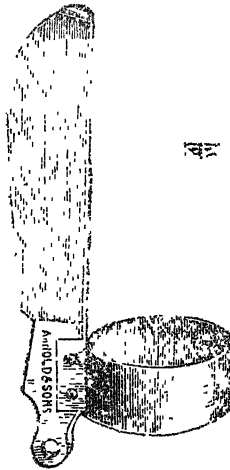
चित्र २२४. भ्रूणोच्छेदकी उँगली छुरी।
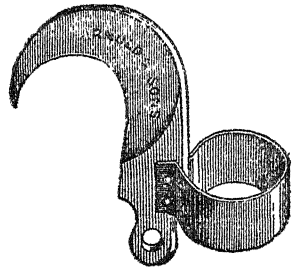
इस काममें अधिकतर काटने, चीरने या कुचलने जैसी कुछ प्रक्रियायें करनी होती हैं। काटनेके लिये अनेक यन्त्र काममें लाये जाते हैं। तेज जेबी छुरी जिसके हत्थेके छोर पर छेद हो, अनेक विशेष आकारकी छुरियोंकी जगह पर अच्छा काम कर सकती है। इसकी कमानी मजबूत होनी चाहिये जिससे कि, वह आसानीसे मुड़ न सके।

इसके हत्थेमें छेद होना जरूरी है। छेदमें रस्सी पिरो चीरफाड़ करनेवालेकी कलाईसे बाँध दी जाती है। यदि छुरी हाथसे छूट जाय तो रस्सीके सहारे खींचकर फिर पायी जा सकती है। सभी छोटे औजार जो भगके भीतर ले जाये जायँ उनमें

यह प्रबन्ध रहना जरूरी है। नहीं तो बड़ा उत्पात हो जा सकता है। यदि जेबी छुरी पसन्द न हो तो अपने पसन्दकी चीरफाड़की छुरीका उपयोग करो। छुरीका फलक खुला रहना चाहिये। हत्था मुट्ठीमें हो और नीचेसे उँगली लगाकर धार बचाओ जिससे कि, छुरी सहित हाथ भगमें होकर सरलतासे घुसाया जा सके। भेटेरिनरी छुरियोंके कुछ नमूनोंमें सरकने या खिसकने वाली ओट होती है। जब छुरीसे काम लेना होता है तो ओटको सरका दिया जाता है। दूसरे नमूनोंमें कमानीका प्रबन्ध है जिससे कि, फलक हत्थेमें बन्द रहते हैं और कामके समय

चित्र २२५. सांकल आरी।
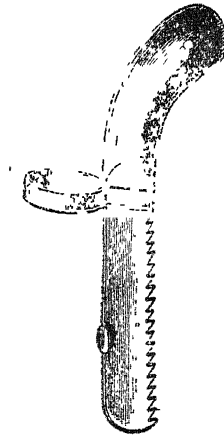
चित्र २२६. हाथ आरी।

उन्हें खटसे बाहर कर लिया जाता है और इस खुली अवस्था में यह दृढ़ रहता, मुड़ता नहीं। पर औजारमें जटिलता जितनी कम हो व्यवहारमें वह उतने ही अच्छे होते हैं।

काटनेवाली छुरीके अतिरिक्त प्रायः हड्डी काटनेवाले औजारकी भी जरूरत होती है। यह काम लम्बे हत्थेवाली छेनीसे लिया जाता है। इसकी धार V की तरह होती है। यह तेज होती है पर इसके कोने भोथे होते हैं। ऐसी छेनी घुसानेके बाद उसकी V-जैसी धार हाथसे हड्डीकी ओर करनी चाहिये। हाथसे छेनी

वहाँ रक्खी जाती है और सहायक लोग हथौड़ीसे भगके बाहर उसके हत्थे पर चोट करके हड्डी काटते हैं। हाथ भीतर रहकर छेनीकी धारका संचालन करता है।

कभी कभी तार-आरी (wire-saw) या साँकल-आरी (chain-saw) देह काटनेके लिये उपयोगी होती है। तार-आरी बख्तरदार नलीमें काटी जानेवाली जगह तक पहुँचायी जाती है। तार या साँकल-आरी उस स्थानके चारों ओर फन्देकी तरह रहती हैं। इसके दोनों छोर बाहरसे खींचे जाते हैं। जिससे चाहा अंग कटता है।

कटे भागको बाहर निकालनेके लिये अंकुसीका उपयोग होता है। नुकीली अंकुसी मांसमें चुभाकर उसकी रस्सी बाहरसे खींची जाती है। भ्रूणोच्छेदनमें क्रचका भी उपयोग है।

१५२२. कपालोच्छेदन (Craniotomy)

प्रजनन-मार्गसे पार हो जानेके लिये सिरका आकार छोटा करनेकी जरूरत हो सकती है। इस कामके लिये कपालोच्छेदन किया जा सकता है। इसमें छुरीसे सिरमें छेद करना होता है। छेद हो जाने पर उसमें उँगली डाल उसे बड़ा करना होता है। उसके भीतरकी चीज बाहर निकल आती है। खींचने पर खोखली खोपड़ी श्रोणिमार्गमें पिचक जाती है और बाहर निकल आती है।

जब इतनेसे काम नहीं चलता तो निचले जबड़ेमें रस्सी बाँध जहाँतक हो सके खोपड़ीसे उसकी सन्धि काट ली जाती है। खींचने पर आंशिक रूपसे कटा जबड़ा बाहर आ जाता है। इससे सिरको बाहर निकल आनेकी जगह मिलती है।

१५२३. शिरश्छेदन (Decapitation)

यह देहसे सिरका पूरी तरह अलग कर लेना है। इसमें खतरे भी हैं इसलिये जब एकदमसे जरूरी हो जाय तभी यह किया जाय। जैसे कि, द्विशिर विकटाकार बच्चा हो तो शिरश्छेदनमें माताको खतरा रहता है क्योंकि हड्डियोंकी रुखड़ी नोंक निकल आती है जो उसे चुभ सकती है।

१५२४. अंगच्छेदन (Amputation of the limbs)

यह बहुधा करना होता है। कुशल व्यक्तिके हाथों यह कठिन काम नहीं है। खींचनेके लिये अंगको पहले ही बाँधकर तैयार रखते हैं। तब त्वचा कँधे या श्रोणि-सन्धि पर अलग की जाती है। खींचकर मांस और स्नायुओंको नोच लेते हैं और अंगको बाहर करते हैं। कभी कभी केवल घुटने तक अंगच्छेदन करनेकी जरूरत होती है। और तब अलग किया भाग बाहर निकल जाता है। उचित हाथके कौशल से यह किया जा सकता है।

१५२५. देहविभाजन

कभी कभी श्रोणिमें धड़ इस ढंगसे फँसता है कि, एक बार उसका एक भाग काटकर निकालना होता है और दूसरी बार दूसरा। इसके लिये भ्रूणको खींचकर जहाँ तक हो सके बाहरकी ओर निकाल लेना चाहिये और भगके आसपास उसे काटना चाहिये। विभाजनके पहले कुछ चमड़ा चीरकर अलग कर दो और जब विभाजन हो जाय तो यही चमड़ा कटी जगह पर टाँक दिया जाय जिससे बचा भाग गोल हो जाय। तब देहमें नुकीली अंकुसी चुभा दो और बची देहको भीतर ठेलो। तब बचे भागकी स्थिति हस्त कौशल से सही करो और उसे श्रोणिसे बाहर निकाल लो।

१५२६. अन्त्रआदि (Viscera) का निकालना

पेटके भीतरी अवयवोंका पहले निकालना जरूरी हो जा सकता है जिससे कि, बचे हुए अंग निकालनेमें सुबीता हो। पेट फाड़कर अँतड़ी आदि उसके भीतरकी सभी चीजें खींच लो।

हरेक पीड़ित पशुकी अपनी खास समस्या होती है। जो साधारण विधियाँ बतायी गयीं हैं उनसे सिर्फ इन बातोंकी सूचानाएँ मिल जाती हैं कि, प्रत्येक पीड़ित पशुके लिये क्या किया जाना चाहिये।

अध्याय ५८

साधारण ज्ञातव्य बातें और शब्द-परिचय

Alteratives : **परिवर्तक** : ऑल्टरेटिभ या परिवर्तक उन दवाओंको कहते हैं जो पोषण और मलशुद्धिकी क्रियाओंमें परिवर्तन कर शरीरकी साधारण क्रियाको फिरसे लौटाते हैं। जैसे कि, संखिया, आयडिन, आयोडाइड्स, रसकपूर (कैलोमेल), सोडा बाईकार्ब, कुचला और तिक्तरस।

Analgesics : **पीड़ाहर** : उन दवाओंको कहते हैं जिनसे दर्द दूर होता है। यह शब्द केवल उन्हीं दवाओंके लिये व्यवहार किया जाता है जिनसे दर्द का अनुभव तो दूर हो जाय पर बेहोशी न आवे। जिन पीड़ाहरोंका असर नाड़ीतंत्र पर होता है उन्हें वेदनाशून्यक (anodynes) और जिनका स्थान विशेषपर प्रभाव होता है उन्हें एकांगी शून्यक (local anaesthetics) कहते हैं।

Ankylosis : **सन्धिस्तम्भ** : सन्धिपरकी अस्थियोंके जुड़ जानेसे हुए कड़ेपनको कहते हैं। जहाँ अस्थियाँ जुड़ नहीं जातीं वहाँ सौत्रिक बंधनोंके कारण सन्धिकी गति रुक जाती है। यह अगले और पिछले घुटनों (knee and hock) की संधियोंमें अधिक होती है।

Anodynes : **वेदना-शून्यक** : वेदना निवारक दवाओंको कहते हैं जैसे कि, संखिया, कपूर, सोडा सैलीसिलेट।

Antacids : **अम्लघ्न** : पेटकी अम्लता कम करनेवाली दवाको अम्लघ्न कहते हैं जैसे सोडा बाईकार्बोनेट।

Anthelmintics : **कृमिघ्न** : कृमिनाशक दवाओंको कहते हैं। मुख्य कृमिनाशक तूतिया, कमला चूर्ण या कबीला, तारपीन और अजवाइन का सत्त

(थाइमल) हैं। क्लोरोफॉर्म, सङ्खिया और चेनोपोडियमके तेल जैसी अन्य दवायें भी काममें आती हैं। इनके जहर लगनेका खतरा रहता है इसलिये ये यहाँ नहीं बतायी जातीं।

Antidotes : विषघ्न : अगद : विषके प्रभावको विफल करनेवाले पदार्थ विषघ्न हैं। अनेक विषघ्न स्वयं विष हैं। इसलिये इनके उपयोगमें सावधानी रखनी चाहिये। कुछ विष और उनके विषघ्न नीचे लिखे जाते हैं :—

खनिजअम्ल (Mineral Acid) : सोडा बाईकार्ब, कैलशियम और मैगनीशियम, कारबोनेट, स्निग्धकर पदार्थ (demulcents), अनुत्तेजक तेल (bland oils), मंड।

वत्सनाभ (Aconite) : नमकके तेज घोल जैसा वामक, टारटार एमेटिक।

सङ्खिया (Arsenic) : किसी कार्बोनेटके घोलके साथ ताजा मिलाया फेरस सल्फेट, चूनेका पानी।

कारबोलिक एसिड (Acid Carbolic) : चूनेका पानी, सोडा या मैगनीशियम सल्फेट, अंडेकी सफेदी।

तूतिया वगैरह (Copper salts) : तेलके जुलाब, क्षार, स्निग्धकर पदार्थ।

सीसा वगैरह (Lead salts) : मैग सल्फ, तीसीका तेल, दूध।

पारा वगैरह (Mercury salts) : अंडे, मंड, मैग सल्फ।

मौर्फिया (Morphia) : स्ट्रिकनीनकी सूई।

अफीम (Opium) : लकड़ीके कोयलेका चूर्ण, जुलाब।

स्ट्रिकनीन (Strychnine) : वामक, क्लोरल हाइड्रेट, उपशामक।

Antiphlogistics : प्रदाहनिवारक औषधि : उन्हें कहते हैं जो प्रतिउत्तापक (counter irritants) हैं, और जिनका उपयोग प्रदाह पर होता है। थन और मोच पर इनका व्यवहार खास तौर पर होता है। केओलिन और ग्लिसरीनमें गन्ध तेलों (essential oils) के योगसे यह बनते हैं। नीचे एक सरल नुस्खा लिखा जाता है :—

केओलिन (चीनी मिट्टी)	...	५ आउन्स
बोरिक एसिड	...	५ ड्राम
ग्लिसरीन	...	४ आउन्स

केओलिनमें पानी मिला गीले आटेकी तरह नरम बनाओ। इसे गरम करो। ग्लिसरीन अलग गरम करो। दोनोंको मिला दो। ठंढा होते समय $\frac{1}{2}$ ड्राम तारपीन मिला दो।

Antiseptics : **कोथघ्न औषधि :** वह पदार्थ हैं जिनमें पशु या वनस्पतियोंमें जीवाणु पैदाकी सड़ाँद रोकनेकी शक्ति है। कुछ कोथघ्न ये हैं :—पारेके नमक, बोरिक एसिड, आयडिन, सैलीसिलिक एसिड, कारबोलिक एसिडका घोल, पोटास परमैंगनेटका घोल, नीमका पानी, अजवाइनका सत्त और नोन। पारेके नमकोंमें मरक्यूरिक क्लोराइड पानीमें घुल सकता है और सबसे अच्छा है। यह भयानक विष है। रसकपूर (कैलोमेल) पारेका नमक है। यह पानीमें घुलता नहीं है। खानेसे ही इसकी कोथघ्न क्रिया होती है।

Antispasmodics : **आक्षेपनिवारक :** वे औषध हैं जिनसे आक्षेप और ऐंठन या खिंचाव मिटें। इनकी क्रिया सीधे पेशियों पर हो सकती है अथवा उन पेशियोंका नियंत्रण करनेवाले नाड़ीतंत्र पर। उन्हें यह नाड़ीतंत्र शांत करता है।

क्लोरोफॉर्म जब सुँघाया जाता है तो पहले वह उत्तेजित करता है। इसके बाद नाड़ियोंके अंतिम सिरोंकी अचेतनता या जड़ता पैदा कर पेशियोंको शांत करता है। जड़ता पैदा करके अफीम और मौर्फिया भी आक्षेपोंको शमन करते हैं। क्लोरल हाइड्रेट मस्तिष्क और सुषुम्नाका उपशामक है, और आक्षेप निवारण करता है।

Arhythmia : **स्पन्दन-व्यतिक्रम :** हृदयकी अनियमित धड़कनको कहते हैं। इसमें बीच बीचमें एक आध धड़कन रुक भी सकती है। इससे हृदयकी किसी बीमारीका पता चल सकता है। पर अकेला यह क्षणिक और अहानिकर है।

Arthritis : **संधिप्रदाह :** इसका मुख्यरूप आभिघातिक या चोट और वातव्याधिके कारण हो सकता है।

Artificial Respiration : **कृत्रिम श्वासक्रिया :** पशुओंके लिये इसका वैसा महत्व नहीं जैसा मनुष्योंके लिये है। पर फिर भी डूबने, या साधारण शून्यकके उपचारसे अथवा आग लगनेपर धूँऐंसे दम घुटने पर साँस रुक सकती है।

चिकित्सा : सभी बंधन खोल दो। मुँह खोल जीभ बाहर निकालो। कंठकी अपेक्षा गरदनको कुछ ऊँचा रखो जिससे कि जमा पानी निकल जाय।

पीछेकी लचीली पसलीको दबाओ। इसके लिये दोनों हथेली पसली पर रख देहका कुल भार देकर ४ या ५ सेकेन्डके लिये झुको। फिर दबाव हटालो। इस तरह कई बार ऐसा करे। बड़े पशुकी पसलीपर दबाव डालनेके लिये आदमी बैठे और दबाव हलका करनेके लिये उठे।

पशुकी टाँग दृढ़ताके साथ पकड़ सहूलियतके साथ पेटकी तरफ दो दो सेकेन्डमें मोड़ो और फिर खींचो। अगले पैरोंको रस्सीसे बाँध आगेकी ओर जितना खींचा जा सकता है खींचना चाहिये। कुछ मिनटोंतक यह उपचार करनेके बाद पशुकी करवट बदल देनी चाहिये। साँस चलानेका प्रयत्न तब तक होता रहे जब तक यह न मालूम हो कि पशु मर गया।

Asphyxia : **श्वासरोध** : साँस रुक जानेको कहते हैं। रक्तमें ऑक्सीजनके अभावसे हुई अवस्थामें यह होता है। सरक फन्देसे पशुको बाँधनेपर प्रायः खिंचावसे वह गलेमें कस जाता है। इससे भी श्वासरोध हो सकता है। इससे छूटनेके लिये पशु जितनी कोशिश करता है फन्दा उतना ही कड़ा होता जाता है जिससे गला घुटता है।

इससे छुटकारा पानेकी पशुकी कोशिश पर ध्यान जाना चाहिये। इसके सिवा एक लक्षण जल्दी जल्दी साँस लेना भी है। फिर जल्दी ही वह मुँह खोल लम्बी साँस लेने या हाँफने लगता है। इसके बाद आक्षेप होने लगते हैं। इसके बाद दिलकी धड़कन इतनी मन्द हो जाती है कि मालूम नहीं होती और मृत्यु हो जाती है।

साँस रुकनेसे हुए ऑक्सीजनका अभाव पूरा करनेकी कोशिश शरीर करता है जिससे रक्तचाप बढ़ जाता है। ऊँचे रक्तचापके कारण हृदयके दाहिने भागमें अधिक रक्त जमा हो जाता है। यह हर धड़कनके साथ पूरा बाहर नहीं निकल पाता और इससे हृदय फैल जाता है। बढ़ते चापसे पेशियाँ काम नहीं कर पातीं जिससे हृदयका कार्य बन्द हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यदि कोई बड़ी शिरा काट दी जाय तो कुछ त्राण मिलता है।

चिकित्साके लिये कंठपर का दबाव हटाओ और पशुको खुली हवामें रखो। यदि हल्की साँस हो तो कृत्रिम स्वासक्रिया कराओ। अमोनियाँ सुँघानेसे भी कुछ लाभ होता है। यदि गरदनकी शिरायें फूल गयी हों तो मन्याशिराको काट कुछ खून बहा दो। इससे नाड़ी बलवान् हो जा सकती है।

Aspiration : प्रचूषण : शरीरके स्वाभाविक खातोंसे द्रवोंके निकलनेको कहते हैं। निदान या चिकित्सा दोमें से किसी कामके लिये यह किया जा सकता है। चिकित्साके लिये ब्रीहिमुखनलीकी सहायतासे अधिक मात्रामें द्रव निकाला जाता है। जैसे कि, जलोदरमें। निदानके लिये अन्तस्त्वक् सूईसे थोड़ासा निकाल लिया जाता है।

Astringent : कषाय : संकोचक : कषाय औषधियाँ वह हैं जिनसे रक्तआदिका स्राव रोका जाता है। जैसे कि फिटकरी, तूतिया, पोटाश परमैंगनेट, हर्र।

Atrophy (एट्रोफी) क्षीणता : किसी तन्तु या अंगके किसी अंशकी कार्यकरी शक्तिके ह्रासको कहते हैं। पर इसके विपरीत किसी अंग या उसके अंशकी वृद्धिका नाम अतिवृद्धि (हाइपरट्रोफी) है। पोषणके अभाव या उस भागमें अच्छा रक्त प्रवाह नहीं होनेसे एट्रोफी या क्षीणता होती है।

Bandage : पट्टी करना : क्षतोंकी हिफाजतके लिये पट्टी की जाती है। मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओंकी पट्टी करना कठिन है।

अगली टाँगमें लपेटी-पट्टी (roller bandage) काममें लायी जा सकती है। पर दूसरी जगहों पर इस पट्टीसे काम नहीं चलता। बहुपुच्छ (many tailed) पट्टी काममें लानी होती है।

नापके अनुसार हल्का कपड़ा काट लिया जाता है। और उसमें पूँछ बनायी जाती है। फीतेकी तरह मोड़े कपड़े इसमें जोड़े जाते हैं जो लपेटनेके बाद दूसरी छोरकी पूँछोंसे बाँधे जाते हैं।

Belladona : बेलैडोना : इसकी जगह धतूरेके पत्तेका लेप काममें लाओ।

Bites : दंशन : दंशोंको छुतहा क्षत मानना चाहिये। कुत्तेका दंश (काटना) इसका मुख्य उदाहरण है। कुत्तेके काटनेसे कुकुरविष (rabies) की छूत लगती है जिससे मृत्यु हो जाती है। देखनेमें सुस्थ कुत्तेके काटनेसे भी अन्तमें छूत पैदा हो जा सकती है। इसलिये जब भी कुत्ता काटे तो पागल कुत्तेकी तरह ही इलाज हो। सर्प दंश भी बहुत होते हैं। साँप विषैले और निर्विष भी होते हैं। यदि साँपकी पहचान न हो सके या यह मालूम नहीं हो सके कि, यह साँप निर्विष है तो उसका इलाज विषैलेकी तरह करना चाहिये। प्राथमिक चिकित्साके

लिये दंशकी जगहके ऊपर बाँधो। इसके ऊपर एक बन्धन और लगाओ और फिर दंशस्थानको चीर खून बहाओ। इसके बाद चीरेमें पोटाश परमैंगनेट भर पट्टी बाँध दो। पशुकी हालत देख धीरे धीरे बन्धन खोल दो। यदि किसी विषैले साँपने पशुको कुछ देर पहले काटा है तो कुछ करनेको बाकी नहीं रहता। कीमती पशुके लिये मिल सके तो एन्टीभेनम चिकित्सा करनी चाहिये। पशुके आकारके अनुसार मनुष्योंको दी जानेवाली मात्रा बढ़ा दी जानी चाहिये।

Bleeding : Hæmorrhage : रक्तस्राव : रक्त शिरामें रहता है। इसमेंसे निकल आनेपर स्राव शुरू होता है। बाहरकी ओर निकलने पर स्राव बाह्य कहा जाता है। पर यदि किसी भीतरी अवयवसे रक्त चले और भीतरके किसी खातमें ही भरे तो उसे अंतस्स्राव कहते हैं। धमनी, शिरा या केशिकाओंके स्राव हो सकते हैं। किसी धमनीके कट जानेसे गंभीर आशंका हो जाती है। शिरासे रक्त निकलना दबानेसे रुक सकता है। केशिकाओंका स्राव थक्का बन तुरत बन्द हो जाता है। पेटके रक्तस्रावको उदर स्राव (haematemesis) कहते हैं। फेफड़ेके स्रावको फुसफुसस्राव (haemoptysis) और पेशाबमें रक्त निकलनेको रक्तमूत्र (haematuria) कहते हैं।

कट जाने पर धमनी संकुचित होती और तन्तुओंसे मिल जाती है। यदि धमनी छोटे आकार की है तो सिकुड़ने और थक्का जमनेसे खून आपसे आप बन्द हो जाता है। कटे घावमें यदि बड़ी फाँक हो गयी हो तो उसमें खून भरकर जमता है। यह थक्का पहले मुलायम होता है बाद को कड़ा हो जाता है। इससे रक्त चलना बन्द हो जाता है। पर यदि कोई बड़ी धमनी कट जाय तो तुरत बहुत रक्त निकल जाता है जिससे रक्ताल्पता हो जानेके कारण मृत्यु हो जाती है। जब बहुत खून बहता है तब पशुको बाँधकर रखना होता है। इसके बाद क्षत या घावको दबाना और जरूरत हुई तो टाँका लगा कर पट्टी बाँधनी होती है।

पशुको बाँधकर शान्त रखना होता है। पशुकी सींगें पकड़ गलेमें रस्सी बाँधो और पिछले पैर छानो जिससे कि, क्षतकी जगह सरलता और बिना भयके छुई जा सके। यह याद रखना चाहिये कि, पशुको जितनाही छटपटाने दिया जायगा उतना ही अधिक रक्त बहेगा और उसे रोकनेमें उतनीही कठिनाई होगी। इस लिये पशुको इस तरह बाँधो कि वह छटपटा न सके।

यदि घाव गहरा है और उसके कारण अधिक पीड़ा तथा छटपटानेके सबब क्षततक पहुँचना असंभव हो तो क्षतकी चिकित्सा और रक्तरोध करनेके लिये सर्वशून्यक (general anaesthesia) का व्यवहार करना चाहिये।

बन्धनके द्वारा दबाव डालना पहला काम है। कटे घावमें रक्तस्रावकी जगह का पता लगाना चाहिये। इस कामके लिये रुई या कम्बलका साफ टुकड़ा नमकके घोलमें भिगा घावमें भरना चाहिये। दो तीन बार ऐसा करने पर घावकी गन्दगी और खुंट या थक्के साफ हो जायेंगे तब धमनी का पता लग जायगा। इसमें कपड़ेका एक टुकड़ा भर कर दाबना चाहिये। इससे खून बहना बन्द हो सकता है। कटे अङ्गमें मुलायम रस्सी लपेट उसे इतना ऐंठना चाहिये कि, धमनी पर चाप पड़े और रक्त रुक जाय। इसको "मरोड़नी" या टूर्निकेट (tourniquet) कहते हैं। चाप बढ़ानेके लिये छड़ीके टुकड़ेसे काम लिया जाता है। यदि धमनीका ओर छोर मिल जाय तो उसे धमनीकी चिमटी (artery forcep) से पकड़ बाहर निकालो और जीवाणुरहित सूती या रेशमी धागेसे उसे बाँधो। इससे खून रुक जायगा।

कभी कभी साधारण रक्तस्रावमें रक्तरोधक पदार्थ (styptics) लगानेसे भी रक्त रुक जाता है।

(१) **गरम** या **ठंढे** पानीसे भी रक्त रुक जाता है। **गुनगुने** पानीसे रक्त बहता है। इसलिये पानी सह सकने लायक काफी गरम चाहे ठंढा ही हो। ठंढे और गरम पानीसे बरफ अधिक अच्छी है।

(२) **दागना** (Cautery): लोहे आदिकी तपती छड़से दागनेसे खून बन्द हो सकता है। यह तब किया जाता है जब कि, रक्तस्राव ऐसी जगहसे हो रहा है जहाँ कुछ उपचार संभव नहीं। जैसे कि, सींग या हड्डी आदिमें दबी धमनी या शिराका रक्तस्राव होना। उदाहरणके लिये टूटे सींगके भीतर उसकी जड़से स्राव होना।

रक्तस्राव रोकनेके लिये रासायनिक पदार्थ हैं :—

(क) पानीमें नमकका तेज घोल।

(ख) फिटकिरीका १० या २० सैकड़ा घोल अथवा सूखी बुकनी।

(ग) तूतिया।

(घ) कत्था।

(२) बत्ती भरना (Packing) : गहरे और चिथे या छिन्नभिन्न क्षतमें यदि रक्तस्रावकी जगहका पता न चल सके और थक्का जम कर स्रावके रुकनेका लक्षण नहीं दिखायी देता हो तो बत्ती भरना चाहिये। कपड़ेको उबाल जीवाणुरहित कर छोटी छोटी गोलीसी बना लो। इन्हें एक एक कर घावमें ठूँसो। इसके बाद दोनों तरफकी चमड़ी इनके ऊपर खींचकर चढ़ाओ और टाँका लगा दो।

प्रसवके बाद अथवा पुरैन बलात् निकालनेसे इतना स्राव हो सकता है कि, प्राण चला जाय। रोगी को शान्त करो। उस स्थानको कोथघ्न जलसे धोओ। साफ कपड़ा नमकके पानीमें उबाल कर निचोड़ो और कोथघ्न अवस्थामें ही उसे ठंढा होने दो। इसके बाद उसे स्रावकी जगह भरो। आठ दस घंटेके बाद स्राव रुकने पर उसे धीरे धीरे बाहर निकाल लो कि थक्के नहीं उचलें।

Blood Defibrinated : फाइब्रीन-रहित रक्त : देहमें बहनेवाला रक्त जिन पदार्थोंका बना है वह अलग अलग हो सकते हैं। खून निकलने पर तीन चार मिनटमें थक्का बन जाता है। इसके थोड़ी देर बाद तलेमें तरल द्रव जमा हो जाता है। इसे रक्तका सीरम कहते हैं। जमे रक्तमें रक्तकण (Corpuscles or erythrocytes) और फाइब्रीन होते हैं। सलाई (शलाका) से रक्तको पीटनेपर उसके ऊपर कुछ छिछड़े जमा हो जाते हैं। यह फाइब्रीन है।

यदि निकला हुआ खून धीरे धीरे ठंढा हो तो रक्तकण नीचे बैठ जाते हैं और ऊपरकी ओर निर्मल द्रव निथर आता है। यह प्लाज्मा कहा जाता है।

रक्तमें रक्तकण (erythrocytes or corpuscles) और प्लाज्मा होते हैं। प्लाज्मामें सीरम और फाइब्रीन होती हैं। पीटनेसे फाइब्रीन अलग हो जाय तो सीरम बच रहता है।

जिस रक्तमेंसे फाइब्रीन निकाल ली जाती है उसे फाइब्रीन-रहित रक्त (defibrinated blood) कहते हैं। इसमें सीरम और रक्तकण रह जाते हैं।

Breathlessness : साँस फूलना : जब किसीको ऐसा मालूम होता है कि, दम घुट रही है तो उसे साँस फूलना कहते हैं। रक्तमें अपर्याप्त ऑक्सीजन मिलनेसे ऐसा होता है। रक्ताल्पतामें पर्याप्त ऑक्सीजन रक्तमें नहीं मिल पाता तब साँस फूलती है। फेफड़ेमें रोग होने पर वह रक्तमें ऑक्सीजन पूरी तरह नहीं मिला पाता जिससे साँस फूलती है और काश, निमोनियाँ और क्षय होते हैं। हृदयकी

असमर्थतासे भी साँस फूलती है। यदि हृदय आवश्यक रक्त बाहर नहीं निकाल पाता है तो ऑक्सीजनकी कमी होनेसे साँस फूलती है।

Burns and Scalds : **जलना और छाला पड़ना :** ढोर प्रायः जल जाया करते हैं। बहुत अधिक जलने पर कुछ नहीं किया जा सकता है। पर यदि दो चार जगह ऊपर ऊपर जल गया हो तो दर्द दूर करने और घाव जल्दी पूरनेकी चिकित्सा हो सकती है। जरासा जलने पर कैरनके तेलका (Carron oil) व्यवहार सबसे अच्छा है। तिल, तीसी या नारियलके तेलमें बराबर मात्रामें चूनेका पानी मिलाकर यह बनता है। पानीमें चूना घोलकर निथार लेनेसे चूनेका पानी तैयार हो जाता है। इस साफ पानीमें कुछ भाग चूनेका भी घुला रहता है। इस पानीमें समभाग तेल मिला चलानेसे एक अवद्रव बन जाता है। इसे जले पर लगानेसे ठंढक पड़ती और घाव भरता है।

फेरबदल कर पिकरिक एसिडके संपृक्त घोलमें रुई या पट्टी भिगाकर लगा सकते हैं। पिकरिक एसिड जलन मिटाती और कोथघ्न है। इसी कामके लिये मैग० सल्फ का संपृक्त घोल भी व्यवहार किया जा सकता है।

जलना सूखे तापसे होता है और छाला आर्द्र ताप जैसे कि, गरम पानीसे होता है। जरासे जलने या छालेमें जादा परीशान होनेकी जरूरत नहीं। कोथघ्न पट्टी करना ही काफी है। पर यही यदि बहुत जादे हों तो भयावह हो जा सकते हैं। फेफड़ेकी तरह त्वचा भी विसर्ग या मलशुद्धिका अवयव है। जलनेसे यह नष्ट हो जा सकती है। त्वचाके काम नहीं करने पर देहमें विष जमा हो जाता है। इस कारण मृत्यु हो जा सकती है। यदि जलना गहरा न हो ऊपर ऊपर ही हो तो भी यह हो सकता है। यदि बड़े भागमें यह हो गया हो तो बड़ा संकट आ सकता है।

चिकित्सा : अधिक क्षत होने पर पहली चिकित्सा वेदनाकी होनी चाहिये। इसके लिये उचित मात्रामें मौर्फियाकी सूई देनी चाहिये। इसके बाद कोथघ्न, पर अनुत्तापक घोलसे क्षत साफ करो। प्राथमिक उपचारके लिये पिकरिक एसिडका संपृक्त घोल भी उत्तम है। इससे जलन मिटती है। यह कोथघ्न है और घाव भरती है। इसके बाद तुरतका तैयार २½ सैकड़ासे ५ सैकड़ा टैनिक एसिडका घोल लगाना चाहिये।

यह ध्यान रखना चाहिये कि, जली जगह पर हवा नहीं लगने देनेसे तकलीफ कम होती और घाव भी भरता है।

Cachexia : **शरीरविकार** : कैकेक्सिया किसी रोगके कारण किसी अंग या सारे शरीरकी निर्बलताको कहते हैं।

Carcinomata and sarcomata (**कार्सिनोमेटा और सारकोमेटा**) : **शर्करार्बुद और मांसार्बुद** : ये अर्बुद साधारण तौर पर कैन्सर या दुष्ट अर्बुदों (मेलिगनेन्ट ट्यूमर) के वर्गमें रखे जाते है। इस रोगमें चीरफाड़की जरूरत है।

Caries : **दन्तक्षय** : अस्थि, दाँत या तृद्वस्थि की छीजनको कहते हैं। साधारण तौर पर दाँतकी छीजन इससे मालूम होती है। इस रोगमें दाँतोंका मुलम्मा (एनामेल) झड़ जाता है या उनमें छेद हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें मनुष्योंकी तरह ही छेद को सीमेन्टसे भर देते हैं। पर बढ़ी हालतमें स्थानीय शून्यता करके दाँत उखाड़ना होता है।

Carminatives : **पाचक और वायुनाशक** : पचानेवाली और पेटकी गुम हवा निकालनेवाली दवाओंको कहते हैं। जैसे कि, हींग, कपूर, मेन्थल (पीपरमेन्ट), पपीता, सोडा बाइकार्ब, अजवाइनका सत्त।

Caseation : **केजिएशन** : पीबका आचूषण होकर तन्तुओंमें पनीर ऐसे पदार्थके होने को कहते हैं। और यह बढ़ सौधीकरण हो कड़ा हो सकता है।

Catarrh : **श्लैष्मिक प्रदाह** : श्लैष्मिक कलामें उत्ताप होनेको कहते हैं। कंठ आदिमें साँसकी राहमें इससे रुकावट होती हैं। श्लैष्मिक कलाके किसी भागमें इसका प्रदाह हो सकता हैं। अन्त्र, पेट, जननेन्द्रिय, जरायु और भगके श्लैष्मिक प्रदाह बहुत होते हैं। इसमें श्लैष्मिक कलामें उत्ताप होता है और उससे स्राव चलता है।

Cathartics : **रेचक** : जुलाब को कहते हैं जैसे कि, रेंड़ीका तेल, मैग० सल्फ०, हर्र, रसकपूर।

Catheters (**कैथीटर**) : **प्रस्रावक** : पतली नलियाँ जिन्हें पेशाबके रास्तेमें घुसाकर पेशाब करायी जाती है। ये धातु और लचकीले पदार्थोंके भी बनते हैं। भिन्न भिन्न नापके रबरके प्रस्रावक बहुत उपयोगी हैं। बैलके शिश्नमें मूत्रमार्ग सीधा नहीं होता, पेचीला होता है। इसके शिश्नमें प्रस्रावक घुसाना कठिन काम है। यहाँ धातुके प्रस्रावकसे काम नहीं चलता।

Cauda Equina : अश्वपुच्छक : [illegible] छोर त्रिकास्थिमें अनेक पतली नाड़ियोंमें बँट घोड़ेकी पूँछसा हो जाता है। इसीलिये यह नाम है।

Cercaria : दुमदार : कुछ छोटी कृमियोंके जीवन-चक्रकी मध्यवर्ती अवस्था। (१६१०)

Cholagogues : पित्तनिःसारक : जो पदार्थ पित्तका अधिक स्राव करें। ओषधियोंकी सूचीमें साधारण तौरपर नीचे लिखे पित्तनिःसारक हैं: सोडियम सैलिसिलेट, तारपीनका तेल, रसकपूर, मैग० सल्फ०, मुसब्बर।

Chyle (काइल) : [illegible] : आँतके निचले भागसे निकलनेवाले अध-पचे आहारको कहते हैं।

Chyme (काइम) : अर्धपाचित : पेटसे छोटी आँतके पहले भागमें जानेवाले अधपचे आहारको कहते हैं।

Cicatrix (सिकैट्रिक्स) : क्षतचिह्न : घावके आराम हो जाने पर जो चिह्न रह जाता है उसे कहते हैं।

Cirrhosis (सिरोसिस) : पीतामय : फेफड़ा या यकृत जैसे कुछ भीतरी अवयवोंकी एक तरहकी रोगावस्था है। इसमें आवश्यक कोषतत्वोंकी जगह सौत्रिक तन्तु हो जाते हैं। यकृतके पीतामयमें यकृतका रंग पीला हो जाता है इसीलिये इसे पीतामय या सिरोसिस कहते हैं। इसका दूसरा नाम तंत्वामय (fibrosis-फाइब्रोसिस) है। जिस अवयवमें यह होता है उसे कड़ा कर देता है। इसके फलस्वरूप वह सिकुड़ सकता है।

Collapse (अवपात) : हिम्मांग : देहकी अत्यन्त दुर्बलता या अवसन्नता के कारण जीवनी शक्तिके चरम ह्रासकी अवस्थाको कहते हैं। नाड़ी-तन्त्र ग्रस्त होता है, रक्तचाप घट जाता है, हृदयकी गति मन्द हो जाती है और साँस धीमी हो जाती है। मृत्युका कारण हृदयको निष्क्रियता या साँस रुकना हो सकता है।

इसका कारण कठिन रोगोंकी प्रतिक्रिया या सुस्थ पशुओंमें दुर्घटना अथवा भीषण श्रमका होना है। दुर्बल बनानेवाले रोगोंसे हुए अवसन्नतामें पशु पड़ा रहता है। साँस हल्की चलती है और नाड़ीको गति मालूम नहीं होती। भीषण आघात जनित अवसन्नता में हृदयकी धड़कन बेहद बढ़ सकती है, पीलापन हो सकता है और पशु पसीनेमें डूब सकता है। पशु प्रायः निर्जीव हो जाता है उसे आसपासका ज्ञान नहीं रहता।

रोगीको दिक न किया जाय और उसे पूरा आराम देनेकी कोशिश हो। पशु यदि बचे तो उसके आराम होनेका पहला लक्षण प्यास है। वह पीना चाहता है।

Colitis : [illegible] : बड़ी आँतके पतले भागके प्रदाहका नाम है।

Coma (कोमा) : मूर्छा : मूर्छा या कोमा गंभीर अचेतनताको कहते हैं। इसमें रोगीकी प्रतिसंक्रमित क्रियायें नष्ट हो जाती हैं।

Compress : [illegible] : Fomentation : [illegible] : रुई या कपड़ेमेंसे पानी निचोड़ ग्रस्त भाग पर लगानेका नाम सेंक या जलोपचार है। जब ठंडे पानीका व्यवहार होता है तब उसे शीतोपचार (cold compress) या ठंडी पट्टी बाँधना कहते हैं और गरम पानीसे उपचार करनेको उष्णोपचार (hot compress) या गरम पट्टी बाँधना : ठंडी पट्टी जब गरम होने लगे या गरम पट्टी ठंडी होने लगे तो उन्हें बदल देना चाहिये और फिर ठंडा या गरम करके बाँधना चाहिये। कई बार सेंकनेके बाद गरम पट्टी उस स्थान पर ऐसी चीजसे ढाकना चाहिये जो पानीसे भीगती नहीं, इसके बाद पट्टी बांध देनी चाहिये। इस तरह गरम पट्टीका ताप शरीरतापके बराबर रहता है और वह अपना काम करती रहती है। नहीं भीग सकनेवाली चीजसे ढकनेका यह अभिप्राय है कि, उसमेंसे नमी और गर्मी उड़ न जाय। नहीं तो वह जगह ठंडी हो जायगी। रेशमी मोमजामा काममें आ सकता है पर यह खर्चीला होगा। केलेके पत्तेसे भी यही काम निकलेगा और खर्च कुछ नहीं। तेल-कागज (oil paper) भी व्यवहार किया जा सकता है। कागजमें तीसीका तेल पोत उसे सुखाकर यह बनाया जा सकता है। इस तरह कागज सख्त और जल-रोधक हो जाता है।

Congestion : रक्तसंकुलता : रक्तके जमा होनेको रक्तसंकुलता कहते हैं।

Constipation : कब्ज : अनाह : साधारणसे अधिक देरतक मलके नहीं निकलनेको अनाह या कब्ज कहते हैं। असाधारणता कई तरह देखी जाती है। साधारण तौर पर ढोरको बिना प्रयास मल उतर आता है। इसमें उसके चलने, काम करने या खानेमें बाधा नहीं होती।

मनुष्य और कुत्ते बिल्लियोंको इस कामके लिये अन्य काम स्थगित रखना और विशेष आसनमें होना होता है। कब्ज ढोर या घोड़ेकी अपेक्षा इन प्राणियोंकाही

रोग अधिक है। तो भी ढोरको कब्ज होता ही है। यकृत और अन्त्र की किसी गड़बड़ी, अधिक सूखा चारा खाने या जरूरतसे कम पानी पीनेसे यह हो सकता है। पेटके पेशीदौर्बल्यके कारण भी यह हो सकता है।

लक्षण : गोबर कम होता है वह भी लम्बे अंतरकालके बाद। अवस्था बिगड़ने पर दर्द और मरोड़े हो सकते हैं। साँसमें दुर्गन्ध हो सकती है। तेज साँससे विषके आचूषणका पता चलता है।

चिकित्सा : दस्त कराना चाहिये। इसके लिये पूरे पानीके साथ १ रत्तल या २० आउन्स मैग० सल्फ० दो। इसके बाद यथेष्ट हरा रसीला चारा और पानी देना चाहिये।

इस उपायसे काम नहीं चलने पर मुसब्बर ½ से १½ आउन्स देना चाहिये। रेंड़ीका तेल भी अच्छा विरेचक है। दवाके साथ साथ गरम पानीकी वस्ति (एनेमा) भी देनी चाहिये। वस्तिमें रेंड़ीके तेलका अवद्रव देनेसे पेट साफ होनेमें सरलता होती है।

Convalescence : **रोगावसानस्थिति :** रोगमुक्त होनेके बादका वह समय जब दुर्बलता शेष रह जाती है और रोगमुक्त व्यक्ति साधारण काम नहीं कर सकता।

Convulsions : **आक्षेप :** जोरके साथ पेशियांका संकोच और शिथिलता का बार बार होना। इसके साथ बेहोशी रहती है। सभी अंग छटपट करते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। उनमेंसे कुछ शूल, गर्दनतोड़, हिस्टिरिया (क्षोभोन्माद) दुग्धज्वर, धनुष्टंकार, विष खाना, सुकुमार अंगोंमें परोपजीवी होना, अपचके साथ विषका आचूषण, धनुषी आदि हैं।

चिकित्सा : कारण स्थिर करो। किसी किसी हालतमें उपशामक औषध लाभकारी होती हैं। पर मुँहसे कुछ नहीं दिया जाय। सिरपर शीतोपचार करो और हाथ पैर गरम। चरम पीड़ामें मौर्फिया दे सकते हैं।

Corrosive Sublimate : **कोरोसिभ सबलिमेट :** मरक्यूरिक क्लोराइड और मरकरी परक्लोराइड पर्याय हैं। यह तीव्र कोथघ्न और छूतनाशक है। छूतनाशक घोलके लिये २,००० भाग पानीमें १ भाग काफी है। यह बड़ा क्षयकारक या दाहक विष है। इसलिये इसे खास हिफाजतसे रखना चाहिये। इसे मरक्यूरस क्लोराइड या केलोमेल (रसकपूर) भूलसे भी नहीं समझो।

Counter irritants : **प्रति-उत्तापक :** प्रति-उत्तापक उन दवाओंको कहते हैं जिनके लगानेसे उत्ताप होता है पर जो पहले के किसी उत्तापको दबानेके लिये लगायी जाती हैं। जैसे कि, मेन्थॉल या पिपरमिन्ट, तारपीनका तेल, सैलीसिलिक एसिड, कारबोलिक लोशन।

Cyanosis : **नीलिया :** यह एक अवस्था है। इसमें जीभ नीली हो जाती है। यह नीलापन बढ़ कर ओठ और आँखकी भिल्लीको भी नीला कर दे सकता है। इसका कारण दुर्बल या अतिश्रान्त हृदय अथवा रक्तमें पूरी तरह ऑक्सीजनका नहीं मिलना है। हृदयमें गरमी पहुँचाना और शान्ति इसके लिये जरूरी है। श्वासप्रणालीको उत्तेजना देनेके लिये स्ट्रिकनीनकी सूई लगानी चाहिये। कठिन रोगमें सुबीतेकी कोई ऊपरी शिरा काटकर खून निकाल देना चाहिये, कि, रक्त चाप कम हो।

Cysts (**सीस्ट**) : **थैली** . खोखले अर्बुद को कहते हैं जिसमें द्रव भरे रहते हैं। कभी कभी यह साधारण अर्बुद की तरह हो सकते हैं। जब पशु कृमियोंके अन्डे खा जाता है तो शरीर-खातके किसी भागमें वह थैलियोंकी तरह बढ़ सकते हैं जहाँ थैलीके अन्दरके अर्भक किसी अन्य पशुके पेटमें जा विकास पाने तक थैलीबन्द अवस्थामें पड़े रहते हैं। अन्य पशुके पेटमें ये थैलियाँ उस पशुके मांसके साथ पहुँचती हैं। थैलियाँ या सीस्टस् गायके डिम्बकोषमें विकसित होती हैं। ग्रन्थियोंसे संलग्न अर्बुदोंमें ये हो सकती हैं।

Datura : **धतूरा :** बेलाडोना और इसका गुण एकसा है। इसमें नीचे लिखे औषधि-गुण हैं :—

पीड़ाहर, आक्षेपहर, मूत्रकष्ट-प्रशमक। यह दूध, पसीना और थूकका स्राव बन्द करता है। हृदयकी पीड़ा और कष्ट, धड़कन, महाधमनीके विकार दूर करनेमें यह बड़ी उत्तम वस्तु है। इसकी अधिक मात्रासे पुतली फैल जाती है और मुँह तथा कन्ठ सूखता है।

Death, Causes of sudden : **अचानक मृत्युके कारण :** गिल्टी और लँगड़ीके कारण अचानक मृत्यु हो जाती है। प्रायः सुस्थ पशु मरे पाये जाते हैं। पहला सन्देह साँपके काटनेका होना स्वाभाविक है। पर ऐसा बहुत कम होता है। गिल्टी होनेका पहला चिह्न प्रायः सुस्थ पशुकी अचानक मृत्यु ही होती

है। तरुण बछड़ लँगड़ीके कारण अचानक मर सकते हैं। तब इन रोगोंके वर्णनमें जो बताया गया है उसके अनुसार छूतनाश और पृथक्करण करो।

लू लगना अचानक मृत्युका एक और कारण है। उसी तरह हृदयकी निष्क्रियतासे भी मृत्यु हो सकती है। पर ऐसा होने पर कारण स्थिर करनेमें अधिक कठिनता नहीं होती।

पेट फूलनेसे भी कुछ मिनटमें देखे, अनदेखे मृत्यु हो सकती है। खूब फूले पेटसे मृत्युके कारणका पता चलता है।

Demulcents : [illegible] : लसिया : जहाँ श्लेष्मिक कलाकी शान्तिके लिये लसीले पदार्थोंको कहते हैं। प्रदाह और जले भागपर इससे आराम मिलता है और रक्षा भी होती है। यह त्वचापर बाहर भी लगायी जा सकती है।

गोंद, स्टार्च और तीसीका लस्सा और इसफगोल लसिया हैं। ग्लिसरीन, सुहागा और ग्लिसरीन, सोडियम कारबोनेट, बिसमथ कारबोनेट भी आंतोंके लिये उपयोगी लसिया हैं।

Deodorants : [illegible] : दुर्गन्ध पदार्थोंको ऑक्सीजनकी क्रियासे नष्ट करने या अपनी तेज गन्धसे छिपा लेनेवाले पदार्थोंको कहते हैं। ऑक्सीजनकी क्रियासे नष्ट करनेवाले पदार्थ सचमुच उपयोगी हैं। साधारण उपयोगमें आनेवाली कुछ वस्तुएँ ये हैं :— पोटास परमैंगनेट, लकड़ीका कोयला, सूखी मिट्टी, कार-बोलिक एसिड, तारपीन, युकलिप्टस और ब्लीचिंग पाउडर। ये छूतनाशक भी हैं और बहुधा [illegible], [illegible] और [illegible] एक ही अर्थ होता है।

Detergents : **चर्मस्वच्छक** : साबुन, मदसार (एलकोहल), क्षार, सुहागा आदि जैसी त्वचाको साफ करने वाले पदार्थ हैं।

Diaphoretics : **प्रस्वेदक** : उन पदार्थों या उपायोंको कहते हैं जिनसे पसीना चले। ज्वर और प्रदाहमें त्वचाके काममें गड़बड़ी पड़ जाती है। इसकारण जो ताप पसीनेसे उड़ता, वह त्वचामें ही रह जाता है। पसीना चलानेका एक उपाय गरम पानीसे धोना है। पर यह उपाय पशुओं, वह भी बड़े पशुओं पर करने लायक नहीं। एसिटेट ऑफ एमोनिया, अफीम और एन्टीमनीके लवण जैसी कुछ दवाओंसे पसीना चल सकता है। पर इस कामके लिये पशुओं पर इनके प्रयोग की मनाही है। क्योंकि इनमें खतरा है।

Diarrhoea : अतिसार : इसमें पतला दस्त होता है। अतिसार कब्ज या अनाह का उल्टा है। इस रोगमें पाकाशयसे समयसे पहले बिना पचा आहार निकल आता है। यह पाचन-इन्द्रियोंकी अस्वाभाविक अवस्थाका द्योतक है। यह अवस्था यदि कुछ दिनों तक चलती रहे तो भयंकर हो जाती है। कुछ विशेष रोग जैसे खूनीदस्त, दस्त और सफेद दस्त भी अतिसारके ही रूप हैं। इनकी विशेष चिकित्सा होनी चाहिये।

अतिसार वास्तवमें व्यतिक्रमका लक्षण है। केवल दस्त रोकना कोई चिकित्सा नहीं बल्कि और भी बुरा है। कारण का पता लगाकर चिकित्सा करनी चाहिये। साधारण अतिसार पाकाशयका प्रदाह है, ठीक वैसा ही जैसा कि, नाक या कंठका प्रदाह होता है। आंत और पेटकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह हो जाता है और वह अपना स्वाभाविक कार्य नहीं कर सकती। इसके कारण शिथिलसे और पतले दस्त होते हैं। आमाशयके प्रदाहके बारेमें अलग लिखा गया है।

चिकित्सा : यदि, किसी विशेष कारण बिना साधारण अतिसार होने पर हल्के जुलाबसे उत्तापक और दुष्ट पदार्थोंको बाहर कर देना चाहिये। अवद्रवके रूपमें रेंड़ीका तेल बड़ा अच्छा इलाज है। इससे उत्तापक कारण दूर हो जाता है। इसके कुछ घंटे बाद किसी तरह की प्रशामक औषधि देनी चाहिये। जैसे कि, दूध या मन्डके साथ हल्की मात्रामें अफीम। १२ घंटे तक खाना बन्द कर देना चाहिये। खानेका परहेज बहुत जरूरी है। जब तक मल बनने लगे एक या अधिक दिन तक मन्ड देते रहना चाहिये। यदि बहुत दस्त आते हों और ऊपरके इलाज से बन्द न हों तो कत्थेकी तरहके कषाय देना चाहिये अथवा अफीमकी मात्रा बढ़ानी चाहिये। यदि पेटमें सन्धान या उफानकी क्रिया होनेका सन्देह हो तो आन्त्रिक कोथघ्न जैसे कि, सोडियम सैलिसिलेट या अजवाइनका सत्त देना चाहिये। यदि अम्लताका सन्देह हो तो रेंड़ीके तेलके अवद्रवके बाद पहली चीज चूनेका पानी दिया जाय। मलकी खट्टी गन्ध से या लिटमस पेपरकी जाँचसे अम्लताका निश्चय किया जा सकता है। बड़ी उम्रके पशुको अम्ल मलके साथ अतिसार होने पर खड़ियाकी बुकनीके साथ सोडा बाइकार्व दिया जाय।

Dip, Cattle : ढोर-अवगाह : अवगाहका हौज बिना ढालका ऐसा बनाया जाता है कि, पशु गोता खा ही जाय। इसके बाद वह तैर कर दूसरे किनारे पर जाता है जो कि ढलुआँ रहता है। हौजमें चाहा घोल रहता है।

गोतेका घोल गन्धक और संखियाका होता है। जब संखियाका गोते का घोल तैयार करना होता है तो उसे (संखिया) कास्टिक सोडाके साथ खौलाकर घोल लेते हैं। फिर उसे पानीसे पतला करते हैं। गोतेके पानीमें ०·१२ से ०·२५ सैकड़ा संखिया हो।

हौजको तैर कर पार करनेके बाद किलनी मरी पायी जायगी। गोतेका घोल तैयार करनेका ब्यौरा जाननेके लिये स्थानीय भेटेरिनरी सरजनसे पूछताछ करनी चाहिये। हौजके नक्से आदिके लिये पहले खन्डका ६५६ पैरा देखो।

Dishorning : **विश्रृंगीकरण :** पालतू ढोरके लिये सींग बहुत कुछ शोभाकी वस्तु हैं। आदमीकी रक्षामें ढोरके आ जानेके बाद सींगोंकी रक्षात्मक या आक्रमणात्मक आवश्यकता नहीं सी रहती है। जब कोई बलिष्ठ पशु किसी दूसरे पशु या रखवालेको मारना चाहता हो तब सींग भयके कारण बन जाते हैं। बछड़ेका विश्रृंगीकरण बिना कष्टके हो सकता है। जरूरत समझी जाय तो नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है :—

४ से ८ दिनके बछड़े विश्रृंगीकरणके लिये लिये जायँ। सींगके अंकुरको भिगाओ और उस पर कॉस्टिक पोटाशकी बत्ती रगड़ो। यह क्रिया उसी दिन कई बार की जा सकती है अथवा एक सप्ताह तक हर दूसरे दिन एक बार की जाय। कॉस्टिकके उपचारसे श्रृंगपदार्थ घुल जायगा और एक पपड़ी पड़ जायगी। पपड़ी सूख कर झड़ जायगी और उसके साथ सींगका कोष भी। इसी कोषसे सींग बनता है। इस क्रियासे बछड़ेको कष्ट नहीं होता।

आरीसे सींगकी जड़ काटी जा सकती है। इसमें बहुत पीड़ा होती है। यह अमानुषिक उपाय है। यदि एक महीनेसे अधिकके बछड़ेका विश्रृंगीकरण करना हो तो क्लोरल हाइड्रेट जैसा सर्वशून्यक देकर करना चाहिये। खून बहना रोकनेके लिये उसे गरम लोहेसे दागना चाहिये अथवा सींगकी जड़ोंमें 8-सूरतकी मरोड़नी बाँधनी चाहिये।

Diuretics : **मूत्रल :** जिन मूत्रोत्पादक दवाओंसे पेशाब होती है उन्हें कहते हैं। जैसे कि, क्षार, रसकपूर, तारपीन, सोडियम लवण, पुनर्नवा।

Docking : **बंडा करना :** पूँछ काटनेको कहते हैं। स्थानीय शून्यककी सहायतासे घोड़े और कुत्तेपर यह किया जाता है। गाय बंडायी नहीं जाती।

Dosage **: मात्रा :** यदि सयाने पशुकी मात्रा मालूम हो तो विभिन्न उमरके पशुओंको दवा देनेके लिये मात्रा नीचे लिखे अनुसार दी जाय :—

२ वर्ष और अधिक	...	सयानेकी मात्राका १ भाग।
१ से २ वर्ष	...	$\frac{१}{२}$ भाग।
$\frac{१}{२}$ से १ वर्ष	...	$\frac{१}{४}$ भाग।
३ से ६ महीना	...	$\frac{१}{८}$ भाग।
१ से ३ महीना	...	$\frac{१}{१६}$ भाग।

सयाने बैलकी मात्रा साधारण तौर पर सयाने आदमीसे १६ गुना है। जैसे कि, यदि जुलाबके मैग० सल्फ०की मात्रा मनुष्यके लिये १ आउन्स है तो इस आधार पर गायकी मात्रा १६ आउन्स या १ रत्तल होगी। पर यह सदा नहीं होता। आदमीको १ आउन्स रेंड़ीका तेल देनेसे जो होता है उसीके लिये गायको २० आउन्स देना होता है।

एकसे तीन महीनेके बछरूकी मात्रा सयानेकी मात्राका $\frac{१}{१६}$ है जो मनुष्यकी मात्राके बराबर है।

Drowning **: डूबना :** मनुष्योंकी तरह पशु नहीं डूबते। क्योंकि, वह पानीमें नाक बाहर रखे ठीक उसी तरह तैर सकते हैं जैसे जमीनमें चल। थक जाने, बोझसे लदे रहने, आँधीके कारण लहरके थपेड़ोंके कारण वह डूबते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि, किनारे पर दलदल होता है उसमें उनके पैर धँस जानेके कारण भी वह पानीसे निकल नहीं पाते। यदि उन्हें निकाला न जाय तो निकलनेके लिये छटपटा कर वे थकावटसे मर जाते हैं।

पशु यदि डूब जाय तो आदमीकी ही तरह उसकी साँस चलानेकी कोशिश होनी चाहिये। बड़े पशुका पिछला हिस्सा ऊँचा उठाना चाहिये और छोटे पशुकी पिछली टाँगे पकड़ लटकाना जिससे कि पिया पानी पेटसे निकल जाय। मुँह और नाकमें लगी कीच साफ कर दो। पशुको रगड़ कर गरम करो। पशुको चित्त लिटाओ इसके बाद एक आदमी उसकी छातीपर बैठ उसे दबावे और उतरकर भार हटा ले। अंतरा देकर इस तरह दबाने छोड़नेसे छातीसे पानी निकल जाता है और उसमें हवा भरती है। इस तरह कृत्रिम साँस चलायी जाती है। यह क्रिया काफी देर, जब तक पशु जीता रहे करते जाओ।

पशु पानीमें ३—४ मिनट बिना दम घुटे रह सकता है।

Dyspnoea : [illegible] : कष्टसे साँस लेनेको कहते हैं। इसमें दम घुटनेसा लगता है।

Dysuria : मूत्रकृच्छ्र : पेशाब नहीं होना।

Dusting powders (डस्टिङ्ग पाउडर) : छिड़कनी बुकनी : छिड़कनी बुकनीमें घोलोंकी अपेक्षा यह सुबीता है कि, इसमें पट्टी करनेकी जरूरत नहीं होती। अनेक रोगोंमें घोल फायदे के होते हैं। पर उनको घाव या चर्म रोगोंमें पट्टी के बिना उसी जगह लगाये रखनेमें कठिनाई है और पशुओंकी पट्टी करना कठिन काम है। इसलिये जहाँतक छिड़कनी बुकनीसे काम चल जाय पट्टी [illegible] गीली दवाकी जगह इसे ही लगाई दी जाय। घाव पर कोथघ्न [illegible] लिये नीचे लिखे नुस्खे उपयोगी हैं :—

(१) स्टार्च (मैदा) ... ४ भाग।
बोरिक एसिड ... ४ भाग।
जिंक ऑक्साइड ... २ भाग।

यदि कषाय चूर्णकी जरूरत हो तो भूनी फिटकिरी की बुकनी इसमें मिला दो।

(२) फिटकिरी ... १ भाग।
स्टार्च ... १ भाग।

इसमें कुछ बूँद कारबोलिक एसिडकी मिलाकर १ सैकड़ा मिश्रण बना लो।

Eclampsia (एक्लैम्पसिया) : अपतानक : विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न यह अवस्था विषपूर्ण है। प्रसवकालकी एक्लैम्पसिया सबसे जादे होती है। पशु बेचैन हो जाता, भौंचक हो देखता और अस्तव्यस्त डोलता है। कभी कभी वह मूर्छित हो जाता है और उसे आक्षेप होते हैं। प्रसवके पहले या बाद भी यह हो सकता है। कृमियोंके कारण भी यह हो सकता है। ऐसी हालतमें इसे धनुषी कहते हैं।

इसकी चिकित्साके लिये क्षार और पानी खूब दिया जाता है कि, विष निकल जाय। विषके कारण दूर किये जायँ। यदि यह कृमियोंके कारण है तो कृमिघ्न दिया जाय।

Electuary : अवलेह : दवाकी बुकनीके साथ सीरा, चीनी, छोआ या मधु मिलानेसे बनता है। यदि पशुको पतली दवा नहीं पिलायी जा सकती हो तो

दूसरा उपाय अवलेह देना है। लेमनजूसकी तरह चूसनेके लिये यह दिया जाता है। पतला अवलेह किसी चिपटी लकड़ीसे मुँहके भीतर लेस दिया जा सकता है।

Embolism : अवरोधन : यदि कोई छोटा पदार्थ रक्तस्रोतमें पड़ कहीं अटक जाता है तो उसे अवरोधन कहते हैं। वह पदार्थ अवरोधक (एम्बोलस) कहा जाता है। अवरोधनकी स्थितिके अनुसार इसकी गम्भीरता होती है. मस्तिष्क, और हृदयकी पेशियों की शिरायें सबसे भयङ्कर स्थान हैं। मस्तिष्कमें इससे उस स्थानपर मृदुता हो जाती है इस कारण देहके किसी भागमें पक्षाघात हो सकता या मृत्यु भी हो सकती है। यदि अवरोधक इतना बड़ा हुआ कि जिससे कोई बड़े आकारकी धमनी अवरुद्ध हो जाय तो उसे **महावरोधक** (थ्रोम्बस) कहते हैं। हवाकी अतिमात्रासे हृदयका अवरोधन हो मृत्यु हो सकती है रक्तस्रोतमें खूनके थक्केसे अवरोधन या महावरोधन हो सकता है।

Embrocations : मालिशका तेल : प्रतिउत्तापक मिला हुआ मालिशका तेल।

Emetics : **वामक** : वह दवा जो कै करावे। कुत्ते, बिल्ली और सूअर आसानीसे कै करते हैं। घोड़े कभी कभी खायी चीजें मुँहके बदले नाकसे ओकते हैं। यह रोग या गहरे क्षतका सूचक है।

गाय, भेड़ और बकरी रौंथ करती हैं। यह ओकना नहीं है। इन पशुओंको दवासे कै नहीं करायी जा सकती। वामक देनेसे कष्टका कारण बन जाता है; दवा आँतसे होकर पार हो जा सकती है या आचूषित हो सकती है।

Emphysema ([illegible]) : **वायु-अवरोध** : देहके किसी भागमें अस्वाभाविक वायुके होनेको कहते हैं। यह साधारण तौर पर फेफड़ेमें होता है। पर लँगड़ी जैसे रोगमें कभी कभी वायु पैदा होकर पेशीमें रुद्ध हो जाती है। यह त्वचाके ऊपरसे भी जानी जा सकती है। साधारण वायु-अवरोधका सरोकार निमोनियाँ और पार्श्वशूल जैसे फेफड़ेके रोगसे होता है।

Enema (**एनेमा**) : **वस्ति-कर्म** : पेटमें पानी चढ़ानेका नाम वस्ति-क्रिया है। अनाहमें या कब्जमें पेटमें जमा मल बाहर निकालने और दूसरे समय पेट एकदम साफ करनेके लिये वस्ति दी जाती है। पूरे कदके ढोरको इस कामके लिये सादा या साबुनका पानी ४ से ८ गैलन देनेसे काम निकलता है। इसके लिये

लगातार पानी चढ़ानेवाला पंप या नली और लंबी टीपकी जरूरत होती है। यह रेचक वस्ति है।

कृमि-निस्सारक वस्ति (Vermifuge Enema) से गुदामें चुलचुलानेवाली कृमि निकाली जाती है।

प्रशामक वस्ति अंत्रशूलके दर्द या आक्षेपकी शांतिके लिये दी जाती है। इसमें प्रति पाइन्ट ½ आउन्स नमक देते हैं। गरम और ठंढी वस्ति एकके बाद दूसरी देना शूलमें लाभकारी है। गरम वस्तिका पानी बहुत गरम न हो। उसमें हाथ डुबानेसे वह सह्य और सुखकर हो।

यदि शून्यताके लिये क्लोरल हाइड्रेटकी चाही मात्रा किसी कारण मुँहसे नहीं दी जा सकती हो तो एक गैलन पानीमें वस्तिसे दी जा सकती है।

Enteritis : **अंत्रशोथ :** अतिसार और पेचिश या आमातिसार आदिमें हुए आँतोंके प्रदाहको कहते हैं।

Enzootic (Endemic) : **बारहमासी :** बारहमासी रोग छूतके वह रोग हैं जो किसी स्थानमें सब दिन होते हैं। महामारी (epizootic or epidemic) वह छुतहे रोग हैं जो विशेष समय पर विशेष स्थानमें हाहाकार मचा देते हैं। Endemic और Epidemic के लिये क्रमशः Enzootic और Epizootic शब्द व्यवहृत होते हैं।

Enzyme (**एन्जाइम**) : **क्रियाशील-रस :** ये जटिल सेन्द्रिय रासायनिक पदार्थ हैं। आहार-तत्वको तोड़ उन्हें आचूषणीय पदार्थ बना देनेकी शक्ति इनमें है। कुछ आहारोंके साथ उनका अपना क्रियाशीलरस रहता है जो विशेष अवस्था होने पर निकलता है। स्राव करनेवाली ग्रन्थियोंमें इनमेंसे अनेक बनते हैं और कुछ वनस्पतियोंमें मिलते हैं।

Epistaxis : **नकसीर :** नाकसे खून बहना।

Epizootic : **महामारी :** Enzootic देखो।

Eructation : **उद्गार : डकारा :** डकारने या अधपचे आहारका एकाएक पेटसे मुँहमें आनेको कहते हैं।

Eruption : **स्फोटकादि निकलना :** त्वचापर फुंसी, दाने, चकत्ते आदिका निकलना है। माता, खुरपका, गोशीतला, डेंगू और पित्तीमें यह होता है। विभिन्न रोगोंमें इनका विभिन्न लक्षण और महत्व है।

Erythema (**एरिथिमा**) **अरुणिमा :** त्वचा पर लाल रंगके दाने निकलने या उनके लाल होनेका नाम है। इसमें त्वचा या दानोंमें खून आ जाता है।

Escharotics (**एस्कैरोटिक**) **: दाहक :** तीव्र दाहक पदार्थोंको कहते हैं।

Exanthemata (**एक्सैन्थेमेटा**) **: स्फोटज्वर :** जिन रोगोंमें पित्ती या दाने निकलें।

Expectorants : **कफनिस्सारक :** श्लेष्मा कफ निकालनेवाली दवा या पदार्थ। जैसे कि, कपूर, एमेटिक टार्टर, वासक।

Extravasation (**एक्सट्रावेसेशन**) **: अपसार : पर्युत्प्लावन :** अपने आधारसे द्रवोंके निकल पड़नेको कहते हैं। चोट लगने, कुचलने या किसी रक्तवहाके फटनेसे यह होता है। मस्तिष्कके इस तरह फटनेको अपस्मार (एपोप्लेक्सी) कहते हैं।

Exudation : **निस्सरण :** पसीनेकी तरहसे द्रवोंके निकलनेको कहते हैं। इस तरह निकले द्रवोंका खातोंमें जमा होना भी यही कहा जाता है।

Fainting, fits, syncope : **मूर्छा :** हृदयगतिके अचानक बन्द होनेको कहते हैं। इसके कारण बेहोशी होती है। मस्तिष्कमें अपर्याप्त रक्त जाने, हृदयकी दुर्बलता या कोई गहरी चोट इसका कारण है।

पशुको चित्त लेटा देना चाहिये। उसका सिर जरा नीचे रखा जाय जिससे कि, मस्तिष्कमें रक्त पहुँचे। उसके सभी बन्धन दूर कर दिये जायँ। सिर पर ठंढा पानी गिराया जाय।

Fauces (**फॉसीज**) **: मुखमध्यस्थ गह्वर :** यह जोड़नेवाला छेद है। इसकी दीवारें मुँह और गलेके बीच रहती हैं।

Ferments : **सन्धान : खमीर :** अपना परिवर्तन किये बिना पदार्थोंमें रासायनिक परिवर्तन करनेवाले पिंड। यह चीनीके घोलको तोड़ उसे सुरा बनाते हैं। ईस्ट या किण्व प्रसिद्ध संधानकारी हैं।

Fibrin : **फाइब्रीन :** डिफाइब्रीनेटेड रक्त (blood defibrinated) देखो।

Flatulence : **कोष्ठवायु : उदराध्मान :** पेटमें हवा भरने (गुम होने) को कहते हैं। पेटकी हवा मुँहसे निकलती है और आँतोंकी गुदासे।

Fluctuation : तरंगवत् संचार : सूजनको एक तरफ दबानेसे उसके तरलके कम्पन की अनुभूति दूसरी तरफ मालूम पड़ना। फोड़ेमें पीव होने पर यह होता है। शोथमें द्रवका थलथलाना जाना जा सकता है।

Functional & organic Diseases : क्रियागत और अवयवी रोग : क्रियागत रोग वह हैं जो किसी अवयव या तन्त्रके ठीक तरहसे काम नहीं करने पर होते हैं। इसमें वह अंग तो ठीक रहता है पर काम ठीक से नहीं करता। जैसे कि, हृदय, उसकी पेशियों और कपाटिकाओंमें रचना सम्बन्धी कोई दोप न होते भी वह ठीक कार्य नहीं भी कर सकता है जिससे दुर्बलता होती है। मस्तिष्कमें नाड़ीकेन्द्र अक्षत होते भी देहका कोई भाग बेकाम हो जा सकता है। इसके विपरीत अंगविशेषमें ही त्रुटिके कारण [illegible] या रोग हो सकते हैं। ऐसी हालतमें रोग अवयवी कहा जाता है। क्षयमें फेफड़ेमें क्षत होनेके कारण वह ठीक काम नहीं कर पाता। हृत्कपाटिकाके रोगोंमें हृदय ठीक काम नहीं कर पाता क्योंकि दोष उसी अवयव या अंगमें है। ये अवयवी रोग हैं। यदि गहराई से विचारा जाय तो सभी क्रियागत रोग असलमें अवयवी रोग हैं। पर अभी हमारे ज्ञानकी इस स्थितिमें भेद माना जाता है।

Gall stone : पित्ताश्मरी : पथरी : पित्तकोष या यकृतकी पित्तकुल्यामें ये बन जाती हैं। ये किसी मूलकणके चारों तरफ जमती हैं।

Ganglion : नाड़ीग्रन्थि : यह नाड़ीकोषोंका केन्द्र है। विभिन्न सूत्रोंसे आयी नाड़ी-चेतना इसमें केन्द्रित होती है।

Gluteals : नितम्ब : चूतड़ और उस प्रदेशके ढाँचेको कहते हैं।

Gestation : गर्भ-धारण : यह गर्भ रहनेका पर्याय है।

Hormones : हरमोन : प्रभावी : वह पदार्थ हैं जो रक्तवोनमें जाने पर अपने स्रावबाले अवयवोंको छोड़ अन्य सभी पर प्रभाव डालते हैं। अधिवृक्क, पोषणिका, चुल्लिका, डिम्बकोष, अन्ड आदि जैसी ग्रन्थियोंके अन्तःस्राव प्रभावी हैं। इनका देह और व्यक्तिके लक्षणपर गहरा प्रभाव पड़ता है।

Hypnotics : निद्रक : नीन्द लानेवाली दवाओंको कहते हैं। जैसे, ब्रोमाइड, क्लोरल हाइड्रेट, छोटा चन्द्रा (सर्प गन्धा)।

Inflammation : प्रदाह : यदि जीवित तन्तुपर क्षत लगता है तो क्षतकी गंभीरताके अनुसार उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप उसमें प्रदाह होता है।

इस प्रतिक्रियाका रूप ताप, पीड़ा, ललाई, सूजन, और उस अंगके कार्यमें बाधा है।

पहली प्रतिक्रिया धमनी पर होती है। यह फूल जाती है जिससे अधिक रक्त दौड़ता है। इस कारण ललाई और ताप होता है। इसके कुछ देर बाद क्षतस्थानमें श्वेत रक्त कण (क्षत्रकण) के साथ कुछ सीरम भी आता है। इस कारण सूजन हो सकती है। ये श्वेतकण मरम्मत का काम करने और मरम्मतमें सफल हो सकते हैं। तब सूजन मिटती है और रक्त आचूषण होकर प्रवाहमें मिल जाता है। यदि ये मरम्मतके काममें सफल न हुए तो घाव पक जाता है, रक्तप्रवाहमें बाधा पड़ती है। तन्तु नष्ट हो जाते हैं और पीब बनती है। इसके बाद पीब बह सकती है और घाव भरने लगता है।

प्रदाहकी पहली अवस्थामें ठंढा पानी या बर्फ लगाना लाभकारी है। बाद की अवस्थामें शीतोपचारसे कोई लाभ नहीं, सेंकना अधिक अच्छा है। प्रलेप (पुल्टिस) या गरम पानीका सेंक देनेसे गरमी और नमी दोनों मिलती हैं जो लाभकारी हैं। यदि फोड़ा निकलना ही है तो सेंकनेसे वह जल्दी निकल आता है। अधिक पीड़ा हो तो प्रशामक लगाया जा सकता है। धतूराके पत्तेके सूखे चूर्णका लेप बना मुसब्बरके साथ लगानेसे प्रदाहके दर्दमें प्रायः शान्ति मिलती है। यदि प्रदाह किसी विशेष अंगमें है तो उस अंगका रोग होता है और उसका नाम उसीके अनुसार होता है। यदि कंठमें प्रदाह है तो इसे कंठप्रदाह (लेरिन्जाइटिस), यदि फेफड़ेमें है तो निमोनियाँ आदि, इसी भाँति जानो।

Inhalation : **सुँघनी** : दवाओंका भाफके तौर पर साँसके साथ घोटनेका नाम है। इस तरह दवाका संपर्क नाक, कंठ, क्लोम, क्लोमशाखा या पूरे श्वाशतन्त्रके साथ कराया जाता है।

आक्षेप दूर करने या बेहोशीके लिये क्लोरोफॉर्मका व्यवहार होता है। इसी कामके लिये एमिल नाइट्रेटका व्यवहार किया जाता है। ये सब उड़नेवाले पदार्थ हैं। इनमें रूई भिगा इन्हें सुँघाते हैं।

भाफ की सुँघनी सबसे प्रचलित रूप है। साधारण तौर पर एटोमाइजर (अणुफुहारी) के सहारे सुँघनी दी जाती है। भाफकी सुँघनी किसी बर्तनमें भाफ तैयार कर नलीके द्वारा उसे निकालते हैं। नलीमें जहाँसे भाफ निकलती है वहाँ एक दूसरी नली जुड़ी रहती है। जिसका एक छोर एक दूसरे बरतनके द्रवमें डूबा रहता है जिसमें युकलिप्टस या थाइमल, तेल या तारपीनमें घुला रहता है।

भाफ बगलकी दवाको खींच उसमें मिल जाती है और महीन फुहारेमें निकलती है। इस फुहारको नाक और खुले मुँहके सामने रखा जाता है कि, भाफ साँसकी प्रणालीमें जाय।

कभी कभी दवाको उबलते पानीमें ही डालते हैं। जिससे दवा मिली भाफ निकलती है।

Inunction : **मर्दन** : दवा मिले तेल मलकर दवा देहके भीतर पहुँचायी जाती है। यह मर्दन क्रिया है।

Inoculation : **संचारण** : देहके भीतर क्षत या खोंचके द्वारा संक्रामक पदार्थ पहुँचानेकी क्रिया का नाम है। घटनावश शरीरमें रोगाजाणु-संचारण होनेसे रोग हो जा सकते हैं। रोगोंसे रक्षा करनेके लिये भी देहमें पाछ (टीका) या सूई लगाकर जीवाणु प्रवेश कराया जाता है।

Intussusception : **अन्त्रप्रवेश** : आँतोंके अवरोधका यह एक रूप है। इसमें आँतका कोई भाग अपने लगे भागपर चढ़ जाता है। इसका निदान कठिन और चिकित्सा चीरफाड़ (शल्य) वाली है।

Irrigation : **धारा स्नान : प्रणालिकासिंचन** : किसी द्रवसे किसी खातके धोनेकी क्रिया है। बाहरी क्षत पानीकी धार डालकर धोया जा सकता है। बड़ी आँत, जरायु या मूत्राशय धोनेमें यह उपयोगी है। एक टोंटीदार नली लेते हैं। नली $\frac{1}{2}$ या $\frac{3}{4}$ इंच व्यास की रबरकी हो सकती है। इसके एक छोर पर बड़ीसी टीप लगी रहती है। टीपमें आवश्यकताके अनुसार सादा या औषधियुक्त पानी भरा रहता है। टोंटी आँतके लिये गुदाके द्वारा और जरायुके लिये भगके द्वारा घुसायी जाती है। घुसानेके पहले जरासा पानी बहा दिया जाता है जिससे कि उसकी हवा निकल जाय। कई गैलन पानी चढ़ाया जा सकता है जो थोड़ी देरके बाद बाहर बह निकल सकता है।

इस धारा स्नानसे बड़ी आँत पूरी तौर पर खाली नहीं हो सकती। पर जितना भी खाली होती है उससे तथा गुनगुने और ठंढे पानीके चढ़नसे भी पूरी आँतको स्फूर्ति मिलती है। यदि जरायुमें पानी चढ़ाना ही पड़े तो उसमें जरासा पोटाश परमैंगनेटकी लाली मिला देते हैं। इसका अनुपात १ : १००० या १ : २००० है। जब भीतर सड़े सेन्द्रिय पदार्थ होते हैं तो पोटाशकी लालीवाला पानी भूरा या पीला बदरङ्ग होकर निकलता है। यदि पोटाशका पानी रङ्ग बदले बिना निकलने लगे तो

यह समझना चाहिये कि तत्काल कोथीय पदार्थ वह निकल गया है। क्षत धोनेके लिये बोरिक एसिडका हल्का घोल उपयोगी है। कडरा और पेशियोंकी मोच पर लगातार शीतल जलकी धार छोड़नेसे लाभ होता है। जब तीव्र अवस्था बीत जाय तो गरम पानीसे धोना ठीक होगा। इससे उस भागमें रक्त प्रवाहित होगा, जमी लसीकाका आचूषण हो जायगा।

Lathyrism : **लैथीरिज्म** : यह लैथीरस अर्थात् खेसारीका विष लगना है। यदि बहुत दिनोंतक **खेसारीकी** दाल बहुत जादे खिलायी जाय तो इस विषका लक्षण पशुमें दिखायी पड़ता है। इसके फलस्वरूप पक्षाघात हो सकता है। इसकी आशङ्का होने पर खेसारी खिलाना बन्द करना ही चिकित्सा है।

Lavage : **धौति** : आँत और पेट धोनेकी क्रियाका नाम है। उदर-नली (stomach tube) के द्वारा पेट और वस्ति या एनेमासे आँत धोयी जाती है।

Lugol's solution : **ल्यूगोलका घोल** : यह आयडिन और पोटाश आयोडाइड का घोल है। इसका योग नीचे लिखे अनुसार है :—

आयडिन	...	५
पोटाश आयोडाइड	...	१०.
पानी	...	१००

Macules : **धब्बे** : अनेक कारणोंसे हुई त्वचापरके दाग हैं।

Malignant : **मैलिग्नैन्ट** : **सांघातिक** : विशेष कारणोंसे हुई गहरी असुस्थताको कहते हैं। साधारण मलेरिया रक्तको जितनी क्षति पहुँचा सकता है उससे गहरी मैलिगनेन्ट या सांघातिक मलेरियासे होती है। मैलिगनेन्ट अर्बुद, मैलिगनेन्ट शोथ ये सभी कठिन रोग हैं।

Metastasis (**मेटास्टेसिस**) : **स्थानविकल्प** : दुष्ट या सांघातिक अर्बुद देहके विभिन्न भागमें फैल गौण अर्बुद पैदा करते हैं। इस विधिको मेटास्टेसिस कहते हैं। ऐसे अर्बुद मेटास्टेटिक अर्बुद कहे जाते हैं।

Mycosis (**माइकोसिस**) : **छत्राक जनित रोग** : फगस या छत्राककी वृद्धिके कारण हुए रोगोंको कहते हैं। इसके उदाहरण दाद आदि हैं।

Names of parts of body : **शरीर अंगोंके नाम : अंग्रेजी शास्त्रीय, अंग्रेजी प्रचलित तथा हिन्दी।**

अंग्रेजी शास्त्रीय ।	अंग्रेजी प्रचलित ।	हिन्दी ।
Cranium	Fore brain	कूर्पर, करोटी
Occipital region	Poll	चांदी, पश्चिमकपालदेश
Cervical region	Neck	गला, ग्रीवाप्रदेश
Thoracic region	Withers and back	पुट्ठा और पीठ
Lumbar region	Loins	कमर, कटिदेश
Sacrum region	Croup or quarters	नितंब
Coccygeal region	Tail	पूँछ
Scapula	Shoulder blade	कंधा, अंसफलक
Humerus	Arm	बाँह, प्रगंडास्थि
Radius or Ulna	Fore-arm	कलाई, अंतःवहिः प्रकोष्ठास्थि
Carpus	Knee	घुटना
Meta Carpus	Cannon	करभास्थि
1st phalanx	Long pastern	प्रथम अंगुली-नलक
2nd ,,	Short pastern	द्वितीय अंगुली-नलक
3rd ,,	Coffin bone	तृतीय अंगुली-नलक
Pelvis	Hunch	श्रोणि
Femur	Leg or thigh bone	उरु-अस्थि
Tibia and fibula	Second thigh or gaskin bones	जंघास्थि और अनुजंघास्थि
Tarsus	Hock	पाद-कुर्चास्थि, पिछला घुटना
Meta tarsus	Cannon	पादांगुलीमूल-शलाका, करभ
Pharynx	Throat	गला
Oesophagus	Gullet	अन्नवहा
Larynx	Voice box	कंठ
Trachea	Wind pipe	साँस-नली
Rumen	Paunch	रोमंथाशय, भोंभ
Reticulum	Honey-comb	जालाशय, मधु-छत्रा

Omasum	Many plies	पूर्वाशय, पत्रा या बहुपत्रक
Abomasum	True stomach	पश्चात् आशय, सच्चा पेट
Coronet	Arc of head	मुकुट

Necrosis : **तन्तुक्षय : अस्थि-निष्प्राणता** : तन्तुओं विशेषकर सौत्रिक तन्तुओं या अस्थिओंकी निष्प्राणताको कहते हैं।

Normal Saline (**नॉरमल सेलाइन**) : **शरीर शास्त्रीय नमकीन जल अर्थात् नमक का साधारण घोल** : यह जीवाणुशुद्ध चुलाये (डिस्टिल्ड) पानी और खानेके नमकका घोल है। यह स्फूर्ति देनेवाला है क्योंकि यह ०.९ सैकड़ा अर्थात् १ पाइन्ट जलमें लगभग ९० ग्रेन नमक का घोल है।

नमकका पानी कुछ देर तक रक्तकी जगह काम दे सकता है। इसलिये गहरे रक्तस्राव या रक्तकी हानिसे हुए सङ्कटको टाल सकता है। जरूरत हो तो सयाने बैल को हर दूसरे घंटे बार बार १ गैलन तक दिया जा सकता है। (१३४२,१४५०)

Nursing : **सुश्रूषा : परिचर्या** : दवासे अधिक भरोसा सुश्रूषाका करना चाहिये। दवा प्रकृतिको सहायता मात्र ही करती है। और सुश्रूषा भी यही कर सकती है। दवा हानि भी कर सकती है। सफाई, आराम, खिलाने और भूखे रखनेकी जब जैसी जरूरत हो व्यवस्था करो।

Obstetrics : **धात्रीविद्या** : बच्चोंका प्रसव और इस सम्बन्धके रोग तथा असाधारणताओंके विचारको कहते हैं।

Opsonine (**आप्सोनिन**) : **कल्पन** : वह पदार्थ हैं जो रक्तरस (सीरम) में रहते हैं और जीवाणुओंको खा लेने और नष्ट करनेकी श्वेतकणकी शक्ति बढ़ाते हैं। रक्तमें यह शक्ति मृत जीवाणुओंकी सूई लगाकर बढ़ायी जा सकती है।

Os (**ऑस**) : **मुख** : द्वार देश या मुँह।

Os uteri : **गर्भाशयमुख** : जरायुका मुँह।

Prolapse : **भ्रंस** : किसी अंग या ढाँचेके स्थान भ्रष्ट होनेको कहते हैं। गुदा और जरायु या भगका भ्रंस कभी कभी होता है।

महाश्रोतके उत्ताप या उसपर जोर पड़नेसे गुदभ्रंस (काछ निकलना) होता है। जरायु और भग भी निकल आ सकते हैं। उन अङ्गोको १ : १००० (१ रत्तलमें ७ ग्रेन) पोटाश परमैंगनेटके घोलसे साफ करना चाहिये। इसके बाद उसी घोलमें एक तौलिया भिगा कर निचोड़ लो। फिर उस अंगको बैठानेमें प्रायः पशु बाधा देता

है। उसकी बाधा से बैठाना यदि असंभव हो जाय तो उसे ऐसी असुविधाजनक स्थितिमें रक्खो कि वह बाधा न दे सके। इस कामके लिये छातीको रस्सीसे कसते हैं। खूब कस जाने पर ट्रनिकेट या मरोड़नीका उपयोग किया जाता है। पशु बाधा देनेकी जब चेष्टा करे तो मरोड़नीको और मरोड़ो इससे वह वैसा नहीं करेगा।

यदि किसी अंगका भ्रंस हो जाय और डाक्टरके आने की प्रतीक्षा हो तो उसे १ : २००० पोटाश परमैंगनेटके घोलसे तर कर ढका रखना चाहिये। यदि कोई भीतरी अंग बाहर सूखी हालतमें रहे तो गैंगरीन हो जा सकती है जिससे पशुकी जानको खतरा रहता है।

भ्रंस-अंग बैठानेके लिये शरीरको क्लोरल हाइड्रेटसे शिथिल किया जा सकता है। इससे पशु बाधा नहीं दे सकेगा और सरलतासे अंग अपने ठिकाने बैठाया जा सकेगा।

Prognosis **(प्रॉग्नोसिस) : साध्यासाध्य निर्देश :** रोगकी गतिका भविष्य-कथन।

Pyaemia **(पायेमिया) : पूति-रक्तदुष्टि :** रक्तमें ऐसे परिवर्तन होना जिनसे रक्त-स्रोतमें पूयकण होनेके कारण विभिन्न अंगोंमें फोड़े निकलें। पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टो-भैक्सीनकी सूई और सल्फापाइरिडीन या एम० बी० ६९३ खिलानेसे भी यह रोग दूर किया जा सकता है।

Sedatives **: शामक : प्रशामक :** वह दवायें हैं जो उत्ताप मिटाती और शान्ति देती हैं। जैसे कपूर, रेंड़ीका तेल, छोटा चन्द्रा (सर्पगन्धा), धतूरा, अफीम, ब्रोमाइड।

Sinus **(साइनस) : विवर :** देहके सँकड़े और खोखले गह्वरको कहते हैं।

Spasm **: आक्षेप :** पेशियोंका अपने आप पीड़ायुक्त संकुचन है।

Sphinctre **: संकोचिनी :** किसी अंगके मुँह परकी गोल पेशी जो मुँह सदा बन्द रखती है और द्रवोंको बाहर नहीं निकलने देती। यह इच्छा करके ढीली की जा सकती है।

Styptics **: रक्तरोधक :** रक्तस्राव रोकनेवाली दवायें जैसे फिटकिरी, तारपीन।

Tonics **(टॉनिक) : बलवर्धक : पुष्टिवर्धक :** शरीरको शक्ति देनेवाली दवायें। जैसे संखिया, लोहा, कुचला, अर्जुन, कुनाइन और सिनकोना।

Tourniquet (**टूर्निकेट**) : **मरोड़नी** : साँप काटने या धमनीसे रक्त बहना जैसे अवसर पर रक्त-प्रवाहको कुछ समय रोकनेवाला यंत्र। अंग विशेषको रस्सी या रूमालसे बाँध देते हैं। अधिक चाप देनेके लिये उसमें पेन्सिल या कोई छड़ी या शलाका घुसाकर मरोड़ते हैं जिससे बन्धन और कसता जाता है। ध्यान रहे कि, अधिक देर तक रक्तप्रवाह एक दमसे नहीं रोका जाय। क्योंकि, अधिक देर तक रक्तप्रवाह नहीं रहनेसे वह अंग निष्प्राण हो जाता और गैंगरीन हो जाती है।

Truss (**ट्रस**) : **अन्त्रस्थापक : कटिबन्ध** : मनुष्योंकी आँत उतरने पर यह खास तौर पर उपयोगमें आता है। इससे दबाकर आँतका उतरना रोका जाता है। पशुचिकित्सामें इसका अधिक उपयोग नहीं।

Trocar canula (**ट्रोकर कैनुला**) : **ब्रीहिमुख** : यह एक नुकीली छेनी है जिसके दूसरे छोरपर हत्था लगा रहता है। यह एक अङ्गूठीदार नली (कैनुला) में बैठ सकता है। ब्रीहिमुख नलीसे आध इंच बाहर निकला रहता है। जलोदर आदि रोगोंमें पानी निकालने और पेट फूलने आदि पर हवा निकालनेमें यह यन्त्र काममें आता है।

नुकीले ब्रीहिमुख पर नली या कैनुला चढ़ा कर जलोदरमें चाही जगह पर घुसेड़ी जाती है। जैसे कि पेट फूलने या जलोदरमें उदर्याकलामें। इसके बाद केवल ब्रीहिमुख खींच लिया जाता है और नली रहने दी जाती है। इस तरह जलोदरमें पेटका पानी और पेट फूलने पर उसकी हवा नलीसे होकर बाहर निकलती है। नली निकाल लेने पर छेद अपने आप भर जाता है। छेद करते समय कोथघ्न उपाय कर लेना चाहिये।

Weights & measures : **नाप और जोख** : ४ डिग्री सेन्टिग्रेड ताप रासायनिक विश्लेषणके काममें आनेवाली भिन्न भिन्न तौल या जोख ग्राम, उसके अंश या गुणित (गुने) हैं। और भिन्न भिन्न नाप हैं क्यूबिक सेन्टिमीटर, उसके अंश या गुणित। पर एक क्यूबिक सेन्टिमीटर (सी० सी०) पानीकी तौल पूरी १ ग्राम होती है। सेन्टिमीटर लम्बाई की नाप भी है। पानीका एक हिस्सा या खंड जिसकी लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई एक एक सेन्टिमीटर है वह एक क्यूबिक सेन्टिमीटर है। इसका वजन १ ग्राम है। समान समान नापों और जोखोंकी एक सूची नीचे दी जाती है।

लंबाईकी नाप

१ इंच = २·५३९९ सेन्टीमीटर (= २·५४ प्रायः)।
१ फूट = ३०·४७९४ ,, (= ३०·४८ प्रायः)।
१ गज = ९१·४३८३ ,, या ०·९१४ मीटर।

इंचको सेन्टीमीटर बनानेके लिये २·५४ से गुणा करो।

१ सेन्टीमीटर = ०·३९३७ इंच।
१ मीटर = १०० सेन्टीमीटर = १ गज ३·३७ इंच।

सेन्टीमीटरको इंच बनानेके लिये ०·३९ से गुणा करो।
मीटरको गज बनानेके लिये १·०९ से गुणा करो।

तौलकी नाप

१ ग्रेन = ०·६४८ ग्राम।
= ६४·८ मिलीग्राम।
१ ड्राम = ३·८८८ ग्राम।
१ आउन्स = २८·३५ ग्राम।
१ पाउन्ड = ४५३·५९२ ग्राम। मोटामोटी ½ किलोग्राम।
१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।

आउन्स (एवर्डी०) को ग्राम बनानेके लिये २८·३५ से गुणा करो।
पाउन्डको ग्राम बनानेके लिये ४५३·६ से गुणा करो।
पाउन्डको किलोग्राम बनानेके लिये ०·४५४ से गुणा करो।

१ मिलीग्राम = ०·०१५४ ग्रेन।
१ ग्राम = १५·४३ ग्रेन।
= ०·०३२१ आउन्स।
१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।
= २·२०४६ पाउन्ड (एवर्डी०)

ग्रामको आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।
ग्रामको ग्रेन बनानेके लिये १५·४३२ से गुणा करो।
किलोग्रामसे पाउन्ड बनानेके लिये २·२०४६ से गुणा करो या मोटामोटी २·२ पाउन्ड।

घन परिमाण (केपेसिटी) का नाप

१ फ्लुइड ड्राम = ३·५४४ क्यूबिक सेन्टीमीटर (सी० सी० या मिलीलीटर)।
१ फ्लुइड आउन्स = २८·४१२ सी० सी०।
१ पाइन्ट = ५६७·९३३ सी० सी० या ०·५६८ लीटर।
१ गैलन = ४·५४ लीटर।
१ लीटर = १,००० सी० सी० या मिलीलीटर।
= ३५·१९६ फ्लुइड आउन्स।

आउन्सको सी० सी० बनानेके लिये २८·४१२ से गुणा करो।
पाइन्टको सी० सी० बनानेके लिये ५६८·० से गुणा करो।
गैलनको लीटर बनानेके लिये ४·५४ से गुणा करो।

१ क्यूबिक सेन्टीमीटर = १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर।
= ०·०६१ क्यूबिक इंच।
= ०·०३५२ फ्लुइड आउन्स।
= १६·८९६ मिनिम।

सी० सी० को आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।
लीटरको पाइन्ट बनानेके लिये १·७६ से गुणा करो।
लीटरको आउन्स बनानेके लिये ३५·१९६ से गुणा करो।

१ सी० सी० = $\frac{१}{१०००}$ लीटर = १ मिलीलीटर।
= १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर।
१ गैलन = १० रत्तल पानी, २७७·२७४ क्यूबिक इंचमें (४·५४ लीटर) फैला हुआ।

तौल

४ धान = १ रत्ती, गंची
६ रत्ती = $\frac{१}{१६}$ तोला
९६ रत्ती = १ तोला
४ कंचा = १ छटाक
१ सिक्की = $\frac{१}{८}$ तोला

८ रत्ती = १ मासा

५ सिक्की = १$\frac{3}{4}$ तोला या १ कंचा

१ तोला = १८० ग्रेन

५ तोला = १ छटाक

२$\frac{1}{2}$ तोला = १ आउन्स

४ छटाक या २० तोला = १ पाव

४ पाव, १६ छटाक, २ रत्तल या ८० तोला = १ सेर

१ सेर = २.०५७ रत्तल या पाउन्ड

५ सेर = १ पसेरी, १ धारी

४० सेर = १ मन

ब्रिटिश फार्माकोपियाके तौलकी नाप

१ ग्रेन

४३७.५ ग्रेन = १ आउन्स

१६ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल

७००० ग्रेन = १ पाउन्ड या रत्तल

ब्रिटिश फार्माकोपियाके द्रवके घन-परिमाण का नाप

१ मिनिम

६० मिनिम = १ फ्लुइड ड्राम

८ फ्लुइड ड्राम = १ फ्लुइड आउन्स

२० फ्लुइड आउन्स = १ पाइन्ट

८ पाइन्ट = १ गैलन

एपोथेकेरीज (डाक्टरी) तौल

२० ग्रेन = १ स्क्रूपल

३ स्क्रूपल = १ ड्राम

८ ड्राम = १ फ्लुइड आउन्स

१२ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल

२० फ्लुइड आउन्स = १ पाइन्ट

२ पाइन्ट = १ क्वार्ट

१४ फ्लुइड आउन्स = १ बोतल

१६० फ्लुइड आउन्स = १ गैलन

एवर्डोपाइज (अङ्गरेजी चालू) तौल

१६ ड्राम = १ आउन्स

१६ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल

२८ पाउन्ड = १ क्वार्टर

४ क्वार्टर = १ हन्डर (हन्ड्रेडवेट)

२० हन्डर = १ टन

११२ पाउन्ड = १ हन्डर

२२४० पाउन्ड = १ टन

१ स्टोन = १४ पाउन्ड

तौल

१ मिलीग्राम = ग्रामका १/१००० = ०.००१ ग्राम

१० मिलीग्राम = १ सेन्टीग्राम = ०.०१ ग्राम

१० सेन्टीग्राम = १ डेसीग्राम = ०.१ ग्राम

१० डेसीग्राम = १ ग्राम = १. ग्राम

१० ग्राम = १ डेकाग्राम = १०. ग्राम

१० डेकाग्राम = १ हेक्टोग्राम = १००. ग्राम

१० हेक्टोग्राम = १ किलोग्राम = १०००. ग्राम

नाप

१ मिलीलीटर = १ क्युबिक सेन्टीमीटर ०.००१ लीटर

१० मिलीलीटर = १ सेन्टीलीटर = ०.०१ लीटर

१० सेन्टीलीटर = १ डेसीलीटर = ०.१ लीटर

१० डेसीलीटर = १ लीटर = १. लीटर

१० लीटर	= १ डेकालीटर	=	१०' लीटर
१० डेकालीटर	= १ हेक्टोलीटर	=	१००' लीटर
१० हेक्टोलीटर	= १ किलोलीटर	=	१०००' लीटर

नाप और तौल

१ मिलीग्राम	०'००१	=	$\frac{१}{६४}$ ग्रेन
१ सेन्टीग्राम	०'०१	=	$\frac{१}{६}$ ग्रेन
१ डेसीग्राम	०'१	=	१$\frac{१}{२}$ ग्रेन
१ ग्राम	१'	=	१५$\frac{१}{२}$ (१५'४३२) ग्रेन
४ ग्राम	(३'९)	=	१ ड्राम
३१ ग्राम	(३१'१)	=	१ आउन्स
५०० ग्राम	(४५३'६)	=	१ पाउन्ड (एवडौं०)
१ किलोग्राम		=	२'२ पाउन्ड (एवडौं०) (२'२९४६)
१ मिनिम		=	०'६१ सी० सी०
१६ मिनिम	(१६'२३)	=	१ सी० सी०
१ फ्लुइड ड्राम		=	३'७५ सी० सी०
१ फ्लुइड आउन्स		=	३० (२९'५७२) सी० सी०
१ पाइन्ट		=	५०० सी० सी० ('४७३१ लीटर अथवा ४७३ सी० सी०)

शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्द

A

abdomen उदर, पेड़ू
abductors नायनी
abomasum पश्चात्-आशय, सच्चा पेट
abrasion रगड़, खोंच, अवदरण
absolute heart weakness निरपेक्ष हृदय-दौर्बल्य
absorption आचूषण
acid अम्ल, तेजाब
—lactic दुग्धाम्ल
acid-fast अम्लसहिष्णु, एसिड-फास्ट
acne कील, मुख-दूषिका
actinomycosis मुखव्रण, कठजिभिया
active immunity सहज क्षमता
acute प्रबल, दारुण, उग्र
aerobic वायुजीवी
afferent संज्ञावह
agglutination test संश्लेष-परीक्षा
albumen अंड-सफेदी, अंड-लाल
alveoli वायुकोष, उदूखल
alimentary canal अन्नवहा नली, महास्रोत
alfa-alfa लूसन, अल्फाल्फा
allergy अतिचेतना, एलर्जी
amputation अंगच्छेदन
anaemia रक्ताल्पता
anaerobic निर्वायुजीवी
anaesthesis संज्ञाशून्यता
anaesthetic संज्ञाशून्यक
analgesic वेदनाशून्यक, पीड़ाहर
anaphylaxis अतिग्राहकता
anasarca सार्वदैहिक शोथ
anatomy शारीर-शास्त्र, शारीरसंस्थान-विद्या
anodynes वेदनाशून्यक, वेदना-निवारक,
anus गुद, पायु
antacid अम्लघ्न
antibody प्रतिपिंड
antidotes विषघ्न, अगद
anterior turbinated bone शुक्तिकास्थि
—deep pectoral muscle उरच्छदा

—aorta आगेकी महाधमनी
antigen प्रतिपिंडक
anthrax गिल्टी
aorta महाधमनी
apex चोटी, हृदग्र, हृदयतल
apoplexy अपस्मार, मृगी
appendicular parts शाखायें
appendix उण्डुक, उंडुकपुच्छ अंत्रपुच्छ
aqueous humour तेजोजल, तनुजल
arachis मूँगफली
arm प्रगंड
artery धमनी
articulation सन्धि, जोड़
arthrospores पिंडज
ascarides केंचुआ कृमि, लताकार कृमि
ascites जलोदर
asternal अ-उरःफलकीय
atlas चूडावलय
atony पेशी-दौर्बल्य
attenuated हल्का, कमजोर किया हुआ
auricular appendix अलिन्दकी चोटी
auscultation श्रवण, आकर्णन
axillary vein कक्षाधरा शिरा
axiomatic स्वतः प्रमाण
axis धुरी
—cylinder सूत्राक्ष
—vertebra दन्तचूड़ा-कशेरु

B

bacteria जीवाणु
balanced diet युक्ताहार
bang's disease संक्रामक गर्भपात, छुतहा गर्भपात
basal metabolism आधारीय प्रसादपाक
biceps द्विशिरस्का पेशी
—femoris द्विशिरस्का औवीं पेशी
bi-concave द्वि-नतोदर
bi-convex द्वि-उन्नतोदर
bile पित्त
biological जैविक, जीवशास्त्री, जैव
binocular द्विचक्षु-दृष्टि
black quarter लंगड़ी
bladder वस्ति, मूत्राशय
bland oil मीठा या अनुत्तेजक तेल
blood vessel रक्तवहा
body cell शरीर-कोष
borax सोहागा
ball and socket उदूखल
bony tissues अस्थितन्तु
brachialis कूर्पर द्विशिरस्का पेशी
brady cardia हृद्-मन्दता, हृन्मन्दता

brain cord सुषुम्नाकांड
—matter मस्तिष्क-तत्व
bronchitis ब्रोंकाइटिस, क्लोमशाखा-प्रदाह, कास
bronchus क्लोमशाखा
bull-holder साँड़की नकेल
by-product उपजात

C

caecum पुरीषोन्डुक, उन्डुक
calcification सौधीकरण
calcium कैलशियम, चूना, सुधा
—carbonate खड़िया, खड़ी
calf बछरू
calf-diphtheria वत्स-रोहिणी
calorie पोषक-ताप, कैलोरी
canine रदनक
cannon करभ
—region शलाकाधिष्ठान, मणिबन्ध
canula कैनुला, नली
capillary केशिका, जालक
carbohydrate कार्बोहाइड्रेट, श्वेतसार
cardiac asthenia हृदय-दौर्बल्य
—plexus हृदयचक्र
carnivora मांसभोजी
carpus जानु, कूर्चास्थि
carrier बाहन, वाहक
cartilage तरुणास्थि, उपास्थि
casein केसीन, केजोन, छेना-पदार्थ
castrate बधिया करना
catalyst उत्प्रेरक, प्रतिक्रियाकारी
cathartic विरेचक
caustic soda कॉस्टिक सोडा, दाहक क्षार
cavity खात, दरी
cells कोष
centrifugal केन्द्रापसारी
cercariae तुरइयाँ
cerebellum लघुमस्तिष्क, धम्मिलक
cerebro-spinal fluid ब्रह्मवारि, मस्तिष्क-सुषुम्नान्तरीय जल, तर्पक कफ
cerebrum बृहत्-मस्तिष्क, गुरुमस्तिष्क
cervical vertebra ग्रीवा-कशेरु
cestodes पट्टिका कृमि
chemotherapeutical रासायनिक, केमोथेरापी चिकित्सा सम्बन्धी
cholagogue पित्तनिस्सारक, पित्तोत्तेजक
choroid coat कृष्णमंडल
chromosomes क्रोमोजोम्स
chronic जीर्ण, पुरातन
cicatrix गूत, क्षत-चिह्न, दाग
cilia पक्ष्म, मार्जनिका

ciliary body सन्धानमंडल
—process सन्धान-प्रवर्धन
circulatory system रक्तसंचारी संस्थान
circumvallate खातवेष्ठित
cirrhosis पीतामय
clavicle (collar bone) हँसुली, अक्षक, कन्धेकी हड्डी, कंठास्थि
clinic रोगशय्या
clot श्यान, थक्का
club गोष्ठी
coccidiosis खूनी दस्त
coccygeal (caudal) अनुत्रिकास्थि सम्बन्धी, पुच्छास्थि सम्बन्धी
collapse अवपात, हिमांग, सर्वांगीन अवसन्नता
collar bone (clavicle) हँसुली, अक्षक, कन्धेकी हड्डी, कंठास्थि
colloid अणुसमूह-दशा
colon वृहदन्त्र, पक्वाशय
colostrum पेउसी
coma अचेतनता, मूर्च्छा
comminuted खंडक, विचूर्णित
common aorta साधारण महाधमनी
—carotid artery महामातृकाधमनी
compensated heart क्षतिपूर हृदय
complications उपद्रव
components घटक, उपादान
compound यौगिक, मिश्रण
conceive फलना, फरना, गाभिन होना
concentrates पौष्टिक चारा, पौष्टिक
concussion of brain मस्तिष्काघात
conduction परिचालन, परिवहन
conflict द्वन्द, द्वन्द्व
conical शंक्वाकार
congestion रक्तसंकुलता
—of brain मस्तिष्ककी संकुलता
conjunctiva नेत्रवर्त्म
connective tissues बन्धन-तंतु, संयोजक तंतु
constituents घटक, उपादान
contagious संक्रामक
control परिमापक
convulsions आक्षेप
cornea स्वच्छमन्डल
corpora mammillara वृंताकार पिंड, चूचुक वर्तुलक
corpus callosum महासंयोजक, मस्तिष्क-सेतु
corpusle रक्तकण
—red लाल रक्तकण
—white श्वेत रक्तकण
cortex वहिर्वस्तु, वहिस्तर

cosmic विश्वसम्बन्धी, सृष्टितत्व सम्बन्धी
costal cartilage उपपर्शुका
cow-pox गो-वसन्त, चेचक
counter-irritant प्रति-उत्तापक
craniotomy कपालोच्छेदन
cranium कूर्पर, करोटी, करोटिका
cream क्रीम, दुग्धसार, मलाई
crepitation चटचट या पटपट शब्द, करकराहट
cross दोगला, संकर
croupous rhinitis पीनस, नाकड़ा
crown शीर्ष
crucible घरिया (जिसमें सोनार धातु गलाते हैं)
curative निवारक
culture कृष्टि
cupping सिंगी लगाना
cuticle cell त्वक्कोष, वहिस्त्वक्कोष
cyanosis नीलिया
cyst सीस्ट, थैली

D

dairy गव्यशाला, गोशाला, गव्यक्षेत्र
—products गव्य
dam जननी

decapitation शिरश्छेदन
degeneration विकृति, हीनावस्था
dehorning विशृंगीकरण
delta नदीका पंखा, गंगबरार
deltoid अंसच्छदा, अंसपिंडिका
demulcents उपदाह-प्रशामक, शामक, स्निग्धकारक
dengue डेंगू, भील, चारमेख, ऊछवाली
deodorant विगन्धीकारक
dermatitis त्वक्प्रदाह
dermis अन्तस्त्वक्
desiccant शोषक
dewlap झालर
detergents स्वच्छक, परिमार्जक
diagnosis निदान
—differential भेददर्शी निदान
diaphragm महाप्राचीरा, मध्यप्राचीरा
diaphoretic प्रस्वेदक
diplegia पूर्णांग-पक्षाघात
diarrhoea अतिसार
diastole विकाश, विस्तार
dicalcification निस्सौधीकरण
difficult labour मूढ़गर्भ, कष्टसाध्य प्रसव, कष्टप्रसव
digital extensor करभ-प्रसारणी
—flexor करभ-नमनी, करभ-संकोचनी
direct प्रत्यक्ष

disc चकती
disinfectant छूतघ्न, नि:संक्रामक, रोगाणुनाशक
diuretic मूत्रल, मूत्रकारी, मूत्रवर्धक
dominant प्रधान, प्रबल
draught power भारवाही शक्ति
drum कर्ण-पटह
dry विसुकना
dual purpose द्वि-प्रयोजन
duodenum ग्रहणी
dura mater बाहरी आवरण, कलावरण, वराशिका
dysentery प्रवाहिका, आमातिसार
dyspnea श्वासकृच्छ्र, श्वासकष्ट, श्वासनिरोध
dystokia मूढ़गर्भ, कष्टसाध्य प्रसव
dysuria मूत्रकृच्छ्र

E

ear canal सुरंग, कर्णांजली
eclampsia अपतानक, एक्लेम्पसिया
eczema एक्ज़ीमा, छाजन
efferent मनोवह, चेष्टावहा
effusion स्राव, रस:निस्सरण, बहाव
electuary अवलेह
embolism अवरोधन
embryotomy भ्रूणोच्छेदन, भ्रूणव्यवच्छेद
emergency inoculation हठात् संचारण
emetic वामक, वमनकारक
enamel दन्तवल्क
endemic बारहमासी बीमारी
endocardium हृदयाभ्यन्तर कला
endogenous गर्भज
enteritis अन्त्रप्रदाह, आँतोंकी सूजन
enzymes एन्जाइम, क्रियाशील रस
epidemics महामारी
epidermis वहिस्त्वक्
epidural वराशिका सम्बन्धी, बाह्यशिराल
epiglottis ग्रीवाप्रच्छदा, अधिजिह्विका
epistaxis नकसीर
erosion बहना
eructation छलक, उद्गार, डकार
ethmoid bone झर्झरास्थि
eye-ball अक्षिगोलक, आँखका कोआ
excretory विसर्ग सम्बन्धी, मलत्याग सम्बन्धी
expiration नि:श्वास, प्रश्वास
extension and flexon तानना और मोड़ना, प्रसारण और संकोचन
extensor pedis पद-प्रसारणी
external jugular vein अधिमन्या शिरा
extravasation अपसार, पर्युत्प्लावन

F

factor कारण
fallowing चौमास
farm क्षेत्र
fascia प्रावर्णी
fat स्नेह
femur उर-अस्थि, उर्वस्थि
fencing बाड़ा
ferment संधान, उफनना, फफदना, खमीर
fetlock टखना, बजन-खुरी, गुल्फ
fibula अनु-जंघास्थि
fibre tissues सौत्रिक तन्तु
filiform सौत्रिक
fistula नासूर, नाड़ीव्रण
flakes कतरे, छिलके
flat-worm चिपटी कृमि,
flexor संकोचनी, नमनी
—metacarpi करभ-संकोचनी, करभ-नमनी
fluids द्रव
foetus भ्रूण
foot and mouth disease मुँहपका, खुरपका रोग
foramen magnum महाविवर
fore-arm प्रकोष्ठ
forehead ललाट, कपाल
formula गुर, सूत्र, निर्दिष्ट पद्धति
fracture अस्थिभंग
— compound मिश्र अस्थिभंग
— riding आरोही अस्थिभंग
— simple सरल अस्थिभंग
fragmentary असम्बद्ध
friable भुरभुरा, चूर्णयोग्य
fistula-in-ano भगन्दर
front limb अगली शाखा
frontal bone पुरः कपालास्थि
functional disease क्रियागत रोग
fungi छत्राक, छत्रिका,
fungiform छत्रक
fungus छत्राक, छत्रिका
furrow सीता, नाली

G

ganglion cells नाड़ीगंड
gangrene गैंगरीन
gas वायु, गैस
gastric catarrh पाकाशय-प्रदाह
— juice पाचक-रस
gastritis पाकाशय प्रदाह
gastrocnemius पिण्डिका
genetics प्रजनन-शास्त्र
germicide जीवाणुनाशक
gliding joint सरकनेवाला या प्रतर सन्धि
glomeruli उत्सिका

glossopharyngeal nerve कंठरासनी नाड़ी
glycogen मधुरिका, मधुरक, अघुलनशील चीनी
goads अरउआ
goitre घेघा
gonads प्रजनन-ग्रन्थि
grading up कोटि-निर्माण
granulation अंकुरण
grinding teeth चर्वणक दाँत
grooves सीता, गंडरी, खात, परिखा

H

haemolytic anaemia रंजनीय रक्ताल्पता, रक्तविकृतजनित रक्ताल्पता
haemonchus contortus तार-कृमि
haemorrhagic septicaemia गलघोंटू
hallucinations भ्रम
halters रस्सी, कंठपाश, तगही
heat गर्माना, गरम होना
heifers ओसर, कलोर
helminthiasis कृमि-रोग
hemiplegia अर्धांग-पक्षाघात
herd ठट्ठ
hermaphrodites उभयलिंगी
hernia अन्त्रवृद्धि, आँत उतरना
hind limb पिछली शाखा
hinge joint खल्लकोर सन्धि
holding चक
hook worm अंकुशा
horizental plate मध्यफलक, ह्रस्वपत्रक
hormones प्रभावी, उत्तेजक निःस्रव, हरमोन
horn-core श्रृंगमूल, शृंगमज्जा
host गृही, आश्रयदाता, मेजवान
humerus प्रगंडास्थि
hump-sore कुब्बका घाव
hybrid दोगला
—vigour संकर-तेज
hydrocephalus दीर्घशिर
hydrophobia जलातंक
hygiene आचारिक, स्वास्थ्यविधि
hyoid bone कंठकास्थि
hypertrophy विकृत वृद्धि, अतिवृद्धि,
hypnotic तन्द्राकारी
hypocalcaemia चूर्णाल्पता, कैलशियम या चूनेकी कमी
hypoglossal nerve जिह्वातालिका नाड़ी, जिह्वामूलिनी नाड़ी

I

ilium जघन-कपाल, श्रोणि-अस्थि
immature पोगंड, अप्रौढ़

immunity अनाक्रम्यता, रोगक्षमता
—natural सहज क्षमता
—passive निष्क्रिय क्षमता
in-breeding सपिंड-संवर्धन
incidence विस्तार
incisor teeth कर्तनक दाँत
incubation period प्रच्छन्नकालीन समय, रोगकी प्रच्छन्नावस्था, डिम्बपुष्टिकाल
indirect परोक्ष
inert जड़
infection छूत, संक्रमण
inferior oblique muscles वक्र-अधोदर्शनी
—turbinated bone अध: शुक्तिकास्थि
infra-spinatus अंसपृष्ठिका अधरा पेशी
infundibula क्लोमकांडिका, कूपिका
ingredient उपकरण
inguinal वंक्षणसम्बन्धी, कुक्षिगत
injection इनजेकसन, सूई लगाना.
inoculation जीवाणु संचारण
—emergency हठात् संचारण, संकटकालीन संचारण
insecticide कीटघ्न
inspiration श्वासग्रहण
insulin इनसुलिन, सर्वशरीर-पाचक रस
intercostal muscle पर्शुकान्तरिका पेशी
interdependent अन्योन्याश्रय
interparietal bone अन्तर-पार्श्वकपालास्थि
intestinal catarrh आन्त्रिक प्रदाह, आँतोंकी सूजन
intramuscular अन्त:पेशी
intravenous अन्त:शिरा
involuntary muscle स्वतन्त्र पेशी
involution प्रसावान्तर-संकोच
iris तारामंडल
irritant उत्तापक

J

jaundice पांडु, कामला
john's disease बाह
joint सन्धि, जोड़
— gliding, प्रतर-संधि, सरकनेवाली संधि
— hinge खल्लकोर सन्धि
jugular vein (anterior) पुरोग्रीविका शिरा
— external अधिमन्या शिरा
— internal अनुमन्या शिरा

K

kidney वृक्क, गुर्दा
knee जानु

L

labour pain प्रसव-पीड़ा, पीर
labyrinth गहन
lacerated विदीर्ण, चिथा
lacrymal bone अश्रुपीठास्थि
lactation ब्यान, ब्यांत, स्तन्यप्रदान-समय
lactic acid दुग्धाम्ल
lancet उत्पलपत्र-यंत्र, छुरिका
larvae अर्भक, ढोला, पिल्लू
larynx कंठ, स्वरयन्त्र
latent period प्रच्छन्नकाल
lateral masses पार्श्वपिन्ड
laws of inheritence आनुवंशिकताके नियम
lens ताल
levator scapulae अंसोन्नमनी पेशी
lice जूँ
ligament बन्ध, बन्धनिका, स्नायुरज्जु
—Nuchæ शिरोग्रीवबन्ध
line-breeding सगोत्र-संवर्धन
liquor amni गर्भोदक
liver यकृत्
— fluke यकृत्-कृमि
live-stock पशुधन
lobe पिंड, खंड, भाग
—of ear कर्णपालिका
longessimus dorsi मध्यपृष्ठिका पेशी
lucern लूसन, अल्फाल्फा
lumbar vertebra कटि–कशेरु
lymph लसीका, रस
lymphatic gland लसीका-ग्रन्थि
— vessel रसायनी

M

maggots कीड़े, पिल्लू
malar bone गंडास्थि
malformation कदाकृति
malignant मारात्मक, सांघातिक, दुष्ट
malnutrition दुष्पोषण
mandible अधोहन्वस्थि
mange पकी खुजली
manipulation हस्तोपचार
manyplies बहुपत्रक-पेट, पूर्वाशय
masseter muscle हनुकूट-कर्षणी, चर्वणी
mastitis थनैला, स्तनप्रदाह
materia medica निघंटु, भैषज्य-शास्त्र, द्रव्यगुण
mating समागम
maxilla हन्वस्थि, ऊर्ध्व-हन्वस्थि

maxillo muscular vessel हनु-पेशि-वाहक
median nerve मध्यबाहुका, मध्य-प्रकोष्ठिका नाड़ी
medulla अन्तर्वस्तु, मज्जा
— oblongata सुषुम्ना-शीर्षक
medullary sheath मज्जापिधान
membrane कला, झिल्ली
meninges मस्तिष्कावरण
mesenteric क्षुद्रांत्र-बंधनी
metabolism प्रसादपाक
— basal आधारीय प्रसादपाक
metacarpi magnus करभनमनी
metacarpus करभास्थि
metatarsus पदांगुलीमूल-शलाका
metritis गर्भाशय-प्रदाह, प्रसूति-ज्वर
microscope अणुवीक्षण यंत्र
micturition मूतास
mid-brain मस्तुलुंग-मध्य, मध्यम-मस्तुलुंग
middle gluteus नितम्बपिंडिका मध्यमा
miracidiun पानपत्ती
mitral valve द्विपत्र-कपाटिका
mobile गतिशील
moniezia चूसिका कृमि
monocular vision एकचक्षु-दृष्टि
monstrosity विकटाकृति, दनुजाकृति
monovalent एकयोजी
motor nerve प्रचेष्टनी नाड़ी
mumps गलसूआ, कर्णसूल
muscle पेशी
—involuntary स्वतत्र पेशी
—voluntary परतंत्र पेशी, इच्छानुगा
muscular tissue मांस-तन्तु, पेशी-तन्तु
myocardium हृत्पिंड, हृदयकी पेशी
myocarditis हृत्पिंड-प्रदाह

N

narcotic मादक, निद्राकारी
nasal bone नासास्थि
nasal granuloma नकपितिया
natural immunity सहज-क्षमता
necrosed सुन्न, निष्प्राण
necrosis तन्तु-क्षय, अस्थि-निष्प्राणता, प्राणहीनता
negative ऋणात्मक
nematodes केंचुआ कृमि
nephritis वृक्कप्रदाह
nerve नाड़ी
nervous tissue नाड़ी-तन्तु
neurolemma प्राथमिक नाड़ी-पिधान, नाड़ी-कंचुक
neutral प्रशमित

neutralisation प्रशमन
neutrality प्रशमता
navel-ill नवजातका रक्तदोष
nodular worm गाँठकृमि
non-descript अज्ञातकुल
nostrils नकुना, नाकका छेद, नासारंध्र
notch खाँचा, परिखा, दाँता, खात
nucleus मूलकण

O

obstetrics धात्रीविद्या
oedema शोथ
oesophagostoma गाँठ-कृमि
oesophagus अन्नवह, महास्रोत
oestrum ऋतुकाल
omasum पूर्वाशय, बहुपत्रक, पत्रा
olecranon कूर्परकूट
olfactory nerve घ्राण-नाड़ी
opsonic कल्पनक सिद्धान्त, ऑप्सोनिक
opsonins कल्पन, ऑप्सोनिन
optic nerve दृष्टि-नाड़ी, चाक्षुषी नाड़ी
optimum योग्यतम, अनुकूलतम
orbit चक्षु-कोटर
organic सेन्द्रिय, जैव
organs अवयव, अंग, इन्द्रिय
osmotic pressure अभिसारक दबाब, ऑसमोटिक दबाव
osmosis अभिसरण, ऑस्मोसिस
osteomalacia मृद्वस्थि, अस्तिक्षय
outer ear कर्ण-शष्कुली, बहिःकर्ण
ovary डिम्बकोष, डिम्बाशय
ovum डिम्ब, स्त्री-बीज

P

palate bone ताल्वस्थि
palatine तालवीय
palliative शामक, उपशामक
palpation स्पर्शन, संस्पर्शन
palpitation हौलदिल, हृत्कंप
pancreas अग्न्याशय
pancreatic juice आग्नेय रस, अग्नि-रस
papillae अनुजिह्वा, स्वादांकुर
paralysis पक्षाघात
paraplegia निम्नांग पक्षाघात, उरुस्तम्भ
parasites परोपजीवी
parathyroid परिचुल्लिका
paresis पेशीका आंशिक पक्षाघात, मृदु पक्षाघात
parietal पार्श्व-कपाल
parotid gland कर्णमूलिक-ग्रन्थि
parotitis गलसूआ, कर्णमूल-प्रदाह
parturition प्रसव
passive immunity निष्क्रिय क्षमता

pasturisation जीवाणुरहित करना
pathology विकृति-शास्त्र
pedigree वंशावली,
pelvic श्रोणि-सम्बन्धी
— girdle श्रोणिचक्र
pelvis of kidney वृक्कालिन्द
per-acute अतिप्रबल, उग्रतम
percussion ताड़न, प्रतिघात
pericarditis हृत्कोष-प्रदाह
pericardium हृत्कोष, हृदयधरा कला
peristalsis अपकर्षणी, क्रिमि-गति
peritonium उदर्याकला
peritonitis उदर्याप्रदाह
permanent teeth द्विज दाँत
pernicious सांघातिक
patella जान्वस्थि
petrous temporal bone
शंखास्थिका अश्मकूट
phalanges अंगुलिनलकास्थि,
अंगुलिनलक
pharmacology औषधिक्रिया-शास्त्र
pharmacopia औषधि-निर्माण-विद्या
pharyngitis कंठप्रदाह, गलप्रदाह
pharynx गल, ग्रसनिका
physiology शरीरक्रिया-शास्त्र
pia mater भीतरी आवरण,
चीनांशुका
pica भस्मक रोग
pigment रंजक-द्रव्य, रंजन
pineal हृकन्दिका, कैशोर-ग्रन्थि
pituitory पोषणिका
placenta पुरैन, नाल, कमल,फूल-
पुरइन
plasma रक्तद्रव, प्लाज्मा
plateau पठार
pleura उरस्या, फुस्फुसधरा कला
pleurisy उरस्या-प्रदाह, पार्श्वशूल,
फुस्फुसधरा-प्रदाह
poll चाँदी
polyvalent बहुयोजी
portal vein प्रतिहारिणी शिरा
positive धनात्मक
posterior aorta पीछेकी
महाधमनी
—deep pectoral उरच्छदा पेशी
—turbinated अधः शुक्तिकास्थि
—venacava अधरा महाशिरा
precipitate प्रक्षेप
premaxilla पुरोहनु, अधोहन्वस्थि
prepotent प्रबलवीर्य
presentations उदय
prevalence विस्तार
preventive निरोधक
primipara पहला गर्भ
probe शलाका
processes प्रवर्धन
prolapses भ्रंस रोग
prolific बहुप्रसवा

pronators विवर्तनी पेशी
protoplasm जीववस्तु
pterygoid जतूकाचरण
pubic bone भगास्थि
puerperal प्रसूतिक
pulmonary artery फुस्फुसाभिगा धमनी
—veins फुस्फुसाभिगा शिरा
pupa कुप्पा
pupil तारा, पुतली, कनीनका
pyelonephritis उत्सिकाप्रदाह, वृक्कमें जीवाणुकी छूत
pylorus मुद्राद्वार, अनुग्रहणिका, निर्गम-द्वार
pyogenic पूयकारी
pyramids शिखरिका, मुकुलिका

Q

quarters पिछला भाग

R

rabies कुकुर-विष
radiation विकीर्णन
radius बहिःप्रकोष्ठास्थि
ravine बेहड़
reactors प्रतिक्रियाधारी
reagent विकारक
recessive गौण
record लेखा
recovery निवृत्ति, रोग-निवृत्ति
recti muscle दर्शनी पेशी
red corpuscles लाल रक्तकण
rediae सलाइयाँ
refraction आवर्तन
rejuvination कायाकल्प
relative सापेक्ष, तुलनात्मक
relative heart weakness सापेक्ष हृदयदौर्बल्य
renal cells वृक्क-कोष
reproductive cell उत्पादक कोष
reptile सरीसृप
reserve रखाँत, रक्षित क्षेत्र
resolution निर्गलन
retina दृष्टिमंडल
retropulsion पीछे ठेलना
rheumatic arthritis सन्धि-प्रदाह, सन्धिवात, गठिया
ribs पर्शुका, पसली
rickets फक्क, सुखंडी
riding fracture आरोही अस्थि-भंग
rinderpest माता
rotation घुमाना, फेरा, आवर्त्तन,
ringworm दाद
round worm केंचुआ कृमि
ruminants रोमन्थक, रौंथ करनेवाले

S

sacral त्रिक सम्बन्धी
sacrum त्रिकास्थि
saliva लाला, थूक, लार
sanitary स्वास्थ्य-सम्बन्धीय, स्वास्थ्य-रक्षा-विषयक, आचारिक
saprophytes शवजीवी
saturated संपृक्त
saturation point संपृक्तताकी सीमा
scapula अंसफलक
scar mark गूत, दाग
sclerotic coat शुक्लमंडल, शुक्लवृति
sebaceous gland मेदस्रावी, स्नेहस्रावी, वसा-ग्रन्थि, मेदोग्रन्थि
sedative शामक, प्रशामक
segment टुकड़ा
selection वरण
semilunar valve अर्धचंद्राकार कपाटिका, अर्धेन्दु-कपाटिका
semitendinosus जानु-कर्षिणी, कंडरा-कर्षिणी
sensitive चेतनाशील
sensory nerve ज्ञान-नाड़ी
septicaemia रक्तविकार, रक्त-विकृति, रक्तदुष्टि
septum of nose नासिका पटल, नासा-मध्यप्राचीर
serum सीरम, रक्तवस्तु, रक्तरस, लसीका
sesamoid चणकास्थि
sheath म्रुतान
simple fracture सरल अस्थिभंग
sinus नासूर
sire जनक
skeleton ठठरी, अस्थिपंजर, कंकाल
skimmed milk दुद्धी
skull खोपड़ी
sling छीका पट्टी, सीका पट्टी
slip in noose सरकफन्दा
small intestine छोटी आँत, क्षुद्रांत्र
socket कोटर
soft palate कोमल तालु, मूर्द्धा
solar सौर्यचक्र, सौरचक्र
somnolence ऊँघ, तंद्रा
spasm चमक, हड़कन, आक्षेप
spaying जरायु-कर्तन
species वंश, कुल
specific gravity आपेक्षिक गुरुत्व
sperm पुंबीज, शुक्र
sphenoid जतूकास्थि
sphincter संकोचनी
sphincter ani गुदोष्ठ, गुदसंकोचनी
spine पृष्ठवंश
spinal cord सुषुम्नाकांड
— nerve ग्रीवा-पृष्ठगा नाड़ी, मेरुजा, सौषुम्निकी नाड़ी
spleen प्लीहा

splenius शिरोग्रीव-विवर्तनी
spore रेणु, बीज
sporocysts रेणु-थैली
sporozoites रेणुज
sprain मोच
squamous शंखचक्र
standard मान
stand-still स्थितगति,
starch स्टार्च, श्वेनसार
— equivalent स्टार्च इक्वीभेलेन्ट, एस० ई०, स्टार्च तुल्यांक
stenosed संकुचित
stereoscopic द्विचक्षु-दृष्टि
sterile बाँझ, बन्ध्या
sterilise जीवाणु-रहित करना, जीवाणु-शोधन
sternal उरीय, सउरःफलकीय
sternum उरःफलक
stifle घुट्ठी
stimulant स्फूर्तिद
stocksman पशुपालक
stomach आमाशय, पेट
stomatitis मुखप्रदाह, मुँह आना, मुँह फलना, निनावाँ
striated धारीदार
strongyles छोटे केंचुवे
stud-buffalo अरना
stye गुहेरी, बिलनी, कुम्भिक
styptic रक्तस्राव-रोधक
sub-acute अप्रबल
subclavian vein अक्षाधरा शिरा
subcutaneous अन्तस्त्वक्
sublingual gland जिह्वाधरीय लालाग्रन्थि, अधोजिह्वा-लालाग्रन्थि
submaxillary gland हन्वधरीय लालाग्रन्थि, अधोहनु-लालाग्रन्थि
sub-scapularis अंसांतरिका पेशी
suckers चुसनियाँ
sun-stroke लू लगना
superficial gluteus नितम्बपिंडिका बहिस्का पेशी
superior maxilla ऊर्ध्व हन्वस्थि
—oblique muscles वक्र-ऊर्ध्व-दर्शनी पेशी
supinators विवर्तनी, करोत्तानमी पेशी
suppuration पीब भरना
suprarenal अधिवृक्क
supraspinatus अंसपृष्ठिका उत्तस पेशी
surgery शल्य-चिकित्सा, चीरफाड़
surra सड़ा
susceptibility ग्रहणशीलता
suture टाँका, सूचीकर्म
sympathetic nerve पिंगला नाड़ी, स्वतन्त्र या समव्यथी नाड़ी
symptom लक्षण
synovial fluid श्लेष्मद

—membrane श्लेष्मधरा कला
synthesis संश्लेषण
syphon हंस-नली
system संस्थान
systolic संकोची

T

table आँकड़ा
tanning कमाना, टैनिंग
tapering गावदुम, शंक्वाकार
tape worm पट्टिका कृमि
tarsus पाद-कूर्चास्थि
taste buds स्वादांकुर
teat चूची, चूचुक
technicions कर्मकुशल
temporal bone शंखास्थि
tetanus धनुष्टंकार
tetany धनुषी
tendons कंडरा
tensor vaginae femoris उरुकंचुकाकर्षणी
testes वृषण, अन्डकोष
theorist तत्वविद्
therapeutics चिकित्सा
Therm थर्म
thorax उरःपंजर
three day fever डेंगू, भील, चारमेख
thoracic duct वामा रसकुल्या
— vertebra पृष्ठ-कशेरु
thrombus महावरोधन
thymol अजवाइनका सत्त
thymus बालचुल्लिका, बाल-ग्रैवेयक
thyroid चुल्लिका, ग्रैवेयक
tibia जंघास्थि
tick fever जर्द बुखार
ticks किलौरी, किलनी, अठौरी
tidal air वेलावायु, प्रवाही वायु
tissues तन्तु
trachea क्लोमनलिका, श्वास-नालिका
traction खींचना
transmission अनुप्रेरण
transverse section अनुप्रस्थ भाग
trapezius पृष्ठच्छदा पेशी
traumatic क्षतकृत
trematodes चिपटी कृमि
triceps त्रिशिरस्का
trigeminal nerve त्रिधारा नाड़ी
trocar ब्रीहिमुख
tubers कन्द
tuberculosis क्षत, छई, यक्ष्मा
turbinated bone शुक्तिकास्थि
tympanites पेट फूलना

U

udder थन
ulna अन्तःप्रकोष्ठास्थि
ultra-microscopic पराणुवीक्षणीय, अणुवीक्षणोत्तर

ultra-visible virus दृष्टिपर रोगाणु
umbilical cord नार, नाभिरज्जु,
unit इकाई
unsaturated असंपृक्त
uraemia विपाक्तमूत्र, वृक्कसंन्यास,
मूत्रावरोधजनित रक्तकी विषमय अवस्था
ureter गवीनी, मूत्रनाली
urethra मूत्रप्रशेक
urticaria पित्ती
uterus जरायु, गर्भाशय

V

vaccination टीका, पाच, पाछ
vagina भग
vagus nerve प्राणदा नाड़ी
valvular disease हृत्कपाटिका रोग
vasomotor रक्तचालक नाड़ी, धमनी-
नियंत्रणी
veal भील, बछड़ेका मांस, वत्स्य मांस
vein शिरा
vena cava महाशिरा
version बदलना
vertebra कशेरु, कशेरुका, कशेरुक
vertebral artery, vein
मस्तिष्कमातृका धमनी, शिरा
— column मेरुदन्ड, पृष्ठवंश
vertical plate चालनीपटल,
दीर्घपत्रक
vertigo चक्कर
vicious circle बुराईका चक्कर,
शैतानी चक्कर, शैतानी फेर, कुचक्र
villus अंकुरिका
virulent दारुण
virus रोगाणु
— ultra-visible दृष्टिपर रोगाणु
viscera धड़का खांत, अन्त्र, अँतड़ी आदि
vitreous humour मेदोजल,
सान्द्रजल
volume घनमान
voluntary muscle परतंत्र पेशी,
इच्छानुगा
vomer bone सीरिकास्थि
vulva भगोष्ठ

W

warble flies कुकुर-मक्खी
weighted पसँघा
white scour सफेद दस्त
wing bone पंखवाली अस्थि,
पक्षास्थि
wire worm तार कृमि
withers पुट्ठा
womb कोख

Y

yeast खमीर, किण्व

Z

zoology प्राणिशास्त्र
zygote उत्पादक-कोष

जीवाणु की गोष्ठी और स्वभावके अनुसार छुतहे और संक्रामक रोगोंका वर्गीकरण।

(१) बैक्टीरिया-जीवाणुजनित रोग

गोष्ठी	जीवाणुका नाम	रोगोंके स्वभाव
कोक्केसी	स्ट्रेप्टो और स्टैफिलो कोक्स	पायेमिया (पूति-रक्तदुष्टि) जयेन्ट इल (सफेद दस्त) नेभेल इल (नवजातका रक्तदोष) मेस्टाइटिस (स्तनप्रदाह)
बैक्टेरिएसी	पैसूत्यु रेला बोभिसेप्टिका बैक्टेरियम कोलाइ (एशेरिकिया कोलाइ) ब्रुसेला	पैसूत्यू रेलोसिस (गलघोंटू) नेभेल इल (नवजातका रक्तदोष) ब्रुसेलोसिस (छुतहा गर्भपात)
बैसिलेसी	बैसिलस एन्थ्रोसिस क्लौस्ट्रिडियम चौभी क्लौस्ट्रिडियम टिटेनी	एन्थ्रेक्स (गिल्टी) ब्लैकक्वार्टर (लंगड़ी) टिटेनस (धनुष्टंकार)
एक्टिनोमाइसिटेसी	एक्टिनोमाइसिस बोभिस	एक्टिनोमाइकोसिस, (कठजिभिया)
माइको बैक्टेरिएसी	माइको बैक्टेरियम ट्यूबरकुलोसिस माइको वैक्टेरियम पैरा-ट्यूबरकुलोसिस फ्यूसिफॉर्मिस नेक्रोफोरस	ट्यूबरकुलोसिस (यक्ष्मा) पैरा-ट्यूबरकुलोसिस (वाह) काफ डिफ्थेरिया, (वत्सरोहिणी)

(२) प्रोटोजोआ जीवाणुजनित रोग

गोष्ठी	प्रोटोजोआ	रोग
एमेरिया	एमेरिया जुर्नाइ	कोक्सीडियोसिस या खूनी दस्त
पिरोप्लाज्म या बैबेसिया	बैबेसिया बिगेमिना	पिरोप्लाज्मोसिस या टिक फीभर (लालपेशाब या जर्द बुखार)
ट्राइपेनोसोमा	ट्राइपेनोसोमा एभैन्सी	ट्राइपेनोसोमियासिस या सड़ा

(३) दृष्टिपर रोगाणुजनित रोग
(अल्ट्राभिजिबल भाइरसजनित रोग)

गोष्ठी	रोगोंके स्वभाव
(भाइरस रोगाणु)	रिन्डरपेस्ट—माता । फूट एन्ड माउथ डिजीज—मुँहपका, खुरपका । डेंगू—तिनदिना बुखार । काउपॉक्स—चेचक, गो-शीतला । कन्टेजियस प्लूरोनिमोनियाँ—संक्रामक प्लूरो निमोनियाँ । रेबिज—कुकुर-विष ।

अनुक्रमणिका (निर्देशिका)

[दोनों खंडोंकी]

च

छ

ज

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

ब

भ

श

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	८	बढ़ती प्रतिफल	बढ़ते प्रतिफल
१३	२१	और अपना	और अपने
१४	६	प्राणियों व समाजमें	प्राणियों तथा समाजमें
१५	१	कृतिम	कृत्रिम
१५	२२	आन्धी	आँधी
२१	१६	फंगसझों	छत्राकझों
२१	२३	बीमारीका	बीमारीके
२८	७	पुष्टिकारी	पुष्टिकारक
२८	१४	हरी व	हरी तथा
३५	४	यही	यही बात
३५	२२-२३	मनुष्यका सारे पशु जगतसे	सारे पशु जगतसे मनुष्यके
३८	६	पूरी	पूरा
४५	१५	शास्त्री	शास्त्रीय
४५	२९	जैसे	जैसी
४६	१७	उसके	उसकी
४९	१५	पाये	पायी
५०	१६	जनसंकुल और उद्योगी व कृषि प्रधान	जनसंकुल, उद्योगी और कृषि प्रधान
५१	१४	बड़े लाटका	बड़े लाटके
६२	१५	छीण	क्षीण
६६	१	भूमके	झुमके
६७	२३	बुड़े	बूढ़े

शुद्धिपत्र : ३।≈

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१२	गिनना	गिनाना
६९	१२	कुह्मार	कुम्हार
६८	२८	उपजका	उर्वरताका
७०	२	तत्वोंको	तत्वोंकी
७२	१७	यह आबादी	यहाँकी आबादी
९४	१९	चोकड़	चोकर
९९	२	कुटाइ	कुराइ
१०२	२७	खेरी	खीरी
१०७	८	बिशुखती	बिसुकती
१०९	१६	बड़ी होती है	बड़ा होता है
११३	२०	अदूर दृष्टिवाले	अदूर दृष्टिवाली
११९	१३	लिये जादे नहीं	लिये नहीं
१२१	१३	शाही कमीशन	शाही कमीशनने
१३६	१३	दुध्धी	दुद्धी
१३९	१९	भुल	भूल
१५१	२८	विभाजमें	विभाजनमें
१५२	१	मूलकरण	मूलकण
१५६	२७	मामूलीके	मामूलीकी
१६३	२८	होते हैं तो	होते तो हैं
१७४	२९	पालनेवाले	पालनेवाली
१८३	२४	भूखे मरती	भूखी मरती
१८८	२३	चाराके	चारेके
२०१	१२	किया होता	किये होते
२१२	१९	फायदा	कायदा
३२९	२५	राहिरा	रोहेड़ा
३४३	२०	चुल्हे	चूल्हे
३७९	१४	पास-पड़ोसीके	पास-पड़ोसके

शुद्धिपत्र : ३।≡

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९४	५	आदिका	आदिके
३९४	७	अर्थमें	अथमें
३९५	१०	इसे	इसका
४०१	६	खेती	खेत
४१०	१	पूसामें	पटनेमें
४११	२४	चारेका	चारेकी
४११	२७	जमीन्दारोंके	जमीन्दारोंकी
४८१	२	सूखी सामान	सूखा सामान
४९७	१२	पुआलका	पुआलके
५०७	१४	गायके	गायको
५११	६	हरा चारा	हरे चारे
५८९	१४	कोल्लुकटाई खास	कोल्लुकटाई घास
५९०	१२	सबसे बहले	सबसे पहले
७७७	९	तापकी क्रिया	हवाकी क्रिया
८२३	१०	केन्द्रोपसारी	केन्द्रापसारी
८८७	१०, १२, १५, २४	कूर्पर	कर्पर
८९७	४	सीरका	सीरिका
८९९	१७	सीरका	सीरिका
९१८	११	Gastroconemius	Gastrocnemius
९१८	चित्र १०६	अस्थियाँ	पेशियाँ
९२४	२	श्वाश नलिका	श्वास नलिका
९२७	१६	ग्रहणा	ग्रहणी
९३३	३	महामान्त्रिका	महाधमनी
९४२	१	अनुवीक्षण	अणुवीक्षण
९४२	२७	वाया रसकुल्या	वामा रसकुल्या
९५३	१०	दछे	छेद
९७९		कंडरासनी	कंठरासनी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१५	१४	मादक	निद्राकारी
१०१६	९	प्रतिशत	प्रति हजार
१०५१	२५	सर्वांगीन	स्वभावज
११८४	३	नेभिल	नेभेल
११९४		भरनोमियाँ	भरनोनियाँ
१२११	२४	स्तनन्ध्यों	स्तनन्धयों
१२१८	१५	नौंक	नोक
१२४०		थियार्सेनामाइन	थियोआर्सेनामाइन
१२४७	१९	माता	गिल्टी
१२६८	१	वहिस्त्वक्	बहिस्त्वक्
१३९३	७	कूर्पर	कर्पर
१४०५	१०	श्वास-नालिका	श्वास-नलिका
१४०५	२२	क्षत	क्षय